

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य
और
चरित्र-विकास

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास

[भागलपुर विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधि के लिए
सन् १९६३ ई० में स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० ज्योत्सना, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय
(भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार)

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली

चिरजीवी श्री चन्द्रशेखर मा 'आशाद' को
समर्पित,
जिन्हें मेरी सभी रचनाएँ बहुत प्रिय हैं—

—बेचन

प्रथम संस्करण मार्च १९६३

● सगुमार्य प्रकाशन

प्रकाशक सगुमार्य प्रकाशन

१९ पु० बी० बी० रोड, रिम्पी ९

मुद्रक मोलहू दत्त

मुद्रक भारत मुद्रकालय, छाट्टरद, रिम्पी-३३

द्विरजीवी श्री चन्द्रशेखर मा 'भान्नाद' को
समर्पित,
जिन्हें मेरी सभी रचनाएँ बहुत प्रिय हैं—

—वेचन

भूमिका

प्रस्तुत शोध-प्रबंध डॉ० वैजय के गूढ़ ग्रन्थयन-मनन का परिचायक है। इसमें हिन्दी के कथा-चरित्रों के विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए अत्यंत बुन की तात्कालीन परिस्थितियों के परिप्रक्ष में प्रमुख कथाकारों और उनके महत्वपूर्ण कथा-चरित्रों की चर्चा की गयी है।

इस प्रसंग में यह अस्वीकार्य है कि आलोच्य विषय पर एक ठक इस दृष्टि से शोध नहीं हुआ है वह क्षेत्र बिलम्बित मछूता है किन्तु हृष की बात है कि इस शोध प्रबंध के प्रकाशन के बाद इस दिशा में ग्रन्थेपय के नये सीमांत स्थापित हुए हैं।

इस प्रबंध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषय से संबंधित जो भी सामग्री हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में उपलब्ध है अध्येता को उसकी पर्याप्त जानकारी है और समयानुसार उसका उपयोग भी सही ढंग से किया गया है। अध्येता ने बड़ी उत्पत्ता और धन के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है।

चरित्र-रचयिता के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का विस्तृत स्पष्ट, विश्लेषण स्वच्छ और सुस्पष्ट निष्पन्न हुआ है।

लेखक के पास चरित्रों के समार्थ विकास की समझने की वैज्ञानिक दृष्टि एवं शक्ति है और उसकी भाषा एवं शैली भी ऐसी है जो शोध की प्रचलित पद्धतियों के विवेक को प्रयत्न करने की शक्ति रखती है। अध्येता ने जिन प्रतिमानों का प्रयोग किया है वे सर्वमान्य हैं, किन्तु इस विषय के ग्रन्थेपय के संदर्भ में इन प्रतिमानों का सकलता से प्रयोग करना उनकी मौलिकता का शोचक है।

हिन्दी साहित्य में शायद यह पहला ही प्रकाश होया जब कोई भी शोधक इस ग्रन्थ को सामने रखकर आधुनिक कथा-साहित्य में प्रमुख चरित्रों के अन्व-विकास की स्पष्ट कपरेखा देना सकेया।

ऐसे शोध-प्रबंध के प्रकाशन के लिए मैं हृदय से लेखक को शुभवाच देता हूँ।

—डॉ० नरेश्वरीशंह 'महेष्'
एम० ए०, पी०एच० डी० (संस्कृत)
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर विभाग,
मानसपुर विश्वविद्यालय, मानसपुर
(बिहार)

प्रस्तावना

प्रस्तुत सोप-ग्रन्थ पर सन् १९६३ ई० में भागलपुर विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है।

सोप-ग्रन्थ के विचारधीन विषय 'प्राथमिक हिन्दी-कथा-साहित्य' से मतलब है प्रेमचन्द प्रसाद, गुंमरी प्रभृति कथाकारों की रचनाओं से प्रारम्भ होता हुआ नामा र्जुन ओर रघु आदि की रचनाओं तक फैला हुआ हिन्दी-कथा साहित्य।^१ प्राथमिक शब्द जुड़ने से यह काल ओर भी संकुचित हो गया है। इसका प्रारम्भ सन् १९१० के आसपास से माना जा सकता है।^२ हालांकि हिन्दी के आलोचक इसकी सीमा १९वीं शताब्दी से निर्धारित करते हैं।^३ इस प्रकार यह इतिहास में बस पचास बय पुराना है।

- १ "वस्तुतः प्राथमिक हिन्दी उपन्यास की परम्परा का सुप्रवात प्रेमचन्द से हो जाता है।" हिन्दी गद्य-साहित्य, पृ० ३२
- २ (क) कहाली बिरौदाक, १९३६ जनवरी, भीमतराय पृ० ६
- (ख) "प्राथमिक हिन्दी-कहानी का उत्थान, वास्तव में, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ।" डॉ० सदानारायण साहू, हि० क० वि० वि० का वि०, गिबेसन, पृ० १
- (ग) "ऐसी तिथि मानने का मूल कारण यह है कि १९०० से १९०८ तक आठ बरों का समय प्राथमिक साहित्य में अराजकता का काल है। इस अराजकता-काल में गद्य साहित्य की विशेष अवनति हुई। गद्य की भाषा एकदम अप्यथस्थित हो गई। ध्याकरण की असादृश्यी लगभग प्रत्येक पृष्ठ में होती थीं। बंगला मराठी, संस्कृत और अंग्रेजी पुस्तकों पर पुस्तकें अनुवादित हो रही थीं। नीलिक रचनाओं का अभाव था। गद्य की जो गई भाषा बनने जा रही थी, उसके लिए कोई आरस हमारे सामने न था। अराजकता-काल के पश्चात् साहित्यिक व्यवस्था का काल (१९०८-१९१६) आता है।"
— प्राथमिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १९
- ३ (क) "हिन्दी में प्राथमिक ङय से उपन्यास का लिखना मारतेनु-युग से ही प्रारम्भ हो गया था।"
— हिन्दी साहित्य, पृ० ४१३
- (ख) "प्राथमिक काल का प्रारम्भ १८३७ ई० से होता है।
— प्राथमिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १३
- (ग) "हिन्दी साहित्य का प्राथमिक युग सन् १९३० ई० से प्रारम्भ होता है।" आलोचना (इतिहास, अंक), पृ० ७१

पर इस चौड़े-से समय में ही हिन्दी कथा-साहित्य में जो प्रगति की गई अद्वितीय है— कम से-कम भारतीय साहित्य में। बिरब के धार्मिक कथा-साहित्य का इतिहास भी पुराना नहीं है पर हिन्दी का कथा-साहित्य तो बिलकुल ही नया है, धार्मिक। डॉ० बर्मबीर भारती का मत है—“हिन्दी का धार्मिक युग समय-समय से क्यों का है।” हिन्दी कथा साहित्य का यह प्रथम चरण १९१० से १९३० तक अन्ततः प्रति से चलता रहा। १९२० से १९४५ तक कथा-साहित्य का द्वितीय चरण आरम्भ होता है। इस दौरान में कुछ प्राया जिसने हमारे कथा-साहित्य को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया कम-से-कम धार्मिक दृष्टि से इसका पहला प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ा। जेम्सबुन्दार भववर्ती-चरण बर्मा जैसे इलाहाबादी, यद्यपाम, अरक अम्बुदुष्ट विद्यालंकार से ही कुछ पूर्व की हमारी बड़ी प्रतिभाएँ, हिन्दी कथा-साहित्य को इनकी बड़ी देन है। पर अन्ततः बुन्द के साथ स्वीकारना पड़ता है कि १९४५ तक पहुँचते-पहुँचते जैसे इनकी रचना-शक्ति को किसीने ब्रत लिया। इस बीच ऐसा लगा कि कुछ दिनों के लिए हिन्दी-कथा-साहित्य में एक पर्यवरोध आ गया। किन्तु पर्यवरोध क्यादा दिनों तक नहीं रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अर्थात् सन् १९४० ई० के लगभग हिन्दी कथा-साहित्य में नया मोड़ भी लगा जो सर्वथा नया न होते हुए भी नवीनता रखता है।^१ यह है हमारे देहाती और अंतर्गतों में जाकर बहूँ के अपने स्वामाधिक निरस्तम विम उपस्थित करना तथा आराधी के बाद के नव-निर्माण की प्रवेष्टा को भी विनित करना। इसके लिए नायानुन रेषु मार्कण्डेय कमसेदर, पिबप्रहार तिहूँ संलेप मडियानी धोकारनाय भीवास्तव केचप्रहार निभ धादि अन्तेवनीय है। प्रेक्षक्य द्वारा विनित यचार्यं संपयमय जीवन विषय को तिनोत्रति देकर मनोईजानिक कपालोक के क्षेत्र में अत्र य एव जोषी प्रमृति सेवकों के द्वारा जो कटित निरापारनक प्रयोग हुए थे, उनमें प्राणा बारी मोड़ लिए और इन कथाकारों की नयी कृतियों में अविच-मृष्टि के द्वारा नवीन विद्यत की अरम्भरा को आये बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कथा साहित्य में रैन तार ईरन एरम बन, रिकेट को बाठों को भी संरक्षण मिलने लगा। साथ ही समुद्र क्षेत्रीय विद्येयताएँ, टैरट द्युव क्षेत्रीय योन अरिबर्तन हयादि की बाठों भी कथा साहित्य में प्रवेष्ट करने लगी हैं।^२ राष्ट्रीय नव-निर्माण अर्थों टवर्तों और बुनकोत्रों की नई दृक्कवाहट कथाकारों को नई प्रेरणा प्रदान कर रही है।^३

४ हिन्दी में धार्मिक कहानी की परम्परा का नूतनान और विद्यत अर्थात्कर अन्ततः की कहानी 'पाम और प्रयचम की कहानी 'अंश अरमेदर' से होना है।”
—हिन्दी मय साहित्य, पृ० ४०

५ आनोचना, अंश ४, साहित्य में अतिरोच पृ० २

६ कहानी विद्यतान १९२९ पृ० १०

७ अन्ततः, अन्ततः अन्ततः अन्ततः, अन्ततः

८ अन्ततः का अन्ततः अन्ततः अन्ततः

९ आनोचना (३४) पृ० २३

कहने का अर्थ यह कि हमारे कथा-चरित्रों में धात्र विस्तार के साथ गहराई भी मिलने लगी है।" इसलिए इस प्रबन्ध में विषय की सीमा (साधुनिश्चिता) का ध्यान रखते हुए प्रेमचन्द के पूर्व से आरम्भ करते हुए धात्र तक की प्रमुख रचनाओं के चरित्र-विकास की व्याख्या की गई है। हिन्दी कथा-चरित्रों की कथा महत्त्वपूर्ण एवं उत्प्रेरक उपलब्धि हुई है, इसका स्पष्ट अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसीलिए अनेक-अनेक क्वालि प्राप्त कथाकारों का सम्यक अध्ययन नहीं किया गया है। क्योंकि कथा साहित्य का बिबरण-आत्मक इतिहास प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य नहीं है।

मुझे जहाँ तक ज्ञात है कि इस क्षेत्र में कोई दोष-कार्य पाएर अब तक हिन्दी में नहीं हो पाया है। संभवतः समस्त भारतीय भाषाओं में भी ऐसी पुस्तकों की संख्या कम ही है। हिन्दी में केवल चरित्र-विकास से संबंधित बहुत कम साहित्य प्राप्त है। पारंपारिक साहित्य में ऐसा अध्ययन हुआ अत्यंत ही पर चरित्र पात्र या चरित्र विकास विषयक बहुत कम रचतंत्र पुस्तकें अब तक प्रकाशित हैं। हिन्दी में तो इसका निर्वाह अभाव ही है, तथापि इस दोष-प्रबंध के लेखन-रिपय में मुझे ई० एम० फोरस्टर की पुस्तक 'बी साउथवैट ऑफ दी नावेस वास्टर एलन की पुस्तक 'बी इंपतिथ नावेस', डॉ० देवराज उपध्याय की पुस्तक 'साधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य और मनोविज्ञान', एवं डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा की पुस्तक 'हिन्दी कहानियों की ऐतिहासिक विकास' आदि से बड़ी सहायता मिली है।

इस अध्ययन में हिन्दी के कथा-चरित्रों का पाषाणकालीन आरंभिक एवं वैज्ञानिक विवेचन करने का ही उद्देश्य रहा है, अतएव उपन्यासकारों अथवा आलोचकों के पूर्वा-ग्रहों से बचने का प्रयास किया गया है और पात्रों के मूल्यांकन की समस्याओं एवं तत्संबंधी आलोचनात्मक विचारों को व्यापारिक आनन्द-भूषण टाला गया है। अतएव यह एक दोष-प्रबंध है अतएव इसकी निष्ठा का निर्वाह आवश्यक है।

इस प्रबंध का लेखन समाप्त हो जाने पर दिसम्बर १९६१ में डॉ० रघुवीर राणा का एक दोष-ग्रंथ 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र-विकास का विकास' प्रकाशित हुआ है। विषय-निर्वाह की दृष्टि से मेरे दोष-ग्रंथ से अत्यंत ही बड़ा अंतर ही है, जिसका विस्तार भी यद्यपय तक ही है। डॉ० राणा ने उपन्यासकारों द्वारा चरित्र-विकास की अथवायी नयी विविध प्रणालियों का विवेचन किया है, जबकि मेरा उद्देश्य मात्र चरित्रों का विकास प्रस्तुत करते हुए उत्प्रेरक चरित्रों पर प्रकाश डालना है। मैंने इसके लिए उपन्यास और कहानी दोनों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। केवल चरित्र-विकास का अध्ययन करना मेरा उद्देश्य नहीं है। चरित्र-विकास एक अत्यंत ही बड़ा चरित्र-विकास अर्थ है। चरित्र-विकास के द्वारा चरित्रों की व्याख्या की जाती है, जिसका सम्बन्ध सम्बन्धित कथियों से होता है। चरित्र-विकास विकास में यह स्पष्ट किया जाता है कि अनेक प्रकार के विकास अनेक युग में क्यों हुए और इन चरित्रों से कथा-साहित्य में क्या भोग पाये ?

परिव-विकास की रेखाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के उद्देश्य से इस प्रबंध में समस्त संस्कृत एवं हिन्दी बाह्य मय को प्याम में रटते हुए परिच विकास का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। मैंने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर संघर्षी हिन्दी एवं संस्कृत में प्रयुक्त अरिषों के मूर्त्तिकाय की धारणीय विधियों का भी परिचय दिया है।

प्रगतुन प्रबंध में प्रमुग कठियों में उभरने वाले प्रमुल अरिषों को कोजा भी मया है। त्रिन प्रमुग बहानियों धोर अरिषों को लिया गया है वे कुछ ममूने हैं। एष प्रकार के धोर भी प्रमुग अरिष हो सकते हैं, किन्तु मैंने कि मैंने प्रारम्भ में ही निवेदन किया है कि अरिष-विषय करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने अरिष विकास को समझने का प्रयत्न किया है। ममूने के तीर पर अविरलित कुछ अरिषों की धोर इवित कर देना भी मैंने अपना बर्त्सव्य समया है, किन्तु प्रतिनिधि अरिषों के प्रगतुन विधी ऐतिहासिक उपायास के अरिषों को नहीं रखा गया है क्योंकि ऐतिहासिक उपायासों के अत्र में अधिकांश कार्य परिमाणमूलक है। इस ऐतिहासिक अरिषों पर समनासीन जीवन-संबंधों को प्रतिबिम्बित रैतना भी संभव नहीं है। अतएव हमना व्यापक सम्बन्ध नहीं किया गया है।

इस सम्बन्ध में हिन्दी के अधिकांश कथाकारों एवं आलोचकों का सहयोग मुझे मिला है। सर्वे की डॉ० रामविनायक वर्मा प्रकाशचन्द्र गुप्त नायार्जुन, प्रमृतराम, फनीरवरनाथ 'रेखु' डॉ० देवराज, धिबदानसिंह चौहान अरक मणपाल भैरवप्रसाद गुप्त डॉ० माहेरनरीतिह'महेय नलिन बिलोचन वर्मा डॉ० रामसेनाथन वाडेय, डॉ० गिरजकर वर्मा धारि ने प्रयत्न प्रत्येक सहाय्य एवं शुभचक्षुः केर मेरी धारणाओं को पुष्ट किया है जो इस प्रबंध के अन्त में प्रस्तुत हैं।

मैंने इसाहाबार में आयोजित (अतिल भारतीय) साहित्यकार सम्मेलन के धार्मिक धर उपायास एवं बहानी सोष्टी में भी भाग लिया था। उस अनुभव धोर व्यापक अर्थात् वे भी मेरे अनुभवों को पर्याप्त अतिल धोर दृष्टि मिली। इसी उद्देश्य से मैंने समस्त इसाहाबार बनारस अटना धारि रपानों की कई बार यात्रा करते हुए विद्वानों का निवेदन प्राप्त किया। मेरे लिए एवं धोर संतोष का विषय यह है कि सर्वत्र मेरे विचारों की संतुष्टि होती गई।

त्रिन विषय के दोष के हेतु इस प्रबंध की रचना की गई है उक्तका महत्व धार के अन्त में बानी बड़ दबा है। धार्मिक आलोचकों का मत है कि द्विती भी उपायास धार का महत्व-मूर्त्तिकाय उनके बानों के अरिषों के द्वारा ही संभव है। इसीलिए बास्टर एवम ने धानी पुनरुत्थ ही इवित्य नाथिन में लिया है— देवर दम गो डेट नाथिन विरारुट डेट के केर।”

दोष प्रबंध को मात्र ध्यानों में विचारित किया गया है। प्रथम ध्याय के धार्मिक विषय का प्रारम्भ करते हुए कथा उपायास बहानी, अत्रि धीन धारि के अन्तर्गत एवं उनके उद्भव धोर विकास का विवेचन हुआ है। द्वितीय ध्याय में

शरिर्षों के विभिन्न श्रेणों-उपश्रेणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को प्रासंगिकता से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पूर्वार्ध में भारतीय मूल का और उत्तरार्ध में पाश्चात्य मूल का उल्लेख है। तृतीय चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में मार-टेन्टु-युग के पूर्व से भी प्रारम्भ करते हुए नवीनतम कथा शरिर्षों का जन्म विवाह प्रस्तुत है। षष्ठ अध्याय में प्रतिनिधि तथा अविश्वसित शरिर्षों की व्याख्या की गई है। षष्ठ अध्याय के बाद उपसंहार की योजना की गई है जिसमें सम्पूर्ण शोध प्रबंध का सार है। परिशिष्ट के अन्तर्गत सर्वप्रथम शरिर्षों की उपलब्धि, प्रभाव और समावसायों एवं नारी शरिर्षों की योजना का सामोवांग विवेचन है। परिशिष्ट में ही कठिनप्राप्त शरिर्षों के विचार, पत्र, प्रस्तावना और उपलब्धि स्थान आदि का संकलन किया गया है।

मेरा सीमाय है कि हिन्दी के दीर्घम्य प्रासोचक डॉ० मनेन्द्र प्रो० बिन्दसाय मिश्र डॉ० माहेस्वरीसिंह 'महेय' इस शोध-प्रबंध के परीक्षक थे। इन परीक्षकों ने मुझसे मुझे पर्याप्त उत्साह मिला। उन सभी परीक्षकों का मैं आभारी हूँ।

मूल में मैं बिन्दबिद्यालय के उच्चाधिकारियों अपने अपने सुमन्वितों एवं अपने दिव्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग एवं उत्साह से ही इस प्रबंध का सेवन संभव हो सका। इन व्यक्तियों में मैं सबसे अधिक आभारी हूँ मित्रवर श्री पञ्चबदनप्रसादजी का जिन्होंने शोध प्रबंध के टंकन की समस्या सुलभ्यई और अपनी कारीगरी से शोध प्रबंध को सुषोभित कर दिया। मुझे दुःख है कि मैं अपने मित्र को इसके लिए अब तक कोई प्रतिदान न दे सका। इन कार्यों के लिए मित्रवर श्री योगेश्वरसिंहजी को भी मैं धन्यवाद देना नहीं मूल सकता। शोध-प्रबंध के प्रकाशन के लिए मैं भाई प्रेमनाथजी को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिनके बार-बार प्रायश्च करने पर बहुत दिनों पहले ही हो गया होता।

चरित्र विकास की रीखाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के उद्देश्य से इस प्रबंध में समस्त संस्कृत एवं हिन्दी बाहु मय को ध्यान में रखते हुए चरित्र-विकास का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। मैंने इसी उद्देश्य से प्ररिष्ठ होकर भ्रंशची हिन्दी एवं संस्कृत में प्रचलित चरित्रों के मूल्यांकन की शास्त्रीय विधियों का भी परिचय दिया है।

प्रस्तुत प्रबंध में प्रमुख कठिनों में उभरने वाले प्रमुख चरित्रों को खोजा भी गया है जिन प्रमुख कहानियों और चरित्रों को लिया गया है वे कुछ नमूने हैं। इस प्रकार के और भी प्रमुख चरित्र हो सकते हैं, किन्तु बस कि मैंने प्रारम्भ में ही निवेदन किया है कि चरित्र-चित्रण करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने चरित्र विकास को समझने का प्रयत्न किया है। नमूने के ठौर पर अधिकतम कुछ चरित्रों की ओर इंगित कर देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझा है, किन्तु प्रतिनिधि चरित्रों के अन्तर्गत किसी ऐतिहासिक उपन्यास के चरित्रों को नहीं रखा गया है क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यासों के लक्ष में अधिकतम कार्य परिमाणमूसक है। इन ऐतिहासिक चरित्रों पर समकालीन जीवन-संबंधों की प्रतिधियाँ देखना भी संभव नहीं है। अतएव इनका व्यापक अध्ययन नहीं किया गया है।

इस अध्ययन में हिन्दी के अधिकतम कथाकारों एवं कालोचकों का सहयोग मुझे मिला है। सर्वे श्री डॉ० रामचिंसाठ वर्मा प्रकाशचन्द्र पुष्ट नायार्जुन, धर्मुराम कनीश्वरनाथ 'रेजु' डॉ० देवराज, शिवदानसिंह जीहान धरक, यशपाल भैरवप्रसाद पुष्ट डॉ० माहेस्वरीसिंह 'महेष' नसिम बिसोचन समर्प, डॉ० रामचिंसाधन पांडेय, डॉ० शिवरांकर वर्मा आदि ने प्रत्यक्ष सहयोग एवं मुख्य रूप से मेरी आरण्याओं को पुष्ट किया है, जो इस प्रबंध के रूप में प्रस्तुत हैं।

मैंने इसाहाबार में आयोजित (अधिस भारतीय) साहित्यकार सम्मेलन के प्रारंभ पर उपन्यास एवं कहानी गोष्ठी में भी भाग लिया था। उस धनुष्य और व्यापक चर्चा से भी मेरे धनुष्यपाम की पर्याप्त धारित और दृष्टि मिली। इसी उद्देश्य से मैंने सततम इसाहाबार बनारस, पटना आदि स्थानों की कई बार यात्रा करते हुए विद्वानों का निदेश प्राप्त किया। मेरे लिए हर्ष और संतोष का विषय यह है कि सर्वत्र मेरे विचारों की संतुष्टि होती गई।

त्रिस विषय के शोध के हेतु इस प्रबंध की रचना की गई है उसका महत्व धाब के युग में बाप्टी बढ़ गया है। धापुनिक कालोचकों का मत है कि किसी भी उपन्यास कार का महत्त्व-मूल्यांकन उनके शोधों के चित्रों के द्वारा ही संभव है। इसीलिए वास्टर एमन ने अपनी पुस्तक 'बी इंगलिंग नाथेल' में लिखा है—'देवर इन जो वेट नाथेल विशाइट वेट केरेक्टर।'¹

शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विषय का प्रारम्भ करते हुए कथा उपन्यास कहानी, चरित्र धीन आदि के मूलतत्त्व एवं उनके उद्भव और विकास का विस्तरेण हुआ है। द्वितीय अध्याय में

अर्थियों के विभिन्न भेदों-उपभेदों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय की मासानी से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पूरुर्वा में भारतीय मठ का घोर उत्तराच में पारश्वत्य मठ का उत्प्रेषण है। तृतीय चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में मार-टेन्दु-मुम के पूर्व से भी प्रारम्भ करते हुए नवीनतम कथा अर्थियों का नम विकास प्रस्तुत है। षष्ठ अध्याय में प्रतिनिधि तथा अवि-सित अर्थियों की व्याख्या की गई है। षष्ठ अध्याय के बाद उपसंहार की योजना की गई है, जिसमें सम्पूर्ण दोष प्रबन्ध का सार है। परिशिष्ट के अन्तर्गत सर्वप्रथम अर्थियों की उपसर्गिध भ्रमाव और संभावनाओं एवं नारी अर्थियों की योजना का सामोवांग विवैचन है। परिशिष्ट में ही कतिपय आलोचकों के विचार, पत्र, प्रस्तावनी और उपसर्गिध स्थापना आदि का संकलन किया गया है।

मेरा सीमाव्य है कि हिन्दी के दीर्घत्व आलोचक डॉ० नयेंद्र, प्रो० विश्वनाथ मिश्र डॉ० माहेश्वरीसिंह 'महेष' इस दोष-ग्रन्थ के परीक्षक थे। इन परीक्षकों ने मुझसे पहले इस प्रयास की सफलता की जिसके मुझे पर्याप्त उत्साह मिला। उन सभी परीक्षकों का मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं विरहविद्यालय के उच्चाधिकारियों अपने प्रत्येक शुभचिन्तकों एवं अपने दिग्गजों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके सहयोग एवं उत्साह से ही इस ग्रन्थ का संकलन संभव हो सका। इन व्यक्तियों में मैं सबसे अधिक आभारी हूँ मित्रवर श्री गजबदनप्रसादजी का जिन्होंने दोष-ग्रन्थ के टंकन की समस्या सुझाई और अपनी कारीगरी से दोष ग्रन्थ को सुशोभित कर दिया। मुझे दुःख है कि मैं अपने मित्र को इसके लिए अब तक कोई प्रतिदान न दे सका। इन कार्यों के लिए मित्रवर श्री योगेश्वरसिंहजी को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूल सकता। दोष-ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए मैं माई प्रेमनाथजी को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिनके बार-बार आग्रह करने पर भी मैं समय पर पुस्तक की पाहिसिधि इन्हें नहीं दे सका। धन्यवाद इस पुस्तक का प्रकाशन बहुत दिनों पहले ही हो गया होता।

—वैचन

शब्दों के संक्षिप्त रूप

पृ०	पृष्ठ
डॉ०	डॉक्टर
प्रो०	प्रोफेसर
प्र०	प्रकाश
हि० क०	हिन्दी कहानो
दिल्लिबिबि	हिन्दी कहानियों की दिल्लिबिबि का विकास
घा० हि० क० सा० दीर मनो०	प्राथमिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनो विज्ञान
हि० सा०	हिन्दी साहित्य
भीबास्तब	डॉ० चिन्तारायण भीबास्तब
घा०	घाबार्थ
घा० हि० सा० का बि०	प्राथमिक हिन्दी साहित्य का विकास
हि० प० सा०	हिन्दी गद्य साहित्य
दीक्षित	डाक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित
बाजपेयी	घाबार्थ मन्ददुनारे बाजपेयी
मू० ब०	मूवेद
मधन	डा० सुपमा मधन
भट्ट	उदयचंद्र भट्ट
बोधी	इसाचन्द्र बोधी
बर्मा	मगनदीश्वरन बर्मा
बर्मा	बुम्बावनसात बर्मा
घर्मा	डॉ० रामबिभास घर्मा
घा० हि० सा०	प्राथमिक हिन्दी साहित्य
देखर	देखर एक बीबनी
हि० क० पि० का बि०	हिन्दी कहानियों की दिल्लिबिबि का विकास
पं०	परिच
ल०	लक्षक
लं०	सम्पादक
स० ही०	संविधानसद हीरानंद

धनु०
 सं०
 दि०
 सि०
 ई०
 मु०
 वृ०
 द्वि०
 सं०
 आदिकाल

धनुषाक्षक
 संस्करण
 विक्रमी
 सिमितेह
 ईस्वी
 मुद्रक
 तृतीय
 द्वितीय
 सम्पत्
 द्वितीय साहित्य का आदिकाल

विषय-सूची

मूमिका

प्रस्तावना

हाथों के सक्षिप्त रूप

प्रथम अध्याय विषय प्रवेश

१-५१

कथा का धर्म और उत्पत्ति, कथा का उद्भव और विकास उपन्यास और कहानी, उपन्यास महाकाव्य के रूप में उपन्यास और नाटक उपन्यास का स्वरूप-विकास उपन्यास की परिभाषा उपन्यास का उद्भव उपन्यास कहानी तथा कहानी और तथा उपन्यास चरित्र विकास बिन्धेय चरित्र और चरित्र-चित्रण वस्तु और स्थिति एवं चरित्र धीरे धीरे चरित्र विकास चरित्र और कथाकार।

द्वितीय अध्याय चरित्र-विकास सिद्धांत पक्ष

५२-६५

भारतीय मत

नायक उपन्यास और महाकाव्य के नायक नायक के भेद धारोप्येन और चरित्र विकास धातु और चरित्र विकास चरित्रों का नामकरण वर्ण-चरित्र सामूहिक चरित्र इत व्यक्तित्व चिह्नित प्रवृत्ति के लोच चरित्रों का विभाजन विसरण चरित्र विहृत चरित्र महापुरुष टाइप एवं व्यक्ति-चरित्र योग एवं मुख्य चरित्र सुसंस्कृत व्यक्ति कौन होता है ? नायिका की परिभाषा।

पाश्चात्य मत

धरतु और चरित्र थोरस्टर का वर्गीकरण चरित्र और मनोविज्ञान चरित्र की मनोवैज्ञानिक परिभाषा, स्वाधीनता और चरित्र चरित्र और व्यक्तित्व व्यक्तित्व के धर्म बुद्धि और चरित्र बंधानुक्रम और धारोप्येन संबंधित सामाजिक जीवन और चरित्र विकास धीरे धीरे मनोविज्ञान धारार्थ चरित्र धुक्ल का धीरे-निरूपण सिद्धांत, धारार्थ व्यक्तीय पाठ्य का वर्गीकरण चरित्र के सम्बन्ध में प्रयोगवादी चरित्रा चरित्र-विकास और मनोविज्ञान।

तृतीय अध्याय चरित्रों का क्रम विकास प्रेमचन्द युग १६-१४६

प्रारम्भिक युग भारतेन्दु युग ज्ञाना भीनिवासदास किष्करीमास योस्वामी देवकीनन्दन धत्री बोपालराम गहमरी अनुवाद निष्कर्ष जयसंकर प्रसाद पुस्तक चरित्र औपन्यासिक चरित्र प्रेमचन्द निष्कर्ष प्रेमचन्द के बर्ग चरित्र किसान बग नारी बर्ग धार्मिक बग चरित्र पशुत बग मध्यम बर्ग सोपक-सोपित चरित्र बनाम महावती सम्मता का चारित्रिक विस्लेषण राजे-महाराजे समूह चरित्र जमींदार बर्ग प्रेमचन्द के औपन्यासिक चरित्र प्रेमचन्द के औपन्यासिक नायक प्रेमचन्द की कहानियों के चरित्र कहानियों के स्त्री चरित्र पुस्तक चरित्र बाल चरित्र बिस्वम्भरनाथ धर्मा कौशिक सिद्धपूजन सहान भुवधन राजा राधिकारमन सिंह अतुरसेन शास्त्री राय कृष्णदास छत्र बाबुस्पति पाठक बिमोहसंकर व्यास जी० पी० श्रीवास्तव प्रभुतत्ताम नामर प० सूर्यकान्त त्रिपाठी निरामा भयवतीप्रसाद बाबुपेयी कुन्दावनमान बर्मा सिद्धान्तोक्त

चतुर्थ अध्याय प्रेमचन्दोत्तर चरित्र-विकास १४७-१८१

मध्यवर्गीय चरित्रों का विकास जैनेन्द्रकुमार जैनेन्द्र के औपन्यासिक चरित्र जैनेन्द्र के औपन्यासिक नायक कहानियों में चरित्र अज्ञेय अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र विकास अज्ञेय के औपन्यासिक नायक हलाचन्द्रदायी बोधीजी के औपन्यासिक चरित्र, मन्वन्तोचरम बर्मा बर्माजी की कहानियों के चरित्र यज्ञपाल यज्ञपाल के औपन्यासिक चरित्र यज्ञपाल के नारी चरित्र कहानियों में चरित्र-विकास उपेन्द्रनाथ 'भरक' भरक की कहानियों में चरित्र-विकास।

पंचम अध्याय मधोन चारित्रिक स्थापनाएँ १८२-२०८

धार्मिक कथा नापार्जुन भैरवप्रसाद दुष्ट उदयसंकर भट्ट धर्मराय रागीय रामचंद्र कमलेश्वर सिद्धप्रसाद सिंह फकीरेश्वरनाथ 'रेणु' हिमांशु श्रीवास्तव देवेन्द्र मत्यायी डा० लक्ष्मीनारायण ताम धर्मतत्ताम नामर हजारीप्रसाद त्रिबेदी सिद्धप्रसाद मिश्र 'रत्न' धर्मकान्त राजेन्द्रदास निर्मल बर्मा दोसर बोधी मोहन राकेत डा देवराज डा० परमवीर भारती नरेण मेहता, बिष्णु प्रभाकर, रामकुमार गिरिधर गोपाल डा० प्रभाकर माधवे सर्वेश्वरदास लक्ष्मीना जैनकुमार जैन मिहाबलोजन।

षष्ठ प्रप्याय चरित्र-विश्लेषण

२०६-२४०

कुछ प्रतिनिधि चरित्र

होरी प्रेमचन्द, सुनीता जैनेन्द्र देवर घग्गेय नदरिगोर जोशी
डाक्टर लला यायास बेजल घरक बसबनमा नायार्जुन
त्रिवेन्द्र रेपु।

कुछ प्रतिनिधि अविश्रमित चरित्र

बालपा प्रेमचन्द कुमारपिरि चपबठीपरप बर्बा जयन्ती जोशी
पण्डमापक घग्गेय।

सप्तम प्रप्याय उपसहार

२४१-२४८

परिनिष्ट

(१) चरित्रविकाम उपसंहार, प्रभाव और सम्भावनाएँ २४६-२७४

साधुनिक मान-सूच्यों का विकास प्रारम्भिक युग प्रेमचन्द युग मध्य
युग का विकास प्रेमचन्दोत्तर युग आत्मचरित्रात्मक चरित्रों का
विकास औपन्यासिक नायकों का महिष्य।

(२) प्रेमचन्दोत्तर नारी-चरित्र और औपन्यासिक प्रेरणा २७५-२७७

(३) प्रस्तावना—यय २७८-२८२

(क) प्रोफ़ेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त

(ख) " "

(ग) डा० देवराज

(घ) प्रेमचन्द

(ङ) प्रमृतराय

(४) उपसंहार-स्वान

२८३

(५) आकर साहित्य सूचि

२८४-३१८

(क) हिन्दी एवं संस्कृत ग्रन्थों की सूची (ख) अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

(ग) मौखिक कथा-कथियों की सूची (घ) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की

सूची (ङ) अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की सूची (च) अन्य सामग्रियाँ।



अध्याय १ विषय-प्रवेश

मनुष्य का प्रारम्भिक साहित्य कथा-प्रवाह है। उस समय कथा किसी घटना का रोचक वर्णन मात्र नहीं थी। वह मात्र मनोरंजन का साधन भी नहीं थी। बल्कि मानव-जीवन के दैनिक व्यवहार में दृष्टान्त और उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती थी। कथा की यह प्रवृत्ति अत्यधिक लोकप्रिय थी। छोटे बच्चे अपनी दादी-नानी से, प्रौढ़ और युवक कथावाचकों से कहानियाँ सुना करते थे। राजसभाओं में कथा सुनाकर मनोरंजन करने वाले लोगों को सासकर नियुक्त किया जाता था। भारत में वे विद्वेषक और ऐंग्लो-सेक्सन राजसभाओं में 'म्सीमेन' के नाम से मशहूर थे। वे धूम-धूमकर राजसभाओं की कथा ग्राम जनता को भी सुनाया करते थे।^१

नाटक, उपन्यास कहानी और प्रबन्ध काव्य के रूप में हमारा साहित्य भी कथा साहित्य ही है।

परिपामयुक्त बटना का वर्णन ही कथा है जिसमें मनुष्य जीव, या बड़ परदार्य के सम्बन्ध की किसी विशेष घबस्वा या घबस्वाघों का घादि से अन्त तक वर्णन हो। ये बचन यदि सत्य पर आधारित हों तो ऐतिहासिक काव्य (कथा नाटक प्रबन्ध काव्य) या इतिहास बनता है। यदि काल्पनिक हों तो कथा कहानी घाक्यायिका, छोटी कहानी उपन्यास नाटक या प्रबन्ध काव्य की रचना होती है।

निष्कर्ष यह कि "कथा साहित्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्याओं को परस्पर समाज सम्बन्धों में पढ़कर जीवन बिठाने के माध्यम से हल करने का एक विशेष प्रकार का कसात्मक रूप-विधान है।"^२

कथा का अर्थ और तत्त्व

साहित्यदर्पण के रचयिता विरचनाय ने कहा है कि "कथ के बचन से ओ रचना म्कत हो उठे गत कहते हैं।"^३

'भारतीय ज्ञान कोष' जगिपुराज में कहा गया है—'अपक परसंठाने पधं

१ समीला घात्म, पृ० १३१

२ प्रमतिबाध, पृ० १३१

३ साहित्य रूपम पृ० २२६

तदपि मद्यते” — अर्थात् पररहित परसमूह को यद्य कहते हैं।^४

प्राचार्य बंकी ने अपने ‘काम्यावध’ में ऐसी पद्य-रचनाओं का वर्गीकरण करते हुए कहा कि चरचरहित परसमूह का नाम यद्य है। इसके आख्यायिका तथा कथा — ये दो भेद हैं।^५

आख्यायिका का लक्षण बताते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा कि कथा ऐतिहासिक या भोक्त में प्रसिद्ध सम्बन्धित होती है। बर्न अर्न काम भोक्त इस चतुर्वर्ण में से एक उसका फल होता है।^६

प्राचार्य बंकी के मतानुसार काबंदरी, हर्षचरित बसकुमारचरित पंचतंत्र आदि सभी कथा और आख्यायिका को विभिन्न नामों से पुकारी जाती हुई भी वास्तव में एक ही जाति के अन्तर्गत आती हैं।

धर्मोपिठ अर्थ की सिद्धि के लिए बिहानू किसी भी बटना से अपने काव्य या कथा को प्रारम्भ करने का अधिकार रखते हैं। परन्तु कथा और आख्यायिका नाम से प्रचलित दोनों को देखकर यदि विचार किया जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि कथा की कहानी कथित हुआ करती थी और आख्यायिका की ऐतिहासिक। इस दृष्टि से काबंदरी कथा है और हर्षचरित आख्यायिका।^७

प्राचिन युग में संघर्ष या अन्तर्गुह से कथा का प्रारम्भ होता है।

उपरोक्त वाली कथाओं में दो स्थापक तत्व होते हैं — बटना और उद्देश्य।

दो प्रकार की कथाओं में नायक-नायिका, उद्देश्य, बटनायक, मायक-नायिका पर विपत्ति, सम्मिलन या उद्देश्य की सिद्धि — ये पाँच तत्व होते हैं।

इन सब कथाओं में उद्देश्य की सिद्धि के लिए नायक या नायिका को शैवी-देवताओं, परियों अथवा अन्य शक्तियों की सहायता प्राप्त होती है।

कुछ प्राचार्यों का मत है कि मनुष्य जब वास्तविक संसार में दुःख का आदर नहीं देता तो कथा के कल्पित संसार में उन दुःखों का आदर कराकर, उसे उचित फल दिलाकर अपनी मनस्तुष्टि कर लेता है। यह मनस्तुष्टि वास्तविक संसार से ऊँचकर हो या न हो, पर उद्भूत मनुष्य की यह एक सलाह बृत्ति होती है कि वह उचित का उचित के साथ संयोग देखने के लिए आनापित और अर्न्ध्रित रहता है। इसी उचित अर्न्ध्रता को दूर करने का प्रयास ही कथा है।

कथा के साथ स्मृति का घना सम्बन्ध होता है। इसीलिए कथा को प्रारम्भ करने की प्राचिनिक रीति में ‘एक या राजा’ रीति अतिप्रथम का परिचय मिलता है।^८

४ धर्मपुराण का काव्य आश्रीय भाग, पृ० २६

५ हिन्दी काव्यावध पृ० २२

६ साहित्य दर्पण, पृ० २९३

७ हिन्दी काव्यावध पृ० १७

८ प्राचिन हिन्दी साहित्य, पृ० २९

९ कुछ विचार, पृ० ३२, श्री इंदरिण नाथन पृ० १९

कथा का उद्भव और विकास

अपनी-अपनी प्रभावोत्पादक स्मृतियों को सुनाने में ही पहली कहानी की रचना हुई होगी, परिणामतः उत्तुङ्गा और कौतूह्य के कारण मानव ने अपनी खोजवृत्ति के द्वारा जिन वटमारों का, तत्वों का विस्तार किया, वही समय पाकर कथा और कहानी बन गई।

सम्भवतः प्रथम मानव ने जब पहली बार बोलना शुरू किया, अपनी ज्ञान की धाँसों खोजी और सूरज के जयमगाले प्रकाश में सृष्टि के विराट, अद्भुत दृश्य को सोम से बैसा और उसे अपने मनोमंदिर की चित्रशाला में संजोकर रखा तभी, प्रारम्भिक सृष्टि के उन प्रथम दिनों में ही हजारों-साधों कहानियों का सूजन हो चुका होगा।"

इसके बाद डॉबिन के विचारानुसार उसने अपने पासपास जो कुछ देखा उसकी नकल उठारने लगा—बृहत् के तनों और सुरदरे पत्थरों पर चित्र बनाने लगा। इस बीच उसकी वाक-शक्ति का धीरे भी विकास हुआ और कहानी पीठों के पासने में भूसने लगी।

कहानी के विकास के उस प्रथम युग में रात को बच्चे घर के धामिन में बिसते थे या बुढ़े घाग ठापते थे और अंयसी बीच-बल्लुधों की कहानी सुनते-सुनाते थे।"

संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद का 'सृति' नाम भी कथा-साहित्य के इस तत्व की पुष्टि करता है कि एक से दूसरे ने सुनकर ही कथा या कथन के रूप में उसकी रखा की। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर वेद को कहानियों का मूल स्रोत मानना उचित जान पड़ता है। वेद में घाई हुई कहानियाँ का पुराणों में कुछ रूपान्तर हो गया है। रामायण तथा महाभारत में इसके कई अंशों में धीरे भी परिवर्तन बीस पड़ता है। परन्तु कथानक का मूल एक ही है।"

बीह तथा जैन साहित्यों में भी इन कहानियों के बीज विद्यमान हैं।

पर छोटी-छोटी कथाओं का कहीं-कहीं केवल बीज मात्र होता है। इनका पूर्ण विकास घाये के धार्यात-अंशों में मिलता है। इस तरह संस्कृत के कितने ही धार्यात और धार्यातिकार्य ऋग्वेद संहिता से बीज रूप में प्राप्त होकर उपनिषदों, निरुक्ति बृहत् वेदता, कथ्यातन सर्वाङ्गमयी और पुराणों धारि से होती हुई अपने धार्यात रूप में विकसित हुई हैं जैसे इन्द्राङ्ग नरेय राजा हरिरचन्द्र तथा पुरुरवा और जर्बची की कथाएँ।"

अथपि वैदिक साहित्य में यद्य-पद्य में किसी कहानियों की कमी नहीं है, पर

१० कहानी की कहानी (सुबर्चान)

११ कहानी की कहानी (सुबर्चान)

१२ वैदिक कहानियाँ, पृ० ७

१३ हिन्दी कहानियों की सिल्वरबिबि का विकास, पृ० ८

धर्मकृत पद्य काव्य का विकास जिसका प्रभाव उद्देश्य रस-सृष्टि है, निश्चित रूप से मृत्यु सभारों की छत्रछाया में ही हुआ।

परन्तु, यह भी निश्चित है कि नव साहित्य को प्राग्निह रूप प्राप्त होने में कई शताब्दियाँ सही होंगी। सौभाग्य से हमें कुछ ऐसे प्रमाण प्राप्त हैं जिनसे धर्मकृत पद्य के प्राचीन अस्तित्व में कोई संशय नहीं रह जाता। बिरनार में महाशयप खडायामा का सुबबाया लेख निस्सन्देह रूप से प्रमाणित करता है कि सन् ११० ई० के पूर्व संस्कृत में सुन्दर नवकाव्य लिखे जाते थे। यह सारा लेख नव काव्य का एक सुन्दर नमूना है। सम्राट् समुद्रकृत ने प्रयाग के स्नान पर हरिवेण कवि द्वारा रचित जो प्रसिद्ध सुबबायी भी वह सुन्दर पद्य काव्य का एक दूसरा नमूना है। हरिवेण ने इस प्रशस्ति को संभवतः १३० ई० में लिखा होगा। इसमें नव और पद्य दोनों का समावेश है और काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। सुबन्दु और बाण ने जिस तरह के पद्यों में अपने रोमांस लिखे हैं, यह पद्य भी उसी जाति का है। इससे यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि इस रचना के पहले भी समृद्ध पद्य काव्य का अस्तित्व था।^{१४}

किसी-किसी यूरोपियन पंडित की चारणा है कि सारे संसार में भारतवर्ष से ही कहानियाँ पैदा हैं। इस तरह कथा को साहित्य का एक सबसे रूप माना जाता है। संस्कृत साहित्य में कथा की अवस्था ही समृद्ध परम्परा है और उसकी व्याख्या भी कई एक मतों द्वारा हुई है।

वास्तव्यतः नै काम सूत्र में जिन १४ कथाओं के नाम विनाये हैं, जिनमें वास्तव्यतः वास्तव्यतः और कथा आदि भी हैं।

मामह ने भी अपने काव्यालंकार में कथा का उल्लेख बताया है। जिनका निष्कर्ष है कि कथा में नव और अवयव छन्द नहीं होते। उच्छ्वातों में इसे विभाजित नहीं करते संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में इसे कहा जा सकता। स्वयं नायक इतमें अपना चरित्र नहीं बहता बल्कि कहीं से व्यक्तियों के चर्चाताप रूप में यह कही जाती है।^{१५}

शाक्य बंदी ने कथा और वास्तव्यतः के भेद को नहीं माना। उन्होंने इनको पद्य के दो स्वतंत्र रूप मानते हुए भी एक ही प्रकार की रचना माना।

उन्होंने कहा कि कथा नायक कहे या कोई दूसरा व्यक्ति, अथवा विभाजित हो सकता नहीं, बीच में नव, अवयव छन्द आदि या नहीं इन सबसे कोई अन्तर नहीं होता।^{१६}

तरासीन नव और पद्य कथाओं में चरित्रों की कथा अथवा चरित्र-चरित्र और वंश-चरित्र को ही प्रधानता प्राप्त थी। इसमें केवल विषय की ही प्रधानता नहीं थी। ही संवाद या कथोपकथन की अवयव वास्तविक प्रधानता मिल चुकी थी।^{१७}

१४ प्राग्निह हिन्दी-साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृ० ११

१५ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन पृ० १४

१६ हिन्दी काव्यालंकार पृ० १०

१७ साहित्यदर्पण, पृ० १२०

कथा काव्य है। इसमें कथा की व्यापकता स्वीकृत हुई, पात्रों का सुन्दर समावेश और चित्रण हुआ।

विद्यापति की कीर्तिलता के आधार पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अनुमान किया है कि कथा कहानी, खरिब काव्यों के ही पर्यायवाची हैं और कथा-कहानी के आधार के परिचामक हैं।

घाठवीं घटावरी के आचार्य हरिनाथ ने कथा के चार प्रकार—धर्म-कथा, काम कथा धर्म-कथा और संकीर्ण-कथा—बताते हुए प्राकृत भाषा के यथ तथ पद्य समाविष्ट पद्य में 'धम्मकथा' का प्रथमन किया है।

दशवीं घटावरी के पुष्पदंत विरचित अपभ्रंश काव्य 'नामकुमारखरिब' (नाम कुमार खरिब) में बर्णित है कि रानी विद्यासमेता ने नामकुमार की माता पर पर-प्रेम का दीप इमित कर समा के रूप में राजा से उसके धानूपन कतरवा सिये ये। बेटे मागकुमार ने बापस घाकर अपनी माता को धानूपनों से रहित इस प्रकार देला जैसे वह 'कृकधि की सिखी हुई कथा' हो। इससे विदित होता है कि धर्मकारों का होना कथा-काव्य में अत्यन्त आवश्यक था।

पस्तु, संस्कृत आचार्यों ने कथा तथा आख्यायिका के स्वरूपों की व्याख्या में काफी समय मवाया परन्तु वे विषय या संतीयत विशेषताओं के आधार पर इनका स्वतन्त्र रूप निर्धारित न कर सके।

मामह ने कथा तथा आख्यायिका नाम से कथा साहित्य के दो रूप स्वीकार किये।

पर आचार्य बंडी को यह स्वीकार नहीं। उन्होंने कथा आख्यायिका को एक ही पस्तु के दो नाम बताये।^१

छट और बिस्वनाथ भी इन रचनाओं के भिन्नित रूप नहीं प्रतिष्ठित कर सके।

प्राज कथा और आख्यायिका के लिए 'उपग्यास' और 'कहानी' शब्दों का प्रयोग होता है। परन्तु वर्तमान उपग्यास तथा कहानी प्राचीन कथा तथा आख्यायिका से एक हव तफ स्वतन्त्र रचनाएं हैं। प्राचीन कथाओं में घटनाओं का क्रमिक विकास होता था। परन्तु प्राचिन उपग्यास तथा कहानियों में घटनाओं का विग्यास कुछ टेड़ा और अनकारिक भी हो जाता है।^२

पुराने बंध की कथा-कहानियों में कथा का प्रभाव अर्धव्यति से एक दिशा में बनता जाता था जिसमें समय की पूर्ति के लिए घटनाएं कम कम से जुड़ती चली जाती थीं। पर यूरोप में जो नये बंध के रूपान्तर 'नावल' के नाम से चले और जो बंगभाषा में 'उपग्यास' तथा बराठी में 'कादम्बरी' के नाम से प्रचलित हुए, वे कथा के भीतर की क्विती को परिस्थिति से प्रारम्भ होते हैं जिनमें घटनाओं की शृंखला लगातार सीधी न

१३. हिन्दी कहानियों का विवेकानन्दक अध्ययन पृ० १३

१६. हिन्दी साहित्य कोश पृ० १४०

बाकर इतर-उतर तथा श्रृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है। घटनाओं की योजना का यही टेढ़ापन और बीचिच्य धाबुनिक उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है। ये विशेषताएँ उन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से भिन्न करती हैं।^{२०}

भाव का कबाकार घटनाओं की भाववाहिकता के साथ ही भाव और रचना कौशल पर पूर्ण ध्यान देता है। किसी कहानी अथवा उपन्यास के लिए धब प्राचीन प्राचार्यों द्वारा निरूपित प्रतिबंध आवश्यक नहीं माने जाते। भाव के कहानीकार तथा उपन्यासकार प्राचीन कथाकारों की अपेक्षा मौलिकता का अधिक प्रदर्शन करते हैं। भाव के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिकता तथा घटनाओं के क्रमबद्ध विस्तार के आधार पर 'काव्यापिका के समकक्ष और भाव तथा कल्पना प्रधान उपन्यास और कहानियाँ अपनी काव्यिकता काव्यात्मकता एवं रोचकता के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से 'कथा' के समकक्ष मानी जा सकती हैं। जब तो उपन्यास तथा कहानी भी दो स्वतंत्र तरह की रचनाएँ बन चुकी हैं। उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन के अधिक धनों की और कहानी में जीवन के एक अथवा सीमित पक्ष की व्याख्या रहती है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र का सौगोपांग विकास दिखाया जाता है तो कहानी में चरित्र के किसी खास धंध या धर्म की झंकी मात्र चित्रित होती है।

कथारमक गद्य-साहित्य के वर्तमान रूप उपन्यास तथा कहानी में भावोत्कर्ष कल्पना तथा प्रतिपादन शैली के चमत्कार की अपेक्षा भौस्तुक्य की भावना तीव्र रूप में प्रस्तुत होती है। इसमें धर्म बोध की प्रधानता होती है क्योंकि इसके बिना कौतूहल का बना उद्गार संभव नहीं। इसमें नापा अपनी धर्मक्रिया सीधे ढंग से करती है। इसमें कथावस्तु के प्रस्तुत धर्म को प्रधानता मिलती है और भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हाँ, भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हाँ भाव तथा रचना-कौशल को उनमें रखना अवश्य पड़ता है। ऐसा नहीं होने से उनमें साहित्यिकता तथा रोचकता नष्ट हो जायगी।

इसके विपरीत 'काव्य' तथा नाटक में भाव और रचना-चमत्कार की प्रधानता होती है।

घट साहित्य के मिला-मिला धंगों में 'कहानी' का स्वतंत्र और विशिष्ट रूप होता है।^{२१}

गद्य रचना होने के कारण रूपविधान (घर्म) और शैली (स्टाइल) की दृष्टि से कथा के कई भेद हो सकते हैं, जैसे नाटक उपन्यास कहानी गद्य काव्यापिका जीवन कथा-काम्य, धारद-चरित्र प्रमथनृत्तान्त रेखाचित्र संस्मरण स्केच और रिपोर्ताज आदि। भाव जीवन में धर्मपूर्व कोई भी घटना, भाविक खल या धंध कथा की विकास परिधि में सिमट जाता है। जीवन के किसी भी पहलू को चित्रित करनेवासी हर गद्य-रचना जिसमें कथात्व हो, भाव कथा कहलाती है। रेखाचित्र, समु कथा रिपो-

२० हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ६२

२१ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० २६

पाकर हपर-उबर तथा श्रुतियों से घुमिष्ठ होती बनती है। पटनाओं की योजना का यही टेढ़ापन और वैचित्र्य प्राकृतिक उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है। ये विशेषताएँ उन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से अलग करती हैं।^१

भाव का कथाकार पटनाओं की भावसाहित्यता के साथ ही भाव और रचना की गूँथ पर पूर्ण ध्यान देता है। किसी कहानी प्रपञ्च उपन्यास के लिए सब प्राचीन प्राचाओं काट निकालिष्ठ प्रतिबंध प्राचरमक नहीं माने जाते। भाव के कहानीकार तथा उपन्यासकार प्राचीन कथाकारों की प्रपञ्चा मोलिकता का अधिक प्रदर्शन करते हैं। भाव के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिकता तथा पटनाओं के कमबल विस्तार के आधार पर 'प्राख्यायिका के समकल और भाव तथा कल्पना प्रधान उपन्यास और कहानियाँ अपनी काल्पनिकता, प्राख्यायिका एवं रोचकता के आधार पर अत्यन्त रूप से 'कथा' के समकल मानी जा सकती हैं। सब तो उपन्यास तथा कहानी ही हो स्वतंत्र तरह की रचनाएँ बन चुकी हैं। उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन के अधिक धर्मों की और कहानी में जीवन के एक प्रपञ्चा सीमित पक्ष की प्राख्या रहती है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र का सांगोपांग विकास दिखाया जाता है तो कहानी में चरित्र के किसी खास पक्ष या धर्म की झंकी मात्र विचित्र होती है।

कथात्मक वच-साहित्य के वर्तमान रूप उपन्यास तथा कहानी में मानो-त्वर्प, कल्पना तथा प्रतिपादन धर्मों के अमलकार की प्रपञ्चा प्रीरसुक्य की भावना तीव्र रूप में प्रस्तुत होती है। इसमें धर्म जोष की प्रचानता होती है क्योंकि इसके बिना कौनू हक का बचा रहना संभव नहीं। इसमें भावा अपनी प्रपञ्चिया सीधे ढंग से करती है। इसमें कथात्मक के प्रस्तुत धर्म को प्रचानता मिलती है और भाव तथा रचना-की गूँथ का स्वाव तीव्र रहता है। हाँ, भाव तथा रचना-की गूँथ का स्थान बीच रहता है। हाँ भाव तथा रचना-की गूँथ को अपने रचना प्रपञ्च पड़ता है। ऐसा नहीं होने से उनमें साहित्यिकता तथा रोचकता गल्ट ही जायगी।

इसके विपरीत 'कथा' तथा नाटक में भाव और रचना-अमलकार की प्रचानता होती है।

प्रथम साहित्य के भिन्न-भिन्न धर्मों में 'कहानी' का स्वतंत्र और विविष्ट रूप होता है।^२

गठ रचना हमें के कारण कथविद्याल (कथा) और धर्मों (स्टारल) की दृष्टि से कथा के कई धेर हो सकते हैं। जैसे नाटक उपन्यास कहानी गल्प, प्राख्यायिका बीजनी कथा-कथा, धारक-चरित्र प्रममवृत्तान्त रेखाचित्र संस्मरण स्केच और रिपो-र्ताज धारि। भाव जीवन में धर्मपूर्व कोई भी घटना सामिक धर्म या धर्म कथा की विद्याल परिधि में सिमट जाता है। जीवन के किसी भी पहलू को विचित्र करनेवाली हर वच-रचना जितमें कथात्मक ही भाव कथा कहलाती है। रेखाचित्र, लघु कथा, रिपो-

२० हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ६२

२१ हिन्दी कहानियों का विवेचनप्रमक अध्याय, पृ० २६

तब बायरी पत्र-कथा संस्मरण मन-स्थिति-विषय इतरम्बु धारि विभिन्न निर्वाह पद्धति बासे गणलक्ष कहानी की परिधि में घाते हैं।”

आज तक संसार में बिलगी कथाएं प्राप्त हैं, वे दो प्रकार की हैं—सत्य और काल्पनिक। इसी आधार पर हमारे यहाँ कथा के दो भेद नियुक्त हुए—प्राक्यायिका और कथा। प्राक्यायिका सत्य घटनाओं पर आधारित और कथाएं कल्पना के रस पर सवार।

आजकल कथा साहित्य के कई रूप प्राप्त हैं — पौराणिक कथाएं जिनमें असाधारण मानव-चरित्र या देव-चरित्र का वर्णन होता है, उदाहरण बृहत्सप्त रूप में बनी हुई कथा कहानी जिनमें प्रसंगगत रस की विधिप्यता होती है—परियों रासलों, कल्पित राजा-राजियों की कथाएं इसी श्रेणी में आती हैं। प्राक्यायिक या अनुभूति के रूप में वर्णित कथाएं उपन्यास या कथा के अन्तर्गत आई हुई दूसरी कथा या कथाएं उपन्यास और अनु उपन्यास, छोटी कहानियां उपदेष्टात्मक कथाएं (फैबुल) बन्धकथा या लीजेन्ड—जो जनसाधारण में सत्य तथा ऐतिहासिक मानी जाती हैं और चुटकुते।

संस्कृत में सब प्रकार की कथाओं के पांच भेद माने गये हैं—प्राक्यायिका कथा खंडकथा परिकथा और कथामिका।”

इनमें से प्राक्यायिका और कथा से उपन्यासों का उत्पन्न प्राप्त होता है। अमरुत घटनाओं तथा बड़ी कथा बासे ऐतिहासिक उपन्यास प्राक्यायिका के अन्तर्गत आए हैं। ‘कथा’ में कल्पित कथाएं आती हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों के लिए हिन्दी में ‘प्राक्यायिका’ का प्रयोग हो सकता है। खंड-कथा छोटी कहानियों के लिए प्रयुक्त या तो उस अर्थ में हम प्राचिन कहानियों को ले सकते हैं। बिलक्षण कहानियां परिकथा कहलाती हैं। जहाँ एक के अन्तर्गत कई कथाएं जुड़ती चली जायं उसे कथामिका समझिये, जैसे कथा-सरित्सागर बीताल पत्नीसी विहासक बत्नीसी—परिकथा और कथामिका का सम्मिश्रण है। स्पष्ट है कि ये सब घटना की विचित्रता और कथात्मक के आधार पर किये गये हैं।

उपन्यास और कहानी

प्राचिन साहित्य में कथा से उन्हीं दो रूपों का बोध होता है जिसे उपन्यास और कहानी कहते हैं।

किसी कृतान्त या विवरण को कथा कहते हैं। विद्वानों” का मत है कि यदि वह विवरण कल्पित हो तो वह कथा है यदि ऐतिहासिक हो तो प्राक्यायिका है।

कथा नामकरण से ही स्पष्ट है कि वह एक ऐसी रचना है जो काली मनोहरक

२८ बई कहानी, हरिचंकर परसाई

३० अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग पृ० २

३१ बाह मय विमला, पृ० ३४

सुधीय घीर रोषक होगी। कथा में प्राये चरित्र भी महान् या मादर्य (भीरोराज) व होकर प्राय घीरसहित या घीरघात होगे। इसीलिए विस्व की सभी भाषाओं में कथा का महत्त्व स्वीकार किया गया घीर पर्याप्त कहानियाँ सिद्धी पर्यी।

कथा-रचना के जो विधान माने गये, उनसे भी कथा की परिभाषा पर काफी प्रकाश पड़ता है। स्टीबेसन ने कहा कि (१) एक प्वाट के अन्तर्गत पात्रों का समावेश हो या (२) कुछ घुने हुए पात्रों के इर्दगिर्द घटनाओं परिस्थितियों, बेधभूया भावि बनित हो या (३) किसी सास परिस्थिति के अन्तर्गत घटनाओं घीर पात्रों को अनुभूत कथाया जाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कथा सामाजिक चरित्रों का ही कथारमक विषय है।^{११}

कथा घीर भाष्यायिका नाम मास के गय है। उनमें बहु स्रोतस्वनी बहुठी है जो सन्द के प्राय है। वे काव्य की घेनी में घाठी है।

पर यह अंकार जो कविता का प्रारम्भ है उपन्यास में दुर्लभ है। उपन्यास सव्य कथत के बहुत निकट है। उनमें यथायं जीवन के विचरण का प्रयास ही प्रधान है। कथा घीर भाष्यायिका में कल्पना-सहित का सहाय सेकर एक रसमय मोड़ का निर्माण किया जाता है। इसलिये, वास्तव में कथा-भाष्यायिका काव्य के बहुत निकट है घीर उपन्यास तन्मप्रधान दुनिबा के निकट।

उपन्यास घीर कहानियाँ घाज साहित्य के सबसे पत्रभूत घीर कथप्रिय रंग है। इसका कारण यह है कि उपन्यास घीर कहानी के सेवक की अपनी एक रज्य होती है। कविता की तरह बहु भाषायेग द्वारा अन्तर्कथत की अनुभूति को उतना नहीं कपाता। यह बाह्यजनत की समस्याओं के बारे में अपना निश्चित मत, अपनी निश्चित चारणा व्यक्त करता है।

इसी विस्तारिते में बिनकर^{१२} के कथाकाव्य के संबंध में व्यक्त विचारों पर भी ध्यान देना चाहिए— 'मुझे यह भी पता है कि किन देशों तथा विद्याओं से प्राज हिन्दी काव्य की प्रेरणा प्राप्त है मोल या उचार मंमार्द या रही है, वहां कथा-काव्य की पर म्परा निर्येप हो चुकी है घीर जो काम पहले प्रबंध-काव्य करते थे वही काम अब बड़े मजे में उपन्यास कर रहे हैं। किन्तु, प्राय बहुत-सी बातों की तरह मैं एक इस बात का भी महत्त्व समझता हूँ कि भारतीय जनता के हृदय में प्रबंध-काव्य का प्रेम घाज भी काफी प्रबल है घीर बहु अन्धे उपन्यासों के साथ-साथ ऐसी कविताओं के लिए भी बहुत ही उत्कण्ठि रहती है। किसी भी काव्य का भाषार कथारमक विवरण ही होता है। बिना कथा या कथारमक के काव्य का रज्य सदा नहीं किया जा सकता। इसीलिए, कर्षनारमक विधान के क्षेत्र में कथा घीर काव्य साहित्य एक हो जाते हैं। काव्य के निर्धारित गुणों का पूर्णतया त्याग करके कथा साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। उसी तरह कथा के भाषार के बिना कोई काव्य नहीं स्थित हो सकता। रस-निष्पत्ति या मामन्व की प्राप्ति

१२ इन्द्रोदकतन दु व स्वकी घाक सिन्दरेवर, पृ० १४२

१३ रश्मिनी नृतिका, पृ० ७८

की दृष्टि लोगों के काम एक ही समान है। यदि कोई कहानी या उपन्यास भोला या पाठक के हृदय में ध्यान की उत्पत्ति न कर सके तो वह साहित्य नहीं हो सकता। उसी तरह रस-निष्पत्ति तो काव्य का सर्वप्रधान गुण ही है। 'रसात्मकं वाच्यं काव्यं'—रस ही काव्य का प्राण है।^१

इन समानताओं के बावजूद कथा-साहित्य का अन्य काव्यों से एक अलग बिलंब हो जाता है जब काव्य को साहित्य की शास्त्रीय पद्धति का बड़ी कड़ाई से पालन करना पड़ता है। छन्द अलंकार वृत्त रीति आदि के निर्वाह के लिए काव्य को जिस तरह बंध खाना पड़ता है उस तरह कथा-साहित्य को बंधने की जरूरत नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि कथा-साहित्य शास्त्रीय पद्धति का निरावर करता है या उनसे विमुख है या उनका प्रयोग अनावश्यक है या जान-बूझकर नहीं किया जाता। आवश्यकता पड़ने पर शास्त्रीय पद्धति का भी उपयोग या प्रयोग होता है। कथा-साहित्य का मूल उद्देश्य चरित्र-चित्रण या बटमा-बर्नल द्वारा हृदय पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालना ही होता है। पर काव्य में विशेषकर छन्दोबद्ध काव्य में संपीठात्मक और स्यात्मक तत्व की प्रधानता होती है। साधारण काव्य कथा के आधार पर अन्य प्रासंगिक बातों को अपने में समेट लेता है, पर कथा-साहित्य अपने विवरणात्मक भाग को छोड़कर किसी तरह भाव नहीं सकता। उसमें विवरणात्मक विधान की ही विशेषता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा-कहानियों में काव्यात्मक प्रचुर समावेश हुआ है—यशकुमार चरित कारम्बरी, हर्षचरित प्रभृति ग्रंथ इसके उदाहरण हैं। जब परिचामी साहित्य के प्रभाव से कहानियों में सभृता और सभ्रता माना आवश्यक हो गया है। इसीलिए शास्त्रीय पद्धति का निष्ठा पूर्वक निर्वाह आवश्यक नहीं माना जाता।

कथा-साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि वह समष्टि से व्यक्ति का सीधा सम्पर्क स्थापित करता है। अन्य काव्यों में जिस तरह काव्यात्मक जीवन के सम्पर्क में आने के लिए कई मोड़ों और चक्करों को पार करना आवश्यक होता है वैसे कथा साहित्य में नहीं होता। उसमें जीवन का विधान सरल और अविमिश्र होता है। इस-लिए उसके साथ सम्पर्क सीधता और आसानी से स्थापित हो जाता है।^२

वर्तमान कथा-साहित्य में बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित जीवन के पाठ-प्रति पाठों से अधिक जीवन के अन्तर्दृष्ट और अन्तर्गत रूप का ही अधिक चित्रण रहता है। इस तरह जीवन और जगत के माना परतों को छेदकर काव्य भी जलना और कथा साहित्य भी। एक भाव-व्यंजना की प्रधानता देना, दूसरा बटमाओं के विकास द्वारा विभिन्न परिस्थितियों को उद्घाटित करना। कथा-साहित्य के विवरणात्मक विधान की अपनी विशेषताएँ हैं और वह साहित्य के अन्य विवरणात्मक रूपों से एकलव्य भिन्न है।

कविता मुक्तक या प्रबंध-काव्य दो प्रकार की होती है। महाकाव्य तथा अंत-

१४ साहित्य साधना की दृष्टानुति, पृ० १३४

१५. वही

काव्य प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत आते हैं और विषय-प्रधान होने के कारण उपन्यास के दार्शनिक निकट है। इनमें पद्यबद्ध कथा होती है जो पद्य में लिखे आख्यानकों के पद्य मुद्राएँ जैसे लगते हैं। इसलिये दोनों में समानता स्वाभाविक ही है। दोनों में जीवन संघर्ष और घटनाओं का चित्रण तथा बर्चन-शमी समान होती है। महाकाव्य, नाटक तथा उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-विवरण जीवन की विभिन्न स्थितियों का बर्चन, वस्तु-विश्यास या वाचमिष्यंजना आदि प्रायः एक ही समान होते हैं। इसीलिये ऐसे आख्यानक काव्य या चरित्रप्रधान महाकाव्य उपन्यासों के विशेष निकट होते हैं। फिर भी उनमें कुछ भेद हैं। वे भिन्न प्रकार की कठिपों हैं और उनके धारण भी भिन्न हैं। काव्यों के नायक-नायिका अति महान और शिष्य होते हैं। उनमें बहुत ही उच्च-कोटि के नायों का चित्रण तथा स्थान-स्थान पर प्रतीकित्वा और अमत्कारिकता का उपयोग होता है। कवि की कल्पना-शक्ति भी काव्यों में उन्मुक्त उड़ानें भरती है और अपने बर्चनों को विशेष मनोप्राप्ति बनाने के लिए कवि अपने काव्य-सामर्थ्य का इच्छापूर्वक प्रदर्शन करता है। महाकाव्यों में कथोपकथन नहीं के बराबर होते हैं पर यही कथो-पकथन नाटक और उपन्यास में महत्वपूर्ण तथा ध्यान आकर्षित करनेवासे होते हैं।^{११}

परन्तु, जब ऐसा देखा जाता है कि ये सब विभिन्नताएँ भी अमर घटती आ रही हैं। इन्हीं के काव्यों में साधारणजन भी पात्र बनाये जाने लगे हैं, उनमें प्रतीकित्वा की कमी हो रही है और कुछ-कुछ कथोपकथनों का भी समावेश किया जाने लगा है। काव्य जब घटनाप्रधान नहीं बरन बर्चनात्मक होने लगे हैं और उनका भी मुख्य उद्देश्य मनोरंजन हो जाता है। फिर भी उपन्यासों से काव्यों की विभिन्नताओं के क्रमशः कम होते जाने के बावजूद कई बातों में ये मूलरूप में ही भिन्न रहेंगे—क्योंकि दोनों की बर्चन-शैली भिन्न-भिन्न है। काव्य का पूर्ण आनन्द काव्यकला का ज्ञान रखनेवाले पाठक ही उठा सकते हैं। पर उपन्यास अपने कथा-प्रवाह तथा सजीव भाषा में कथो-पकथन के द्वारा अपना धर्मिप्राय व्यक्त करने के कारण समस्यर्थाँ होते हैं। इसीलिये वे साधारण पाठकों के लिए भी समान रूप से आकर्षक होते हैं। कविता के समान उनकी समीक्षित वैचिष्यपूर्ण प्रसक्त भाषा में छिपी-छिपी नहीं रहती। इसी कारण महाकाव्य जब जोड़े से विद्युत् पाठकों के लिए हैं तो उपन्यास सर्व-साधारण के लिए बोधगम्य हैं। महाकाव्य साथ ही कल्पना के सामर्थ्य द्वारा ऐतिहासिक प्रमाण बन जाते हैं। बहुत से महाकाव्य ऐतिहासिक घटनाओं पर ही आधारित हैं। जब उपन्यासों का माध्यम नहीं निकला था तब समय-समय महाकाव्यों का विषय ऐतिहासिक घटनाएँ ही थीं। उनका महत्व सिर्फ काव्यात्मक ही नहीं था अपितु विज्ञान अर्हें ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में भी उद्धृत करते थे।^{१२}

उपन्यासों का धारण है व्यक्ति की स्वयंभवा जो संशुद्ध की विशेष रस है। कथा-प्राच्यनायिका के धारण है काव्य-कला के पूर्व-निर्धारित और परम्परागत

११. हिन्दी उपन्यास साहित्य पृ० १३

१२. बहु वीपल, पृ० १२३

उपन्यास में दुनिया या समाज के मर्यादा विषय का प्रयास होता है। ऐतिहासिक और आधुनिक आदि उपन्यास को समाज की वर्तमान हास्य से दूर भी हटते हैं, वे भी इतिहास और आधुनिक के वर्तमान क्षणों के भीतर ही अपनी कल्पना को उड़ानें करते हैं। परन्तु कथा-साहित्य में वास्तविक दुनिया से भिन्न एक अलग दुनिया बनायी जा सकती है।

उपन्यास मीठूना हास्य को तजर घंटाज कर मरिच्य का बिज उपस्थित नहीं कर सकता पर काव्य वर्तमान की पूर्णतया उपेक्षा कर अपने आदर्श तक सकता है। इसीलिए उपन्यासकार वर्तमान की पकड़ से बाहर नहीं जा सकता म कवि की भाँति वह अपने से धाँपे रखने का ही रास्ता कर सकता है। उपन्यासकार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है कि वह समाज की हास्यता को नष्ट न करे। यदि किसी महत्त्वपूर्ण पात्रमान पात्र या कविता तभी लोकप्रिय हो सकती है यदि किसी महत्त्वपूर्ण पात्रमान पात्र या कथा का पाठ्य लेकर अपनी उद्देश्य-सिद्धि करे। उदाहरण के लिए राम-काव्य कृष्ण काव्य तथा लोक-काव्य हमारे सामने हैं जिनमें लोक-कथाएँ, पुराणों की कथाएँ, किंवदन्तियाँ आदि पकी हुई हैं। वे कथाएँ स्वयं अपने-आपमें एक काव्य हैं—उनमें मनुष्य की सबसे प्राचीन पदभूति संश्लेषित है। महाकवियों ने अपनी रचनाओं में उन्हें केवल एक ढंके बरतल पर स्थापित कर दिया है। ऐसा करते हुए स्वयं वे भी अमर कवि बन गये हैं। राष्ट्र-कवि ने इसीलिए बड़ी मानिक बात कही है—“राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जान सहज संभाव्य है।” उक्तुच राम से बहुतां की महाकवि बना बिना।”

उपन्यास महाकाव्य के रूप में

महाकाव्य उपन्यासों के कुछ समीप हैं। कविता का यही रूप उपन्यास के समीप है। इसीलिए उपन्यासों को अद्यतन महाकाव्य या 'एपिक इन प्रोज' कहा गया है। इसी तरह महाकाव्यों को भी इन पद्यमय उपन्यास या 'नारेल इन वर्स' कह सकते हैं। उपन्यास और महाकाव्य दोनों ही कल्प-मयान होते हैं। उनमें वर्तन की प्रधानता होती है। दोनों में ही पात्रों के साथ कुछ घटनाएँ किसी विशेष क्षण से पठित होती हैं। उनमें जीवन की विविध दशाओं को उद्घाटित करने वाले कथा-वक्र, वस्तु-वर्तन और मात-व्यंजना के नये-नये परिमाण की आवश्यकता होती है। कथा-प्रवाह दोनों ही के लिए आवश्यक है।”

पर इतने समीप होते हुए भी वे दो निम्न तरह की इतियाँ हैं। महाकाव्यों का आदर्श भिन्न है। उपन्यासों का आदर्श उनके अन्तर्गत है। महाकाव्यों में महान व्यक्तियों और कार्यों का चित्रण होता है तो उपन्यासों में साधारण व्यक्तियों का भी जीवन

१८. धार्मिक हिन्दी-साहित्य, पृ० ६५
 १९. कहानी, साहित्य प्रवृत्त १९६०
 २०. हिन्दी-उपन्यास

बिभित होता है। उपन्यास हमारे प्रतिदिन के जीवन की बीज हैं। उनमें सामाजिक जीवन में प्रतिबिम्ब पटित होने वाली घटनाएँ बिभित होती हैं। यथार्थ का सजीव चित्रण ही उपन्यासों की सफलता की कुंजी है।

तुलसी के राम का पावन समुद्र की सहरें मानती हैं रत्नाकर के बच पर स्पष्ट मात्र से पिलाएँ तीरती हैं और धाकास में कपि उड़ते हैं। परन्तु यदि 'प्रेमचन्द' या 'कौटिक' ऐसी बिसमयताओं और चमत्कारों को अपनी रचनाओं में लाते तो 'बन्दकान्ता' और 'बन्दकान्ता सन्तति' की तरह उनका प्रचार मने ही हो जाता पर साहित्य की कोटि में बची रचना को स्थान मिलने से रहा। उपन्यासकार की कल्पना कवि-कल्पना की तरह उन्मुक्त नहीं होती। उसकी दिव्य-दृष्टि रवि-रनिमयों से प्रतिबिम्बिता नहीं कर सकती। उसके चरों में यथार्थ की पंजीर होती है। उसे यथाय को, अपने पर और अथ को ही मसीभांति बेलकर संतुष्ट हो जाना पड़ता है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महान् घटनाओं और व्यक्तियों का वर्णन महाकाव्य का सज्ज नहीं, उपलब्ध मात्र है। यदि उपन्यासों के वर्तमान रूपों का विकास महाकाव्यों के युग में हो गया होता तो संभव है कि उसके भी आदर्श यही होते।

अब तो महाकाव्यों का धर्म ही रुढ़-सा हो गया है। उनमें भी अब सामान्य व्यक्ति और जीवन को बिभित करने की रधि दिखाई पड़ने लगी है। यूरोप में तो ऐसे कई महाकाव्यों की रचना भी हो चुकी है। इसीलिए विद्वानों की राय में महाकाव्यों की प्रवृत्ति का एक प्रदान कारण उपन्यास भी है।¹¹

उपन्यास और महाकाव्य की अन्तर तुलना की जाती है। उपन्यास हमारे प्रापुनिक पूँजीवादी समाज के महाकाव्य हैं। साहित्य का यह रूप पूँजीवादी समाज की यौववाक्यता में अपने पूर्ण विकास पर पहुँचा। पर अब ऐसा लगता है कि पूँजीवादी समाज के निरन्तर ह्रास ने उपन्यास-रूपा की भी घस लिया है। हम यह भी कह सकते हैं कि उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की सबसे प्रतिनिधि उपज और व्यष्टतम रचना भी है। यह कला का एक नया रूप है।

रैनेसां या पुनर्जागरण कास के पहले उपन्यासों का अस्तित्व नहीं था। अगर था भी तो अपने प्रारम्भिक रूप में।

उपन्यास मानवीय चेतना को पहचान बनाने उसे विस्तृत करने का अपना कहेप भी अभी तक पूरा नहीं कर सका है। इसी प्रसंग में प्रसिद्ध कवि और आलोचक एल्फ फ्रांस ने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या हमारी सम्यता यानी पूँजीवादी सम्यता की समाप्ति के साथ ही उपन्यासों का भी अन्त हो जायगा। ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन सम्यता के अन्त के साथ ही महाकाव्यों का भी अन्त हो गया? किन्तु उम्प यह है कि महाकाव्य ने 'घाघोंवा वेस्ट' में फिर जन्म लिया। और यह भी कि अब महाकाव्य प्राचीन समाज के साथ ही बिलीन हो गया था तो उपन्यास ने उससे अनुप्राणित

हो नये कला-रूप में साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन किया। किन्तु इसका सत्य महाकाव्यों से भिन्न था—नये मानव की धार्मिक-धार्मिकताओं और उसकी संघर्षमय बिल्कुली को चित्रित करना इसका उद्देश्य था। पर जहाँ तक हमारी कलात्मक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, जगता है जैसे उसकी पूर्ति महाकाव्य ही कर सकते हैं।^{४२}

यह सिनेमा को सीखिये। यह ध्वनि रंग निजी संगीत—जो प्राचीन संगीत से विस्तृत भिन्न है, की समताओं से युक्त है। क्या यह नई प्राणवान कला-युग के महाकाव्य की रचना नहीं कर सकती ?

ठी इस बात को मानना ही पड़ेगा कि सिनेमा काफ़ी दूर तक ऐसा करने में सफल हो सकता है। पर वह पूर्व-रूपेण युग के महाकाव्य का पार्ट नहीं बना कर सकता। उपन्यास मानव का अधिक पूर्ण रूप उसके महत्त्वपूर्ण धार्मिक जीवन के चित्र उपस्थित कर सकता है जो मानव के निरन्तर नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न बीज है और इसीलिए सिनेमा की क्षमता से भी बाहर है। यह धारणा है कि सिनेमा की चुनौती उपन्यास को फिर से अपने सुष्ठ महत्त्वपूर्ण मुद्दों को प्राप्त करने को बाध्य करे और सबसे बढ़कर क्रियाशीलता की धारणाओं का अनुभव करने को बाध्य करे। इसी क्रियाशीलता और नाटकीय तर्कों के कारण आसूरी उपन्यास लोकप्रियता प्राप्त करते हैं—जिनका सिनेमा के द्वारा पोषण होता है और उपन्यास बिनासे कतराते हैं। सिर्फ यही कहकर आसूरी उपन्यासों की लोकप्रियता को नहीं समझा जा सकता कि लोग धराराय या हिंसा से प्रेम करते हैं।^{४३}

महाकाव्यों द्वारा समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यासों के द्वारा वेता न तो हुआ और न होगा संभव है। महाकाव्यों के पात्रों में और जिस समाज की वे उपन्यासों के एक संतुलन था। उपन्यासों के रूप में वह संतुलन विनष्ट हो चुका है। महाकाव्यों का पात्र समाज का एक धर्म है वह कभी-कभी तो प्रकृति का एक धर्म बन जाता है यद्यपि उससे अभिभूत जान पड़ता है। किन्तु प्रकृति से उसके संघर्ष का या प्रमुख का नहीं पता नहीं चलता। 'छात्रों व रोता' में भी 'ईसाइयों' और बच्चियों—जो समाज के इन्ध की कहानी है और इसमें बर्णित छात्रोंमिल रोता घोसिलर, महार पोडा जानेसो व्यक्तिगत से धार्मिक प्रतिनिधि चरित्र हैं—बुद्धिमत्ता साहस, करमावरशरी और विस्वासावात के प्रतीक।^{४४}

धार्मिक मंदरुमारे शारुपेयी^{४५} ने प्रश्न उठाया है कि उपन्यास की परम्परा और महाकाव्य की परम्परा निरन्तर भिन्न बस्तु है। ऐसी ज्ञान में उपन्यास को 'एकिक नावेल' कहना साहित्यिक दृष्टि से समीचीन नहीं। पर राष्ट्रीय जीवन के किसी विशेष युग का सर्वतोमुखी उत्पादन करना उपन्यास में संभव भी नहीं है। सामाजिक जीवन

४२ उपन्यास और लोक-जीवन पृ० ३२

४३ वही, पृ० ३६

४४ वही पृ० ३६

४५ धार्मिक-साहित्य पृ० १२०

का यथार्थ चित्रण और युग की प्रबलतम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना—जो महाकाव्य कर सकते हैं—उपन्यासों के लिए असंभव है।

सर्वप्रथम टासम्टाय के उपन्यास 'बार एन्ड पीस' को 'राष्ट्रीय उपन्यास' की संज्ञा दी गयी। बिन्नुमि इसका अध्ययन किया है वे मानते हैं कि यह कृति वास्तव में उपन्यास नहीं, उससे कुछ अधिक है।

हिन्दी के कुछ पाठोपकारी ने प्रेमचन्द के योदान को भी हिन्दी का 'महाकाव्य' माना है।^१

महाकाव्य में बिराट जीवन को प्रस्तुत किया जाता था। उसमें घटना-वक्र या चरित्र-चित्रण व्यक्तिगत होकर प्रतीकारमक रहते हैं। उसमें भावात्मक जीवन के प्रतिबिम्ब सत्य का दर्शन कराया जाता है। उसके पात्रों में समस्त युग की बान्नी मिसती है। उसमें नायक के चरित्र को अपने युग और कति क व्यक्तित्व से घनप दूर से जाकर ब्रह्मना के उच्च द्विद्वार पर लड़ा का दिया जाता है। फिर उसे प्रकृति और परिवेश से महाय बनाकर रहने का प्रयास होता है। इसलिए महाकाव्य हमें पात्रों का व्यक्तित्व देता है, चरित्र नहीं।

उपन्यास और नाटक

उपन्यास चित्रण और वर्णन प्रधान साहित्य है। इसलिए नाटकों से भी उसका स्वरूप प्रसंग है। नाटकों में घटनाएँ अधिक वैपदान, प्रबाह्वीम और नाटकीय परिस्थितियों के द्वन्द्व के उपयुक्त होती हैं। उपन्यास में घटनाओं की गति मन्द और व्यापक होती है। नाटक में किसी एक या अल्प ही घोर तीव्र गति से बढ़ने की आवश्यकता है। पर उपन्यास में घटनाएँ क्रम क्रम से अपने को उद्घाटित करती हुई बढ़ती हैं। समस्त उपन्यास ही एक प्रकार से कार्य होता है। नाटकों में स्वतन्त्र रूप से, स्वभाव वैचित्र्य तथा चरित्रिक विशेषताओं के चित्रण का प्रबल नहीं मिला सकता। वे परिस्थिति, संयोग और एक दूसरे के संघात में चरित्र का उद्घाटन करते हैं। उपन्यासों में इस तरह के संबंध नहीं हैं। इतिहास विद्वानों ने उपन्यास को पढ़ी रेखा (होराइजेन्टल लाइन) और नाटक को खड़ी रेखा (वर्टिकल लाइन) कहा है। यानी उपन्यास का चित्रण समतल और नाटक का दीर्घ के ऊपर की घोर बौद्धिक बासा। उपन्यास की विशेषता का पता वा समीक्षा उसके प्रत्येक अध्याय के आधार पर ही की जा सकती है।

इसके विपरीत नाटक का संबंध घटनाओं की प्रसाधारण प्रगति, संघर्ष और अंतिम फल से होता है। उपन्यास घटनाओं की स्वाभाविक गति और फल से संबंधित है। नाटक चरित्र की परिस्थितियों और उनसे होनेवाले विस्मय-कारक परिणामों को चित्रित करते हैं। उपन्यासों में चरित्र की सीमा का अधिक तटस्थ और निरपेक्ष होती है।^२

^१ नरसिंह विश्वनाथ शर्मा, आलोचना, (२) पृ० ११४ पोपल क्लब कौल, वही पृ० १४४

आत्मकल नाटकों का निर्माण किसी समस्या विशेष के निरूपण, विगर्जन और समाधान को प्रदर्शित करने के लिए भी होता है। पर उपन्यासों में स्वाभाविक विषय इतना आवश्यक है कि वे किसी विशेष समस्या को आधार बनाकर नहीं चल सकते। हाँ, यह बात सही है कि कतिपय उपन्यासों में जीवन के किसी खास महत्त्व पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। किन्तु, समस्या-उपन्यासों का नाम अब तक नहीं सुना गया।

प्रेमचन्द का मत था कि नाटकों की अपेक्षा उपन्यास में चरित्र-विकास की अधिक गुंजाइश है।^{४८}

इस संबंध में घेरे ने लिखा है कि "उपन्यास में मनोवृत्तियों का विषय प्रधान होता है, चरित्र और कर्म का नहीं। यदि बीबी होनी चाहिए नायक को सहन करने वाला होना चाहिए, न कि कर्मण्य"। इसके विपरीत नाटक का नायक क्रियाशील और कर्मठ होता चाहिए। साथ ही अपनी पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसे रंगमंच की अपेक्षा रहती है। पर उपन्यास अपना रंगमंच अपने पात्रों में लिये फिरता है।

नाटककार उपन्यासकार की तरह चरित्र-विकास का सुयोग नहीं पाता। यह काम उसे जोड़े से छपारों उस पात्र के कवोपकरण उस पात्र के संबंध में दूसरों की उक्तिव्यों के द्वारा करना पड़ता है। नाटक में पात्र जो करता है, उसकी महत्ता है, न कि उसके कथन की। पटना और पात्र एक दूसरे से संबंध में बाये बढ़ते हैं और उन बात प्रतिघातों से उत्पन्न क्रियाओं द्वारा हम पात्रों के चरित्र का उद्घाटन देखते हैं। नाटककार का यह बड़ा कठिन कार्य है कि भिन्न-भिन्न पात्रों के रूप में उसे हर एक नया-नया मनोभाव स्वीकार करते रहना पड़ता है।^{४९}

उपन्यास का स्वरूप-विकास

संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द मनोरंजन के अर्थ में प्रयुक्त होता था। हर्षचन्द्र ने भी उपन्यास में मनोरंजन को ही सर्वोच्च माना है। किन्तु उपन्यास के साथ स्वाभाविक अनुभव और संज्ञाय पटनाएँ भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। उसका प्रयोजन यह है कि वह प्राकृतिक चित्रों और दृश्यों के माध्यम से मनोरंजन को और अपने चित्रों को भावनात्मक अर्थ में बाँधे। उपन्यास संघन-कथा का संकृष्टतम रूप है। इसे संघार की कल्पनात्मक संसृष्टि के वर्तमान युग का सबसे बड़ा उपहार माना गया है।

नाटक संघीत चित्रकला और वास्तुकला के पीछे विकास का एक बहुत बड़ा इतिहास है। उपन्यास अल्पकालीन है। परन्तु इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। यह सामान्य कथा उद्घाटन से लेकर दार्शनिक चिंतन तक को अपनी परिधि में समेट लेता है। उसकी सकलता चित्रित तथ्यों की मानवीय स्पष्टता में है।

उपन्यास मात्र कल्पनाभिधित पद्य नहीं है। यह है मनुष्य के जीवन की यात्रा, उसके सम्पूर्ण जीवन की यात्रा उसके सम्पूर्ण जीवन की मुखर करने वाला पद्य।

४८. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० १६

४९. साहित्य का सार्वी, पृ० ८८

इसीलिए केवल ऊपरी कमरुदमक धीरे धीमे के बमत्कार से सफल उपन्यास का सुजन संभव नहीं। उपन्यास के लिए जीवन में सहरी पैठ, सहरी धनुमूति धीरे व्यापक सहानुमूति आवश्यक है। इसी कारण कमासुओं में उलका इतना महत्त्वपूर्ण धीरे उल्लेख स्थान है। इसीलिए उसमें सफलता घटि कठिन है, धीरे सेसन-कार्य कष्टकर तथा धर्मघाही है।”

उपन्यास धर्म्य कमासुओं से इतलिए भी भिन्न है कि उसमें जीवन के योपनीय संघर्षों के मातृसिद्ध संघर्षों को भी चित्रित करने की शक्ति है। यथाय का यह चित्रण नथिता काटक, संगीत, तथा चित्रकला से भिन्न है। उपन्यास समूचे धीरे सविभाष्य मानव-जीवन को अपनी विषयवस्तु बनाता है। अनुप्य का चेतन, धर्मचैतन या प्रचेतन कुछ भी उसकी परिधि से बाहर नहीं।

उपन्यास शब्द संस्कृत के 'अप्' धानु से बना है जिसका धर्म है रचना। इसमें 'अप' धीरे 'मि' उपसर्ग है धीरे धं प्रथम का प्रयोग है। कुम मिसाकर इसका धर्म है सम्यक रूप से धपस्थापन। धार में इस धर में कई भाषागिक धर्म भी प्रहृष स्थिे। धर मोनियर विलियम्स ने धपने संस्कृत-धर्मो धरकोप में उपन्यास के कुछ धर्म इस प्रकार धिे हैं—“अनेक (मेलसन) धमिकधन (स्टेटमेंट) धम्मति (सत्रेधन), उद्धरण (कोपेधन), धन्वर्ध (रेफरेंस)। डा० मीरडोनल ने धपने धरकोप में उसके धर्म इस तरह लिधे हैं—“विद्वत्ति (इन्टीयेधन) धमिकधन (स्टेटमेंट) धधुधोपन (डिक्सेयेधन) धारविधार (डिक्कधन)। स्पष्ट है कि यधधि संस्कृत धारुधय में 'उपन्यास' धर का धयोप्य प्रयोग होता या धर उसका उध समय यह धर्म नहीं या धो धार सधध धाता है—धर्धति यध में धयोप्य संधी कधा। यह धर्म धाधुनिक धुध की धन है धीरे यही प्रधन तथा धधिकधन प्रधमिध धर्म भी है।”

कधा के धर्म में उपन्यास धर का सबसे प्रहृषा प्रयोग संधला-साधिय में प्रान्त होता है। धनु १८११ १७ में धी धूधेध धुधधी मिधित ऐधिहासिक उपन्यास की धी संधला-साधिय के इधिहासकारों ने संधला का प्रथम उपन्यास धधा है। धनु १८११ में धी धधधध धधुधध धार मिधित 'धधधुध उपन्यास' प्रकाधित धुध। इसके पहले 'धधधेध धरेध धुधध' नाम की एक धीरे रधना प्रकाधित धो धुधी धी। इध तरह धी धधुधध की रधना से यह पठा धधता है कि १८११ तक उपन्यास धर का इतना प्रधधन धो धधा या कि धध्य लेखकों धारा भी इसका नधीन धर्म में प्रयोग धो धके। उपन्यास धर के पहले संधला में कधा कधानी धाध्याध धधरण, धधाध्याध धधि धी धध संधला में प्रधमिध धे। धर यह धिधधार है कि उध समय तक संधला के लेखक धर्मो से प्रान्त साधिय की संधला नधीन धिया 'नाधिस' से परिधित धो धुधे धे। १८७१ में प्रकाधित एक पुधक में धी धूधेध धुधोधधधध ने एक स्वध धर धिधध है—“मिे धधध धीध धर्ध धूर्ध धर्मो के 'नाधिस' के धधुधध धर एक

कथा बंयसा में मिली थी।" उनका संकेत ऐतिहासिक उपन्यास नाम की प्रपनी रचना की ओर है। वस्तुतः इस पुस्तक में एक नहीं, बरिफ़ अंगार विनियम' और 'सप्टल स्वप्न' नामक दो कथाएँ संकलित हैं।^{१९}

कुछ धर्मोपदों में बंयसा में प्रथम कथा के प्रकाशन का समय 'समाचार बचन' नामक पत्र से २४ फरवरी और १ जून १९२१ माना है जब उस पत्र में एक 'बाबू' विमल का चरित्र प्रस्तुत किया गया था। यह चित्रण मनोरंजन के उद्देश्य से किया गया था। दो वर्ष बाद १९२३ में प्रथम बंयसा उपन्यास 'नव बाबू विद्यास' का प्रकाशन मबानीचरण बनर्जी द्वारा हुआ।^{२०} बाबू की परिभाषाओं के अनुसार इन कथाओं में औपन्यासिक तत्व नहीं के बराबर हैं। पर यह सत्य है कि कृति के नाम में उपन्यास शब्द का प्रयोग 'नाबिल' के धर्म में ही किया गया है।

जहाँ तक पत्र-पत्रिकाओं का प्रश्न है बंबईसंग नामक बंयसा पत्रिका में उपन्यास का सबसे पहला प्रयोग कथावित्त सन् १८६४ में हुआ था। बकिम युग में (१८७२-९३) जो बंयसा साहित्य का निर्माण-युग कहलाता है—उपन्यास शब्द का प्राचिन धर्म में प्रयोग ही हुआ था।

डॉ० माताप्रसाद मुण्ड का मत है कि हिन्दी में उपन्यास शब्द का सबसे पहला प्रयोग संभवतः १८७१ में 'मनोहर उपन्यास' नाम की एक कथा-पुस्तक के नामकरण में हुआ था। डॉ० माताप्रसाद मुण्ड हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में इसे सम्भवतः स्थापित करते हैं। पर प्राचार्य शुक्ल प्राचार्य द्विवेदी डॉ० बाम्पेय पादि जोड़ी के हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस कृति का कहीं उल्लेख भी नहीं किया है। (हिन्दी पुस्तक साहित्य पृ० २६)

कुछ लोगों का कहना है कि उपन्यास शब्द का प्राचिन धर्म में प्रचलन मराठी से प्रारंभ हुआ। पर यह इसलिए घमाया है कि स्वयं मराठी में उपन्यास के लिए 'कारम्बरी' शब्द का प्रयोग होता है।

मराठी में उपन्यास के लिए 'नवसकथा' का प्रयोग है। मबिल से 'नवस' निकल रहा कथा जोड़कर इसे बनाया गया। व्यक्ति साम्य के कारण 'नवस' शब्द को प्रयुक्त किया गया। पर शब्द 'नवस' का बोध नहीं हो सकना इसलिए 'कथा' जोड़कर उसे पूरा किया गया।^{२१}

दलिय भाषाओं में 'तमिष में उपन्यास शब्द का प्रयोग प्रायः आज भी होता है। पर वहाँ इसका धर्म है 'व्याख्या' और यह धर्म नैकडोल के धर्म-प्रतिक्रमण चारविचार धारि के निकट पहुँचा है। हिन्दी में भारतीय युग में उपन्यास का इसी धर्म में दो सत्रों में प्रयोग किया है। पर इसका प्रचलन नहीं हुआ।

१९ वही

२० अंग्रेजी दैनिक 'स्टैट्समैन' ६ मार्च १९३९, सम्पादक के नाम पत्र स्तम्भ में प्रकाशित पृ० धार० विचारों के विचार

२१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० १४०

बगला में इसी प्रकार रोमांस के लिए उपन्यास शब्द बना। पर वह भी चल नहीं सका। 'नोबेल' से मिलता-जुलता 'नबल' शब्द भी ब्रिटिश बाहु के समय में प्रयुक्त हुआ था।

उर्दू में उपन्यास को 'नाबिल' ही कहा जाता है। उपन्यासकार के बदले 'नबल कर्माकार' या 'नबलकार' शब्द चला था। पर ये उसी समय प्रयुक्त हो गये। अब केवल उपन्यास शब्द ही विद्येय प्रचलित है।

'नाबिल' की तरह 'डिक्शन', भी उपन्यास शब्द के लिए चलता है। "डिक्शन साधारणतः सभी छोटी-बड़ी कहानियों और उपन्यासों के लिए प्रयुक्त होता है तथा नाबिल, रोमांस स्टोरी आदि उसके कई भेद हैं। डिक्शन का अर्थ कास्मिक, भूमी या मिथ्या कहानियाँ हैं।" रोमांस पहले दक्षिण यूरोप की शैलियों (dallies) को कहते थे। जहाँ भाषाओं में किसी कहानियों को 'रोमांस' कहा जाने लगा। ये कहानियाँ कल्पित मानव जीवन को सीमार्गों से परे, विचित्र विस्मयकारी और रोमांचक होती थीं।

'स्टोरी', फ़ैबुल आदि शब्द छोटी कहानियों के लिए प्रयुक्त होते थे।

हिन्दी में या भारतीय भाषाओं में भी जब पारंपारिक प्रभाव के कारण वहाँ जैसी ही कहानियाँ लिखी जाने लगीं तो उनके नये नामकरण की भी आवश्यकता पड़ी।

अंग्रेजी शब्द नाबिल या 'नाबिल' लैटिन के विरोधक 'नाबिला इटालियन और स्पेनिश शब्द 'नोबिल' और फ्रांसीसी शब्द 'नोबेसी' से मिलकर बना। पुनरुत्थान युग के आरंभ से ही एक कास्मिक लक्षणा के अर्थ में यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग प्रचलित था। यद्यपि किसी एक लक्षणाओं में साधारण जीवन की घटनाएँ प्रस्तुत की जाती थीं। सोलहवीं शताब्दी में इटालियन लक्षणाओं के अनुवाद के साथ ही इस शब्द का भी अंग्रेजी साहित्य में प्रचलन हो गया। अठारवीं शताब्दी में लक्षणाओं का आकार विस्तृत हो गया। पर इन बड़ी लक्षणाओं के लिए भी 'नाबिल' शब्द का प्रयोग हुआ रहा जो आज तक भी जारी है।

उपन्यास की परिभाषा

'साहित्य' शब्द का 'कविता की परिभाषा जिस तरह कल्पित है और कोई भी एक परिभाषा सम्पूर्णतः स्वीकृति नहीं हुई है। उसी तरह 'उपन्यास' को भी परिभाषित करना कठिन है। देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने इस शब्द के प्रयत्न किये हैं। पर कोई भी एक परिभाषा उपन्यास के सभी अर्थों और पहलुओं को स्पष्ट नहीं करती। नीचे हम कुछ परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

"उपन्यास"—प्रसिद्ध आलोचक डा० एडम सुन्दरदास कहते हैं—"यन्म्य के

१३. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १४०

१४. अंग्रेजी-हिन्दी कोश, पृ० २१० (जान संकल)

वास्तविक जीवन की कास्वनिक कथा है।^{१०}

पर यह परिमाणा सीमित है। क्या उपन्यास केवल वास्तविक जीवन की कथा है? अनेकानेक विस्ती आसुधी और भाग्य उपन्यास इसके उदाहरण हैं कि उपन्यास का वास्तविक जीवन से संबंध नहीं भी हो सकता है। 'कास्वनिक' शब्द भी उसकी सीमा को संकुचित करता है।

"मैं"—उपन्यासकार प्रेमचन्द कहते हैं— 'उपन्यास को मानव-अरिब का विश-मात्र समझता हूँ।^{११} स्पष्ट है कि इस परिमाणा में सिर्फ अरिबप्रधान उपन्यासों पर ध्यान दिया गया है। इसमें उपन्यास के विधेय काय अथवा प्रकार-विधेय को ही महत्त्व दिया गया है जो कि पूर्ण सत्य नहीं।

इस परिमाणा को निश्चित करने की कोसिध में न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में कहा गया है— "उपन्यास एक कास्वनिक यथ कथा अथवा इतिवृत्त है जो पर्याप्त दीर्घ होता है और जिसके कथानक में उन अरिबों और कार्य-ध्यापारों का विश्व होता है जो वास्तविक जीवन के अरिबों और कार्यध्यापारों को निरूपित करने का प्रयास करते हैं।" यह परिमाणा उपन्यास की माणा और आकार की और संकेत मात्र करती है। किन्तु इसमें उपन्यास के विधय वस्तु की सीमा संकीर्ण रूप में व्यक्त है। उपन्यास तो अपनी व्यापकतय परिमाणा में जीवन का वैयक्तिक और प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब है।^{१२}

हेनरी जेम्स ने इस सिसेसिसे में कहा है— 'उपन्यास जीवन के संदर्भमय विश्व है। डा० हर्बर्ट मुसर ने इसीसे निशती-बुसती बात कही है— "उपन्यास मूलतः मानकीय अनुभव का निरूपण है चाहे वह यथार्थ हो या आदर्श और इस प्रकार उपन्यास में अति यार्थत जीवन की आलोचना रहती है।"^{१३}

उपर्युक्त दोनों विचारकों ने उपन्यास में जीवन के निरूपण को अनियार्थ माना है। पहले ने उपन्यास की वैयक्तिकता पर जोर दिया है। दूसरे ने उसके विधय-वस्तु का यथार्थ और आदर्श के रूप में—दो तरह के—विभाजन किया है और आलोचना तरह को भी आवश्यक माना है।

वस्तुतः ये परिमाणाएं पूरे विश्व को उपस्थित नहीं करतीं। यात्र उपन्यास जीवन की पतौष-अपरोक्ष अभिव्यक्ति का सबसेतम माध्यम तथा उसकी व्यापकता और समग्रता को छू रहा है। उसकी आद्य जीवन की आरा की तरह विस्तृत और व्यापक है। उसे कुछ अर्थों में सीमित नहीं किया जा सकता।

हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों ने उपन्यास के मूलतत्त्व की विवेचना करते हुए उसे मानव-अरिब पर प्रकाश डालनेवाला और उसके रहस्यों को धोतनेवाला

१०. साहित्यालोचन, पृ० १४०

११. कुछ विचार, पृ० ३८

१२. अनेक और उनके उपन्यास, पृ० २२

१३. वही पृ० ३०

बताया है।^{११}

व्यक्ति के भीतर का ग्रहणभाव जब सभी विरोधों की उपेक्षा कर निर्माता से घबरे को दूर रखने का साधोयन करता है, तो उसके अन्दर का पुष्ट सञ्चिदानन्द उस साधोयन को पराजित कर स्वयं अपने को प्रतिष्ठित करने और बर्तमान रहने को भी साथ ही डालुक होता है। यह इन्द्रावस्था ही जीवन की वेष्टा का और उपन्यास का मूल है। इसीलिए रास्क फास ने कहा कि "मानव जीवन की विविध सर्वांगीय अभिव्यक्ति उपन्यासों में ही संभव है।" उपन्यास केवल पद्य में लिखी हुई कथा नहीं। रास्क फास ने इसे मानव-जीवन का पद्य माना है।^{१२}

वास्टर एलेन ने महान उपन्यासों में महान चरित्रों का रहता अभिवार्य माना है। उनका कहना है कि मानव-जीवन की विविधताओं को जितनी विघणता से उपन्यास चित्रित करते हैं उतनी विघणता से काव्य नहीं।^{१३}

साधारण उपन्यास सुनने में सिखा है कि समाज को रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, साव्यकथानुसार उनके ठीक विन्यास, सुचारु प्रवाह निरूपण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं। इस कोटि में साधारणतः पद्य में लिखित और कल्पनाप्रभूत सम्पूर्ण कथा या बाती है। इस तरह उपन्यासों में मानव-जीवन अपनी सम्पूर्ण विविधताओं विविधताओं और उसमें जो के साथ चित्रित होते हैं जिसे मनोरंजन की व्यापक दृष्टि समीच और समस्त बना देती है। उपन्यासकार पटना और चरित्र के ईद-गारे से जीवन का एक ऐसा महसूस छड़ा करता है जिससे समाज को अधिक सुलभ और उपयोगी जीवन का संकेत मिलता है।

उपन्यास का उद्भव—उपन्यास की मध्य-काल के अन्तर्गत रखा गया है। कथा-साहित्य में मनुष्य की अतिरिचि प्रारम्भ से ही रही है। उसकी ठामुकता की प्रवृत्ति ही कथा-साहित्य की लोकप्रियता के मूल में रखी होनी। इसी प्रवृत्ति के कारण कथा में दीर्घता पायी है और पाठक की जिज्ञासा की समुचित तृप्ति के बाद ही उसका अन्त होता है।^{१४}

साहित्यिक हिन्दी पद्य का प्रारम्भ ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से होता है। उस समय भारत में प्राये धर्मियों के लिए देश की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। इसी दृष्टि से और उन्हें भी प्रस्तावपूर्वक भाषा की शिक्षा देने के लिए, साथ ही जो मनोरंजक भी हो ईसा मस्ताबा ने 'राजी केवकी की कहानी' और सरल मिश्र ने 'नासिकेजोवारभ्यान' की रचना की।

भारत में मा फिरी अन्य राष्ट्रीय भाषा में उपन्यास लिखने की परम्परा प्राचीन

११ कुछ विचार, पृ० ३८

१२ बी नाथन एंड बी बीपुल, पृ० २२

१३ बी ईपतिप नाथन, पृ० १२

१४ हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० १७

मही है। बिस्वसाहित्य में यद्यपि मुस्लिमोंकी उद्देगशी आपानी महिला मोसिकीयु द्वारा १००० ई० में उपन्यास की बुनियाद डाली गयी थी परन्तु १८वीं सदी के पहले उपन्यासों की समुचित महत्ता की स्थापना नहीं हुई। १९वीं सदी में धाकर उपन्यासों ने बिराट रूप लिया और उनकी महत्ता तथा लोकप्रियता की स्थापना हुई। इसी तरह यहि बाबमट्ट की 'कावम्बरी' के उपन्यास होने का बाबा छोड़ दिया जाय तो भारत में भी उपन्यासों का विकास धार्मिक युग की देन है।"

हम पहले ही कह जाये हैं कि यूरोप में धार्मिक उपन्यासों का विकास रेनासां काल से होता है—सर्वप्रथम इटली से। वह युग सामन्तवाद के द्वारा और नये व्यापारी पूंजीपति वर्ग के उदय का था। उस समय के उपन्यासों में प्रेम और साहस की नैतिक और पौराणिक कहानियां होती थीं जिनमें पठित स्थियों कुटुम्बारी पावरियों, असह्य क्रिसाओं और कुसीम बरों के सामन्तों का चरित्र चित्रण किया जाता था। इटली के उपन्यासकार बोकेसियो की हास्य और व्यंग्यपूर्ण रचना 'डी-केमरन' (१३४८) उस समय की बिरबकिस्पाठ कृति है। उसके बाद स्पेन के लेखक सरबास्ते ने १७वीं सदी के आरम्भ में 'डान क्विजोट' की रचना की जिसने उस समय के साहित्य में उभय-युक्त मन्ना थी। १६वीं सदी में फ्रांस में रेबेन जैसा प्रतिभाशाली लेखक पैदा हुआ जिसने 'नरपत्न्या' की रचना की। बाद के ही वर्षों में फ्रांस में रोमानी और यथार्थ बारी उपन्यासों की रचना होती रही। इन सब देशों की उपन्यास-परम्परा से प्रेरणा और प्रभाव प्राप्त कर अंग्रेजी उपन्यासों का विकास हुआ और धार्मिक अर्थों में 'उपन्यास' ने अपनी प्रौढ़ता प्राप्त की। इसके पहले भी चीनहूँ उताम्बी के ग्रंथ में उपन्यासों की रचना का आरम्भ हो चुका था। १८वीं सदी से पहले सर फिलिप सिडनी का 'आर्सेनिया' (१५९०) जॉन बनिपन का 'पिसग्रिम्स' प्रायेण (१६७८-८४) जॉनियन डीको का 'राग्रिम्स क्लो' (१७१९) और जेम्स फ्लेण्डर्स (१७२२) एवं जॉनेसन स्विफ्ट का पत्रिका 'ट्रेब्लस' (१७२९) प्रकाशित हो चुके थे। इन लेखकों ने प्रबोधि विद्याल द्वारा मानव-जीवन का यथार्थ चित्रण करके धार्मिक उपन्यासों के विकास की एक महान परम्परा तैयार कर दी थी।"

इस महान परम्परा की ओर में बिस्वसाहित्य में उपन्यास का प्रौढ़तम विकास तथा चरमोत्कर्ष हुआ। १८वीं और १९वीं सदी में अंग्लैड फ्रांस और इस में असा चरम धार्मिक लेखकों की प्रतिभाओं ने बिस्वसाहित्य का गौरव बढ़ाया हेमुमस रिचार्डसन घोषिकर मोस्डस्मिय बेन धारिटेन सर बास्टर स्काट, जार्ज डिकेम्स डेकर जार्ज इतिपट आदि अंग्लैड में बास्टेयर, बिस्वर ह्यो बालक जौला घनालोने फ्रांस आदि फ्रांस में और इस में पुरिकन बोबोस सर्मायोठ तुर्पनेब बास्ताबस्की, टास्टराय जैसी कुछ ही महान प्रतिभाओं का नाम हम यहाँ गिनाते हैं।

इन लेखकों तथा उस काल की अन्य प्रतिभाओं ने साहित्य के अन्य रूपों से

६३. धार्मिक हिन्दी कथासाहित्य पृ० ३९

६६. हिन्दी कथा-साहित्य पृ० ३०

द्विज्य उपन्यास की प्रथम सत्ता स्थापित की। इनके उपन्यासों का बर्णिकरूप सामाजिक, यथार्थवादी साम ही प्रभाववादी और प्रवृत्तिवादी के रूप में हुआ। साम ही उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि बस्तु-निरूपण की दृष्टि से उपन्यास का उद्देश्य यथो र्वजन और जीवन की समस्याओं को उपस्थित करना या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संकट करना है। साहित्यिक और बस्तु-विन्यास के संबंध में भी यह निरिचत हा गया कि उपन्यास में कथानक और चरित्र-चित्रण ही प्रमुख हैं। यह भी स्थापना हुई कि उपन्यास चाहे कितना भी यथार्थ क्यों न हो वह सत्य के उर्वर मस्तिष्क और खिरनधीस हृदय की कल्पना-जम्बू हृति है—सिर्फ बाह्य जीवन की अनुकृति नहीं और वह कल्पना मानव जीवन और मानव-अनुभवों पर आधारित है।

उपन्यासों का विकास पद्य के विकास के साथ जुड़ा हुआ है और पद्य के विकास की हर युग में मनुष्य का धामनन कहा गया है। इस तरह भारत या पाश्चात्य देशों में उपन्यास साधुनिक धोद्योगिक युग की देन है। इसीलिए के पद्यबद्ध भी नहीं होते। विन परिस्थितियों ने उपन्यास के विकास में सहायता दी है, उन्हींके पद्य के विकास में भी सहायता दी। यूरोप में पद्य में निहित उपन्यासों के पूर्व प्रेमाख्याक कविताएं प्रथमित थी जिन्हें उपन्यासों की जननी कह सकते हैं।^{१०}

उस समय मध्ययुगीन सम्प्रदाय का मंत तथा नवीन धोद्योगिक सम्प्रदाय का धारिर् भाव ही रहा था। इसी नई धोद्योगिक सम्प्रदाय के साथ ही नवीन मध्ययुग की सत्ता स्थापित हो रही थी। इस तरह उपन्यास जहां एक ओर गद्यसाहित्य के निर्माण और विकास का समकालीन है वहां वह मध्ययुग के उरचान का भी समसामयिक है। यही सत्ता साहित्यिक और सामाजिक स्थिति विरोध है।^{११}

विचारों के क्षेत्र में इस नवीन युग का धारम्भ धार्मिक विचारधारा के स्थान पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और व्यक्तिमूलक विचारों के साथ हुआ। इससे भी उपन्यासों के विकास में सहायता मिली। क्योंकि धार्मिक युग में उपन्यासों के लिए स्थान नहीं था क्योंकि उपन्यासों का संबंध व्यक्ति के वास्तविक दैनिक जीवन से है और उसमें साधारण दैनिक घटनाओं का भी पूरा योग रहता है।^{१२}

उपन्यास और कहानियाँ नये यंत्र-युग के सभी युग-दोषों के साथ उपस्थित हुईं। सामे की कल ने इनकी मांस बढ़ावी और पूर्ति भी की। यह भी एक यत्न धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा और धार्मिकता की सीधी सन्धान हैं। हां, ऐसा एक युग धारण रहा है जब कादम्बरी और बचनूमार चरित को रीति पर सभी प्रांतीय भाषाओं में उपन्यास लिखे गये थे। इसीलिए कहीं-कहीं तो उपन्यास का पर्याय बाकी धार ही कादम्बरी है।^{१३}

१० द्वितीया यक साहित्य, पृ० ४६

११ आलोचना (इतिहास विद्यालय), पृ० १११

१२ साधुनिक साहित्य पृ० १३४

१३ साधुनिक विद्या-साहित्य, पृ० ६०

उपन्यास, कहानी, लघु कहानी और लघु उपन्यास

उपन्यास तथा कहानी दोनों कथात्मक गद्य-साहित्य के रूप हैं। दोनों में कथा की प्रधानता होती है। दोनों में कथावस्तु द्वारा पाठकों की कुतूहल वृत्ति जगा कर उन्हें आकर्षित किया जाता है। दोनों में पात्र संवाद आदि का सौन्दर्य होता है। परन्तु आकार की दृष्टि से उपन्यास बृहत् और कहानी लघु रचना है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कई गौण कथाएँ होती हैं। पर कहानी में सिर्फ एक कथा होती है। उपन्यास में जीवन के व्यापक धर्मों का चित्रण होता है। पर कहानी में जीवन के एक धर्म की झंझरी खड़ी है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक कथोपकथन सजे और व्यापक पदान्वयी युक्त होते हैं। कहानी में यह संभव नहीं। कहानी का एक रूप आत्मक भी होता है। पर आत्मप्रधान उपन्यास देखने में प्रायः नहीं पाते। उपन्यास का स्वल्प लघु कथा या कहानी से इस माती में भी भिन्न होता है कि कहानी जीवन का एक आधिक चित्र परिचिति की विशेषता, घटनाओं के मार्मिक उद्घाटन के साथ उपस्थित करती है। इन तीनों के योग से उसका अभिष्ट प्रभाव उत्पन्न होता है।^१

अब हम वक्ष्य या लघु कहानियों पर भी विचार करें। यद्यपि उपन्यास और वक्ष्य दोनों का आकार और प्रणाली एक है, तथापि इन दोनों को अब भिन्न समझ जानै सना है। कुछ लोगों की धारणा है कि वक्ष्य का लघु आधिकार अमेरिका के कहानी-लेखक हार्बने और पो ने किया। पर यह धारणा उचित प्रतीत नहीं होती। इसके आधिकारिक प्रसिद्ध उपन्यासकार स्काट और डिक्सेस आदि हो चुके हैं। हाँ, यह प्रबन्ध है कि अमेरिका के उपर्युक्त लेखकों ने स्काट और डिक्सेस आदि की कहानियों का रूप नृपार किया उसे लघु साज-सज्जा दी और उसे एक स्वतंत्र कथा-कोटि में सा बिठाया। परन्तु मूस में ये फिर भी भिन्न नहीं हैं। हाँ, प्राये चलकर वक्ष्य या छोटी कहानी का उद्देश्य जीवन की एक मार्मिक मसक दिखाना हो गया जिससे अब वह उपन्यास के कथाभाव से स्वतंत्र हो गई। अब वह जीवन के अतिरिक्त चित्रों को अधिक करवा छोड़ केवल एक दृश में बनीभूत चित्र का वक्ष्य उपस्थित करती है। इसीलिए, इन दिनों यद्यपि वह आकार में लघु उपन्यास से बड़ी भी हो पर उसकी बचना प्रत्यक्ष ही की जाती है।^२

फिर भी यह प्रबन्ध है कि उपन्यास और वक्ष्य दोनों वस्तुतः एक ही जाति की चीजें हैं। एक में तो छोटे उपन्यास को ही कहानी कहते थे। परन्तु प्रेस और सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से छोटी कहानियों का बड़ा प्रचार हुआ और उपन्यास से बिस्तृत स्वतंत्र हो गयी।^३

अब आकार मात्र कहानी की विशेषता नहीं है। कहानी का अर्थ एक लक्ष्य

७१ साधुनिक साहित्य, पृ० १२३

७२ साहित्यालोचन पृ० १८०

७३ साहित्य का साथी, पृ० ६६

होता है। कम-से-कम पात्रों और घटना की योजना द्वारा उस चरित्र की पूर्ति की जाती है। वहाँ घटना और पात्र निमित्त तथा सत्य ही प्रधान होता है। पर उपन्यास में चरित्रों और घटनाओं की प्रधानता रहती है। वे केवल निमित्त मात्र नहीं। उनका स्वच्छन्द विकास होता है। और यही कहानी तथा उपन्यास में प्रधान भेद है।

इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी में घटना और पात्र मौन होते हैं। पर घसस प्रधानता लक्ष्य को मिलाती है। उस सत्य की सिद्धि के लिए पात्रों और घटना की सृष्टि होती है और सचक का व्यक्तिगत मूल भी अधिक स्पष्ट होता है।

कुछ विद्वानों ने इस भेद को समझते हुए यह भी कहा है कि उपन्यास एक शाका प्रयास वासा विद्यास वृत्त है और कहानी एक कोमल, सुकुमार सता। कुछ ने यह भी कहा है कि उपन्यास और कहानी का वही सम्बन्ध है जो महाकाव्य और गीति काव्य का। इन सबसे यह स्पष्ट है कि उपन्यास में जहाँ पुरे जीवन का चित्रण होता है, वहाँ कहानी में जीवन की एक भ्रंकी मात्र मिलती है। मानव-चरित्र के किसी एक पक्ष पर या किसी घटना पर प्रकाश डालने के लिए ही छोटी कहानी लिखी जाती है। इसीलिए इसमें बहुत विस्तृत विस्तारण की संभावना नहीं।

इसके सिवा कहानी की भाषा भी सरस और सुबोध होनी चाहिए। यह साधारण जनता के लिए लिखी जाती है। वहाँ सरसता में सरसता पैदा कीजिए, यही लक्ष्य है।^{७४}

बृहद् और सधु उपन्यास का भेद आकार के आधार पर है। उपन्यास में घसंस्य घटनाओं और घनेक पात्रों की योजना सहज ही में की जा सकती है। सधु उपन्यास जीवन या समाज के किन्हीं विशेष प्रश्नों को उपस्थित करते हैं और तदनुसार समस्त योजना घाती है।^{७५}

ध्यान से देखने पर यह भी कहा जायगा कि सधु उपन्यास किसी एक खास विषय को उपस्थित करना चाहते हैं। इसीलिए कथानक की इस संभवित योजना के अनुसार ही पात्रों की सृष्टि होती है। सधु उपन्यास का प्रधान पात्र नियोजक-सा काम करता और इसी तरह आकर्षण का केन्द्र बनता है। उसी तरह अन्य पात्रों को भी अधिक प्रभावशाली बना पड़ता है। उदाहरण के लिए रघुवंश महाकाव्य और मेघदूत गीति काव्य को लें। रघुवंश में सम्पूर्ण रघु-परम्परा ही आकर्षण का केन्द्र है। किन्तु मेघदूत में बिरही मल है। बृहद् और सधु उपन्यास के पात्रों में भी यह विभेद है। सधु उपन्यास में प्रमुख नामक ही कथा का केन्द्र बिन्दु है। उसके तथा अन्य पात्रों के व्यक्तित्व में कुछ विशेषता प्रधान करना आवश्यक होता है। कभी-कभी उसे आसाधारण भी बनाया पड़ता है। व्यक्तिगत गुणों के साथ ही सामाजिक उत्पन्न आने सत्य का वह प्रत्येकी है। इसी में उसके जीवन का प्रादि-मन्त सन्निहित है। वे अपने आप से संघर्ष भी करते हैं और उसी से उनका चरित्र विकसित है। उसका चरित्रगत आन्तरिक द्वन्द्व यदि उसके

७४. कुछ विचार पृ० २४

७५. आलोचना (उपन्यास विशेषिक) पृ० १९७

सामाजिक कर्तव्यों में बाधा न देने को उपन्यास को सफलता मिलती है।^{१५}

निष्कर्ष यह कि कहानी में पात्रों से जीवन घाटा है। कहानी के पात्र उपन्यास के पात्रों से भिन्न होते हैं। उपन्यास में चरित्र चित्रण की गुंजाइश अधिक है। कहानी में चरित्र के किसी विशिष्ट पक्ष का ही चित्रण सम्भव है। कहानी की दुनिया छोटी और उसके प्रारम्भी छोटे होते हैं। और यह कि चरित्र-चित्रण या चेतना-प्रवाह के उद्घाटन में कहानी उपन्यास की प्रतिस्पर्धिता नहीं कर सकती।^{१६}

इसके अलावा साहित्य के अन्य अंगों यानी नाटक, काव्य प्रबन्धकाव्य—जिन का रूप-विधान भी अलग है—उपन्यास और कहानियाँ यथार्थ के अधिक निकट हैं। इसीलिए उपन्यास और कहानी के पाठक अलग पात्रों के अन्तर्गत-पठन उनकी मनो-भावना से धीरे-धीरे अन्तर्गत स्थापित कर लेते हैं उनके कुछ से कुछ से कुछ से कुछ होते हैं और यही यथार्थ की एक-एक रचनाओं को सफल या असफल बनाती है। यही कारण है कि विष्णु धर्मा से लेकर प्रेमचन्द तक सामाजिक यथार्थ जिस मात्रा में मिलता है उतना वास्तविक से लेकर दिनकर तक नहीं। “कथावाचकों ने हमें होरी गोबर और झुनिया दिये प्रबन्धक काव्यकार अभी तक हमें राम, कृष्ण, मनु और करण देते पा रहे हैं।”^{१७}

चरित्र विकास विश्लेषण

इसलिए हम ऐसा मान सकते हैं कि एकमात्र चरित्र या पात्र ही कथा का मेक-अप है। पात्र और चरित्र के इर्द-बिर्द फैला हुआ बातावरण परिस्थितियाँ और घाटे-पटन ही मेक-अप या कसाकार के लिए कच्चा मात है जिसे पक्का (सैगनिफाइड) बनाकर वह नाटक कहानी, धार्मिक कथा पद्य उपन्यास जीवनमूल्य प्रारम्भ-चरित्र, भ्रमण-वृत्तान्त और महाकाव्य आदि का कभी-कभी तैयार करता और उसे सजाता है। कथा का प्रधान सत्य चरित्र-चित्रण द्वारा मानव-संवेदना को जाग्रत करना है। इस संवेदन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ही वह घटनाओं का सूजन करता है और संपीत की रीति की तरह आरोह, अवरोह की गति संभावित करता है, समासमन्त्र पर पहुँचता और सजता है।

इतिहास भी घटनाओं और चरित्रों का वर्णन है। इसलिए इतिहास भी कथा-साहित्य की कोटि में आते हैं। किन्तु, दोनों में मौलिक विभेद है। इतिहास यथार्थ व्यक्तिपों के वास्तविक व्यापार का अन्वेषण करते हैं और इस तरह से घटनाओं के विषय में यथार्थता माते हैं। पर कथा-साहित्य में दैत, काम और पात्र के साथ ही घटनाओं का वर्णन भी कलात्मक ढंग से उपस्थित किया जाता है। कथा-साहित्य भी सत्य पर आधारित होता है पर उसके मूल में मानव प्रकृति और अज्ञान व्यापार का

१५. वही

१६. हिन्दी कहानी, पृ० १४

१७. रिगभक्ति राष्ट्रकवि पृ० १०७

वास्तविक रूप उपस्थित करना है। कथा-साहित्य की घटना सत्य होने पर भी उसके नाम कल्पित हो सकते हैं। किन्तु, इतिहास में ऐसा नहीं हो सकता। घटना और नाम का सत्य होना ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए आवश्यक है।

पात्र और चरित्र-रहित कथा की कल्पना नहीं की जा सकती। वे कथा के लिए अनिवार्य हैं। चाहे कथा में चरित्र-चित्रण की सुस्पष्ट योजना न भी हो पर चरित्र तो हर हास्य में होना ही। चरित्र के आधार पर ही कथा का महसूस बढ़ा किया जा सकता है। निरन्तर और भाषण जसी विचारारमक रचनाओं में भी चरित्र की स्थापनाओं को मानना ही पड़ता है क्योंकि वहाँ भी अभिव्यक्ति का माध्यम कोई एक प्रारम्भी आवस्यक है जो अपनी व्यक्तिगत संवेदना और विशेषताओं का भी परिचय देता है। नाटक, उपन्यास कहानी, महाकाव्य लंकाकाव्य, रेखाचित्र आदि सृजनारमक साहित्य में तो चरित्र की महत्ता सर्वसम्मत है।

भारतीय मठ के अनुसार नाटक में सिर्फ तीन तत्वों को माना गया है—वास्तु, नाटक और रस। पारम्पर्य आचार्यों के मतानुसार इन तत्वों की संख्या सात तक पहुँच जाती है—कथावस्तु, पात्र कथोपकथन, देश-काल, उद्देश्य संक्षेप, अभिनेयता। इससे स्पष्ट है कि पात्र का स्थान दोनों मठों में सर्वोपरि और विधिष्ठ है।^{१५}

नाटक में अनेक पात्रों के माध्यम से घटनाओं का विकास होता है। नाटक के प्रमुख पात्र को नायक और उसकी पत्नी या प्रेयसी को नायिका कहा जाता है।

नाटक उपन्यास और कहानी के चरित्र चित्रण में अन्तर भी है। नाटक में चरित्र-चित्रण का स्वच्छन्द घनसर नहीं निमित्त। उसे पात्रों के द्वारा ही अपने मनो भावों का स्पष्टीकरण करना पड़ता है। वह उपस्थित परिस्थितियों (Situation) के घेरे में रहता है। अतः कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नाटककार के लक्ष्य और अभीष्ट के विपरीत भी फल निकस आते हैं। उसे तो अपनी ओर से पात्रों के विषय में कुछ कहने की स्वतन्त्रता है नहीं। इसलिए कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथन द्वारा ही उसे अपने चरित्रों की विधिष्ठताओं पर प्रकाश डालने की मजबूरी है।

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के लिए साम्राट और परोक्ष या अभिनयात्मक दोनों ही तरीकों को अपनाया जा सकता है। पर नाटकों में सिर्फ तीन प्रकार से चरित्र चित्रण हो सकते हैं।^{१६}

पहला कथोपकथन द्वारा। पात्रों के आपसी वार्तालाप द्वारा उनकी चरित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

दूसरा, स्वगत कथन। एकान्त में जब मनुष्य अपने-आप सोचता है और मन के विकारों या विचारों को प्रकट करता है तो उससे उसकी चरित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। स्वगत-कथन द्वारा आन्तरिक या मानसिक संघर्ष का भी चित्रण होता है।

तीसरा कार्यकलाप। मनुष्य की संकटा या नीचता का पता उसके कार्यों से

७६. साहित्य विवेचन, पृ० २२०

८०. साहित्य विवेचन, पृ० २२१

ही बनता है। उसके कार्यों से ही उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

पात्रों की पुष्ट मोक्षता महाकाव्य में भी प्रावश्यक मानी गई है। संस्कृत, प्रेमगीत सोकगीत और उपार्समगीत आदि पात्रों के मनोभाव को ही व्यक्त करते हैं। लोकगीतों में सुन्या के माध्यम से प्रेम-निवेदन या प्रेमी प्रेमिका की धापसी बातचीत आदि पात्रोचित अनुभूतियों के ही उदाहरण हैं। रैसाचित्र और बीबनी तो उल्लेख्य पात्र या व्यक्ति के प्रत्यक्ष जीवन का ही परिचय देते हैं।

मानवता का जीवन-वचन साहित्य-सृष्टि का विषय है। कथा-साहित्य द्वारा उस जीवन की वचार्थ प्रतिबिम्बित होती है। मानव चरित्र या चरित्र का चित्र जैसे-जैसे विकसित होता है बयनता है जैसे-जैसे कथा-साहित्य में विविधता और अन्तर धाता-जाता है। इसीलिए प्रेमकाव्य उपन्यास को कथा-साहित्य का प्रधान अंग मानते हैं।^{८१} जबकि मानव का वैभव और शान्दत्य कथा साहित्य के अंग बन जाते हैं तो दूसरी तरफ महाकाव्य में युग की विधिष्ट काव्यात्मक गरिमा को ही स्थान मिलता है। चरित्र का प्रयोग वहाँ भी होता है। पर उपन्यास में चरित्र को जितनी विधिष्टता प्राप्त होती है उतनी साहित्य के किसी अन्य रूप में नहीं। इसीलिए उपन्यास को उस कम रकारिक कला-कीचस की भी प्रावश्यकता नहीं जिसके बिना महाकाव्य का प्रभाव जीन हो जाता है।^{८२}

इन्हीं कारणों से उपन्यास-लेखक के लिए उत्कर्ष कला की नहीं उत्कर्ष दृष्टि की प्रावश्यकता होती है, महान कल्पना नहीं उदात्त चेतना की प्रावश्यकता है। जैनेन्द्र कुमार का मत है— 'अपने साहित्य में कुछ भी सम्य के द्वारा कहा है, कुछ चित्र के द्वारा व्यक्त किया है चित्रात्मक यानी कथा-साहित्य। वहाँ धाप तो कुछ कहते नहीं, कथा के पात्र ही कहते-सुनते हैं फिर उनकी बातें उनकी प्रकृति और कथा की परिस्थिति से बनती हैं। कोई परस्पर की अनुकूलता होना उनमें जरूरी है। बल्कि प्रति-कूलता और भावविरोध भी उनमें हो सकते हैं। मुझे यह भी लगता है कि एक कथा की पात्र की या व्यक्तित्व की निरता में जितना पहचान और जन्मीर विरोध समा सकता है उतना ही उसका महत्त्व है। फिर कथा के किस पात्र या पात्र के किस कार्य और समुची वस्तु के किस पहलु में उस मन्तव्य को देना चाय जिसको श्रेय समझकर लेखक ने कथन छटाई है। स्पष्ट ही इस निश्चरण का काम मुद्रिकन है और जोखन से भर है।'^{८३} साधारणतः उपन्यास-लेखक को उच्छ से अपने पात्रों के चरित्र का विकास करना है—पटनामों से उसका संपर्ष विद्याकर और पात्र के भीतर स्वामाधिक संकुर के विरोध दुन का निमित्त बनाकर। पहले को बाह्य उपकरण मूसक और दूसरे की आन्तरिक उपकरणमूसक विकास कहते हैं। यह दूसरी तरह का विकास ही स्वामाधिक

८१ कुछ विचार, पृ० ३८

८२ आलोचना (इतिहास अंक),

८३ साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० १४

घोर हृदयघाही होता है।^{१४}

चरित्र-विकास में वातावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। “यह वातावरण रस्मी नहीं होना चाहिए। किसी चरित्र के ग्रंथ से निकलने वाले प्रत्येक वाक्य द्वारा उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ना चाहिए।”^{१५}

‘उपन्यास के चरित्रों का विशेष चिह्न ही स्पष्ट गहरा घोर विकासपूर्ण होना पाठकों पर उसका उतना ही गहरा असर पड़ेगा। उपन्यास के चरित्र भी लेखक की कल्पना में पूर्णरूप से नहीं धरा जाते। उनका क्रमशः विकास होता है। यह विकास इतने शुद्ध या अस्पष्ट रूप से होता है कि पाठक को किसी तबदीली का ज्ञान भी नहीं होता। अगर चरित्रों में किसीका विकास रुक जाय तो उसे उपन्यास से हटा देना चाहिए क्योंकि उपन्यास चरित्रों का ही विषय है। अगर उसमें विकास शेष है तो वह उपन्यास कमजोर हो जाएगा। कोई चरित्र अन्त में भी वैसा ही रहे वैसा वह पढ़ने वाला—उसके बस बुद्धि और भावों का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है।’^{१६}

चरित्र-विशेष उपन्यास का प्रमाण धर्म है। प्रसिद्ध लेखक और उपन्यास-कला के आचार्य भी सरस्वती चटर्जी का कहना था—“चरित्रों के जन्म विकास के लिए मैं बहुत अधिक सावधान रहता हूँ। चटर्जी का प्रभाव चरित्रों के ऊपर कई रूपों में पड़ता है। गीत तथा मुख्य रूप से प्रभावित करने के साथ ही कुछ चटर्जी ऐसी भी हैं जो केवल चरित्रों की रूपरेखा ही दर्शाती हैं और अथवा अधिक से अधिक सूक्ष्मरूप से उनके विकास में सहयोग देती हैं। चटर्जी की प्रतिधियाँ या क्रिया ही चरित्रों के उदय तथा पतन का कारण होती हैं और अन्त में सहयोग देती हैं। इसी को चरित्रों का जन्म-विकास कहा जाता है।”

किन्तु कहानियों में चरित्र के विकास का बड़ा असर नहीं प्राप्त हो सकता वैसा उपन्यासों में। उपन्यास में पूरा जीवन चित्रित होता है और कहानियों में जीवन की एक झलक दिखाई जाती है। इसी एक झलक में कहानीकार को चटर्जी का कार्य व्यापारों संसार, परिस्थिति आदि कई बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इसलिए चरित्र के विकास का इस में पूरा असर नहीं मिल सकता। फिर भी हिन्दी में एकमात्र ऐसी कहानी है जिसमें चरित्र के निर्देशक का विकास का नहीं मोका मिल पाया है उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की ‘बड़े भाई साहब’ नामक कहानी। अधिकतर कहानियों में एक ही पात्र प्रमुख होता है। एक ही पात्र पर ध्यान देने से कमी-कमी चीस का स्पून या मास भी अच्छी साहित्यिक कहानियों में दिखाई देता है। शुभेरीजी की कहानी ‘उस ने कहा पा’ में महर्षिसिंह का चरित्र उसका उदाहरण है। स्वाभाविक है कि जीवन

१४. साहित्य का छापी, पृ० ७६

१५. कुछ विचार, पृ० १५

१६. वही

१७. उपन्यास कला, १५६

की मात्र एक श्रंखली होने के कारण कहानियों में जो चरित्र व्यक्त होता है, वह जीवन का संक्षिप्त मात्रा होता है।^{६८}

चरित्र-चित्रण भाव की कहानियों में कथानक से अधिक महत्त्व प्राप्त कर रहा है। कहानियों में पात्र के सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाशित करने वाले एक संस पर जोर डाला जा रहा है जो उस पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाश पुंज से भर बैठे हैं। वस्तुतः पात्र वही कथा सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है जिसमें किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या के लिए पात्रों का सुजन तथा उनका चरित्र चित्रण हो।^{६९} ऐसे चरित्र चित्रण के लिए लेखक के लिए मनोविज्ञान का विवेक ज्ञान आवश्यक है। जैसे तो सभी पात्र लेखक की कल्पना की उपज हैं। पर उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी निखारना चाहिए। मात्र लेखक के कठपुतले होने से पाठक के लिए वे धरबिकर व्यर्थ और धारण्यहीन होते। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार ब्रिस्मिथ यैको का कहना था कि उसके पात्र उसके बस में नहीं रहते, बल्कि उसकी लेखनी उन पात्रों के बंध में हो जाती है। वास्तव में पात्रों के सभी धीरे स्वाभाविक चित्रण के लिए लेखक का उनसे प्रत्यक्ष रहना आवश्यक है। पात्र की चरित्रिक विशेषताओं को उपस्थित करने के लिए वह उसके वैयक्तिक मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों के विवरण से अवश्य सहायता ले सकता है। उपन्यास लेखक की सफलता या असफलता का बहुत बंध इसी एक बात पर निर्भर करता है।

चरित्र-प्रधान उपन्यास जीवन की व्याख्या द्वारा मनोरंजन के साथ ही उपदेश देने वाले भी होते हैं। जीवन की वास्तविक तथा विस्तृत व्याख्या में वही सफल होता जिसकी दृष्टि यैनी हो। अपने हर्षविरह जैसे संसार, उसके सुख-दुःख, मानस विपार को तो सभी देखते हैं भोगते भी हैं। पर सिनेमा के चरित्रों की भांति उनके मानस पटल पर सांसारिक घटनाओं का प्रतिबिम्ब और स्मृति अशुद्ध होती है। पर वही पटलाएं यैनी दृष्टिवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक धीरे स्थायी अनुभूति का रूप ले लेती हैं। वह अपने हर्षविरह जैसे संसार को देख-परखकर उन्हें अपने में धारणसाध कर लेता है। उसकी सज्ज इन्द्रियां उसके सवा शीकने बान, उसकी हृदयवाही अनुभूतियां साधारण वस्तुओं का धारण्य मर्म उपस्थित करती हैं और उन वस्तुओं का उपयोगकर साहित्य की सृष्टि होती है।^{७०}

मनोवैज्ञानिकों ने भी मस्तिष्क की दो मुख्य धारणाएं मानी हैं। पहली शैतन्यावस्था दूसरी धर्मशैतन्यावस्था। धर्मशैतन्यावस्था में ज्ञानमंदार छिटपुट रूप मनुष्य के मस्तिष्क में उपस्थित रहता है। जिस प्रकार बिजली का बटन दबाकर आप धर्मकारपूर्व कमरे को धारणशुद्ध करते हैं उसी प्रकार उपन्यासकार अपने शीकने धीरे सज्ज मन को धारण कर उस छिटपुट ज्ञान को एकत्रित कर साहित्य सृष्टि के लिए उसका उपयोग करता है। यह मानसिक प्रक्रिया जिस लेखक में जितनी

६८. धार्मिक विमर्श, पृ० १८

६९. कुछ विचार पृ० १०

७०. दृष्टिकोण, पृ० १०१

घण्टिघासिनी होमी वह अपने अनुभवों को जतना ही सजीव और स्वाभाविक रूप में उपस्थित कर सकेगा और पाठकों को अपनी और धाकपित करने में सफल होगा। जिस चीज को जैसा रूप देखते हैं, सुनते हैं सूंघते हैं चमते हैं अनुभव करते हैं, उसे कला के साथ में ढालकर उपस्थित करना एक सफल उपन्यासकार का ही काम है।

चरित्र ही पात्र के गुण-दोषों का सेखा-बोछा है जो कि समाज की ही एक प्रमाणी है। समाज स्वयं एक निरन्तर परिवर्तित होने वाली सत्ता है। और, परिस्थिति का कर्ता तथा नियामक होने के बावजूद मनुष्य परिस्थिति का दास है। ठीक वही तरह जिस तरह राष्ट्र। स्वयं अपने बनाये नियमों की प्रवृत्तना करने की उसे स्वतन्त्रता नहीं है। उसे उन नियमों की दासता स्वीकार करनी ही पड़ती है। देश का नाम पात्र समाज और परिस्थिति के दायरे में रहकर ही गुण और दोषों की विवेचना की जा सकती है। इन बस्तुओं को छोड़कर चरित्र चित्रण में किसी गुण प्रथमा दोष को एक ही प्रमाण में प्रदर्शित करना व्यापक नियमों के विरुद्ध है। प्रथमा समझ है कि जो बात घाप समझते रहे हों वह ठीक घापकी समझ के विपरीत हो। साथ ही सम्झाई यह भी है कि एक ही बात भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर भिन्न-भिन्न रूप-रंग की भी दिखाई पड़ती है।

चरित्र और चरित्र-चित्रण

मानवता के नाते उपन्यास का पात्र भी इसी सांसारिक उभेड़बुन में पड़ा हुआ एक प्राणी है। उसका हृदय एक छोटा-सा ससार है। उसके गुण-दोषादि हृदय हृदय और यस्तिष्क के दो पाठों के बीच पिघले हैं जिसका प्रभाव सिर्फ उस पर ही नहीं उसके संसर्ग में माने बाध सभी प्राणियों पर पड़ता है। पात्र के जीवन में उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली घटनाओं की इस घट्ट मूलसत्ता का ही नाम घनतर्क है। इस घनतर्क को जो सबक बितने सुन्दर रूप में चित्रित कर सकता है, वह जतना ही सफल होता है।

पात्र का चरित्र ही उसका जीवन-परिचय है। ईनिक जीवन में किसी नये व्यक्ति के संसर्ग में माने पर हम उससे पूर्ण परिचित हो जाना प्रावश्यक समझते हैं। चरित्र-संबंधी यह परिचय इसलिये भी जरूरी है कि भविष्य में उसके द्वारा कोई हानि न हो। उसके विषय में पहले ही जितना मासूम हो जाय जतना ही अच्छा है। पर उपन्यास के पात्र के विषय में ठीक इसके विपरीत बात है। यदि उसके चरित्र के संबंध में सभी बातें पहले ही स्पष्ट हो जाएं तो पाठक की उसमें कोई दिलचस्पी या उत्सुकता दोष न रहेगी। फलतः उसकी आनन्दानुभूति में कमी पड़ेगी। इसीलिये उनका यथा-स्थान उद्घाटन ही कलात्मक और अच्छा है।

इसका कारण यह है कि वास्तविक जीवन और उस वास्तविकता के घाबार पर कल्पित पात्र के जीवन में घटर है। मनुष्य प्रतिदिन के जीवन के भावों को उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे उपस्थित होते हैं। किन्तु साहित्य में प्रयुक्त पात्र

भावुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास

की मात्र एक भंडी होने के कारण कहानियों में जो चरित्र व्यक्त होता है, वह जीवन का प्रथम ही होता है।^{८८}

चरित्र-चित्रण मात्र की कहानियों में रूपान्तरण से अधिक महत्व प्राप्त कर रहा है। कहानियों में पात्र के सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाशित करने वाले एक संघ पर जोर डाला जा रहा है जो उस पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाश पुंज से भर देते हैं। वस्तुतः पात्र बड़ी कथा सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है जिसमें किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या के लिए पात्रों का जीवन तथा उनका चरित्र-चित्रण हो।^{८९} ऐसे चरित्र-चित्रण के लिए लेखक के लिए मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान आवश्यक है। जैसे तो सभी पात्र लेखक की रचना की उपज हैं। पर उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी निखरना चाहिए। मात्र एक के कटपुत्र होने से पाठक के लिए वे परचिकर व्यर्थ हीर श्राकपयहीन होयि। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बिलियम शेक्सपियर का कहना था कि उसके पात्र उसके बच में नहीं रहते बरन् उसकी लेखनी उन पात्रों के बच में ही जाती है। वास्तव में पात्रों के सजीव और स्वाभाविक चित्रण के लिए लेखक का उनसे प्रत्यक्ष संपर्क आवश्यक है। पात्र की चरित्रिक विशेषताओं को उपस्थित करने के लिए वह उसके बयलिक मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों के विवरण से प्रारम्भ सहायता ले सकता है। उपन्यास लेखक की सफलता या असफलता का बहुत बंध इसी एक बात पर निर्भर करता है।

चरित्र-विकास उपन्यास जीवन की व्याख्या द्वारा मनोरंजन के साथ ही उपदेश देने वाले भी होते हैं। जीवन की वास्तविक तथा वितृष्ट व्याख्या में बड़ी सफलता प्राप्त होनी चाहिए। चरित्र की वृष्टि वैनी हो। अपने हर्षगिरि जैसे संसार, उसके मुझ-मुझ धाम्ना विषय को तो सभी देखते हैं भोवते भी हैं। पर विनेया के जसभितों की भांति उनके मानस-पटल पर सांसारिक घटनाओं का प्रतिबल हीर स्मृति क्षणिक होती है। पर बड़ी घटनाएं वैनी वृष्टिवासे व्यक्त के लिए मानस्य हीर स्थायी घनुरूति का रूप ले लेती हैं। वह अपने हर्षगिरि जैसे संसार को रेल-परककर उन्हें अपने में धारणसाठ कर सेवा है। उसकी सजय इच्छियां उसके सवा बीकमे बल उसकी हृदयभाही घनुर-मूषियां सामारण वस्तुओं का पधार्थ मर्म उपस्थित करती हैं हीर जन वस्तुओं का उपयोगकर साहित्य की वृष्टि होती है।^{९०}

मनोवैज्ञानिकों ने भी मस्तिष्क की दो मुख्य अवस्थाएं मानी हैं। पहली अवस्थावत्वा वृषरी प्रसर्वतम्यावत्वा। प्रसर्वतम्यावत्वा में ज्ञानमंडार छिटपुट रूप मनुष्य के मस्तिष्क में उपस्थित रहता है। जिस प्रकार बिजली का बदन बकाकर धाव धावकारपुर्न करके को प्रातोकिठ करते हैं उसी प्रकार उपन्यासकार अपने जीवन हीर सजय मन को बाधक कर उस छिटपुट ज्ञान को एकत्रित कर साहित्य वृष्टि के लिए उसका उपयोग करता है। यह मानसिक प्रक्रिया जिस लेखक में जितनी

८८. बाह्यमय विमर्श पृ० ६८

८९. कुछ विचार, पृ० २०

९०. वृष्टिकोश पृ० १०१

व्यक्तिवासिनी होगी वह अपने अनुभवों को उतना ही सजीव और स्वाभाविक रूप में उपस्थित कर सकेगा और पाठकों को अपनी घोर आकर्षित करने में सफल होगा। जिस चीज को जैसा हम देखते हैं, सुनते हैं, सूँघते हैं, चूँचते हैं अनुभव करते हैं उसे कला के साधने में हासकर उपस्थित करना एक सफल उपन्यासकार का ही काम है।

चरित्र तो पात्र के गुण-दोषों का सेना-बोला है जो कि समाज की ही एक प्रमाणी है। समाज स्वयं एक निरन्तर परिवर्तित होने वाली संस्था है। और, परिस्थिति का कर्ता तथा नियामक होने के बावजूद मनुष्य परिस्थिति का दास है। ठीक वही तरह जिस तरह राष्ट्र। स्वयं अपने बनाये नियमों की प्रवृत्तता करने की उसे स्वतन्त्रता नहीं है। उसे उन नियमों की दासता स्वीकार करनी ही पड़ती है। ऐसा काल पात्र समाज और परिस्थिति के दायरे में रहकर ही गुण और दोषों की विवेचना की जा सकती है। इन वस्तुओं को छोड़कर चरित्र चित्रण में किसी गुण प्रवृत्तता को एक ही प्रमाण में प्रवृत्त करना व्यापक नियमों के विरुद्ध है। प्रथमा संभव है कि जो बात आप समझते रहे हों, वह ठीक आपकी समझ के विपरीत हो। साथ ही सम्झाई यह भी है कि एक ही बात भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर भिन्न भिन्न रूप रंग की सी दिखाई पड़ती है।

चरित्र और चरित्र चित्रण

मानवता के माते उपन्यास का पात्र भी इसी सांसारिक उपेकडुन में पड़ा हुआ एक प्राणी है। उसका हृदय एक छोटा-सा संसार है। उसके गुण-दोषादि इन्हीं हृदय और मस्तिष्क के दो पाठों के बीच पिरोते हैं जिसका प्रमाण सिर्फ उस पर ही नहीं उसके संसर्ग में घाने वाले सभी प्राणियों पर पड़ता है। पात्र के जीवन में उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली शक्त की इस घट्ट शक्तता का ही नाम शक्तशक्ति है। इस शक्तशक्ति को जो मजक बिचने सुन्दर रूप में चित्रित कर सकता है, वह उतना ही सफल होता है।

पात्र का चरित्र ही उसका जीवन-परिचय है। दैनिक जीवन में किसी नये व्यक्ति के संसर्ग में घाने पर हम उससे पूर्ण परिचित हो जाना आवश्यक समझते हैं। चरित्र-संबंधी यह परिचय इसलिए भी जरूरी है कि मनुष्य में उसके द्वारा कोई हानि न हो। उसके विषय में पहले ही जितना मामूम हो जाय उतना ही अच्छा है। पर उपन्यास के पात्र के विषय में ठीक इसके विपरीत बात है। यदि उसके चरित्र के संबंध में सभी बातें पहले ही स्पष्ट हो जाएँ तो पाठक की उसमें कोई विसमझती या उत्सुकता बंध न रहेगी। फलतः उसकी आनन्दानुभूति में कमी पड़ेगी। इसीलिए उनका यथा स्वतः उद्घाटन ही कलात्मक और अच्छा है।

इसका कारण यह है कि वास्तविक जीवन और उस वास्तविकता के साधारण पर कल्पित पात्र के जीवन में अंतर है। मनुष्य प्रतिदिन के जीवन के भावों को उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे उपस्थित होते हैं। किन्तु साहित्य में प्रयुक्त भाव

पाठक के हृदय में रसमिष्यति में सहायक होते हैं।”

पात्रों का परिचय दो तरह से किया जाता है। एक है पारचात्य ढंग दूसरा है वीर्यात्य। पारचात्य सम्प्रदाय के अनुसार दो व्यक्तियों को आपस में परिचित कराने के लिए एक तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो दोनों को जानता हो। किन्तु वीर्यात्य तरीके के अनुसार दो व्यक्ति अभी आपस में मिलते हैं तो बातालाप के क्रम में वे एक-दूसरे से स्वयं ही परिचित हो जाते हैं। प्रथम प्रकार में लेखक स्वयं मध्यस्थ का स्थान ग्रहण करता है। साहित्यिक परिभाषा में पारचात्य ढंग को साक्षात् या विस्मेषात्मक कहते हैं। दूसरे प्रकार को अस्मिन्मात्मक या परोक्ष ढंग कहते हैं। इस अस्मिन्मात्मक या वीर्यात्य पद्धति को ही अधिकांश पारचात्य उपन्यास-समीक्षकों ने भी खेप्ट माना है। इसमें पात्र कथोपकथन और कार्य-व्यापार द्वारा स्वयं आपस में परिचित हो जाते हैं। कथोपकथन द्वारा किया गया चरित्र-चित्रण उत्तम माना गया है। अतएव अस्मिन्मात्मक या परोक्ष प्रणाली का अधिक व्यवहार ही उत्तम है।

उपन्यासों के अस्मिन्मात्मक अध्ययन से उपरोक्त दो प्रणालियों के अन्तर्गत एक तीसरी प्रणाली का भी अस्तित्व दिखाई पड़ता है। इसकी ओर अभी तक किसी भी समीक्षक का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है—यह है कामों द्वारा चरित्र-चित्रण। बिचार पूर्वक देखा जाए तो चरित्र-चित्रण के लिए यह सर्वोत्तम पद्धति है। पर इसका बहुत कम उपयोग हुआ है। इस प्रणाली का व्यवहार करते हुए लेखक न तो पारचात्य प्रणाली के अनुसार पात्रों के गुण-दोषों का उल्लेख करता है और न वीर्यात्य ढंग से कथोपकथन के द्वारा चरित्र का विकास करता है। वह पात्रों के कामों द्वारा ही उनका चरित्र-चित्रण करता है। इन प्रणाली का अर्थ विरोधाभास से होता है। एक पात्र दूसरे पात्र से बातालाप में कहता है, 'तुम मेरे यहाँ न आना करो। तुम अपना मुँह मुझे न दिखावा करो। मैं तुमसे घृणा करता हूँ।’ किन्तु समय पर वह अपनी कबनी के ठीक विपरीत आचरण करता है। वह बकरत के अनुसार उसी 'प्रिय' व्यक्ति के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने को तैयार रहता है, उत्सर्ग कर देता है। अतः इस प्रणाली में बचन और कर्म में जो विरोध कबनी ओर करनी में अवरुद्ध अन्तर दिखाई पड़ता है। इस प्रणाली के द्वारा मन, बचन और कर्म का पारस्परिक हस्त-बहाते हुए मीन पीत निरूपण का सरल और आकर्षक आभोजन किया जाता है। ऐसे चरित्र-चित्रण के लिए लेखक को मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान होने की आवश्यकता है। उसे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से देखना पड़ता है कि एक ही श्रेणी के पात्र मनुष्यों की मनो-वृत्तियों में कहां-कहां अन्तर है। इन बारीकियों को तुल्यमाने में ही कहानी में अद्भुत चरित्रों की सृष्टि होती है।”

सामाजिक प्रणाली होने के कारण समाज से अलग करके मनुष्य की ठीक व्याख्या नहीं हो सकती। बाह्य बर्णन कौटुम्बिक और वैयक्तिक विचारों तथा

६१ हिंसी के सामाजिक उपन्यास, पृ० १६

६२ हिंसी के सामाजिक उपन्यास, पृ० २०

परिस्थितियों से ही उसका निर्माण होता है। इसलिए उसके चरित्र को मनोमति समझने के लिए इन बातों का ज्ञान आवश्यक है। इसके अलावा उसकी व्यक्तिगत योग्यता का भी परिचय आवश्यक है क्योंकि उसी के बस पर वह अपने पाठावरण और इर्बिर्द की बुनियां से टकर कर सता है तथा उनसे प्रभावित भवना प्रतिक्रित होकर अपने आचरण को उसके अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है। शारीरिक व्यवस्था या तज्ज्वित विषय छाएं भी उसके चरित्र को ब्रामने में महत्वपूर्ण भाग देती हैं।

शीर्षत चित्र उपस्थित करने के लिए इन सभी बातों का कहानी में धाना आवश्यक है।

लेखक का कौशल इस बात पर निर्भर करता है—किसी चरित्र की कल्पना के सिद्धांतों में वह उन छोटी-छोटी बटनाओं का चुनाव करे जो उस पात्र की आरिभिक विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकें। इसके अलावा निम्नलिखित बातों में जो सहायक हों उनका विवरण भी आवश्यक है। वे हैं प्रायु रंप-रूप मुसाकृति पैतृक भंज जो चरित्र में विद्यमान हो, परम्परागत प्रथाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, उसकी कल्पना और उसके स्वप्न उसकी दिनचर्या उसके कार्य और जीवन की बटनाएं।^{११} चरित्र चित्रण में लेखक के लिए प्रायधिक सतर्कता आवश्यक है। जिस तरह चित्रकार द्वारा प्रकृत एक ही रैसा चित्र को बना प्रथवा बियाड़ सकती है, वही हास चरित्र-चित्रण का भी है। कुछ लेखक किसी बटना प्रथवा बर्चन को अपनी कथा में स्वान देने के पहले बंभीरतापूर्वक और प्रच्छी तरह सोच सेता है कि वह चरित्र के बिकास में कहां तक सहायक है।

चरित्रों को चार प्रकार से विहित किया जा सकता है—बचन, संकेत, आर्वासाय और बटनाओं द्वारा।^{१२}

चरित्र प्रधान उपन्यासों का विशेष महत्व है। उपन्यास पढ़ लेने के बाद भी उसकी बटनाएं पाठक के मानस-बटन पर बहुत दिनों तक प्रकृत रहती हैं। कुछ उपन्यास ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम कभी नहीं भूलते।

कैरिस हार्नो एम्मा (मैडम) बोवेरी सेवासरन की सुमत कामाकस का चरित्र, वितनी का मधुवन प्रादि ऐसे पूर्ण चरित्र हैं कि मुसाये नहीं भूलते। उनका स्वरूप उनकी मूर्ति मन में बसी रहती है मानो हमारे चेतन जीवन में ही हमारा-उनका साक्षात्कार हुआ हो। प्रत्येक उनके साथ ही हम उन कृतियों को भी भाव रखते हैं बिलके द्वारा हमारा-उनका परिचय हुआ था। यह चित्रण प्रायधिक कठिन कार्य है और इसे सफलतापूर्वक करने में ही उपन्यास कसा को सजीवता और निपुणता है।^{१३}

वस्तु और स्थिति एवं चरित्र

वस्तु और स्थिति का पात्रों के चरित्र से बड़ा बना सम्बन्ध है। निरुदता की

१३ कहानी कला, पृ० ४८

१४ हिन्दी कहानी, पृ० ३७

१५. उपन्यास कला पृ० १९१

इस सुझाव को नहीं समझ पाने के कारण ही अनेक उपन्यासकार उन्हें पृथक् नहीं कर पाते । ऐसे उपन्यासों में चरित्र चित्रण घटना अथवा परिस्थिति पर ही निर्भर करते हैं । उनमें पात्रों के वास्तविक चरित्रों और मनोवृत्तियों का स्पष्ट निर्वचन नहीं हो पाता पर सफल उपन्यासकार अपने पात्रों की मनोवृत्तियों के अनुकूल ही बतलाते हैं और उन्हें परिचित कराते हैं । इसीलिए ये पात्र सजीव स्वाभाविक और प्रभावशाली होते हैं । चरित्र-चित्रण के लिए इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ।

कुछ विचारकों का मत है कि चरित्र-प्रधान उपन्यासों में घटना का विकास और कथानक का स्वाभाविक होना है । पर यह बात उतनी सत्य नहीं जितनी समझी जाती है । वास्तव में चरित्र-चित्रण की वही प्रभावशाली होने के कारण घटनाएँ तथा कथानक उसके आधित्य होकर रहते हैं । फिर भी उनका महत्त्व अपनी अपेक्षा पर बना रहता है ।

चरित्र चित्रण पाँच प्रकार से होता है और प्रत्येक उपन्यासकार का इस सिद्धांत में अपना मौलिक रंग होता है ।

कुछ सेवक चरित्र-चित्रण की वर्णनारमक शैली अपनाते हैं । वे स्वयं पात्रों के गुण-दोषों विचारों और मनोवृत्तियों का अध्ययनकर अपना मत प्रकट कर देते हैं ।^{११} प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं । 'रंगभूमि' में सूरदास के चरित्र की प्रतिक्रिया विशेषताएँ वे स्वयं व्यक्त कर देते हैं— 'सूरदास एक बहुत ही शीघ्रकाम दुर्बल और सरल व्यक्ति था । उसे ईश ने कदाचित् भीष्म भाँयने के लिए ही बनाया था ।' आगे वह दूसरे पात्रों के विषय में भी लिखते हैं— 'जान सेवक दुहरे बदन के मोटे बट्टे आरम्भी थे । मुड़ापे में भी बेहुरा लाल था । मुख की आकृति से हुकर और धारमविश्वास भङ्गकता था । मिसेब सेवक के बेहरे पर झुरियाँ पड़ गई थीं । उससे उसके हृदय की संकीर्णता टपकती थी ।'^{१२} धार्मिक मुख में इस शैली का विशेष महत्त्व नहीं है । अब पाठक उपन्यासकार के दृष्टिकोण से ही पात्रों को नहीं देखना चाहते । वे पात्रों का स्वयं अध्ययन करके उनके बारे में अपनी राय बनाना चाहते हैं ।

इस वर्णन शैली द्वारा जिन पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है, वे रोचक नहीं हो पाते । पात्रों के गुण-दोषों का ज्ञान रहने के कारण उनके द्वारा होने वाले कार्यों के प्रति भी उनकी उत्सुकता नहीं रहती । वे पहले से ही उनके कार्यों का अनुमान कर लेते हैं । हाँ उन्हें आश्चर्य अभी होता है जब वे पात्र अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करते हैं । परन्तु उससे पाठकों में उनके प्रति आश्चर्य की भावना ही अधिक आघात होती है ।

दूसरा तरीका है संक्षिप्त द्वारा चरित्र-चित्रण करना । इस शैली में घटनाओं अथवा दृश्यों का सहारा लेकर लेखक पात्रों के विचारों पर प्रकाश डालता है । उन घटनाओं अथवा दृश्यों के प्रति वे पात्र जो दृष्टिकोण अपनाते हैं, वही उनकी मनो-भावनाओं को व्यक्त करते हैं ।

तीसरा प्रकार प्रत्येक उपन्यासों में इस शैली के उदाहरण बहुतायत से प्राप्त

११ साहित्यालोचन, पृ० २०२

१२ रंगभूमि

होते हैं। 'तिलसी' में वह लिखते हैं—“एक चौबैसी ! सामान से बसी घाई, किन्तु घाई से उनका मारना देखने में मुझे सुख न मिला। भाह ! कितने निहर के पंजा के बिगारे टहसते थे। उनपर बिबेस्टर रिपीटर क छरों की बोट विस्फुल ठीक नहीं। मैं धाम ही इन्द्रदेव को छिकार सेजने से रोकूँगी—भाब ही।” इस प्रकार सेबक संकेत द्वारा पात्र की चरित्रगत कोमलता का प्रकट कर देता है।^५

वर्तमान युग में चरित्र-विश्लेष की यह संवेतारमक प्रयासी ही प्रथिक उपपुस्तक जान पड़ती है। सेबक के लिए यह भी उचित नहीं कि वह अपने पात्रों के चरित्र एक दूसरे के चरित्रों पर अपनी राय जाहिर करे। सबसे उत्तम माप यही है कि पात्रों की चरित्र-कृति का साक्षादिक उल्लेखनाम किया जाय और बाकी निमय पाठकों पर छोड़ दिया जाय।

तीसरी सीमा है बाधनाम द्वारा चरित्र विश्लेष करना। ऐसा माना जाता है कि बोलचाल से ही मनुष्य के आचार-विचार का पता चल जाता है। कथापत्रन द्वारा पात्रों की मनोवृत्तियों का पूरा पता चल जाता है और याम ही घटना का प्रतिक विकास भी होता चलता है। निरासाजी की 'घण्टा में दिये कलक और सबरेबरी की बातें।

कनक—'हूँ घम्मा में कमा की कला की दृष्टि

सबरेबरी

कनक—मुझे सब्त मकरत है।^६

उपपुस्तक बाधनाम से दोनों के चरित्र का अन्तर स्पष्ट मलकता है। यह प्राबन्धक नहीं कि पात्र के मुंह से निकले प्रत्येक वाक्य को लेखनीबद्ध किया जाय। बहुत-सी बातें मननम और प्रसंगीन भी होती हैं। कमी-कमी ऐसी बातें भी निकल पड़ती हैं जो बहुत ही उच्च विचार की महत्त्वपूर्ण और आन्तरिक स्थिति को प्रकट करनेवाली होती हैं। ऐसी बातें मन और हृदय पर प्रकीर्ण हो जाती हैं। स्पष्ट उपस्थासकार ऐसी ही सम्भाषणों को अपनी कृतियों में स्थान देते हैं जो उस रचना के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते हैं।

चौथा तरीका है घटनाओं के साम्य से, उनका सहाय मकर चरित्र-विश्लेष करना। घटनाओं का पात्रों से बहुत बना सम्बन्ध होता है। जिस पात्र का जैसा स्वभाव होता है, वह उसीके अनुसार कार्य करता है। इस तरह घटनाएं पात्र के चरित्रिक गुण-बौरों को स्पष्ट करती हैं।

मानव जीवन के प्रत्येक घडी सिद्धांत परिस्थिति पर ही निर्भर करते हैं। परिस्थितियों से नाचार होकर एक सञ्चिकार और सत्यवादी मनुष्य भी मूठ बोल सकता है तथा दुष्कर्म कर सकता है। अपनी परिस्थितियों की इसी टककर में पात्रों के चरित्र की दुष्टता की पहचान होती है। घटनाएं पात्रों के जीवन को प्रभावित कर उसमें परिवर्तन ला देती हैं। इसी परिवर्तन को देखकर पात्रों के चरित्र का निर्धारण

किन्ना का उच्छ्वास है।”

ग्राम छोड़ कर उपन्यास के कथानक में एक ही मुख्य धीरे-धीरे सहायक बटमार होती है। अपने पितामहों के अनुसार पात्र मुख्य बटमा की धारा में बहता चलता है, पर सहायक बटमार मुख्य बटमा की धारा के साथ ही चरित्र चित्रण का कार्य भी करती चलती है।

कथानक का उपन्यासिक निर्माण इसका उदाहरण है। जब वह प्रथम भाग का सभी पात्रों के उसे साधुओं के एक मठ में ले दिया था। साधुता में जीवन के प्रत्येक क्षण व्यतीत करने के कारण ही वह महत्त्व बना धीरे-धीरे एक सिद्ध मुख्य के रूप में उसकी स्थापना की। ऐसे ही समय उसके आत्मकाय की मित्र किशोरी से उसकी भेंट होती है। उसकी मठीय स्मृति बनती है। विषम धीरे-धीरे समय का बांध प्रत्येक प्रयत्नों के बावजूद टूट जाता है। निर्माण की जीवन-आरा देवी से अपने महात्मा-जीवन के विपरीत बहने लगती है। धर्म की भोत में अपनी प्रेक्षणी किशोरी के साथ उच्छ्वास जीवन कुछ से जीतने लगता है। एक ही बटमा उसकी चरित्रिक दुर्बलताओं पर पड़े हुए पर्वों को हटा कर उसका असमी रूप दिखा देती है।

किन्तु, इस धीरे-धीरे के चरित्र चित्रण में यह धारणा है कि सहायक बटमार छोटी हों नहीं या वे मुख्य बटमा को नुकसान पहुँचा सकती हैं। साथ ही यह भी धारणा है कि वे मुख्य बटमारों से सम्बन्धित हों। उन दोनों में अन्तर्भावना रहने पर कथानक का क्रमिक विकास प्रकट हो जामया, दो धाराएँ एक धारे से होड़ करती हुई वह निकलती धीरे-धीरे कथानक पूर्ण नहीं हो सकेगा।

पात्रों और स्थिति की धारा है पात्रों के एक-एक विचारों द्वारा चरित्र-चित्रण करना। प्रत्येक उपन्यासकार इसी धीरे-धीरे का उदाहरण लेकर अपने पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन करते हैं। जिसका अर्थ चरित्र होता है उसके विचार भी वैसे ही होते हैं। एक भ्रष्ट धीरे-धीरे पतित व्यक्ति के विचार कभी उच्च नहीं हो सकते। उही तरह एक विचारवान धीरे-धीरे शान्त मनुष्य की प्रकृति उच्छ्वास की धीरे-धीरे प्रकट होती है। इस तरह पात्रों के विचार उनके चरित्र के बुनियादी तथ्यों का उद्घाटन करते रहते हैं।

इस धीरे-धीरे का उदाहरण करनेवाले सिद्धों के लिए मनोवैज्ञानिक धनुषों की विशेष आवश्यकता है। उन्हें ध्यान रखना पड़ता है कि किस चरित्र का पात्र किस प्रकार के विचार रहेगा। परिस्थितियों के दबाव में पड़कर पात्रों के जो किन्ना-कथानक होते हैं, वे ही उसके चरित्र को दुर्बलता स्पष्ट नहीं कर सकते। वे सिर्फ तब तक पढ़ने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए कोई भी शरणागती मनुष्य किसी भी अवस्था में भोरी या धर्म दुष्कर्मों की प्रशंसा नहीं कर सकता चाहे वह उस कार्य को करता ही क्यों न हो।”

परिस्थितियों के बदलने में बदलकर मनुष्य और स्थिति दोनों ही की विचार-

विषय प्रवेश

भारत पर परिचित हो जाती है। मधुवन मना जैसी बेरिया का उदार करता है जो समाज की संसार की दृष्टि में एक अनुचित कार्य है। वह भी इस प्रश्न पर सोचता बिचारता है, एक करता है। घात में निरिक्त करता है कि वह अपना बतल्य कर रहा है। इसके उसके स्वभाव की दृढ़ता प्रकट होती है। बतल्य के प्रति उसकी भावना स्पष्ट होती है। इसी तरह उपन्यास के प्रतिम भाग में हम तितली को भी बिचार करते हुए देखते हैं। उसे अपने सतीत्व का बहुत अधिक ध्यान है। यहाँ तक कि इस बारे में अपने प्रति जरा भी सन्देह का सम्बन्ध में वह परमधिक घबराहट है।

चरित्र-चित्रण में माया का भी बड़ा महत्व है। सुन्दर माया की उपमाएँ पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। उपयुक्त घटकों का चुनाव और स्पष्ट भाव-व्यंजना ही माया की सुन्दरता का कार्य है। सफल चरित्र चित्रण के लिए बस्तु की पात्र के सम्बन्धों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। यद्यपि ऐसा होता है कि सैकड़ बस्तु-विधान में ही अपनी समस्त घटकों को लक्ष्य कर डालता है। इससे चरित्र चित्रण कमजोर हो जाता है। कभी वह चरित्र चित्रण पर अपना ध्यान अधिक केंद्रित करता है तो बस्तु विधान कमजोर हो जाता है और सुन्दर चरित्र चित्रण भी महत्वहीन हो जाता है। घात सैकड़ को चरित्र-चित्रण और बस्तु विधान में उपयुक्त सामंजस्य स्थापित करना जरूरी है।^१

पात्रों की वास्तविकता पर बिचार करते समय यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर आता है कि क्या सैकड़ अपने पात्रों को हाइ-मांस का पुतला सजीव और वास्तविक बनाकर हमारे सामने उपस्थित कर सका? क्या उन पात्रों के प्रति हमारी वैसी ही सहानुभूति जाग्रत होती है जैसी हम अपने अपने बच्चे लोगों के प्रति रखते हैं? यदि हमारे मन में यह सहानुभूति पैदा हो सके तो कहना चाहिए कि सैकड़ अपने प्रयत्न में सफल हुआ। इसके विपरीत यदि उसके पात्र सांसारिक जीवन से मिला एक बिचित्र बोर के प्राणी हैं जिनकी पारिर्तिक, मानसिक एवं धार्मिक घटिकाएँ प्रसोक्त हैं तो सैकड़ मानव जीवन की व्याख्या करने में अक्षर्य प्रकट रहा। संसार का वह अपने साधारण अनुभव का उपयोग करे या प्रयास करना अनुभवों की परीक्षा करे उसके पात्रों को सजीव स्त्री-पुरुषों की भाँति व्यवहार करना पड़ेगा।^१

यह प्रश्न यह उठता है कि हम उपन्यास के पात्रों को क्यों अपने समान हाइ-मांस का पुतला देखना चाहते हैं? क्यों उनसे अनुप्योचित व्यवहार की धारा रखते हैं? इसका कारण है मनुष्य के अन्त में छिपी मानवता की तीव्रता और यथार्थ कल्पना की प्रकृतियाँ। इसी प्रकृति के कारण हम कल्पित पात्रों को भी सजीव बना डालते हैं। मानसिक दृष्टि के इस क्रम की व्याख्या करना सिर्फ उन्हीं के लिए कठिन नहीं जो साधारण पाठक हैं अपितु उनके लिए भी कठिन है जो वैसी कल्पनाओं के निर्माता हैं। एक विद्वान की सम्मति में यह एक धार्मिक दृष्टि है जो कभी-कभी तो सैकड़ की

मानसिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास

कमल पकड़ लेती है और उसकी बधि के विरुद्ध भी उठे जाता सकती है।^{१०४} इसका अर्थ यही है कि सफल लेखक अपने पात्रों को स्वतंत्र संकल्प शक्ति से युक्त कर देता है। वे पात्र अपने मनोवैशेषों और परिस्थितियों से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके कथन या कार्य कभी-कभी ऐसे हो जाते हैं बिचक्री लेखक ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह कल्पनाशक्ति की पराकाष्ठा है जिसके रहस्य का उद्घाटन लेखक या समालोचक के लिए कठिन है। सृष्टि-वैचित्र्य का विज्ञान ही इस मानसिक कल्पना में समित जात पड़ता है।^{१०५}

अतः इस मानसिक कल्पना की बातों को यथास्थान छोड़कर इस बात पर विचार करें कि वे कौन-सी चीजें हैं, कौन-सी उपाय हैं जो लेखक को सजीव वर्णन की शक्ति देते हैं। किसी नाटक के अभिनय में जो काम किसी पात्र की शेष रूप बोधनाम रंग-रंग और भाव्य-कौशल से निकलता है, वही काम उपन्यास-लेखक अपने वर्णन को सज से लेता है। बुद्ध-काम्य में पात्र और उनके अभिनय को देखकर हम उसके चरित्र से परिचित होते हैं। उसी तरह उपन्यास में किसी पात्र के भावना प्रकार स्वभाव-विचार और स्व-रंग का वर्णन पढ़कर उससे हम अपना मानसिक संबंध स्थापित करते हैं। उस पात्र की धारीरिक या मानसिक जो भी विशेषताएँ हों उसे पाठकों के मानसिक नेत्रों के समक्ष सामाज्य सजीव चारण करके उपस्थित होना चाहिए। कुछ सोचों की ऐसी राय है कि पात्रों का ऐसा सजीव वर्णन उपस्थित करने के लिए हर छोटी-छोटी बात का भी धर्मस्तुत वर्णन आवश्यक है। पर यह चारणा असत है। कुछ कलाकार तो विषय अपने मरुतक की बातें चुन लेता है और उन्हें अपने भावों विचारों या क्षमों से धारुणित कर अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है।

उपन्यासों की कथा कहने के तीन ढंग हैं। ऐतिहासिक या धर्म्य पुस्तकालयक धारमचरित्रिक या उत्तमपुस्तकालयक और तीसरा पञ्चालयक। पहले तरीके से चरित्र विनय प्राय विरसेपारमक या प्रत्यय प्रभाती जाय होता है। दूसरे और तीसरे तरीके में धर्मिनयारमक या परोय प्रभाती अपनाती जाती है। प्रायः लेखक अपने वर्णन के लिए विरसेपारमक और परस्पर कथोपकथन के लिए धर्मिनयारमक प्रभाती ही अपनाते हैं। इसलिए उपन्यासों में प्रायः दोनों तरीकों का सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी दृष्टि पर विचार के समय यह धर्मययन क्रिया जाय कि उसमें किध प्रभाती का कहां तक प्रयोग हुआ है और कहां तक धर्मिनययन। इसी धारणा पर उध दृष्टि की सफलता को धारणा का सफल है।

उपन्यास प्रायः दो प्रकार के होते हैं—बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी।^{१०६} पहले में पात्रों की प्रयागता होती है और ध्यापार शृंखला की शीघ-स्थान मिलता है। दूसरे में ध्यापार शृंखला या कटापत्रकों को प्राथमिक स्थान मिलता है और पात्रों का प्रयोग

१०४ साहित्यालोचन पृ० ९००

१०५ साहित्यालोचन पृ० २०

१०६ समीक्षा साह्य, पृ० १६५

उनके विचार और मुचाह रूप से संभामन में किया जाता है। यह किसी भी तरह सन्देशात्मक नहीं कि पात्रों की प्रभावता अवश्य स्पष्ट है। बटमार्ग मनुष्य के हृदय पर स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकती। परन्तु पात्रों के चरित्र अवश्य बसा कर सफल हैं। अतएव वे उपन्यास अवश्य उत्तम श्रेणी के हैं जिनमें चरित्र-चित्रण का अधिक ध्यान रखा जाता है। यदि विचार कर देता जाय तो वस्तु और चरित्र या पात्रों में परस्पर कुछ-न-कुछ विरोध अवश्य रहता है। जहाँ वस्तु की प्रभावता होती है वहाँ पात्रों को तदनुकूल संभावित किया जाता है। परिणामतः पात्रों के चरित्र में असंगति धा जाती है। पर वहाँ चरित्र चित्रण की प्रभावता मिसरी है वहाँ घटनापत्र को इसी प्रभावता के अंतर्गत संभावित किया जाता है जिससे वस्तु का सामंजस्य प्रायः बिभङ्ग जाता है। इसलिये सफल कृतियों में दोनों का उपयुक्त सम्मिश्रण ही व्यवस्कर है। पर इस मिश्रण में यदि वस्तुविधान और चरित्र-विधान का उचित संतुलन न होया तो उसके साम के बरसे हानि भी हो सकती है। जिन उपन्यासों का उद्देश्य रोमाञ्चकारी घटनाओं का वर्णनमात्र है, वहाँ वस्तुविधान की प्रभावता और चरित्र चित्रण की शीघ्र स्वान मिलेगा। ऐसे उपन्यासों के पात्र घटनापत्र के बशीभूत होकर इधर-उधर भ्रमते फिरते और कृति की रोमाञ्चकारिता को बढ़ाने में आबदयकतानुसार प्रयुक्त होते। किसी-किसी उपन्यास में किसी विशेष प्रवृत्ति या प्रकृति के मनुष्यों का विशेष स्थितियों के सर्जन में मिलाव होता है और उसी कारण उनमें आपस में प्रेम या बैमनस्य उत्पन्न हो जाता है। अतएव ऐसे उपन्यास की वस्तु का उचित और संतुलित विधान जाना चाहिए। इसमें संदिग्ध नहीं कि जिस स्थिति में पात्रों का आपसी सम्पर्क होता है उसका घटनापत्र पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस तरह पात्रों में ही बटमार्ग अंतर्हित रहती है। इसलिये किसी उपन्यास पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें वस्तु और पात्र कहां तक एक दूसरे से सज्ज हैं।^{१००} साथ ही यह भी विचारणीय है कि जिन घटनाओं का किसी कृति में समावेश हुआ है उनका औचित्य सिद्ध करने में कष्टक सफल हुआ है या नहीं? इसका अर्थ यह हुआ कि पात्र जिन रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कोई काम करते हैं वे संतोषजनक या संघर्ष हैं या नहीं उनके को परिणाम या प्रभाव दिखाये गये हैं वे स्वाभाविक, उपयुक्त या संघर्ष हैं या नहीं। यदि वस्तु के निमित्त किसी पात्र को उसके स्वभाव के विपरीत कोई काम कराया जाय तो अवश्य कहा जायगा कि वस्तु और चरित्र के पारस्परिक संबंध का उचित ध्यान उक्त कृति में नहीं रखा गया। कनी-कमी अन्वय के दुष्ट और नीच क्रूर और दुर्जन व्यक्ति को अंत में सुजन-सिरोमणि बना दिया जाता है और इस अद्भुत परिवर्तन का संतोषजनक कारण भी नहीं बताया जाता। ऐसा करना सर्वथा अनुचित और पात्रों तथा वस्तु के संबंध के सामंजस्य को नष्ट करता है।^{१०१}

गायकों में भी प्रमुख और शीघ्र दो प्रकार के पात्र होते हैं। पर नाटककार

१०० साहित्यालोचन, पृ० २०३

१०१ साहित्यालोचन, पृ० २०४

प्रमुख पात्रों के चित्रण पर ही अधिक ध्यान दे पाता है और गौण पात्रों पर कम। अनेक नियमों से प्राबल रहने के कारण उसके पात्रों की संख्या भी कम होती है। पर उपन्यासकार अपने पात्रों की संख्या इच्छानुसार कम या अधिक कर सकता है। उसे अपने सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण का नाटककार से अधिक प्रबल प्राप्त है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता तो वह उसकी असमर्थता है। नाटककार को इस संबंध में प्रबल की भी कमी है उसे रंगमंच पूरा करता है जहाँ भेद-भूषण भाव संनिमा धारि द्वारा चरित्रों की विशेषताओं को उभारा जा सकता है। पर उपन्यासकार को ये बाह्य उपकरण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए उपन्यास में पात्रों के चरित्र चित्रण का बहुत अधिक महत्त्व है। कवि और उपन्यासकार को अपनी सभी वर्णन-शक्ति द्वारा अपने पात्रों को स्वाभाविक सुंदर और मूर्त रूप देना आवश्यक है। पात्रों के प्राकृतिक या बाह्य गुणदोषों को स्पष्ट कर उनके विचार-संभवों का विश्लेषण कर उनके मानवीय प्राचरणों को देखकर ही पाठकों को सहानुभूति प्राप्त होती है। सभी पाठक उनके सुख-दुःख लोभ-हर्ष सुखी और विपत्ति में उसे अपना समझकर सरीक होते हैं और इसी में चरित्र-चित्रण की सफलता है। अन्य ज्यों समय धारि के उपन्यासों में कुसल सेखक की शिक्षनी के जन्मकार द्वारा ऐसे पात्र उपस्थित किये जाते हैं कि पाठकजन उन्हें प्रायः प्राचार विचार के मानव मानकर भी उनसे सहानुभूति रखने लग जाते हैं। किंतु, प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब कोई उपन्यासकार किसी विशिष्ट जर्सेस या किसी सामाजिक-राजनीतिक आशोकन को लेकर कोई रचना करता है तो वह न सिर्फ कथावस्तु को मनमाने ढंग पर निर्मित कर चुप रह जाता बल्कि पात्रों को भी अपने जर्सेस के अनुसार चित्रित कर अपने ही विचार उनके मुखों से कहलाने लगता है। ऐसा वर्णन सर्वथा असामाजिक हो जाता है।¹⁶ तब पाठकजन ऐसे पात्रों को कठ-पुतली ही मान बैठेंगे। इसलिए, उपन्यासकार का यह कर्तव्य है कि वह अपने पात्रों को सभी मानव बनाकर, मानकर, उन्हें उनके संसार में स्वतंत्र विचरण करने छोड़ दे उनके जिया-रुसाय कथोपकथन धारि को स्वाभाविक रूप में नियंत्रित करे। यहाँ यह संका उठ सकती है कि ऐसा करने से पात्रजन सेखक के अनुशासन से बाहर हो जा सकते हैं। पर यह कोरी मायुफता है। सेखक की कास्मिक सृष्टि का पात्र अपनी स्वतंत्र संकल्पशक्ति से कितना भी बलवान ज्यों न हो पर है वह प्राप्ति अपने लक्ष्य की कल्पना की ही उपर और इसलिए उसके जिया-रुसायों विचारों सभी पर सेखक का प्रबल अधिकार स्वाभाविक है। कास्मिक में यह बात इसलिए उठती है कि जब उसका उपन्यासकार अपने पात्रों को स्वतंत्र संकल्प-शक्ति से युक्त कर उन्हें इच्छानुसार विचरण के लिए छोड़ देता है तब स्वतः ही कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें उपन्यास में स्थान देना आवश्यक हो जाता है। सभी ऐसा कहा जाता है कि वे पात्र सेखक के नियंत्रण से बाहर हो बने।

यह प्रश्न भी उठता है कि उपन्यासों को कल्पित कथा मानते हुए भी उनके

पार्श्वों के प्रति पाठकों में अपनाना नहीं उत्पन्न होता है। वनों के उनके दुख से दुखी और सुख से सुखी होते हैं? इसका कारण मुख्यतः यही है कि सफल सफल की लेखनी द्वारा विविध पात्रगण कल्पित होत हुए भी जीवित मनुष्य की तरह यथाय और स्वभाव विक्रम व्यक्त करते हैं। यह लेखक की सफलता उसका जीवन यथायकारिता वर्तमानकाल की महत्ता है जो हमें शक्ति कर देती है और बलना में यथायका का धारण देती है।¹¹

यों तो उपन्यास के सभी वर्ग एक-दूसरे पर प्राथमिक हैं पर वस्तु तथा चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध विविध है। किसी उपन्यास में व्यापार तथा किसी में पार्श्वों की प्रधानता रहती है पर स्मरण रखना चाहिए कि पार्श्वों के द्वारा ही व्यापार-वृत्तता परिष्कृत होती है। पार्श्वों में ही घटनाएँ प्रकटित होती हैं। महत्त्व है कि एक ही घटनाक्रम में पड़े हुए कई पार्श्वों में किसी के प्रति विशेष संवेदना और किसी के प्रति संवेदना का न बाध होना भी स्वाभाविक है। ऐसा होना या न होना उन पार्श्वों के चरित्रों पर निर्भर करता है। चरित्र की पंक्ति ही क्रमशः सामान्य मानव को भी उच्चतम पर पर पहुँचा सकती है और मोक्ष का मार्गपथ करती है। इस कारण चरित्र का प्रभाव विषय स्वयं होता है और घटनाएँ उसमें सहायकमान होकर उस प्रभाव को बढ़ाती हैं। इसलिये घटनाओं और पार्श्वों का उचित उपयोग ही समीचीन है।¹² यदि वस्तुपूर्वक किसी एक चीज को अनुचित प्रधानता दी जायगी तो उससे कृति का महत्त्व ही कम होगा। हाँ ऐसे भी उपन्यास हैं जिनका उद्देश्य सिर्फ घटनाओं की भीषणता और रोमांचकारिता का प्रदर्शन करना है। वहाँ पार्श्वों का स्थान भी घटनाओं जैसा ही होता है। वहाँ पार्श्वों का उपयोग केवल घटनाओं को प्रदर्शित और बचन करने के लिए होता है। ऐसे उपन्यासों में वस्तु और चरित्र के उचित उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता।¹³

ध्यान के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता पार्श्वों के चरित्र और व्यक्तित्व का चित्रण है। कथा को पढ़कर हम उसे मुसा देते हैं। किन्तु उनके पार्श्वों में कुछ ऐसे विविध रूप होते हैं, उनके व्यक्तित्व कुछ ऐसे सघुर और प्रभावशाली होते हैं कि मुसाये नहीं भूलते। मोरान का 'होरी', कामाकुरा का 'अकमर' डिठसी का 'पञ्चमन' अन्ना-केरिना की 'अन्ना', बी गूब अर्थ का 'आय कृप' और 'घोसान' तथा रोन्ना रोसा का 'आन क्रिस्टाकर' ऐसे ही पात्र हैं जिन्हें हम कभी नहीं भूलते। उनका चरित्र पनपती कृति हमारे लिए कुछ इतनी परिचित है कि हमें लगता है जैसे जीवन में हमारा हमसे साक्षात्कार हो चुका है। उनके चरित्र इतने परिचित और जान-बहुताने होते हैं कि हम उन्हें आदर्श चरित्रों के समूह समझ कर ले सकते हैं।¹⁴

११० साहित्य का ध्येय और प्रेय, पृ० १६१

१११ कहानी का रचना विधान, पृ० ८८

११२ हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृ० ३२

११३ पोरोपीय उपन्यास, पृ० ७४

इस प्रकार कथावस्तु की स्वाभाविकता सरसता या उत्कृष्टता से ही कोई कृति बड़ी नहीं कहलाती। महान पात्रों की सृष्टि करके ही कलाकार वस्तुतः अपनी कृति का महत्त्व तथा स्वर्ण अपनी महत्ता प्रमाणित करता है। यदि वह ऐसे पात्रों की सृष्टि नहीं कर सकता तो प्रतिस्पर्धीय हों तो निश्चय ही उसे श्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं माना जा सकता। प्रथम पात्रों की सृष्टि ही कलाकार के प्रथमत्व को प्रमाणित करती है।

धील और चरित्र-विकास

कथाकार प्रथम नाटककार पात्रों के धीस-निर्माण की प्रक्रिया में ऐसी पद्धति का सहारा लेते हैं जिससे धीम विशेष का व्यापकरण तथा उसका प्रभाव प्रस्तुत होना है। इनमें निम्नलिखित पद्धतियाँ प्रत्येकनीय हैं—^{११४} समानान्तर पद्धति विपरीत पद्धति समानान्तर-विपरीत पद्धति एवं सेपपूरक पद्धति। प्रथम पद्धति नीम-करेमे की पद्धति है। इसमें एक ही प्रबन्ध में पुरुष-मुचक को कृत्यों का चित्रण समानान्तर ढंग से होता चलता है। यह भावुति के द्वारा स्थापित की गिद्धि है। विपरीत पद्धति में एक ही स्थान पर घबारायी और बुराचारी कृपण और उदार तथा मूर्ख और बुद्धिमान का चित्रण होता चलता है। यह नीम दाखा की पद्धति है जिसके विपरीत्य से व्यक्ति की सम्पूर्णता गिद्ध होती है। समानान्तर-विपरीत पद्धति में प्रसिद्ध घासबन के प्रति प्रथम उभयनिष्ठ प्रेरणा के कार्यस्वरूप से विपरीत प्रतिक्रियाओं या संकल्पों का जन्म होता है। एक ही प्रेयसी को पाने के लिए रत्नसेन बोयी बनकर तथा भसाउहीन तनवार लेकर निकल पड़ता है।^{११५} लोकरसंहार का प्रार्थ एक को नाबी-बिनीबा के सर्वोद्वेग की धोर और दुसरे को बर्ष संवर्ष के पुषाबाद और विम्बसबाद की धोर से जाता है। सेप पूरक पद्धति में जीवन का बचा सेप (प्रति प्रमुख पात्रों से बचा जीवन का सेप) दिखाया जाता है। ये सामान्यतः पीन होते हैं जिनके दिखा देने से ऐसा मान्य पड़ता है कि जीवन का बचा सेप पूरा हो गया। हार्डी के उपन्यासों में जीवन-पार्श्व की बोधी रहती है। प्रेमचन्द की के मोदान में यही हालत है।^{११६}

चरित्र और कथाकार

वास्तव में कोई भी रचना रचयिता के चरित्र उसके मनोभाव, उसके जीवन के धारणा और दर्शन को प्रकट करनेवाली होती है। जो लेखक सैध प्रेमी है, उसके चरित्र चटनाबन्धी और परिस्थितियाँ सभी उसी रूप में रची नजर आती हैं। सिर्फ प्राण्य धीर मनोरंजन का उद्देश्य रखने वाले लेखकों की रचनाओं के चरित्र ऐसे होंगे जिन्हें दुनिया का कोई बुद्ध-मुच नहीं सूटा। वे चित्तिस्म बनते धीर विमाकडे रहते हैं।

११४ धील निरूपण, पृ० ३२

११५. जायसी के पद्मनाभत का नायक

घाघाबादी सेवक की रचनाओं में जीवन के प्रति उसका घाघाबाद छसकता बीबेगा।
 लोकरबादी सेवक धार्मिक प्रयत्न से भी अपने पार्श्वों को विन्दाहित नहीं बना सकता।
 घाघाबाद-कथा को पढ़िये। घाघाको तुरन्त मालूम हो जायगा कि सेवक हंसने-हंसाने
 वाला जीव है। घाघाब के कथनानुसार कला में प्रदर्शित सभी भावनाएं व्यक्तिगत धनु
 मूर्ति से जन्म लेती हैं। पर धुंम का कहना है कि कला में प्रदर्शित सभी भाव मनुष्य
 की बनी हुई भावनाएं मात्र नहीं हैं।^{११}

कलाकार और उसके पार्श्वों के सम्बन्ध पर यदि विचार किया जाय तो कहना
 होया कि सामाजिक संस्थाओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध की धनुस्वरूपता उपन्यासकार
 और उसके द्वारा निर्मित कल्पित चरित्र में नहीं है। परिपार्श्वजन्म निजो विषयता
 को धनुस्वरूपता एवं धारणीयता देने का प्रयास सेवक प्रवश्य करता। सेवक के
 व्यक्तित्व के विकास का जो जन्म है, वही जन्म उसके पार्श्वों के विकास में भी प्रवश्य
 पीछ पड़ता है। पर क्या इसका यह अर्थ है कि पात्र या पार्श्वों का एक वर्ग उपन्यासकार
 के प्रतिष्ठा है? नहीं, ऐसी बात नहीं। धनुस्वरूपों की विविधता एवं पार्श्वों के बाहुस्य
 द्वारा सेवक अपनी धनुमूर्ति धारणवेतना और स्फूर्ति को परिबेध देता है। पर सेवक
 के व्यक्तित्व का धारण्य छोटा-सा अंश ही उन पार्श्वों को प्राप्त होता है। हां यह बात
 प्रवश्य है कि किसी एक पात्र या उसके वर्ग को सेवक की गहरी सद्धानुमूर्ति प्राप्त
 रहती है। फिर भी किसी एक पात्र में ही सेवक के व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नहीं
 मिल सकता, इसके विभिन्न उपन्यासों के मुख्य पार्श्वों की एक-सूत्रता में उसके व्यक्तित्व
 के चिह्न सन्धेय ही मिल सकते हैं।^{१२} किसी एक उपन्यास में तो सेवक अपने जीवन
 के धनुस्वरूप का 'अस-सेसन' ही ले पाता है। सेवक के व्यक्तित्व जीवन के संस्कार,
 धनुस्वरूप और धनुस्वरूप, कथासूत्र, पात्रता विचार-धारणा और माध्यम को नियोजित
 नियमित प्रवश्य करते हैं।^{१३} सेवक यदि पात्र को अपनी स्थिति में बासकर स्वयं
 पात्र बन जाय तो उसकी तटस्थता का निर्वाह नहीं हो सकता। तटस्थता का त्याग
 कर वह पार्श्वों की विविधता उनके परस्पर सम्बन्धों प्रेरणा और परिबेध संपूर्णता
 का तटस्थ अध्ययन और विश्लेषण नहीं कर सकता। इसलिए सभी विषय के हित में
 यह धारण्यक है कि सेवक पार्श्वों की तटस्थता को निजत्व प्रदान कर धनुमूर्तिवत् सत्य
 का स्वरूप ले। इस तरह सेवक पार्श्वों में सन्निहित भी है और प्रसंग भी।^{१४} उसका
 धारणाव तटस्थ विश्लेषण को धारणा व्यक्तित्व और व्यक्तिकता देता है। उसका
 सन्निध्य सत्त्वता और स्फूर्ति प्रदान करता है।

प्रेमधनुस्वरूपी की धारणा न तो रंगमूमि के सूरदास में मिसेयी न गोदान के
 होती में। 'सेवक—एक जीवनी' के सेवक धनुस्वरूप न तो सेवक हैं और न 'नदी के

११७ धार्मिक मनोविज्ञान, पृ० १४३

११८. धारणा (उपन्यास धनुस्वरूप), पृ० १४३

११९. बी राहुवर एष्य हित काण्ड, पृ० २८

१२०. बी इयतिष्ठ नावेस, पृ० १४

टीप' के मुखन। बास्ताबस्त्री के पात्र तो उससे और अधिक भिन्न हैं यद्यपि उसमें अपने प्रकृतियों को स्वतन्त्र व्यक्तित्व और पुष्पकत्व देने की अपूर्व क्षमता है। श्रीकांत और सम्बन्धी (पनेर बाबी) परस्पर चिन्न होते हुए भी अरन्धत्न से अभिन्न भी हैं और भिन्न भी। मध्यवर्ति बंगाली समाज और उसके संस्कारों के प्रतिनिधि अरन्धत्न के पात्र उस संस्कारिक परिवेश में कृत्रिम प्राकृतित होते हुए भी उनकी कृतियों के स्वतन्त्र प्रकाशन हैं। उपन्यास-लेखक में अनुभव की व्यापकता दूसरों के अनुभव से सामं सठाने की क्षमता बटनाओं और कृतियों के विक्षेपण द्वारा एक नये संक्षेप की अक्षिप्तमत्ता जितनी अधिक होती, उसी भाषा में उसके पात्रों में विविधता मिलेगी।^{१२१}

लेखक-मात्र सम्बन्ध की दृष्टि से यदि बर्नीकरण किया जाय तो यह बात अवश्य है कि पात्रों का एक वर्ग अपने लक्ष्य का प्रतिनिधि है उसके विचारों और भावों का वाहक है। पर ऐसे पात्रों में वैयक्तिकता तो रहती है पर व्यक्तित्व नहीं। कथाकार उन्हें अपने मनोनुकूल ढाँचे में ढालकर उपस्थित करता है उन्हें अपना पूर्ण स्वेष्ट प्रदानकर अपने व्यक्तित्व का सेप बढ़ा देता है। पर ऐसा होने के कारण ही लेखक के व्यक्तित्व से भिन्न उनकी कोई सत्ता नहीं। ऐसे पात्रों की सजीवता और सजगता का आचार कथाकार में निहित सजीवता और सजगता ही है।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि उपन्यास आरम्भ चरित्र नहीं हैं। आत्म चरित्रात्मक उपन्यासों में ही लेखक निबन्ध के संस्कार का प्रतिभापी है। 'बाल भिस्टोकर' रोसां नहीं यद्यपि वह रोसां से अभिन्न है। साम ही वह उसका संस्कारक भी है। 'दुखर—एक बीवनी' का दुखर भी वैसा ही है। ऐसे पात्र लेखक के भावों और विचारों के मात्र वाहक होते हैं। इनका महत्त्व भी इसी आचार पर है न कि स्वतन्त्र और निजी व्यक्तित्व के कारण। सामाजिक आचार पर निर्मित पात्र टाएप बर्न विक्षेप के प्रतिनिधि अथवा असामाजिक होते हैं। ऐसे पात्रों की पात्रता का आचार है सामाजिक चेतना-वृत्ति। मूस्य की चारना के आचार पर पात्रता के बर्ण हैं। पूर्ण मूस्यों के स्थापक और विस्तारक कथा नवमूस्य निर्धारक और प्रतिष्ठापक।^{१२२} किन्तु उपन्यासकार की भाँति प्राक्यायिका-लेखक अपने व्यक्तित्व को छिपाकर नहीं रख सकता। उसे हर समय अपने व्यक्तित्व को प्रकट रखना और अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते रहना पड़ता है। उसकी खेती पाठक के अंतरेण मिन की होती है। वह बरेलू और आपसी आचमिनों की तरह गपराप करता है।^{१२३}

प्राबुनिक उपन्यासकार अपनी कृति का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है। अब वह तटस्थ प्रेक्षकमान नहीं है। प्रसिद्ध आलोचक टी० बी० बीच महोदय का कहना है कि उपन्यास-कथा के विकास के साम ही उपन्यासकार की छाया उसकी अपनी कृति से

१२१ आलोचना (उपन्यास अङ्क), पृ० १४३

१२२ आलोचना (उपन्यास अङ्क), पृ० १४४

१२३ साहित्यालोचन पृ० २२३

दूर होती गयी। पहले वह मनोवैज्ञानिक विरसपण घटनाओं की शृंखला जोड़ने किसी रहस्य का उद्घाटन करने या किसी न किसी बहाने रंगमंच पर घाबर पाठकों का संबोधित कर जाता था। वेकर के 'बेनिटी फेयर' में यही तरीका पाठकों के हृदय को विद्युत्प्र कर देता है। पर श्यों-श्यों उपन्यास-कला में प्रौढ़ता घाती गयी, उसने सखक की रंगशी छोड़कर स्वयं बोलना प्रारम्भ किया। घात्र भी उपन्यास-कला अपने प्रयोगों के बाध नहीं कर रही है। पर उसकी पद्धति सब पाठकों क हृदय को विद्युत्प्र नहीं करती। उपन्यासकार अपनी कृतियों में घबरय प्रविष्ट है। पर यह हस्तक्षय—प्रवेश उसकी कला का संरिप्त घंघ बन चुका है। घात्र का जागरूक उपन्यासकार अपने उपन्यास का पंघमान ही नहीं बनू एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पंघ बन गया है। घात्र की औपन्यासिकता नैपथिक के अथिक सन्निघट है। इस दृष्टिकोण के कारण उपन्यास के विभिन्न पार्श्वों को एक दूसरे से घलय नहीं किया जा सकता। वह दूसरों को जो बीकता है उससे घलय नहीं है क्योंकि इष्टा से दुर्य पृथक नहीं हो सकता। इतना ही नहीं आप यह भी पायेंगे कि उपन्यासकार से पार्श्वों को घलय करना भी संभव नहीं। उपन्यास जो कुछ भी है वह उपन्यासकार की छाया है प्रतिबिम्ब है।"^{११}

पहले के उपन्यासों में दो दुनिया साय-साय बसती थीं—एक उपन्यास की दूसरी उपन्यासकार की। सखक उपन्यास में प्रवाहित जीवनघाय को दूर से देखा करता था। मनुष्य के घाकरण में बुद्धि से नियमित एक मर्यादा होती थी। सारी घटनाएं काय और कारण को श्रुतवा में बंधी रहती थीं। सखक अपनी सम्प्रतिब दुनिया से उपन्यास की घात्रनिघट दुनिया में निरन्तर घातर-घातर रहता था जो बड़ी सटकने वाली बात थी—उसी तरह जैसे एक देश का प्राची दूसरे देश में घनमाने डंघ से प्रवेश करने पर सटक। परन्तु सब बसी बात नहीं। उपन्यासकार के लिए उपन्यास उसका घपना संघार बन चुका है। वह सब उस दुनिया से पृथक जीव नहीं। वेतना प्रवाह-पद्धति में बस्तुनिघटा घोर घात्रनिघटा के घतर को मिटा दिया है। अपने संघार में सब यदि वह परिभ्रमण करता है तो यह उसका घादिकार ही है।"^{१२}

घात्रनिघटा घात्रुनिक कथा साहित्य की कई विशेषताओं में एक है। फिस्टिग घोर वेकरे अपने कुत्ता-बिबरणों को अ्यक्तिगत टिप्पणियों द्वारा सघा सुसंघित रखत थे। फिर भी उनमें घात्रुनिक सटस्वता विघमान थी। इसीलिए उनकी रचनाएं रंभीर घपों में निर्बैयक्तिक ही कही जाती है। कमातरकता के घनाब के बाबजूद अपनी दासनिक सटस्वता के बल पर ही वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी कथाओं में प्रवेश कर पाते थे। घात्र क औन्धयमूसक साहित्यिकों क मुक्ताबसे में अपनी सामघी की पकड़ उनमें घबिक थी। यह स्वाभाविक भी है—क्योंकि संकुलता घोर बिलराहट क इस गुण में कलाकार अपनी घपना की श्रुता घोर रहस्यमयता की घोर मुकने के लिए बाध्य है। इसीलिए सटस्वता घोर मर्यापता की बस्तुनिघट पकड़ उसके लिए कठिन है। पाठक से

१२४ घात्रुनिक हिन्दी कथा-साहित्य घोर मनोविज्ञान पृ० ३१२
 १२५ वही, पृ० ३१२

निकट रहने के लोभ का उसे बाध्य होकर संबरण करना पड़ता है। अपनी बेतना की वास्तविकता ही उसका संरक्षक है जिसके बारे में वह बड़ा निश्चिन्त और भावस्वस्त है। नहीं तो बाहर सभी चीजें अस्तव्यस्त और क्लृप्तपुत्र्य हैं।^{१२६}

कथाकार सिर्फ अपनी धनुसूक्ति की बुनिया के प्रति भावस्वस्त है। इसीलिए वह अपनी उसी बुनिया का निर्माण करता है। बर्बीनिया बुस्क के उल्लेखों के बारे में इसी तरह के विचार एक प्रासंगिक नै प्रकट किये हैं। “बर्बीनिया बुस्क के पात्रों के संबंध सूत्र अपने झुंटा के साथ स्पष्ट हैं” वे कहते हैं—“पात्र उसी के रूप पर सोचते हैं। उसी की बाधी में बोलते हैं। उनके बीच सैद्धिका का प्रवेश अनधिकार भेष्टा-सा नहीं जान पड़ता। वहाँ सैद्धिका ही देखनेवाली थी जो वहाँ उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह सभी पाठकों के समक्ष अपने अस्तित्व का प्रमाण देती रहे ताकि सब वे पात्रों का मूल्यांकन करें तो उसका भी ध्यान रहें।”^{१२७}

महादेवी बर्मा के चरित्र उनके सहचर हैं। वह स्वयं कहती हैं—“इन स्मृति चित्रों में मेरा बीजण भी प्रा गया है। यह स्वामाधिक भी था। अँबरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की बुधनी या उजली परिधि में आकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अज्ञान संरक्षक के अंत हैं।”^{१२८}

इसीलिए सैद्धिका ने अपने पात्रों के बीच अपने को भी एक पात्र बनाते हुए अपने अस्तित्व को स्पष्ट किया है। अतीत के अज्ञान स्मृति की रेखाएँ—आदि रचनाओं में उनके सबल अस्तित्व के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

चरित्र या पात्र ही किसी कृति के साम्य-विधाता होते हैं। चरित्र विहीन कथा सजीव पात्रों के बिना किसी कृति का प्रभाव अतटा पर नहीं पड़ सकता। अमेरिकी नाटककार टैमिडी विधियम की कृतियाँ इसके उदाहरण हैं। प्रारंभ में उन्हें कोई सफलता न मिली। पर बाद में सब उन्होंने अपने चरित्रों की रंग-रंग पर जाने के लिए उनमें प्रभावकारी परिवर्तन किये तो उन्हें विपुल ख्याति प्राप्त हुई। इस संबंध में हिन्दी के यशस्वी कथाकार भी उल्लेखनीय अस्क का कहना है कि सैद्धिक को जिस वर्ष का विशेष अनुभव हो वहाँ वह पला और बढ़ा जो उसी का वह सफलतापूर्वक विपणन कर सकता है। अपने कथा-चरित्रों की सुजन-प्रेरणा के संबंध में वे कहते हैं—“मैं किसान-मजदूरों के बारे में ज्यादा नहीं जान सका। मैं निम्न मध्यवर्ग में पैदा हुआ और उसी वर्ग का चरित्र-विपणन मैंने अपनी कृतियों में अधिकारित किया है। बिना किसी अज्ञान कथा वर्ष का पूरा ज्ञान प्राप्त किये साहित्य-उत्पन्न में मेरे ख्याल में बदलनागती है। यदि सैद्धिक किसानों और मजदूरों से बड़ा है, अथवा उनमें रहता है तो उन्हें छोड़कर उच्चवर्ग का विपणन इसके लिए नसब होया। इसी तरह उच्चवर्ग के साहित्यिक के लिए बिना निम्नवर्ग की परिस्थिति का पूरा ज्ञान प्राप्त किये अज्ञान

१२६ वही पृ० ३१६

१२७ वही, पृ० ३१६

१२८ ‘अतीत के अज्ञान’ और ‘स्मृति की रेखाएँ’ की बुनिया

बौद्धिक सहाय्यभूति के बल पर, उनका चित्रण करना ठीक नहीं होगा। इससे उसके साहित्य में वह द्रुम न घायया जो अनुभूति के सच्चे धोर सरोपन से पैदा होता है।^{११९}

सरस्वती की कृतियों के प्रभावशाली होने के रहस्य यही हैं। धरत ने अपने अधिकांश पात्रों को अपना व्यक्तित्व दिया क्योंकि वे पात्र उन्हें भाव-वास ही मिले थे। प्रसिद्ध उपन्यास 'भीष्मराज' में उल्लिखित राजसदमी उनकी सुपरिचित राज-बासा ही थी, बटमा की महिला राजसदमी नहीं हामांकि राजसदमी के जीवन की कतिपय घटनाओं से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की। उनके जीवन से पूर्ण परिचय रखनेवाले इस बात को भली-भांति जानते हैं। हाँ, एक पत्र परिवार की महिला होने के कारण नाम उन्होंने राजबासा का न रखकर राजसदमी ही रखा। राजबासा मुजफ्फरपुर के एक चिकित्सक तथा म्यू हिल्सस्टरी नामक एक एलोपैथिक धीपशास्त्र के मानिक चन्दर शर्मा की पत्नी थी।^१

हरवर्ट रीड के शब्दों में व्यक्तित्व का मर्म ग्रहम् में ही निहित है। वह कहता है—“व इवो इव द सिनपिटिस साफ सेमसेग्रम् एंड इव वैनेटेड बाय कामस एवम पीरियेंट।”^{१२०} बिच की अनेक प्रतिमाओं के जीवन से यह बात सिद्ध है कि रचना करने के क्षणों में व्यक्तित्व धीर लेखक—दोनों घायने-घायने होते हैं। ऐसे क्षणों में मस्तिष्क के विद्याल संस्कार पट से एक बिचित्र प्रकाश फूटता है जिसका सद्य-समय धव वेतन घमवा उपवेतन मस्तिष्क है। किन्तु, केवल यही बात किछी मौखिक रचना का कारण नहीं—मूलवस्तु है व्यक्तित्व।

विचार धीर व्यक्तित्व दोनों एक साथ ही विकसित होते हैं और दोनों का सत्य उच घटनस्पर्शी क्षणों को प्राप्त करना है जिसमें प्रभावों का अन्त होता है। कलाकार की संवेदना हर क्षण को प्राप्त होती है। इसलिए यह कहना संभव नहीं कि कलाकार किछ क्षण में मौजूद है। योसामी तुलसीदास धरि राजस जैसे धीपष धीर दुर्गत क्षण की सृष्टि में अपना धारमभाव व्यपित न करते तो राम जैसे महाल धीर धारष क्षण की सृष्टि भी संभव न थी धीर न राजस के क्षण से कुछ सीता वा सफटा था। इस तरह काव्य में कलाकार अपने धारमभाव को स्रष्टा के अनुकूप ही रखता है।^{१२१} किन्तु, धीपशास्त्रिक पात्रों की पूर्णता लेखक की समप्रदा में नहीं उनके अपने विकास की परिधीमाओं में ही मिलती है। लेखक अपने पात्रों में उपस्थित है, उसकी उचितता ही पात्रों की उचितता है। फिर भी पात्र लेखक की अनुभविमान नहीं हैं। उपन्यासकार का महत्व पात्रों के उचमुक्त परिवेश धीर मूकवृत्ति का साधार निवीरित करने में है। स्वयं के पात्रों की तरह धीपशास्त्रिक पात्रों में कृतिरव की घनेसा नहीं क्योंकि वहाँ तुलनात्मक रूप से समता संघर्ष अधिक तीव्र धीर

११९. आनकल नवम्बर १९३५ पृ० १२

१२०. वही, पृ० २५

१२१. सपीसा धारष, पृ० ३५

१२२. जीवन के सत्य धीर काव्य के सिद्धांत

निश्चित परिणामकारी होता है इसलिए सचन उपन्यासकार अपने पात्रों का विकास स्वामाबिक ढंग पर उनकी अपनी गूँथभूमि में करता है। उनकी सजीवता चरित्रहीनता प्रथम कृताओं के मनोवैज्ञानिक-सांस्कृतिक माध्यम को स्पष्ट करता है उनके संबंधों और मोक्ष के प्रयासों को व्यक्त करता है जिससे सदा यह कहा जा सके—उन पात्रों का विकास उनका ही स्वामाबिक विकास है, केवल उनका ही निजी विकासमात्र और कुछ नहीं एवं इससे अन्वया भी कुछ नहीं।^{१३३} प्रसिद्ध क्वी कथाकार एंटन बेखन ने कथा-चरित्र एवं अपने मनोवाचों में फर्क बताते हुए कहा था—“मेरी कहानियों के पात्र बहुत दुखी और उदास जान पड़ते हैं। यह मैं जान-बूझकर नहीं करता सिद्धते समय स्वतः ऐसा हो जाता है। मैं अपने को एक दुखी व्यक्ति नहीं मानता। पर कम-से-कम सिद्धते समय मैं अपने को हमेशा एक दुखी मन-स्थिति में पाता हूँ। अक्सर रात और सुखी सेवकों की कृतियाँ अन्वयापूर्व होती हैं। मैं एक ऐसा ही सुखी व्यक्ति हूँ कम-से-कम मैंने अपनी विन्यायी के धारमिक हीस बर्ष भाराम से बिताये हैं।^{१३४}”

एक आस युव के लेखक एक डंग की नींव लिखते हैं।^{१३५} युग चरित्र और कथाकार के बहुते संबंध का उदाहरण मोहन पुरस्कार प्राप्त पेस्टलक का उपन्यास डाक्टर विभावो है। इसमें लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व झलकता है। उपन्यास का नायक डा० विभावो एक सजीला अभिजात्य और कुठिल चरित्र है। वह १९१७ में रुब की बोलचालिक श्रुति से मुँह बुराकर अपनी पत्नी ठाग्या और परिवार के साथ साइबेरिया भाग निकलता है। फिर जब वह मास्को वापस आता है तो श्रुतिव्यय परिवर्तनों को देखकर उसका दिल टूट जाता है। एक ड्राम में अकर करते समय उसके हृदय की गति रुकती है और वह मर जाता है। अमीर बनने के इस कलाकार का जन्म सन १८९० ई० में हुआ था। १९११ की राज्यश्रुति से बचकर उसके पिता देश को छोड़कर जाने से और उसी विमर्शसे में उनका वैवाह्य हुआ था। डाक्टर विभावो से उनके जीवन की बटुओं का बड़ा साम्य है। उस समय पेस्टलक की उम्र २७ साल की थी जब जीवन और कार्य के प्रति व्यक्ति के सिद्धान्त काफी सुदृढ़ हो जाते हैं। वह अपने को समाजवादी समाज में खपा न सका। इसलिए डा० विभावो के माध्यम से उस व्यवस्था के प्रति अपने प्रतिरोध को उद्यते व्यक्त किया है।^{१३६} इसीलिए प्राथमिक विचारकों के संघकार का अध्ययन प्राथमिकता की विद्यात पटभूमिका पर रखकर भी किया है।^{१३७}

पश्चिम के कई आलोचकों का मत है कि कवि स्वयं अपने चरित्र को किसी न किसी पात्र के माध्यम से व्यक्त कर दिया करता है। प्रमाण के लिए आलोचक डेडले ने

१३३ आलोचना (उपन्यास संक) पृ० १३२

१३४ कृति, मई १९३९, लेखक के पत्र निर्मल वर्मा, पृ० ४४

१३५ साहित्य का सापी, पृ० १३

१३६ नवभारत टाइम्स, दिल्ली, प्रेमचन्द भारद्वाज, ३० नवम्बर ३५

१३७ साहित्य का सापी, पृ० १७६

रोक्सपीयर के जीवन की 'हेमसेट' से तुमना की है। ब्रेडसे का कहना है कि रोक्सपीयर की तरह हेमसेट को भी अपने कई सर्वाधिकारों की मृत्यु का दुःख उठाना पड़ा। उसके पितृम्य स्वयं उसके पिता का बच करके हेमसेट के राज्याधिकार का भी अपहरण करना चाहते थे। रोक्सपीयर को भी मियेटर की मोकरी घूटने का हमेशा भय बना रहता था। ब्रेडसे इस तरह इस निष्कप पर पहुँचे हैं कि समस्त रोक्सपीयर ने अपने जीवन और व्यक्तित्व को ही हेमसेट के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।¹⁴ हेमसेट को कायब ने हिस्टीरिया प्रस्त शक्ती कहा था और निष्कप निकाला था—“इस प्रकार हिस्टीरिया पीड़ित व्यक्ति निस्सन्देह कल्पनाशील कलाकार है।”¹⁵

हमारे यहाँ भी कहा जाता है—‘बास्मीकि तुमसी भए’ यानी बास्मीकि ने तुमसी के रूप में प्रकटार किया। इसका अर्थ सिर्फ़ यही है कि जिस तरह बास्मीकि ने मादसं राजा राम की प्रारम्भता की उची भक्तिभाव से तुमसी ने भी राम को पूजा। दोनों ने अपनी भद्रा-भावना से परिपूरितकर राम के भार्गव चरित्र को जनमग के कल्याण के लिए हमारे सामने उपस्थित किया। तुमसी ने अपने महाकाव्य में हनुमान का रूप धारणकर अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट किया। उनके विचारों की साकारता और परिश्रमता राम के उपास चरित्र के रूप में लोक-कल्याण के लिए प्रस्फुटित हुई। इसीलिए महाकवि को हनुमान का पुजारी और राम का भक्त कहा जाता है। उची तरह सूर के व्यक्तित्व को कृष्ण भक्त उदय के रूप में देखा जा सकता है। इसीलिए भक्तमाल में नामावाचसी ने तुमसी को बास्मीकि का और सूर को उदय का प्रकटार माना है।¹⁶

यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि क्या कवि का व्यक्तित्व प्रतिनायक के रूप में भी अभिव्यक्त हो सकता है। यदि ऐसा हो तो क्या एक ही व्यक्ति में रामत्व और रावणत्व का कृष्णरस और कंसत्व का समावेश संभव है। भालोचर्को ने इसके उत्तर में कहा है कि महाकाव्यों ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसकी अभिव्यक्ति राम और कृष्ण के माध्यम से हुई है। प्रतिनायक रावण और कंस तो कवि के प्राराध्य देव के विरुद्धों की प्रतिमासित करने के लिए हैं। वे कल्पना की पूजिका से रचित वातावरण मान हैं जिस तरह चित्र में विद्युत्प्रति बिजाने के लिए मेजाकम्बर की पृष्ठभूमि अनिवार्य है।¹⁷

उपन्यासकार प्रज्ञेय कहते हैं कि अपने उपन्यासों में मैं स्वयं हूँ और उनमें अपने ही व्यक्तिविशेष का विश्लेषणात्मक सिंहाबभोजन है।¹⁸ हरेक इति का लेखक के व्यक्तित्व से अनिच्छ सम्बन्ध होता है। प्रेमचन्द के पत्रिकायु नायकों और पात्रों में इस प्रकार की स्पष्ट छाया परिभाषित होती है।

‘नाये-की-बड़ी के नायक मैं प्रेमचन्दजी ने बहुत हद तक अपने ही जीवन को

१३८ समीक्षा-साहस्य पृ० २८

१३९. भालोचर्का २६, पृ० ८५

१४०. समीक्षा साहस्य, पृ० २८

१४१. वही, पृ० २४

संक्रिय कर दिया है।^{१५२} गायक समुराज बाठा है तो पत्नी पूछती है— 'सब रुपये उड़ा द्याये कि कुछ बचा भी है ? गायक का सारा प्रेमोत्साह विपिन पड़ जाता है। उसके भी में धाता है कि इसी बरत उठकर चल बे। न कुबस-खेम न मीठी बातें सिर्फ स्वया और स्वया। वह अपनी कम धामरणी का रोमा रोता है तो पत्नी कहती है— 'तुम माहक मई बने। अपने शौक-सिमार कंधी चोटी से कुछ बचता ही नहीं। तुम बुरों की फिर कवा करोते ? गायक मुंझाकर पूछता है— 'कवा इसी बरत बसा बाऊं ? बेबीची स्पीरिया बड़ाकर कहती है— 'कवा में बुमाने कवी थी।' गायक ने प्रेम की बातें कीं तो बचाव मिला— 'प्रेम अपने-आपसे करते होंगे। मुझसे नहीं। मैं रोकड़ की परबाह नहीं करती पर देखती हू कि ज्यों-ज्यों तुम्हारी हागत सुबर रही है तुम्हारा हृदय भी बरत रहा है। मैं उपवास और फटे-बीपड़े सह सकती हूँ। लेकिन यह नहीं हो सकता कि तुम बैग करो और मैं मँके में पड़ी भाग्य को रोमा कळं। मेरा प्रेम इतना सहनशील नहीं।'^{१५३}

प्रेमचन्द उस समय एक स्कूल की नोकरी में (१८) मासिक पर नियुक्त हुए थे। गायक की प्राथिक बधा उनकी अपनी प्राथिक हागत से मिलती-जुलती है। फर्क सिर्फ इतना-सा है कि कहानी का गायक बन-ऊनकर अपने मित्र बापू से बड़ी सांपकर समु-राम गया है। मुमकिन है कि लेखक ने ऐसा किया हो या न भी किया हो। और इस बटना के उपरान्त ही उनमें विद्या के बिरुद्ध भावना बपी हो। अब तुम बाकई नरीब हो तो नरीब कहमाने में शर्म क्यों ? और यों ही धमीर कहमाने से काम ?^{१५४} इस कहानी से यह भी पता चलता है कि अपनी प्राथिक स्थिति के कारण प्रेमचन्दकी अपनी पत्नी को अपने पास न रख पाते थे जिससे दोनों के बिसों में बाँट पड़ती यपी और द्वेष बढ़ा। 'बीबन का धाप' कहानी का गायक काबसबी प्रेमचंद के बीबन-भाबसों को पेश करता है। 'बर-जमार्द' 'कवा बिबाह' धारि भी उनके बीबन के बिभ हैं। प्रेमचंद की अपनी विमाता से पट्टी न थी। उन्होंने सिबरानी बेबी से बुराच बिबाह भी किया था। उन्होंने १९३१ में स्कूल की नोकरी से इस्तीफा दिया था जिसका बिभय उनकी 'इस्तीफा' नामक कहानी में है। इस्तीफे के बाद स्कूल छोड़ने के वृत्त का सजीव बिभ 'भिरबा' नामक कहानी में उपस्थित है— 'मैं भी अपने धायू न रोक सका। माड़ी मन्वपति से बसी। मड़के कई करम तक उसके साथ बीड़े। मैं बिड़की के बाहर सिर निकाले धड़ा था। कुछ बेर तक मुझे उनके हिमते हुए क्माव नजर धाये।'^{१५५}

महाग संपकार कल्पना और बुद्धि के प्रयोग से यह बीबों में धास्वा न रख अपने अनुभव के धाधार पर सजीव बिभय पेश करता है। प्रेमचंदकी का कहना था— 'कल्पना से यह हुए धारमियों में हमारा बिबसाय नहीं है। उनके कावों और बिबातों से हम प्रभावित नहीं होते। लेखक को अपने पात्रों की धुवान से धुर बीबना

१५२ प्रेमचन्द बीबन और कल्पित—हंसराज रजवर, पृ० ६२

१५३ वही, पृ० ७०

१५४ वही, पृ० ८८

चाहिए।^{१०५} सेन्ट थ्यू का कहना था— 'किसी ग्रंथ के सम्पादन के लिए रचनाकार के जीवन और उसकी जीवन-दृष्टि को समझना जरूरी है। इसी मत को विस्तृत करते हुए टी ब्रेडफोर्ड ने बताया कि ग्रंथकार के मनोविश्लेषण के लिए वो बातों पर विशेष ध्यान जाना चाहिए।^{१०६}—यह कि किसी कृति में रचयिता का जीवन कहां तक व्यक्त हुआ है और यह कि सेद्यक के जीवन के मोटे-मोटे तत्व या क्रियाएं क्या थीं? वह किस बात पर माक भौं सिकोड़ता था, टीका-टिप्पणी या छोटे कसता या प्रादि तथा इसी प्रकार की छोटी-मोटी अन्य बातें। फ्रांसीसी प्रासोचक टेन का भी ऐसा ही मत है।^{१०७}

इन प्रासोचकों का यह मत था कि कलाकार का व्यक्तिगत भी सभी अन्य लोगों की तरह छोटी-मोटी बातों के साधारण पर बनता है। वह सिर्फ समाज या प्रकृति का ही चित्रकार नहीं। उसकी इच्छाएं वासनाएं भावनाएं और इच्छियां भी उसकी कृतियों में चित्रित होती चलती हैं। प्रत्यक्ष जगहों बातों के साधारण पर उसके पार्श्व घटनाओं और साधारण-विचार इत्रों का परीक्षण होना चाहिए।^{१०८}

फ्रायड के अनुसार किसी कृति का 'हीरो सेलक के 'इयो' (ग्रहम्) के प्रति रिक्त कुछ नहीं। उसने कवियों की तुलना दिन के सुनहरे प्रकाश में सपनाने वाले और उनकी कृतियों की तुलना विवास्वर्णों से की है। प्रमाणस्वरूप, उसने देवीसक्ति से युक्त और निरन्तर संकट में पड़नेवाले नायक का उससे बेलाज बच निकलना कृतियों में सभी स्त्रियों का नायक से प्रेम करना प्रादि बातें पेश की हैं। 'इयो' की यह केन्द्रीय स्थिति तथाकथित मनोवैज्ञानिक उपन्यासों और ऐसी कृतियों में भी सिद्ध है जिनके नायक प्रादि से घट तक निष्पत्ति दर्शकमान बन रहे हैं। जो कलाकार पौराणिक कथाओं परिवर्तों की कथाओं अनुभूतियों प्राणी बनी-बनार्ई वस्तु का उपयोग प्रपची कृतियों में करते हैं, वे एक हद तक स्वच्छन्दता बरतते हैं—विषय-वस्तु के चुनाव और पुनर्निर्माण में। फ्रायड ऐसी कहानियों को सम्पूर्ण राष्ट्रों की इच्छा-सुष्टियों के विकृत प्रभवेण और वास्तव्यमानता के प्रतीत से बड़े मानेवासे स्वप्न मानते हैं। दूसरे घर्षों में कृतियों में कृतिकार का 'इयो' और उसके अष्टा की प्रात्मकथा रहती है।^{१०९} 'कलाकार प्रेमचन्द' में श्री मय्यभनाय दुप्त ने कहा है कि चरित्रों का अष्टा सेलक यदि वस्तुवादी है तो वह जीवन के साधारण पर जगहें पड़ता है वैसा हम गेटे शरत प्रादि सेलकों के बारे में जानते हैं। प्रेमचन्दजी के भी कई पात्र उनके दर्द-विर्द के शोय वे। जो कुछ भी हो जब एक बार कल्पित या जीवन से सिबा मया चरित्र साकार रूप प्रादण कर सेटा है तो सेलक की सेलगी को अपने साथ बसीट से चलता है। महान उपन्यासकार बेकरे ने सेलक को परिचालित करनेवाले, चरित्रों की इस शक्ति को 'प्रोफेस्ट' या डूढ़ बतमाया है।

१०५. साहित्य का साथी पृ० १४

१०६. समीक्षा साप्ता पृ० २४

१०७. साहित्य का साथी, पृ० १६

१०८. वही, पृ० १३

१०९. सातोचना (२६), पृ० ८२

चरित्र-विकास : सिद्धान्त पक्ष

गाटकों में बर्षित बिम चरित्रों का रूप धारण करके अभिनेता रंगमंच पर अभि-
नय करते हैं, उन्हें पात्र कहते हैं। इसके संतुलित से सब मनुष्य पशु-पक्षी मानवीय भाव
धरणा बड़ पशुओं को भी गाटकों में कार्य करते हैं। कभी शिवता भूत-प्रेत राजस
किन्नर, यक्ष-यक्षिणी आदि असौक्यिक शक्तियों का भी पात्र के रूप में प्रयोग होता है।
इस दृष्टि से पात्रों को असौक्यिक मानव पशु-पक्षी बड़ पशुओं और भाव भावि पात्र
भाषों में बांटा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन पात्रों को मर्यादा परेष्ठ
बाह्य दृष्टि के और कहीं समस्त चरित्र के क्षेत्र में माना है।^१

गाटमशास्त्र के आचार्य मरुत मुनि के अनुसार मनुष्यों का स्वभाव तीन प्रकार
का है—उत्तम, मध्यम और अधम।^२ उत्तम प्रकृति के मनुष्य सहाय्यारी विवेकिय
ज्ञानवान अनेक धर्मों के विद्वान ऐश्वर्यवान बीतों के सेवक और प्रतिपालक मंत्री,
उदार, धीर और त्यागी होते हैं। मध्यम प्रकृति के मनुष्य व्यवहार-कुशल विस्पष्ट
में प्रवीण विद्वान्मानी और मनुष्य व्यवहार करनेवाले होते हैं। इन दोनों से विपरीत
स्वभाववाले यानी दुष्ट दस अधीन हिंसक मित्रघाती कामी कुठम भालसी बर्गों
जैसे भयङ्कानु, छिद्रान्धेपी और और पापी अधम प्रकृति के मनुष्य माने गये हैं।

इसी प्रकार आचरण की दृष्टि से पुरुषों के समान स्त्रियों की भी प्रकृति तीन
प्रकार की मानी गयी है।

नायक

नायक वही है जो बहुत से पुरुषों का नेता हो। साथ ही उसे विपत्ति और
अनुभव में समान सुख का अनुभव करनेवाला होना चाहिए जो सामान्य बर्गों की तुलना में
उसकी श्रेष्ठता के चोकर है।

आचार्यों ने नायक के लिए कुछ धाद्य किस्म के प्रतिबंध भी लवाये हैं जिनका
पालन महाकाव्यों में आवश्यक था। किन्तु, महाकाव्य और उपन्यास के नायकों में उतना
ही संतर है जितना महाकाव्य और उपन्यास में।^३

१ अस्तित्ववि पृ० १४६

२ अस्तित्व गाटम शास्त्र पृ० ११३

३ आकाशवाणी, इलाहाबाद से प्रसारित वाक्ता दिनांक २।१०।५८

उपन्यास और महाकाव्य के नायक

उपन्यास के नायकों के लिए ऐतिहासिक पुरुष, राजा घपना राजवंश का होना आवश्यक नहीं। वह साधारण और निम्नवर्ग का यदि दुर्बल व्यक्ति हो सकता है। वह भी आवश्यक नहीं कि वह पुरुष ही हो—स्त्री भी हो सकती है। उपन्यास के पूरे कथा तन्त्र पर जिस पात्र का व्यक्तित्व छाया हो वही उस कृति का नायक है। उसी का समग्र जीवन उपन्यास की कथा का निर्माण करता है। यही नहीं कथानक और नायक सापेक्ष हो गये हैं। कथानक में घटनेवाली सभी घटनाएँ, उसके समस्त कार्य व्यापार उपन्यासकार द्वारा बणित न होकर नायक के माध्यम से कहे जाते हैं।

नायक के भेद

नायक चार प्रकार के बताये गये हैं। स्वभाव के आधार पर उन्हें धीरोद्धत धीरकलित, धीरोदात्त और धोषघात कहा गया है।^१ देवता को धीरोदात्त, राजा को धीरकलित सेनापति और मंत्री को धीरोद्धत तथा ब्राह्मण और वैश्य को धीरोदात्त बताया गया है। चारों नायकों के लिए चार प्रकार के विद्वपक भी निर्धारित किये गये हैं। देवताओं के विद्वपक लियी (संग्घाठी या बर्षम्बजी), राजाओं के विद्वपक ब्राह्मण, सेनापति तथा मंत्री के राजनीति (राजपुरुष और ब्राह्मण) तथा वैश्य-नायकों के विद्वपक उनके सिष्य होते हैं।^२

मरत के नाट्यशास्त्र में बणित पात्रों के प्रकार की संवित्तृत व्याख्या भावप्रकाश के रघु प्रधिकार में धारवाहनम ने की है। उसमें 'मरत और धारवाहनम दोनों के बिचार उल्लिखित हैं।^३ नाटकों में विद्वपक को दास महत्त्व देते हुए पात्राकारों ने उसका विसृत वर्णन किया है और विद्वपक को संभा पीसी बाँधों वाला हास्यप्रिय पीसे बाँधों वाला झुरी बाँधी वाला और नाचने वाला बताया है।

प्रेम-व्यापार में मंत्रणा देनेवाला बेरुपा से व्यवहार करने में कुशल, मिष्टभाषी सर्वप्रिय और सबको प्रसन्न करनेवाला सबका कहा माननेवाला वातुनी और वातुर स्वल्प को बित कहा गया है। उसे माता और धामुपनों से धर्मकृत अकारण क्रुद्ध और प्रसन्न होनेवाला नटकट और प्राकृत माया में बोलनेवाला भी बताया गया है।^४ ऐसे पात्र हिन्दी के 'लैला' भी श्री० पी० भी वास्तव^५ और 'राधाकृष्ण'^६ आदि के उपन्यासों में मिलते हैं।

४ साहित्यालोचन, पृ० २००

५ साहित्य दर्पण, पृ० १३५

६ वही

७ अमिनद नाट्यशास्त्र, पृ० ११५

८ वपक पुरुष पृ० १०४

९ लखनौरीनाम—श्री० पी० श्रीवास्तव, के नायक

१० 'दोपस' एवं 'पुत्रपाप' उपन्यासों के नायक

कामनाहीन किन्तु ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न, कंचुक (धर्मरत्ना) और उष्णीय (पयड़ी) तथा हाथों में बेंत धारण करनेवाला पात्र कंचुकी कहलाता है। स्वैय नपुंसक, कमखोर तथा ब्रह्म और स्वभाव से कामवासनाहीन पात्र बर्षभर कहलाता है। अमली फलमूत्र खानेवाले गांव-पहाड़ में रहनेवाले चित्तकी स्थिरता विषिन हों मसी प्रकार माया जानने वाले तथा लंबी ठोड़ीवाले पात्र किपट कह गये हैं। राजदरबार में इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कुछड़े हिण्डे बीने, बहुरे, नपुंसक बड़े बाँठोंवाले तथा मोटे व्यक्ति भी पात्रों में आते थे। इनके अलावा सिपहीन निर्मुक्त राजा के पास यमियों को खानेवाला धीपस्वापिक रतिवास की वैश्यास करनेवाला धम्मागार अनेक प्रकार के कौतुक दिखाकर सवा हँसानेवाले मूक या पूर्ण कर्ई तरह के गुणों से युक्त समासब बिनमें बैतालिक बन्धी नाबी, मंगल-पाठक धारि भी कभी-कभी शामिल थे नाटकों के पात्र माने गये हैं। बैतालिक मुक्त स्त्रियों का नायक बन्धी राजा के गुणों और पराक्रमों का सुनानेवाला मंगल-पाठ से राजाओं को प्रसन्न करनेवाला नाबी, राजा के लिए सुक की नींव सुप्रभात और स्नागादिक कर्मों की सूचना देनेवाले सूत तथा सुम्भक मामनी पीतों से राजा और पुरजग का अभिर्नहन करनेवाले पात्र मागव कहलाते थे।^{११}

प्रेम^{१२} में बृह सुम्भर कलाधों का आठा, विसासयुक्त और कामसास्त्र का आठा व्यक्ति श्रुंभारप्रधान नाटकों का नायक माना गया है। उसी तरह बीर पराक्रमी बंधीर बुद्ध के लिए सवा रीवार व्यक्ति बीररस प्रधान नाटकों का नायक, चिन्तित दीन, शाल्य धर्मरुम्य और बुद्धी—कुरुव रस प्रधान नाटकों का नायक सवा बंधव हँसने-हँसाने की क्रिया में बतुर हास्यप्रधान नाटकों का नायक हर्ष और श्लेषयुक्त बर्मडी और उत्साही शेररस प्रधान नाटकों का नायक हीन मुद्रावाला किर्कृत्य-विमूढ़ बीन पछीने-पछीने हो खानेवाला और डरपोक भवानक रसवासे नाटकों का नायक मरिदा और मांस में सना मर में चुर्न व्यक्ति बीमत्स रस के नाटकों का नायक, एव सार्विक गुणों से युक्त व्यक्ति सॉत रस के नाटकों का नायक माना गया है। इसके अलावा नायक का परम मित्र उसके बुद्ध में बुद्धी उपनायक माने गये हैं। रामायण में सुधीव सव्यय धारि ऐसे ही हैं। सब प्रकार के व्यसनों का प्रेमी, नीच और हेबी-बंधी प्रतिनायक कह लाता है जैसे राजय धारि।^{१३}

चार तरह के नायकों के भी चार भेद होते हैं—अनुकूल बक्षिण अठ, और भुष्ट। अनुकूल नायक एक ही नायिका में अनुकूल रहता है जैसे उत्तररामचरित में राम।^{१४} बक्षिण नायक की एक से अधिक नायिकाएँ या पत्नियाँ होने के बावजूद श्लेष्य नायिका से सदाय व्यवहार तथा अन्य नायिकाओं में समान प्रेम होता है। अठ नायक

११ क्यक रहस्य, पृ० १०३

१२ अमिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १२४

१३ वही

१४ क्यक रहस्य, पृ० १०३

१५ नवरस, पृ० २२२

एक ही पत्नी में प्रेम का प्रदर्शन करते हुए भी कई नायिकाओं से रतिविकास में सीन रहता है और उसे छिपाने का भी प्रयास करता है। प्युट नायक खुशे ग्राम रतिविकास और उसकी बर्बादों में व्यस्त रहनेवाला निस्संजब होता है। ये चारों भेद एक ही नायक की उत्तरोत्तर वर्धमान अवस्थाओं के भी हो सकते हैं।^{१५} चार प्रकार के नायकों के चार-चार भेद होने से नायक के सोसह भेद हुए। आपार्य भरत ने इनके उत्तम मध्यम और अधम तीन-तीन भेद और माने हैं जिससे नायक के बड़तासीस भेद हुए। इन ४८ के भी दिव्य अदिव्य और दिव्यादिव्य तीन-तीन भेद और माने गये हैं। देवता दिव्य मनुष्य अदिव्य और मनुष्य का रूप धारण किये देवता दिव्यादिव्य माने गये हैं। इस प्रकार नायक के कुल मिलाकर १४४ भेद होते हैं।^{१६}

नायक के निकटतम सहायक को पीठमर्द कहा गया है। न्यूनाधिक मात्रा में नायक के सभी गुण उसमें होते हैं। वह कार्यकुशल और भक्त होता है। सुधीव को पीठमर्द कहा जा सकता है।^{१७} साहित्य वर्णनकार^{१८} के अनुसार नायक के सहायकों को शृंगार-सहाय वर्णविन्ता-सहाय वर्णसहाय, दंडवहाय धंत-पुर सहाय और संवादसहाय या दूत धारि छ' प्रकार के भेदों में विभाजित किया गया है।^{१९} इनके भी कई उपभेद माने गये हैं। बिट विद्वयक रजक, तपोती, मासाकार गभी आदि शृंगार-सहाय माने गये हैं।^{२०} नाटकों के नायक राजा को धर्म के लिए मंत्री और कोषाध्याक्ष पर निर्भर रहना पड़ता था। पर भीरुवित नायक धर्मसिद्धि के लिए सलाहकारों पर निर्भर नहीं रहता और भीरुसाठ नायक को धन की विशेष विन्ता नहीं होती थी। सामन्त और सैनिक दुष्टों को दमन करनेवाले और नायक के सुदृढ़ मित्र होते थे। यज्ञ करने और करानेवाले ब्राह्मण पुण्यहित उपस्वी सोय वर्णसहाय होते थे। वर्णन (हिजड़ा) गूँघे मूक किरात (बंगली) बौने, मसेच्छ और शकार आदि धंत-पुर-सहाय होते थे। गीच कुसोत्पन्न मूर्ख वर्णवी और ऐदवर्णसामी तथा राजा की उपपत्नी का भाई शकार कटलाता था।^{२१} संवादसहाय प्रपचा दूत के भी साहित्य वर्णनकार ने निसृष्टार्थ मिठार्थ और सन्देशहारक नामक तीन भेद बताये हैं।^{२२} इनमें भी पीठमर्द तथा वर्ण सहाय उत्तम बिट और विद्वयक मध्यम तथा चेट और शकार आदि नायक के अधम भेदी के सहायक माने जाते हैं। दूत अपनी कार्य-कुशलता के अनुसार तीनों में से किसी भी भेदी में जा सकता है।

१५ नवरस, पृ २२२

१७ उपरु रहस्य पृ० १००

१८. वही पृ० १०५

१९. साहित्य वर्णन, पृ० ६८

२०. उपरु रहस्य पृ० १०४

२१ वही

२२ वही

२३ साहित्य वर्णन पृ० ७०

नायक सोमा बिसास मानुर्व, पांभीर्य स्थिरता ठेक, साहित्य और धौदार्य प्रादि घाठ छारिबक और पौरुषेक बुजों में बिभूयित माना गया है। तुलनात्मक रूप से प्रतिनायक भीरोखल लोभी निष्टुर पापी ब्यसणी माना गया है।^{१९}

प्रावेष्टन और चरित्र-विकास

सामाजिक प्राची होने के कारण मनुष्य पर समाज की प्रत्येक अवस्था और बातावरण का काफ़ी प्रभाव पड़ता है। डा० ईशराम ने इस समाजगत संबंध को प्रावेष्टन^{२०} कहा है। इस शब्द के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानवता के सब तरह के विचार विचार, संशय-संदेह, सुख-दुख मानवता का सम्पूर्ण इतिहास अनुभव और स्मृतियां शामिल हैं। इसमें राम-कृष्ण तथा बुढ़-ईसा के विचार ही नहीं उनकी जीवनियां भी हमारे सांस्कृतिक प्रावेष्टन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।^{२१} प्रावेष्टन की यह विविधता व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती है और इसके अध्ययन द्वारा ही मानव के बटित व्यक्तित्व को समझ या सकता है। यह प्रावेष्टन हर युग में बरसता रहता है। इसी लिए, प्रत्येक युग के चरित्रों में अंतर होता है। इसीलिए प्रत्येक युग के लेखकों के पारित्रिक विरसेयन में भी अंतर होता है। प्रावेष्टन के कुछ भाग जैसे मौखिक प्रकृति नर-भारी की प्रचयलीला या मां-बासक का परस्पर संबंध प्रादि विशेष परिवर्तित नहीं होते। पर उनके द्वारा विकसित होनेवाला चरित्र बरसता रहता है। इसीलिए प्रत्येक युग के मनुष्य की ये सीलाएं बसबती रहती हैं।^{२२} प्रावेष्टन का प्रभाव मानते हुए भी विदेशी मनोबिज्ञानिक बच-परम्परा को चरित्र-विकास का प्राबल्यक तत्व मानते हैं।^{२३} यह परम्परा कभी प्राविद्यास्थीय और शारीरिक मानी जाती है। किन्तु, इनपर अर्थ परम्परा का प्रभाव नहीं माना जाता है।^{२४} इसी आधार पर चरित्रों की परीक्षा हो सकती है। बास्ताबस्ती के प्रसिद्ध उपन्यास 'अइस एंड पतिवमेंट' में इस समस्या को व्यापक रूप में रोच किया गया है और बताया गया है कि व्यक्ति पर संगति का बुरा या मसा प्रभाव अवश्य पड़ता है।

मानव-स्वभाव को पढ़ने या बुरे बन में लोकार किना या सकता है। एक कवि के शब्दों में "नॉबन इज गुड एंड बेड बट दिक्विन मेस इट सो।" पारलाल विचारक प्रस्तुती भी यही राय है। इसीलिए मनुष्य के सभी कार्य इस काल और प्राक के अनुसार पढ़ने या बुरे भागे बने हैं। कुछ बोज प्रबलरकारी भी होते हैं। किन्तु चरित्र के मुख्यांकन की मात्र एक कसौटी हो सकती है—बुदरे की भलाई करने

२४, साहित्य-वर्षक पृ० ६२

२५, साहित्य-विमता, पृ० ६०

२६, वही

२७, लमीला शास्त्र, पृ० ३२३

२८, वही पृ० ३२०

^{१९}मनुष्य या तो उच्च अथवा नीचे के होने या नीचे अथवा ऊपर के

बासा घण्टा घादमी दूसरे भी कुछ ही मा घड़ित करनेबासा कुछ घादमी । घण्टाई धीर कुछ ही के इस दृष्टिकोण से भी उत्तम, मध्यम और धनम की कल्पना की जा सकती है । इस विद्यालय संसार में ऐसे पात्र बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं । साहित्यकारों में पंडित सीताराम बहुबेबी ने स्वभाव के अनुसार मनुष्य की इस अवस्थाओं को बताया है । वे हैं, चिन्तु बालक कुमार, किछोर, युवा युवातिमुषा, प्रौढ़ प्रौढ़ातिप्रौढ़ युद्ध युवातिमुद्ध । चरित्र की ये इस अवस्थाएँ उसके सामाजिक संबंधों को स्पष्ट करती हैं । बचपन के संस्कार प्रायु-वृद्धि के साथ ही परिपक्व होते-होते वास्तविक स्वभाव का रूप धारणकर चरित्र के गुण या धर्मगुण बन जाते हैं ।

प्रायु और चरित्र-विकास

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब एक ही प्रकार की क्रिया की सदा एक-ही मानसिक-स्वायत्तिक प्रतिक्रिया होने लगती है और वे प्रतिक्रियाएँ एक निश्चित रास्ता अपना लेती हैं तो वे ही मनुष्य के स्वभाव और आचरण को प्रभावित करके मनुष्य को बहल देती हैं । ये परिवर्तन अवस्था के अनुसार भी होते रहते हैं बिनाका बर्ना करण प्राचीन संस्कारों स्मृतियों और भाषाओं द्वारा किया गया है ।^{२९}

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के विकास की चार अवस्थाएँ—सौंदाश्यावस्था वास्या वस्था किछोरवस्था प्रौढ़ावस्था—मानी हैं ।^{३०} पंद्रह तक वास्यावस्था, पंद्रह से तीस तक का कौमारवस्था तीस से पचास तक युवावस्था तथा उसके बाद युवावस्था होती है । किन्तु स्वभाव और आचरण की दृष्टि से हमें अवस्था का विभाजन और भी विस्तृत रूप में करना चाहिए । इस दृष्टि से तीन वर्ष का बालक मधोवावस्था में रहता है और दूसरों के आदेश पर सभी काम निबिधत भाव से करता है । तीन से पांच तक घाटे-घाटे सहसा उसमें घण्टे-घुने, प्रिय-अप्रिय का ज्ञान उदित होने लगता है । पांच से आठ तक ज्ञानवृद्धि के साथ ही उसमें सांसारिक चेतना धीस और संस्कार का विकास होता है । आठ से पंद्रह तक की किछोरवस्था में उसकी सखि प्रकृति और प्रकृति में बुद्धता घाटी है । यह उसके जीवन की निर्माणावस्था और अधिक्य की शुरुआत भी होती है । पंद्रह से तीस तक की युवावस्था में मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं का विधेय रूप से विकास होने लगता है ।^{३१} यह धारम-श्रुमाट, धारम प्रबंधन की धीर या सामाजिक भावना से प्रेरित होकर निज या साधी बनाने एवं काममाधता से प्रेरित होकर अपना प्रेमपात्र बुढ़ने लगता है । इस अवस्था में मुबकों में वासनामय्य ङ्गलू लगता भी घाटी है । इस अवस्था के पार करने के बाद यानी तीस से पचास तक यह या तो

२९ अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १०

३० समीक्षाशास्त्र, पृ० ३४२

३१ अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १५०

३२ बाल मनोविज्ञान, पृ० २७३

३३ प्रायुनिक मनोविज्ञान, पृ० १७८

सद्गुरुत्व और सदाचारी मानव बनता है या यज्ञोपार्जन और ब्रह्मोपार्जन की सालसा उसे धनीति की ओर ले जासती है। इस धनीतिकर्म की चिंता पचास से पैंसठ तक बसती है जिसे प्रौढ़ावस्था कहते हैं।^{१४} इस उम्र में मनुष्य कुछ अधिक धार्मिक भी हो जाता है। पैंसठ से पचहत्तर तक की प्रति प्रौढ़ावस्था में मनुष्य का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा हो जाता है। उसे चारों ओर धनीति और धर्मियम के दर्शन होने लगते हैं। पचहत्तर के बाद वह बूढ़ हो जाता है। बूढ़ावस्था^{१५} में वह संसर्गति की ओर झुकता है। मन्त्रे से सौ वर्ष तक वह प्रतिबुद्ध होकर बन्धे की तरह परावर्त्तनी हो जाता है। उस समय वह केवल 'निर्वाण' की कामना करता है। शेषशयीयर ने शिवस के मुँह से इसका बड़ा मन्त्र बिलन कराया है।

धनवस्था के अनुसार पुरुषों का भेद किया गया है। सिधु धनवस्था से बाल्यावस्था जोड़ी-सी तीव्र होती है। उसमें शैतना आने लगती है। उसके बाद कुमारवस्था में बालक को नियन्त्रण पचान नहीं जाता। व्यक्तित्व का विकास होने के साथ ही उसमें अपनी इच्छा और उत्तरदायित्व को समझने की शक्ति आती है। किन्तु जो बालक अपने दायित्व को पूर्णतः नहीं समझ पाता वह कुमार पर भी बल विकसित है।^{१६} इसी धनवस्था में यह दुर्लक्षित बालक बड़ों का धनमान करता दुर्बलनी होता बन्धी मिश्रक, चोर बुधसकोर या धर्मिहारी हो जाता है।^{१७} घर का बातावरण और बाहर में बंसी संघटि होती है, बीछा ही स्वभाव और धावरण बनने लगता है।^{१८} इसी किशोरवस्था में उचित शिक्षा और संवति मिलने पर बालक सद्गुरुत्व और धनवस्था आसनी बनता है। धनवस्था में कुटिल भीष साहसहीन घालसी बन्धी धारि बन जाता है। मननशील कल्पनाशील और सद्गुरुओं से किरूपित बालक बड़े होकर अपनी सविच्छाओं की पूर्ति के लिए बड़े-बड़े काम करते हैं और महापुरुष बनते हैं। ऐसे पाषों के साथ कुल संस्कार, संवति और परिस्विति का धम्मियन कर उद्भव चरित्रों का लुबन किया जा सकता है और यही कारण है कि बुनिया में डिपटेटर पैदा हो जाया करते हैं।^{१९}

बालक कुमार और किशोर तीनों धनवस्थाओं में यद्यपि बहुत जोड़ा धनर है, पर इन्हीं जोड़े से बपों में मनुष्य की वृत्तियाँ प्रवृत्तियाँ इतनी बटिस और बहुमुखी हो जाती हैं कि इन्हीं के धावार पर सम्पूर्ण जीवन का धम्मियन किया जा सकता है। किन्तु धार्मिक परिस्वितियों के कारण मनुष्य की विषय होकर अपनी प्रवृत्तियों में परिवर्तन करना पड़ता है। उस समय बड़े-बड़े धर्मियों को भी कर्मरत होते देखा गया है।^{२०}

१४ बहो, पृ० ३५०

१५ " "

१६ प्रसारिका, वर्ष एक ४ ५, बुलार्ड, दिसम्बर १९३३ पृ० ८९

१७ बाल मनोविकास पृ० ३८०

१८ " " "

१९ हीनमाव, पृ० १३

तथा पुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं—अनुरक्त, विरक्त और उदासीन, बुद्धिजीवी अथवा आसती। अनुरक्तों का भी दो तरह का वर्गीकरण किया गया है—सोकसंग्राही और स्वार्थी। स्वार्थियों में सोमी मूढ़ सोबी ईर्ष्यान्तु दम्भी आदि व्यक्ति होते हैं। सोकसंग्राही के अन्तर्गत अर्धे मुर्खों से विभूषित पुरुष आते हैं जो अपने मित्रों बन्धुओं वगैरे देश और समाज के लिए सर्वस्व त्याग करने में नहीं हिचकते। इनमें भी अपना हित करते हुए दूसरे का हितसाधन करने वाले, अपना नुकसान उठाकर भी दूसरों का भला करने वाले तथा अपना कुछ भी ध्यान न कर सिर्फ परोपकार करनेवाले व्यक्ति होते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को भावार्थ माना गया है। महापुरुष कहा गया है। इसी तरह अनुरक्त स्वार्थियों में भी कई भेद और उपभेद हैं। साहसी और दुस्साहसी अनुरक्त सोमी विषयी और अर्ध विषयी, अनुरक्त प्रतिस्पर्धी अनुरक्त ईर्ष्यान्तु आदि के भी विभिन्न तरह की प्रकृति और स्वभाव गुणा करते हैं जिनकी विस्तृत व्याख्या आसक्तकारों द्वारा की गई है। उदाहरण के लिए समानभूति के पुरुषों में चाहे वे राज नीति या सामाजिक, धार्मिक या व्यावसायिक या बुद्धिजीवी क्षेत्र के हों एक तरह की आपसी ईर्ष्या होती है। इस कोटि में सबसे अधिकार एक ही तरह का व्यापार करने वाले व्यापारी या एक ही तरह का विषय पढ़ानेवाले अध्यापक आदि भा सकते हैं।^{४१} इसी तरह अनुरक्त धर्मिणो, अनुरक्त शोभी अनुरक्त मूढ़ आदि के भी कई भेद उपभेद होते हैं। अनुरक्त मूर्खों में एक अभी ऐसे लोगों को भी होती है जो आसक्तन सर्वत्र देखे जा सकते हैं। ये किसी की बात का बुरा नहीं मानते किसी बात पर अपनी सम्मति नहीं देते और सबों को सन्तुष्ट रखने के लिए अथवा ठगुरसुहाती कहते रहते हैं। ऐसों पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इनका कोई अपना नहीं होता स्वार्थ के सिवा।^{४२} महत्वाकांक्षी पुरुषों की भी कई श्रेणियाँ होती हैं। इनमें स्रष्टा कर्ता और भोक्ता महत्वाकांक्षी मुख्य हैं। स्रष्टा महत्वाकांक्षी में भी दो उपश्रेणियाँ हैं जो मानव जीवन के लिए स्वस्थ साहित्य या हितकर वस्तुओं का आविष्कार करता है, वह सहायक स्रष्टा। जो अहितकर साहित्य या वस्तुओं का आविष्कार करता है वह विनाशक स्रष्टा कहा जाता है।^{४३} सोकहित के लिए पत्नी का त्याग राज्य का त्याग ऐसे स्वार्थों पर जो पहुँचना चाहे कोई जाने का साहस न कर सके आदि कर्ता महत्वाकांक्षियों के काम हैं। विष्णुजयी राजा जोय दुर्गम पर्वतों पर चढ़ने वाले साहसी भक्ते ही बहूतों से मुझ करने वाले सूरमा आदि भोक्ता महत्वाकांक्षी हैं जो सुखरतम स्त्री सुखरतम वन स्वामिष्ठ भोजन आदि संसार में जो भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है उसे पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। इनके भी कई उपभेद होते हैं। एक तो वे जिन्हें अपनी महत्वाकांक्षा की तृप्ति के लिए राजकीय या व्यक्तिगत सहायता प्राप्त

४१ अतिमम नामयुगात्तम पृ० १११

४२ भोगभाव पृ० २१

४३ वही

४४ मनोविज्ञान और जीवन, पृ० २६१

हो जाती है। बहुत से ऐसे भी हैं जो निरन्तर चाहते हैं कि हमारे बड़े समाप्त हों तो हमें अपने मन की माकांक्षा तृप्त करने का प्रयत्न मिले।^{४९} ये प्रथम कोटि के महत्वाकांक्षी होते हैं। दूसरी की सहायता पर निर्भर करनेवाले मध्यम कोटि के और अपने धर्म तथा पराक्रम पर निर्भर रहनेवाले उत्तम कोटि के महत्वाकांक्षी माने गये हैं।

चरित्रों का नामकरण

प्रकृत चरित्रों का नामकरण भी उनके चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालने वाला होता है। उदात्त चरित्रों के नाम प्रायः विक्रमसिंह, बीरगुप्त^{५०}, सखीबाई^{५१}, महिस्माबाई^{५२} आदि रहे जाते हैं। ऐसे चरित्रों के नाम गोबर, होरी, मनिया^{५३} नहीं रहे जाते। हास्य रसालक चरित्रों के पात्रों के नाम मोटेराम घास्त्री^{५४} तथा कूर और बुट्ट चरित्रों के नाम बुजुबनसिंह, भीमसिंह, गर्जनसिंह, पहाड़सिंह जमादारसिंह शारोया राम एवं अकुरघाहब आदि रहे जाते हैं। कुछ दुष्ट चरित्रों को व्यंवात्मक रूप से पेश करने के लिए अश्लेष नाम भी रहे जाते हैं। चरित्रों के व्यापक अध्ययन से उनके नाम करके उनके बर्ष और आदिपत पुत्रों व्यवसाय गोभीबं या मीनता का भी पता चलता है। पात्रों के नाम अधिक से अधिक यथार्थता की ध्वनि देना करने में सहायक होते हैं।^{५५}

वर्ग चरित्र

विभिन्न देशों की परम्परा जाति वर्ग और वृत्ति के अनुसार भी मनुष्यों के स्वभाव का निर्माण होता है। अपने देश में ब्राह्मण क्षमाधीन और उपस्थी कभी-कभी श्रेणी और भाव देनेवाला भी अथिब सूरधीर पराक्रमी और शोभी वैश्य बम्भू और लोभी तथा सूड बीन और करपोक होते हैं।

देश के अनुसार अंधेज व्यापारी, स्पेनी अस्त बीज, अंग्रेजीसी बिलासप्रिय अर्थन साहसी और सड़ाके यक्षी अर्थपिपास आवासी परिभ्रमी और अध्यवसायी [भीमी धानसी और मुस्त इलासी धर्मभीरू युतानी दिनोदयिण अमरीजी बिलासी और बनभोभुप तथा पुसलमान अर्माग्न और हिंसक होते हैं। मध्यवर्ग के लोभ परिभ्रमी एवं बरबारी तथा हीन श्रेणी के सोप बीन होते हैं। देश के अनुसार अध्यापक त्यागी बकीस और डाक्टर बनभोभुप बीमा कम्पनी के एजेंट और नाई वृत्त व्यापारी कपटी

४९ अमितभ नाड्य शास्त्र, पृ० १९१

४९ अयवतीचरक बर्मा—'बिजसैबा'

४७ बुम्बाजनलाल बर्मा—भ्रांठी की रागी

४८ बही—महिस्माबाई

४९ प्रेमचन्द—गोदान

५० बही—मोटेराम घास्त्री

५१ कहानी का रचनाविधान, पृ० ११२

धीरे-धीरे बोलनेवाला तथा स्वर्गकार बचकर एवं धीरे होता है। इस तरह देश जाति धीरे-धीरे के अनुसार भी मानव-स्वभाव का निर्माण होता है धीरे-धीरे कमी-कमी पुनः का स्वभाव भी काम करता है।^{११}

सामूहिक चरित्र

कमी-कमी किसी नगर, देश, राष्ट्र या वर्ग पर सामूहिक विपत्ति आती है या सामूहिक रूप से मान-अपमान का प्रश्न उपस्थित हो जाता है उस समय भीषणों के व्यक्तिगत स्वभाव बदलकर लोकावेग का रूप धारण कर लेते हैं।^{१२} भारत के सभी लोगों का ऐसा विचार था कि अंग्रेजों ने इस देश को गुलाम बनाकर हमपर भ्रष्टाचार किया है। इसलिए उन्हें भारत से चला जाना चाहिए। इस निमित्त से जिन्होंने आंदोलन हुए उनमें लोकावेग स्वभाव ही काम कर रहा था जिसे मास साइकामीजी या 'हर्ड सेटिमेंट' कहा जा सकता है। व्यक्तिगत भावना से प्रसन्न जाति भावना देश भावना राष्ट्र भावना कुल भावना धीरे-धीरे परिवार भावना का भी प्रमाण स्थान है। इसे जब ठेस लगती है तो उसके निराकरण के लिए सामूहिक भावना का उदय होता है। यह भावना व्यक्ति से ऊपर समष्टि में समा आती है धीरे-धीरे लोकावेग भावना कहते हैं। वैक्लिपीयर के कुछ भागों में धीरे-धीरे सामूहिक समय में धीरे-धीरे का कारणों से असाधारण के लिए, उपन्यासकार रेणु ने इसका सहारा लेकर लोकावेग के उदय प्रायः उपस्थित किये हैं।

द्वैत व्यक्तित्व

विद्वानों का कहना है कि प्रायः सभी श्रेणी के लोगों का चरित्र दुहरा होता है—यानी बाहर में कुछ धीरे धर में कुछ बुरा। एक ही व्यक्ति को बाहर मद्य पान का विरोध करता है, स्त्री-सम्मान की दुहाई देता है—बही धर में धराध पीता है धीरे स्त्री को पीटा है। उदारता धीरे त्याग की बातें करने वाला व्यक्ति हर समय दूसरे के मन को प्रपूरण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की विविधता समाज धर्म धीरे राष्ट्र की सेवा करने वाले अविनाश व्यक्तियों में पायी जाती है।^{१३} अथर्व की राय में सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति में हर अवस्था में, यह बात पायी जाती है।^{१४}

बुरे पाचरण वाले लोग बग्गी की श्रेणी में आते हैं धीरे यह बन्म हो तरह का होता है भयवश या परिस्थितिबश अपने इष्टमित्रों बन्नु बाँबों या पुस्तकों के

१२. अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १७०

१३. पुनः साइकामीजी एवम् भी एनेलापसित भाग ही पृ० १७

१४. समाज की मूर्धिका, पृ० १९८

१५. समीक्षा शास्त्र पृ० १२६

१६. मनोविश्लेषण धीरे मानसिक क्रियाएं, पृ० २६

प्रति सम्झी मर्यादा न रहते हुए भी हम को चिष्ट आचरण एवं उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं, वह दम्न होते हुए भी वास्तव में किसीके लिए नुकसानदेह नहीं है। किन्तु दूसरे तरह का दम्न क्रूरता से युक्त है। ऐसी दम्न-वृत्ति दूसरे को धोखा देकर उस का सिर्फ अपमान स्वार्थ साधने की होती है। ऐसे व्यक्ति बड़े स्फुटिमान चतुर बोलनेवाले तथा सहायता को उत्तर, धैर्य-मान से कुछ ईश्वरप्राप्त आचरण किये, उपदेश देनेवाले और ज्ञान बखारने वाले होते हैं। उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण और चंचल होती है। वे कभी किसी बात पर या काम के बारे में 'नहीं' नहीं कहते।^{१०} सब समाजों में एवं सभी वर्गों में ऐसे दूसरे आचरणवाले व्यक्ति हर समय मिलते हैं। इनमें जो अधिक प्रभावशाली होते हैं उन्हें चतुर तथा साधारण लोगों को काइयाँ या पाखंडी कहा जाता है। ऐसे ही लोग राजनीति के क्षेत्र में कृष्णनीतिज्ञ कहलाते हैं।

बिलियम जेम्स ने मनुष्य को कठोर और कोमल—दो तरह की प्रकृतिवासा बताया है। बिस्लेर ने उन्हें धार्मिकवादी और अधार्मिकवादी—दो तरह की श्रेणी में बाँटा है। अंग्रेज विद्वान बीर्डन ने उनके स्वभाव को धार्मिकवादी और अधार्मिकवादी कहा है। फ्रेडरिक्स ने उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया है—बुद्धिमान, अज्ञान, अज्ञान और निरर्थक। निरर्थक प्रकृतिवासे तथा किसी न किसी रोग से ग्रस्त रहते हैं। न वे किसीसे सम्बुद्ध न उनसे कोई सम्बुद्ध रहता है।^{११} वर्तमान धार्मिकों ने उन्हें अज्ञान और अज्ञानी—दो तरह की प्रकृति बताया है। दोनों प्रकृतियों की अविस्तृत व्याख्या के बाद उन्होंने यह भी कहा है कि अज्ञानवादी परिस्थितियों में बढ़कर अज्ञान मनुष्य की अज्ञानकार्य कर सकता है। इसी तरह काम-साक्षियों^{१२} ने भी पुरुषों की चार श्रेणियाँ बतायी हैं—उत्तमवर्गी में उन्हें अज्ञान, भ्रम, भ्रम और अज्ञान कहा गया है और उनकी अज्ञानवादी व्याख्या की गई है। उत्तमवर्गी में बिस्लेर के साथ पुरुष का अज्ञान बताया गया है। सामुद्रिक सास्त्र^{१३} में पुरुषों के अज्ञान-अज्ञान अज्ञानों का अज्ञानवादी वर्णन मिलता है। ब्रह्मसंहिता^{१४} के अज्ञानवादी अज्ञान में अज्ञान प्रकार के पुरुषों का वर्णन देकर उनका अज्ञान निर्णय किया गया है। उन्हें उत्तम अज्ञान और अज्ञान—तीन श्रेणियों में बाँटा भी गया है। साथ पृथ्वी जल, वायु, आकाश देवता, नद, रासस पिशाच और पशु-वशी के अज्ञान के अज्ञानवादी विभाजित किया गया है। फिर भी ब्रह्मसंहिताकार का यह विभाजन अज्ञान स्पष्ट नहीं कि नाटकीय पात्रों के लिए यह कहीं बत सके।

आज तक के लिखित धार्मिक या नाट्य रचनाओं में अज्ञानवादी पात्रों को तीन भागों में बाँटा गया है—बुद्धिमान, बुद्धि और अज्ञान। बुद्धि के आचार पर ही मनुष्य

१० समीक्षासास्त्र, पृ० ४११

११ अज्ञान पृ० ३२०

१२. अज्ञानसास्त्र, पृ० ३०

१३. सामुद्रिक सास्त्रम्

१४. अज्ञानवादी अज्ञान अज्ञान

घोर पशु का बिनाशक किया गया है। इसलिये सभी दिव्य घोर नर पात्र पहली श्रेणी में घोर पशुपती आदि दूसरी श्रेणी में माने जाते हैं। प्राचीन नाट्यकारों ने, जैसे कामिदास ने अमिताभ पाकृतम में अमर मृग घोर सिंह-शाबक को नाटकीय पात्र बनाया है। श्री हर्ष ने रत्नाम्बी में सारिका को पात्र बनाया है। फ़ैस ने अपने प्रहसनों में चौपाये घोर मेड़कों को पात्र बनाया है। इन सब पात्रों में क्यावस्तु में बसा ही योग दिया है बस मानव पात्र देते हैं।^{६२} आशकल मनुष्य तथा पशु-पक्षी के घसाबा जड़ पदार्थों का भी पात्र के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। अमिताभ भरत रचित 'विज्ञान का दम' नामक नाटक में सौह निर्मित मानव आत्मानुसार कार्य करता गीत गाता घोर घसवार पशुता है हास्यार्थिक यह प्रयोग कोई नया नहीं है। वैज्ञानिक घोर रहस्यात्मक रचनाओं में जड़ पदार्थों द्वारा मनुष्य का-सा आचरण प्रदर्शित हो गया है।^{६३} राजेश्वर ने अपने बालरामायण नाटक में सीता घोर उमरी बहन के रूप में दो पुत्रनिर्मा पेश की हैं जिन्हें देखकर रावण को भी अम हो जाता है। नाटकों में भूत प्रेत दायन का भी सजीव रूप में प्रयोग हुआ है जैसे शेक्सपीयर के मित्र समर नाइट्स ड्रीम घोर हेमसेट में। अमिताभ पाकृतम में बर-ज्योत्सना सता का भी पात्र के रूप में प्रयोग हुआ है जो सकुंतला घोर दुष्यन्त के मित्र में सहायक होती है।^{६४}

मृष्टि मर के सब मनुष्य सिय भेद के अनुसार पुस्किग स्त्रीसिग घोर नपुंसक सिय में बाँटे गये हैं। उसी तरह मानव-जाति को चार रंग के मोर्षों—गोरे, काले पीले घोर सल में विभक्त किया गया है। किन्तु, यह भेद अधिक साबक नहीं होते।^{६५} घोर भेद से भी मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—पतले मोटे न बहुत पतले ठ बहुत मोटे। इनमें भी कई भेद किये जा सकते हैं। आकृति भेद से मनुष्य कुस्य सुस्य एव किस्य माने गये हैं। आचार्यों ने घोर के विभिन्न वर्गों के अनुसार इनकी विस्तृत व्याख्या की है। सब प्रकार के मनुष्यों की जो अवस्थाएं होती हैं—सुरोगिता घोर निरोधिता।^{६६} मृष्टि में उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों में सब एक घोर ठम—तीन प्रकार के रूप माने गये हैं। इन तीनों तरह की प्रकृति बालों की पहचान आसानी से की जा सकती है। उत्तम मध्यम घोर प्रथम—तीन प्रकार की जो प्रकृति बतायी गई है, उनका आचार भी यही है।

विशिष्ट प्रकृति के लोग

मानव समाज में कुछ विशिष्ट प्रकृति के लोग भी होते हैं। अपने विशिष्ट स्वभाव विशेष परिस्थिति या व्यवसाय के कारण वे यह विशिष्ट आचरण कर पाते

६२ समीला घासत्र पृ० ३३१

६३ अमिताभ नाट्यशास्त्र पृ० १४१

६४ अमिताभ नाट्यशास्त्र, पृ० १४१

६५ वही

६६ वही

है। इनमें पहली श्रेणी है चिन्तानुकूल मस्त जीवों की जो अपने परिवार के लिए निकम्मे तथा समय के लिए उत्साहबर्धक होते हैं। ऐसे छोटे लोकप्रिय और स्वाभिमानी भी होते हैं। स्वाभिमान पर प्रांच पहुंचे तो वे अपने बड़े-से-बड़े सहायकों और शिर्षियों की भी प्रबलता कर जाते हैं। इनका रोप और छोप कमी जाना नहीं जा सकता। वे सम्भवस्थित बिल के होते हैं।^{१७}

दूसरे प्रकार के लोग अपने व्यवसाय की विशिष्टता के कारण विशिष्ट या चरम करते हैं। कवि कसाकार, वैज्ञानिक और दार्शनिक—इसी श्रेणी में आते हैं। खाना पीना मुत्तकर वे निरन्तर अपने कार्य में बलवित्त रहते हैं।^{१८} इनकी मानसिक क्रियायां वास्तविक जगत् से ऊपर उठकर कास्मिक लोक में लीन हो जाती हैं। इस लिए इनका स्वभाव कष्ट व्यवहार घटपटा और उबासीग हो जाता है। इनसे समाज को सिर्फ वैचारिक लाभ के भनावा और कुछ प्राप्त नहीं होता। कदम रस की रचना के लिए वे पात्र अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। इनमें भी कुछ बड़े व्यवहार-मूढ़ होते हैं। किन्तु वे सब अनुपलभ सोभी, ईर्ष्या, अभिमानी महत्वाकांक्षी या मुढ़ चरित्रों के अन्तर्गत आते हैं।

एक और भी विशिष्ट प्रकार के लोग होते हैं जो मानसिक पारिवारिक, सामाजिक या राजनीतिक परिस्थितियों के कारण विशिष्ट प्रकार का स्वभाव बनाने के लिए विवश हो जाते हैं।^{१९} अपनी परिस्थितियों के कारण इनके मन में तीव्र प्रारोध बिलोह तथा विकार की भावना बल पकड़ती है। ऐसे व्यक्तियों के कार्य का कोई विषय नहीं रहता। वे किसी भी समय कुछ भी कर सकते हैं। प्रारोध की अवस्था में वे प्रारम बिनाश से लेकर सर्वनाश तक कोई भी कार्य कर सकते हैं। हत्याकारी प्रायदण्ड पाये हुए अपराधी तथा उच्च वर्ग के बन्ध पाये अपराधी भी प्रायः इसी स्वभाव के होते हैं। इनकी सब विचार्य सदा अस्पृश्य और अस्मिर होती है। किन्तु, सहानुभूति मिलने पर वे अपने मनोभावों की भी प्रकट करने में नहीं हिचकते। ऐसे व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा चिकित्सा का भी प्रायःकत प्रयोग किया जा रहा है।^{२०} कसाकार के लिए ऐसे चरित्र बड़े मनोरञ्जक होते हैं और अद्भुत रस की रचनाओं में बड़े सहायक होते हैं।

ऊपर बिलने प्रकार की प्रकृतियों का वर्णन किया गया है, उनके धनावा भी विविध चरित्र मानव-समाज में प्राप्त होते हैं। वास्तव में मनुष्य ऐसा विचित्र प्राणी है कि उसकी कवि और प्रकृति का ठीक-ठीक घेद बताया असम्भव है। एक कसाकार ने अपने उपन्यास में एक अति बुद्धिचरित्र और बुद्ध व्यक्ति को अपनी कथा का पात्र बनाकर इस प्रकार घटनाओं का समन्वय किया है कि वह पात्र सभी कार्य उत्कल

१७ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २८७

१८. वही

१९. हीनभाव पृ० ४१

२०. मनोचिकित्सा और मानसिक क्रियायें पृ० २१९

व्यक्ति जैसा करता है। वह पात्र स्वयं अपने अपने कार्यों पर आश्चर्य प्रकट करता है और दूसरों को भी आश्चर्य होता है कि वह कुछ व्यक्ति समस्याओं की ओर कैसे प्रवृत्त हुआ। इसीलिए कथाकार को चरित्रों के चुनाव में धारणा सावधानी से सूक्ष्म दृष्टि से अपने पूर्व-निर्दिष्ट नजर बाने वाले व्यक्तियों के आचरणों और बचनों का निरीक्षण कर देना-काल और स्थान के अनुसार उनकी प्रवृत्ति निर्धारित करनी चाहिए ताकि उन चरित्रों में स्वाभाविकता पा सके।^{७१}

युवावस्था^{७२} के बाद जो प्रति तरुणावस्था आती है, उसमें जो प्रविष्ट होते हैं, वे तो तबनों जैसा ही आचरण करते हैं पर जो गृहस्थ होते हैं वे अपने जीवन वापन की समस्याओं और पारिवारिक समस्याओं में ही मीन हो जाते हैं। इस अवस्था में मनोपार्जन यथोपार्जन की प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के जीवन का मुख्य कार्य बन जाती हैं। इसी के लिए वह अनेक अर्थ-आट्टकारिता या अर्थ-ठगीको का सहारा लेता है। यथोपार्जन के प्राकृतिक इस अवस्था में समा-समितियों के द्वारा लोक-सेवा का स्वांग रखते हैं, धर्मशाळा स्कूल अस्पताल आदि खोलते-बुलवाते हैं। इन्हीं में ऐसे भी होते हैं जो बगैर किसी छल-कपट के मनोपार्जन करने में लगे रहते हैं किसीकी आट्टकारिता नहीं करते और स्वाभाविक रूप से यथोपार्जन के भागी बनते हैं। जो युवावस्था में उद्विग्न होते हैं उनकी उद्विग्नता इस उम्र में कम हो जाती है। कुछ दिन ईर्ष्या, अहंकार, अविमानता और विषयी सोचों में भी सुधार हो जाती है और वे अधिक समन्वयकारी हो जाते हैं। जो अस्त-होयी विरक्त बुद्धिवादी होते हैं उनकी ये प्रवृत्तियाँ और भी बढ़ जाती हैं। प्रायश्चित्त परब्रह्मण्य और अन्तर्ब्रह्मण्य द्वारा जितने बाने पात्रों के रूप में एवं अर्थ-भयानक रोग और और अस्वस्थताओं के निर्वाह में ये पात्र अपनी परिपक्वता के कारण अधिक उपयुक्त होते हैं।^{७३}

प्रीतिवस्था में मनुष्य की इन्द्रियाँ विदित हो जाती हैं। उसमें नुरे कामों के लिए परब्रह्मण्य अर्थ तथा अन्त-समागम में अज्ञान नवीन समाज से चिड़ उपदेशवृत्ति चिड़चिड़ापन और अहं बढ़ जाती है। अपनी ही बनाई दृष्टि में वह अपने को अनावश्यक और अनुपयुक्त समझने लगता है।^{७४} ऐसे पात्रों का प्रयोग नवीन और प्राचीन का वैयर्थ्य विज्ञाने अर्थ और सुधार का संघर्ष चिहित करने तथा ह्यस्य एवं अर्थ-रस के चित्रण के लिए अर्थ में किया जा सकता है। कभी-कभी इन प्रति प्रीति पात्रों में भी बीरता की भावना भरी हुई दिखाई पड़ती है। पर बातों तक ही सीमित रहने के कारण वह भाव रस तक नहीं पहुँच पाता।^{७५} उद्विग्न इतिहास पर कथा लिखने बाने कथाकारों ने उदाहरणपूर्व प्रेरणा के लिए ऐसे पात्रों की रचना की है।^{७६}

७१ आधुनिक मनोविज्ञान पृ० १७९

७२ अर्थ

७३ अर्थ-विज्ञान, पृ० ११

७४ आधुनिक मनोविज्ञान पृ० १७०

७५ अर्थ-विज्ञान पृ० १०४

७६ युवावस्था अर्थ

बृहदावस्था के किसी राजा महाराजा महापुरुष या सुधीस व्यक्ति को किसी संकट में डालकर कथन रस के परिपाक में उसका सुन्दर प्रयोग किया गया है। पर प्रतिबृहदावस्था के पात्र बिनकी एकमात्र यही अभिसाया रहती है कि कब भगवान उठ लें तब रस के प्रबलम्बन के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।”

चरित्रों का विभाजन

भारतीय नाटक परम्परा में पात्रों की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—ईमी, राजनी, मानवी। प्रथम दोनों कोटियाँ तो हमारी दुनिया से परे की थीं—एक आकाश-कुसुम है तो दूसरा प्रेमरस का फूल। दोनों महास्तविक अविश्वसनीय और अप्राप्य। कुछ नाटककार के चित्रण की कसौटी मनुष्य ही है जो हमारी सहानुभूति हास्य और धम्पू का अधिकारी है।

धाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चरित्रों का विभाजन चार श्रेणियों में किया है— (क) धाचार्य स्वभाव के रूप में (ख) जाति स्वभाव के रूप में (ग) व्यक्ति स्वभाव के रूप में (घ) सामान्य स्वभाव के रूप में। मनुष्य के चरित्र-संगठन पर रचित शोक पुष्पशा आदि प्रत्येक भाषों का प्रभाव पड़ता है। इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मनुष्य के चरित्र में कुछ नीचे सद्गुण और कुछ दुर्गुण कहे जाते हैं जो लोकनीति के अनुसार उस भाव की लक्ष्यपूर्ति के लिए धावश्यक होते हैं।” इस धाचार पर चरित्र-निर्माण का अध्ययन किया जा सकता है जिसका मनोवैज्ञानिक धेँड ने भी समर्थन किया है।

उपन्यास में किसी विशिष्ट श्रेणी या वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा स्वयं धपने-धापका प्रतिनिधित्व करने वाले—प्रायः दो तरह के चरित्र उपस्थित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए गोदान का होरी धपने-धापका प्रतिनिधि है। ऐसे पात्र व्यक्तिगत-प्रधान होते हैं। इनमें जन-साधारण से बिलकुल विशिष्ट चरित्रिक विशेषताएँ होती हैं। सरल का भीकाण्ट मज्जेय का धेसर भी ऐसे ही पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के कारण सामान्य पात्रों से धर्षणा पृथक हैं।”

इसी तरह जातीय धपका जातिवाचक या धपनी धर्षी वर्ग और समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों में सामान्यतः धपने समाज धपका वर्ग का प्रतिनिधि गुण धर्षिक मात्रा में होता है मधयि वैयक्तिकता एक ऐसा गुण है जो श्रुताधिक मात्रा में हर पात्र में पायी जाती है।” ‘निरती दीवारों’ का नेतन और ‘गोदान’ की धालपा जाति-धाव है।

‘ध्यसीत’ का धयन्त और ‘मनुष्य के रूप’ की शोभा ध्यक्तिवाचक पात्रों के उदाहरण हैं।

७७. धपक रहस्य पृ० १००

७८. धापती धर्षावली पृ० १४६

७९. साहित्य विश्लेषण, पृ० १६१

८०. सामीक्षा धास्त्र पृ० १४६

(१) जातीय या वैयक्तिक पात्रों के असावा दूसरी तरह के पात्र हैं जिन्हें
(२) स्थिर या गतिशील कह सकते हैं। स्थिर या अपरिवर्तनशील पात्रों की समान
परिस्थितियों में समान प्रतिक्रियाएं होती हैं। गतिशील पात्रों की आर्थिक विशेषताएं
परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होती हैं अथवा यू कहिये कि इन पात्रों का क्रमिक विकास
होता रहता है।^१

विलक्षण चरित्र

भारत स्वयं अपनी संवेदनाओं के सहारे नहीं चलते। वे कृपाकार की संवेद
नाओं के बाह्य बनकर सामान्य चरित्रों से भिन्न प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते रहते हैं।^२
ऐसे भारत आदर्श धर्म यथार्थ दोनों के आधार पर मड़े का सकते हैं। जैनेन्द्र के हरि
प्रसन्न, सुनीता एवं श्रीकान्त विलक्षण पात्र हैं। अश्वेय का रोडर घोर इंडियोसिनक्रैटिक
है। श्रीकान्त का आदर्शवाद अतिरिक्त-सा है। ऐसे भारत अधिकांश राजनीतिक
घोर मनोबैज्ञानिक चरित्र होते हैं। रोडरपियर की सैडी मैकबेन भी वैसी ही है।^३
जैनेन्द्र का मत है कि महान पात्र प्रायः ऐसे ही हुआ करते हैं।^४ प्रत्येक कृपाकार अपनी
रचनाओं में संसार के सम्बन्ध में अपनी विलक्षण धारणाएं व्यक्त करता है— 'एसी
नावेसिस्ट गिबस अस हिच धोन पर्सनल एंडियोसिनक्रैटिक विषम प्राप्त बी बर्ड'।^५

विकृत चरित्र

यद्यपि का 'भूटा सच' रमानन्द सागर के 'धीर इंजान मर क्या' मंटो की
कहानी 'टाबाटेकसिह' अक्षय की कहानियां 'अरणाधी' इशमचंदर की कहानियां
पेद्यावर एक्सप्रेस' आदि रचनाओं में बहुत से विकृत चरित्र पाये हैं। ये चरित्र बदलती
हुई परिस्थिति के अनुसार बनते बिगड़ते रहते हैं—मिट्टी के बरौंवा की तरह।
पेस्टरनक का डा० बिजायो भी वैसा ही एक व्यक्ति है जो जीवन के अर्थो-उत्सर्गों
के साथ मिट जाता है। इस परिवर्तन की परम्परा टाल्स्टाय, दास्तावस्की, मोर्की
इतिहा एड्रेनबर्ग से लेकर पेस्टरनक तक चलती रही है। जीवन के अर्थो-उत्सर्गों के
वैविध्यपूर्ण परिवर्तन का बिना किसी साहित्य को असर बना देता है; इसीलिए किसी
कृपा-चरित्र असर है।^६

फोरेस्टर आदि आलोचकों ने पात्रों के बिना बर्णनकों को औपन्यासिक
चरित्र के निरूपण का आधार बनाया है, उसके अतिरिक्त भी हर पात्र की

११ समीक्षा साप्ताहिक पृ० १४३

१२ बी इपसिड नावेस पृ० १४

१३ मनोबिज्ञानेय घोर मानसिक क्रियाएं, पृ० ७०

१४ साहित्य का अर्थ और अर्थ पृ० १८१

१५ बी इंसिड नावेस पृ० १४

१६ बी राइटर एंड हिज कास्ट

चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर यह बर्गीकरण सम्भव है। बोरिस पैस्टरनक का डा० बिनामो इसका एक उदाहरण है। इसी प्राग्भूत और विभिन्न चरित्रप्रधान कृति के कारण उन्हें नाबेस पुरस्कार प्राप्त हुआ था।^{१७} इसी अप्रतिम चरित्र के कारण कुछ प्रामोक्षक इस उपन्यास को 'हिरोइक नाबेस'^{१८} मानते हैं।

कृष्ट चरित्र समवेतचरित्र (कोरस कॅरेक्टर) होते हैं। बहुधा इनके मर्तों में समानता एवं लक्ष्यना मनोभाव वैद्यभूया प्रादि में समवेत समानता होती है।^{१९} टाइप और स्टीरियोटाइप के पार्श्वों में भेद यह है कि टाइप में जाति का सामान्यस्वरूप और स्टीरियोटाइप की इतनी प्राग्भूति हुई रहती है कि भावों दम हो जाता है।^{२०} सेक्टर इसका उदाहरण है। परतन्त्र चीन का उदाहरण सुनीता का हरिप्रसन्न है।

महापुरुष

महापुरुष वे कहलाते हैं जो अपने से पूर्व के महापुरुषों द्वारा स्थापित नीतिकता के धारकों पर चलते हुए बीरतापूर्वक सन्न सामन्तवादी या स्वेच्छावादी संस्कृति की स्थापना करते हैं। राम कृष्ण भीम धर्मेन्द्र प्रादि सभी इनके पूर्वजों में आते हैं। इनमें महर्षुति संकल्पविक्रम और जीवन की समस्याओं से संघर्ष करने की अदम्य शक्ति होती है। १२वीं और २०वीं सदी के साहित्य में यह भावना अनेक रूपों में मिलती है। पर जब तो उनके द्वारा स्थापित उच्च धारकों से हटकर प्रजातामक चरित्रिक उपन्यास और आराधाहिक चरित्रिकों के लोकप्रिय नायकों के लिए भी इसका प्रयोग होने लगा है।^{२१}

टाइप एवं व्यक्ति चरित्र

टाइप चरित्र में पूरे वर्ग के गुण-प्रवृत्तियों की विशेषताएं रहती हैं। जैसे गोबिन्द का होरी सम्पूर्ण किसानों का प्रतिनिधित्व करता-सा दिखाई पड़ता है। ऐसे चरित्र अपनी जाति धर्म और समाज का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते हैं। जैसे प्रसादजी के पात्र। चन्द्रगुप्त नाटक का जालनम बार-बार अपने को बाह्यन बटाठा हुआ, बाह्यगत की सत्ता का बखान करता है। गुप्तजी की मधोबरा भी भयवान बुद्ध के महाभित्तिक्रमन का तरह-तरह से परचात्ताप करती हुई इसी वर्ग भावना को व्यक्त करती है। इतिविजयन कॅरेक्टर अपनी वैयक्तिक विशेषताओं द्वारा मन पर स्वाधी प्रभाव डाल जाता है। ऐसे चरित्र अपने क्रिया-कलापों द्वारा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने मानसिक गठन और चिन्तन में धर्म लोगों से विचित्र होते हैं।

१७ १९२५ ई०

१८ इतराडु टैड विकसी नवम्बर १६ १९२५, पृ० ४७

१९, चीन विक्रम पृ० ४०

२० वही पृ० ११

२१ सुनीता नाटक पृ० ७१

शेक्सपीयर के मरचेंट प्राफ वेनिस का पाहलाक टाइप धीर इंडिविजुअल दोनों है। उसी तरह होरी भी टाइप धीर इंडिविजुअल दोनों है।

टाइप धीर व्यक्ति की चर्चा करते हुए उपन्यासकार जेम्स का कहना है कि टाइप धीर व्यक्ति चरित्रों का बटवारा मिश्रित स्पूस वर्गीकरण है।^{१२} उपन्यास के पात्रों को इस तराजू पर तौलना प्राबन्धनिक है। हर व्यक्ति के चरित्र को पाइए वह किसी भी समूह का क्यों न हो टाइप बनाया जा सकता है मनुष्य जाति का एक ही समूह है और उसमें विविधता की गुंजाइश नहीं है। कोई भी व्यक्ति सिर्फ बाहरी बातों से ही इंडिविजुअल नहीं बनता और न टाइप।^{१३} चरित्र की महारत मिले हुए ही इंडिविजुअल पात्र विद्युत् होवे धगर किसी चरित्र में ऐसी कोई बात है जो समूह में होयी ही नहीं तो वह हमें अमूर्त भसे ही कर वे पर हृदय में स्पन्द नहीं कर सकता।^{१४}

गौण एवं मुख्य चरित्र

गौण एवं मुख्य चरित्रों में फर्क यह रहता है कि गौण पात्र कहानी के बिकरे तंतुओं को जोड़ते हैं, वे मुख्य पात्र की ओष्ठता को दिखाने में सहायक होते हैं और कथा की स्वाभाविकता की रक्षा करते हैं। मनु उपन्यासों और छोटी कहानियों में गौण पात्रों को प्राबन्धन कम महत्व है, किन्तु बृहत् उपन्यासों में चरित्र के व्यापक प्रम व को उभारने के लिए उचित रूप में उनका समावेश प्राबन्धनिक है। प्राबन्धनिक उपन्यासों में गौण पात्रों के समावेश तथा मुख्य और गौण पात्रों में अंतर की प्रकृति घटती जा रही है। उदाहरण के लिए 'नदी के द्वीप' में मुबल अन्धमाधव, रेखा, पोर—सभी मुख्य और गौण पात्रों की सृष्टि अन्ध-अन्ध हो सकती है। यह भी प्राबन्धनिक नहीं कि गौण पात्रों का पूरी तरह इतिवृत्त बताया ही जाय। किन्तु मुख्य पात्रों के लिए यह जरूरी है। उन पर सारी कथा का आरोधार निर्भर रहता है उनसे कथा का विद्युत् संबंध रहता है।^{१५} इसलिये उसकी सृष्टि में सेवक को धरमन्त उत्कर्ष रहना पड़ता है।

यह भी प्राबन्धनिक नहीं कि कथा की प्रायेक घटना के साथ वह उपस्थित ही रहे। शेक्सपीयर का 'जुलियस सीजर' इसका एक उदाहरण है। सीजर की हत्या तो नाटक के प्रारंभ में ही हो जाती है किन्तु उसकी अनुपस्थिति में भी उसके विचारों और कार्यों का प्रसर बना रहता है। वह नाटक पर अन्त तक छाया रहता है। इसीलिए ब्रूस क्लियस एंटी के साथ ही वह भी नाटक का मुख्य पात्र बना रहता है।

१२. साहित्य का ध्येय और प्रेय, पृ० १८८

१३. लिटरेचर एंड आर्ट, पृ० १६

१४. साहित्य का ध्येय और प्रेय, पृ० १७४

१५. उपन्यास के मूल तत्व, पृ० ३३

सुसंस्कृत व्यक्ति कौन होता है ?

बेखन ने अपने धरावी भाई को पत्र लिखा था—“तुम योग्य व्यक्ति हो किन्तु तुम में एक चीज का अभाव है—संस्कृति। सुसंस्कृत व्यक्ति के क्या गुण होते हैं ? वह सहिष्णु, समझदार और विमल होता है। यदि भोजन परुषिकर बना हो तो वह बाली पटक कर मूँह नहीं फुसाता मा यदि कोई अजनबी उसके घर या बाग तो उसे देख धाँवें नहीं तरेरता। वह दूसरों के सामने बनता नहीं। सस्ती और छिछरी बातों के आचार पर दूसरों की एहानुसृति हासिल करने की कोसिस नहीं करता, बीमें नहीं मारता। सही माने में जो व्यक्ति मुक्त-सम्पन्न होते हैं, वे भीड़ में अपने को छिपाये रखते हैं और अपनी योग्यता के प्रदर्शन से कतराते हैं। सुसंस्कृत व्यक्ति बनने के लिए पिकनिक पेपर या फास्ट के मोनोनाम कंठस्थ कर लेना ही काफी नहीं है।”

पानों के आचार-व्यवहार रहन-सहन कनोपकथन भावि संबंधी कोई प्रयुक्तिकर या भेदिकाने की बात न कही जाय इसी दृष्टि से पानों का वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण को नायक ब्रजभा नायिका भेद कहा गया है। पुरुष की अवेदा मारी का स्वभाव कुछ अधिक दुर्बल और दुर्गम्य होने के कारण आचार्यों ने नायिका भेद का अधिक सांगोपांग वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में शृंगार रस के एक उपांग के रूप में इसकी संक्षिप्त विवेचना की गयी है, किन्तु ब्रजभाषा के कवियों ने इसे एक स्वतंत्र विषय मानकर इतना अधिक विस्तार किया है कि ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद स्वयं एक शास्त्र बन गया है। काव्यशास्त्र के साथ ही नायिका भेद की परंपरा भी प्रारंभ हुई। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र (प्रथम पाठ्याब्दी) में जो संस्कृत में रीतिशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है इसका सांगोपांग वर्णन है। इसी से इसका महत्त्व रक्तसिद्ध है। हिन्दी के आचार्यों ने नाट्यशास्त्र और अक्षरपत्र से सामान्य रूप में तथा साहित्यदर्पण और ‘रसमंजरी’ से विशेष रूप में इसे ग्रहण किया है। परन्तु भरत मुनि ने नायिका भेद का उक्त रूप से वर्णन नहीं किया है जैसे कि ब्रजभाषा के आचार्यों ने। भरत मुनि से ब्रजभाषा के आचार्यों के वर्णन में भेद होना भी स्वाभाविक ही है क्योंकि वे इस विषय के प्रवर्तक थे और नायिकाओं का उनका वर्णन अतिमय से ही संबंधित था। फिर भी उनकी नायिका भेद की विवेचना के अन्तर्गत वर्तमान नायिका भेद की सभी नायिकाएँ किसी-न-किसी रूप में आ ही जाती हैं। अतः भरत मुनि इस विषय के प्रवर्तक तथा उनका नाट्यशास्त्र इसका सर्वप्रथम उद्भव-स्थल है। नायिका भेद तो काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है जिसका उद्देश्य मारो-मन के विकारों के अध्ययन के लिए आवश्यक था जिससे दुर्य और अन्य काव्यों में पानों के चरित्र चित्रण में

१९ इति मई १९६६, पृ० ४२

२० श्री साहज्य शास्त्र इतिमा विनांक रविवार सुन १९६९ अक्षरपत्र शास्त्र प्रो० सुंय

२१ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ३

२२. रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६४

कोई पश्चामिक बात न था सके। किन्तु नायिक भेद की उत्पत्ति के इस मूल तत्त्व को मुसाकर ब्रजभाषा के प्रमेक कवि नायिकाओं की संख्यावृद्धि क पक्के में हो पड़े रहे। रसलीन ने इस संख्या को बढ़ाकर १३५२ तक कर दिया।^{१००} वास्तव में देखा जाय तो नायिका भेद के ये नवविद्य संख्यावृद्धि के प्रपंच में पढ़कर अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक पड़े थे।^{१०१} प्राधुनिक कथा-साहित्य इस परंपरागत बर्गीकरण को स्वीकार नहीं करता क्योंकि इस मार्ग से जीवन की समस्याओं की तरह तक नहीं पहुँचा जा सकता। नायिका भेद में हमें विभिन्न आचारों की संसृष्टि मिलती है जो धनिकाय में जीवन के बाह्य रूपों पर घावित है।^{१०२} किन्तु कथा-साहित्य पुरुष और प्रकृति की नित्य और तूतन बीजा से संबंधित है। इस बीजा के रहस्य को समझ देने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्याओं का हल निकल सकता है। अत उपन्यासों एवं कहानियों में उसके उपार्थ को समझने का प्रयास होता है।

नायिका के ये भेद और प्रमेद मनोविज्ञान की दृष्टि से भी मुक्तिसपत्त या पुष्ट नहीं कहे जा सकते हालाँकि ये सर्वथा धर्मवत् छिद्र भी नहीं कहे जा सकते। इस वर्गीकरण में चरित्र-विशेष एवं धीम निस्करण का अत्यन्त स्पुप्त प्रयत्न मिलता है। स्पुप्त इसलिए कि यह सर्वथा बर्णयत ही है, व्यक्तिगत नहीं। किन्तु मानव प्रकृति की एकता प्रायः बर्णयत है। ऊपर से एक बिन्दुने वाली परिस्थिति में भी किठभी ही प्रावृत्तिक मुस्थियाँ हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते। इसीलिए मानव-मन का बर्णयत बिस्लेषण वैज्ञानिक और व्यावहारिक नहीं है धरिन्तु व्यक्तिगत बिस्लेषण ही व्यावहारिक है। इसके प्रतिरुद्ध इस विभाजन में एक और स्पष्ट दोष यह भी है कि यह प्रेम धपका कामवृत्ति के बाह्यरूपों पर आधारित है। चाप ही उसे स्वतः परिमित भी मानकर जता है।^{१०३}

नायिका की परिभाषा

जिस ग्यणी को देखते ही जित्त में शृंगार-रस का संचार हो उसे नायिका कहते हैं।^{१०४} बीसवीं सदी के महान मनोवैज्ञानिक डा० युंग ने लिखा है—“टू मी एक्ट पटिक्लरमी म्यूटीफुल बीमेन हव ए सोर्ष भाफ डेरर। ए म्यूटीफुल गुमन हव एव ए क्ल। ए डेरिहुव डिसेण्वाइंटमेंट।”^{१०५}

नायक की ही भाँति त्याग, कृतित्व कुमीनता सबही रूप-वीचन चातुर्ष, विरागता तब और धीम धारि युगों से युक्त स्त्री काव्य की नायिका होती है। शृंगार की धामम्बन नायिका होती है। शृंगार की धामम्बन नायिका का स्वरूप ऐसा ही

१०० वही पृ० २६६

११ धनिका (काम्यामोचनिक), पृ० १५२ तन् १८३५ जनवरी

१०२ रीतिकाम्य की भूमिका पृ० १३७

१०३ रीति काव्य की भूमिका, पृ० १४०

१४ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० १३६

१०५ दो टाइम्स आफ इंडिया जून २३, १९६१, पृ० १०

होना चाहिए कि वह सबके रतिमात्र की प्राप्तिकर हो सके। इसीलिए जसमें उपर्युक्त मुक्त भावस्यक हैं जो उसके अन्तर्बाह्य को प्राकृतिक रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य में स्तुतकाली प्रथमा कर्म द्वारा मर्यादा-उत्सर्जन की प्राप्ति नहीं रहती।^{१०६}

कविद्वय हरिदोष तक आते-आते नायिका भेद की यह परंपरा सुष्ठ-सी हो गयी। हरिदोष^{१०७} ने अपने रसकलस में नायिकाओं के चार भेद किये हैं—पद्मिनी, चित्रिणी चंचिनी और हस्तिनी। प्रकृति संबंधी भेद बताते हुए उद्यमा के उन्हीं आठ भेद किये हैं—पति प्रेमिका परिवार प्रेमिका चाति-प्रेमिका वैश प्रेमिका अगमसुमि प्रेमिका निजतामुरामिनी, लोक-सेविका और धर्म-प्रेमिका। मध्यमा के भी दो भेद बताये हैं—व्यथ-विह्वला और धर्म-पीडिता। श्रेय धर्म-संबंधी और स्वभाव-संबंधी भेद भी हैं जो प्रायः प्राचार्यों ने किये हैं। उद्यमा के भेदों में भी उन्हीं पीठमत्र चित और भेट की कल्पना की है। इस प्रकार कल्पनाशील प्राचार्यों ने अपनी स्वतंत्र विवेचना के अनुसार विभिन्न प्रकार पुरुषों का श्रेणी-विभाजन किया है, जहाँ प्रकार स्त्रियों का भी किया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण^{१०८} में उद्यमा मध्यमा और प्रथमा—तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतायी गयी हैं जिन्हें क्रमशः साध्वी भोग्या और कुलटा भी कहा जाता है।

उद्यमा वह है जो किसी भी हालत में परपुरुष का संसर्ग न करे पति के साथ ही वैधता द्विव और प्रतिस्त्रियों की सेवा करे और उद्यम प्रवास प्रादि नियमों का पालन करे। बड़ों के दर से परपुरुष संसर्ग न करने वाली पति की कम सेवा करते वाली नायिका मध्यमा विद्वष्ट नीच कुलोत्पन्न धमकासु, कर्कशा कलहमिय और परपुरुष के साथ रहने वाली स्त्री प्रथमा नायिका मानी जाती है।

कोकशास्त्र^{१०९} में रतिशीला की दृष्टि से स्त्रियों के पद्मिनी चित्रिणी चंचिनी और हस्तिनी चार भेद किये गये हैं और प्रथमा के अनुसार भी इन्हें बामा उरुवी, मीठा और बूढ़ा में बाँटा गया है। सामुनिक शास्त्र में भी विभिन्न धर्मों के अनुसार उनका भाग्य-निर्णय किया गया है। यस्कपुराण में भी स्त्रियों के कुमासुम लक्षण बताये गये हैं। बहुश-से प्राचार्यों ने पुरुष-स्त्री की प्रकृति में विशेष भेद बताये हैं।^{११०} किन्तु ये भेद विभिन्न देशों के सामाजिक प्राचार-व्यवहार के प्राचार पर अलग अलग हैं। हमारे यहाँ उनके लिए यही नियम था कि—'पिता रक्षति श्रीमारे अर्त्ता रक्षति श्रीवने सुतः रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

[यानी श्रीमार्गवस्था में पिता युवावस्था में पति बुढावस्था में बेटे द्वारा रक्षित स्त्री कभी अपने घर नहीं छोड़ी जा सकती।]^{१११}

१०६ रीतिकोष्य की भूमिका, पृ० १३७

१०७ रस कलस

१०८. पृ० १४३

१०९. पृ० १९

११०. समाज की भूमिका, पृ० २७

१११. अनु और स्त्रियाँ, पृ० १७१

स्त्रियाँ प्रायः चार प्रकार की होती हैं—सुधीला, कर्कशा प्रमत्ता और दुहरे स्वभाववासी। ये भेद भी सिद्ध युक्तियों और प्रौढ़ाओं के स्वभाव कही हैं। प्रथम अवस्थाओं में उनकी वृत्ति असंग-असय होती है और वे प्रायः पुरुषों के समान ही व्यवहार करती हैं। रसमंजरी के संक्षेप में सोलह बय तक की स्त्रियों को बाला तीस तक तकनी पचास तक प्रौढ़ा और उसके बाद की अवस्था वासी को बूढ़ा बताया है।^{११२} किन्तु बय के अनुसार स्त्रियों के विभाजन, सिन्धु, बाला कुमारी द्विपोरी युवती, प्रौढ़ा और बूढ़ा में भी क्रिया बा सकता है।^{११३} सिन्धु अवस्था में बालिका को पुरप-बच्चे की तरह ही अपनी कुछ भी प्रेरणा नहीं होती। उसमें रमीन पदार्थ और बाह्य के लिए उत्सुकता अपरिचित से संकोच—बस इतने ही मात्र विस्तार पड़ते हैं।^{११४}

सिन्धु-अवस्था के पश्चात् दूसरी अवस्था है बालिका की^{११५} जिसमें वह पुष्टिया बेसबे लगती है। उसमें स्फूर्ति, चंचलता घाटी है और वह शृंगार के सामनों जैसे फूल बदन धामूपक धारि से स्नेह करने लगती है। ये उसके खेलने-खाने के दिन होते हैं। 'मेरा-मेरा' की भावना भी प्रबल होने लगती है। वह अपने को माता समझकर पुष्टियों से प्यार करती है उसे साड़ी पहनाकर दुमहिन बनाती है और उसका कल्पनाशील मस्तिष्क उन कर्तव्यों को ग्रहण करने का स्वप्न देखा करता है।^{११६} घाठ से दस बरस तक की अवस्था की कथा कुमारी कहलाती है। उसमें शृंगारप्रियता समान बय के सुन्दर या सुखी बालकों के प्रति वासनाहीन आकर्षण, अपने मन की बातें छिपाने की भावना दूसरों की बातें सुनने और कहने की उत्कण्ठ और छवियों से याज्ञा स्नेह धारि उत्पन्न होने लगता है। ठैरुवाँ बयं घाठे-घाठे वह किमोरी हो जाती है।^{११७} उसकी चंचलता में वृद्धि भेजे-समाधे में शक्ति एकाम्बप्रियता तथा मन की वृत्ति किसी एक की ओर आकर्षित होने लगती है। उसका स्वभाव हँसमुख प्रगल्भ और स्नेहपूर्ण हो जाता है। इसी लिए हमारे देश में इसी अवस्था में विवाह का भी विधान है ताकि उसकी वृत्ति एक ओर आकर्षित हो सके। पण्डित बयं से तीस तक वह युवती कहलाती है। इसमें स्त्रियाँ शृंगार-प्रिय बिलालिनी ईर्ष्यासु, मात्रिणी अपने सौभाग्य पर हस्तगतवासी साहसी और वाक्चतुरा हो जाती हैं। उनमें अपने रूप पर पर्वं अत्यन्त बोलन मन की बात छिपाने और धामूपक-प्रियता धारि की भावना बढ़ने लगती है। वे सुसंयत में पीहर और पीहर में सुसंयत का धयनान नहीं सहती अपने कर्म-धीवन की निदा नहीं सुनना चाहती और अपने प्रणहीन तथा असुन्दर बच्चों की निदा नहीं सुनना चाहती है धारि।

ऊपर कहा ही था चुका है कि स्त्रियाँ सुधीला कर्कशा प्रमत्ता और दुहरे

११२ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, पृ० ३२८

११३ रीतिकामीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६३

११४ समाज की भूमिका पृ० २६

११५ रीतिकामीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६३

११६ समाज की भूमिका, पृ० ३०

११७ रीतिकामीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन पृ० २६३

चरित्र बानी¹⁴—बार प्रकार की होती है।

सुधीला स्त्री सभी तरह से सुधीला ही होती है। ऐसे ही स्त्रियाँ यदि सौभाग्य बनी हों तो पूरे परिवार, कुटुंब समाज और पुत्र-पौत्रों से सम्मानित होती हैं। ऐसी स्त्रियों के जीवन में प्रायः संभय भावों का जगमग, धार्मिक धार्मिक प्रतीक्षा प्राधान्य-निराशा के भ्रंके उत्साह और विपार की बून-झाँह धारि नहीं होते। इसीलिए कथाकार के लिए वे बहुत प्राकर्य की चीज नहीं हैं। हाँ कभी-कभी उन्हें विषम परिस्थितियों में डालकर, सुपय से कुपय की धार बाने को बिचसकर सामाजिक निष्पूरता का धिंकार बनाकर कर्म रस का धारलन बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से भी सुधीला स्त्रियाँ दो प्रकार की हुई—एक वे जो हर हासत में अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं। दूसरी वे जो मान लीजिये कि अपने पति या पुत्र की रक्षा के निमित्त अपना सतीत्व भी उत्सर्ग कर सकती हैं। बौद्ध की सुधीला सुनीता यही दूसरे प्रकार की स्त्री है जो अपने पति श्रीकान्त के हथारे पर और हृत्प्रसन्न की तुष्टि के लिए अपने सतीत्व तक को उत्सर्ग करने को तैयार हो जाती है।

कर्मधारों को सड़ाई झमड़ा करने में आनन्द होता है। वे प्रसन्नगीत धर्मयमी, प्रत्यन्त ईर्ष्या, छिद्रान्धेपित्री दूसरों के सौभाग्य और उत्कर्ष से बुझी और अपरूप पर सुखी होने वाली होती हैं। किन्तु ये प्रायः प्राचरण की मन्दी होती हैं। इनमें जो कुलटा होती हैं वे प्रायः विस्कुम निर्लज्ज बन जाती हैं। इन्हीं कर्मधारों में जो धार्मिक ईर्ष्या या मङ्गलार्कांक्षिणी होती है वे अपने प्रतिपक्षी या विरोधी की हत्या करने या धातमहत्या तक करने से नहीं बुरकीं। इसीलिए सभी बातों में ऐसी ही स्त्रियों की योजना प्रायः की जाती है। केरलीयार की 'मिडी मकैब' भी ऐसी ही एक स्त्री है। क्योंकि ऐसी ही स्त्रियों में जब विरोध जागता जगती है तो वे स्वयं अपनी भयंकर हो उठती हैं कि अपने सपे संवदियों से भी बड़े-बड़े पाप करत जानती हैं।¹⁵

प्रमत्ता स्त्रियों को अपने पिता या पति के बग राजपद या अपने कम-मुच का बड़ा मङ्गलार होता है। ये दूसरी का अपमान करने नीचा दिखाने और अपने बग-भय का धातक जमाने में सुख पाने वाली विसाधिनी अपनी प्रसंसा सुनने को प्रत्यन्त उत्सुक धारमयोरध और धारमप्रबंधना में लीन रहनेवाली होती हैं। झूठे मङ्गलार के कारण या बयभ में कभी धाने पर कभी-कभी यह प्राय रपागने पर भी उठाह हो जाती हैं। इन तीनों के धार्मिक धार्मिक स्त्रियाँ दूसरे चरित्र की होती हैं। इसीलिए उन के बारे में कहा गया है— 'स्त्रियांचरित्र पुष्पस्य माय्यं वैभो न जानाति कुतो मनुष्य' यानी स्त्रियों के चरित्र और पुष्पों के भाग्य को विधाता भी नहीं जानता मनुष्य तो क्या पढ़वाने। और, नामक न भी कहा है— 'स्त्रियों तथा राजपुत्रों का कभी विधात नहीं करता चाहिए।' उपस्थाओं में ऐसे दूसरे चरित्रवासी स्त्रियाँ कुतूहल उत्पन्न करने

११८. धर्मिक धार्मिक टारत्र पृ० १६६

११९. राजेय्य पादक के 'कुलटा' उपस्थाओं की धार्मिक

में बड़ी सहायक होती है।^{१२०}

ठीस से चासीस की अवस्था की स्त्रियां प्रीड़ा कहलाती हैं। ये प्रति ईर्ष्यान्तु युवतियों का साथ शृंगार देखकर चिड़नेवासी छिद्रन्वेषिणी तथा अपने बच्चों के प्रति अधिक ममता तथा दूसरे बच्चों से बैर करनेवासी होती हैं।^{१२१} इस अवस्था को पार करने के बाद स्त्री सिंक बूढ़ा रह जाती है जो पूजा-भाठ करनेवासी, ईश्वर-भक्ति में लीन वर्तनीय चाबि बन जाती है। उसका स्नेह समूचे परिवार पर फैलने लगता है। वह समबयस्कों से मेल जोस बढ़ाती है, मये युग की धारोचला करती है। जीवन के प्रति निराशा भसंतोप या चिड़चिड़ापन व्यक्त करने लगती है। किन्तु कुछ राजनीतिक उपन्यासों जैसे मोर्की की 'मा' में बूढ़ा माता का गौरवपूर्ण स्थापन दिखाकर, अपने पुत्र को भी बसिरान करनेवासी दिखाकर मय्य चित्रण किया गया है और ऐसी मय्य माताओं का गौरवपूर्ण चित्रण होना उचित भी है।

वर्तमान युग में स्त्रियों में बिद्युष्ट जायुति हुई है। वे सब हर क्षेत्र में पुरुषों से होड़ करने लगी हैं। ऐसी मारियों को ठीक बैसा ही सममता चाहिए जैसे 'महत्वा काकी और साहसी पुरुष होते हैं। इनके घसाबा सीठ विधवा अपुषा पुंरबसी, अप मानिता ठाक़िता पीड़िता तथा कामार्ता स्त्रियों का स्वभाव कला व्यथतायुक्त और उवास होता है।^{१२२} ऐसी स्त्रियां किसी भी समय कुछ भी कर सकती हैं तथा ईर्ष्यावज नीच से नीच कर्म या हत्या घातमहत्या तक पर उतर जाती हैं। किन्तु, उच्च कुल और संस्कार में पसी हुई ऐसी स्त्रियां भी स्त्रिद होकर अपने को बच में रखती हैं और किसी का पीहित नहीं करती।^{१२३}

स्वामाधिक ठौर पर सभी प्रकार के धम्मे गुणों से युक्त स्त्री उत्तमा बहुत धम्मे गुण न हों पर धबयुग भी न हों तो बैठी स्त्रियां मय्यमा दुर्वुसों से युक्त स्त्रियां धममा कहलाती हैं।

राजा के घण्टपुर में कई प्रकार की स्त्रियां पायी जाती थीं—महादेवी देवी स्वामिनी धाषिता रसेमिन छिस्पकारिणी गर्तकी धंगरक्षिका सेविका राजा-रानी धममा प्रेमी-प्रेमसी के बीच सन्धि करनेवासी सहेसबाहिका प्रभामसेविका द्वाररक्षिका कुमारी बूढ़ा और मंत्रणा करनेवासी धायुक्तिका।

धम्मे गुणों से युक्त और सदा पति का कस्यापन चाहनेवासी उन्न में सबसे बड़ी पटयानी को महादेवी कहा जाता था। धम्य रानियां देवी कहलती थीं।^{१२४} उच्च राज ऐबकों की धण्ट-पुर में पासित कस्याएं जो अपने धील स्वभाव के कारण राजा की प्रिया होती थीं तथा इन्हीं सबगुणों के कारण जिन्हें ऊंचा पद प्राप्त होता था जे स्वा

१२० प्रो० पुंग के विचार; डाइम्स धाफ इडिया, जून २५, १९६१, पृ० १०

१२१ धमिनध मादय धासत्र पृ० १९९

१२२ वही

१२३ बजभाबा साहित्य का नायिका मेव पृ० १३५

१२४ वही, पृ० ४४

मिमी कहलाती थीं। इसी तरह रनिवास में रहनेवासी धर्म स्त्रियों के भी अलग-अलग काम निरिचत थे।^{११९}

रानियों की प्रकृति तीन तरह की बताई गई है।^{१२०} भाषायों ने रानियों तथा रनिवास में रहनेवासी धर्म स्त्रियों के भी विभिन्न स्वभाव, कार्य और प्रकृति का वर्णन किया है।^{१२१}

नायक की प्रिया प्रबवा पत्नी को नायिका कहा गया है। किन्तु प्राबुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्त्रियों में से बिचका कथा-प्रवाह में मुख्य भाग हो रही नायिका है चाहे वह नायक की प्रिया या पत्नी हो या न हो। नायिका में भी नायक के सामान्य गुणों का होना आवश्यक है।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिकाओं के चार भेद बताये हैं—विध्या कुसस्त्री और गनिका। परन्तु प्राये चलकर धर्म शास्त्रकारों ने यह विवेचन छूटे हो डंग से किया है। नायिका का स्वकीया परकीया और सामान्या में विभाजन—सर्वसाध्य है। अपने 'रसकल्पक' में जनकय ने भी इसीको स्वीकार किया है। स्वकीया अपनी और परकीया पराई स्त्री को कहा गया है। सामान्या किसी की स्त्री नहीं होती। चतका छूटा नाम मयिका या बेध्या भी है।^{१२२}

स्वकीया पतिव्रता चरित्रवती और अन्धे कुणों से मुक्त होती है। उसके भी तीन भेद किये गये हैं—मुग्धा मध्या और प्रगल्भा। मध्या और प्रगल्भा के बीरा भीराभीरा और अभीरा—ये तीन-तीन भेद और होते हैं।^{१२३} इस प्रकार मध्या और प्रगल्भा के छ भेद हुए। इन छ-छ भेदों के भी अन्धे और कनिष्ठा दो-दो भेद और होते हैं। इस प्रकार इन दोनों के बारह-बारह भेद होते हैं। मुग्धा के धर्म्य भेद नहीं होते।

परकीया नायिका दो प्रकार की होती है—ऊँचा और समूँचा। परकीया नायिका के मुख्य छ भेद होते हैं—गुप्ता विदग्धा ललिता कुसटा अनुचयना और भुविता। सामान्या यानी गनिका नायिका के भी धर्म्य भेद नहीं होते।

ये सब भेद मिलकर कुल सोलह भेद होते हैं।

इनके प्रतिरिक्त नायिका के व्यवहार के अनुसार घाठ भेद और होते हैं।^{१२४}

स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा विरहोत्कंठिता बंदिता कसहातरिता विप्रलम्बा प्रोषित-पतिका और अधिसारिका। अधिसारिका नायिका का अधिसरक स्वान प्रायः खेत बगीचा टूटा मंदिर हूटी का घर, निर्जन स्थान वन्यस शमधान या नदी-तट बताये गये हैं।^{१२५}

११९. वही, पृ० १८३

१२६ वही

१२७ वही

१२८. कपक रहस्य, पृ० १०६

१२९. नवरत्न, पृ० १७३

१३०. वही पृ० १८

१३१. नवरत्न पृ० २७२

स्वाधीनपत्रिका और आसकसज्जा की विशेषता भीड़ा उज्ज्वलता और हृद्य है। छप छ नायिकाओं की विशेषता है चिन्ता, निरन्तर स्नेह अथु निवर्गता आनि एवं मूयकों का प्रभाव।¹¹¹

नायिका की दासी सखी मोदिम बाई, मोकरानियां पड़ोसिन मिसुकी चिस्पिनी आदि कृति का कही जाती हैं। कमी-कमी नायिका स्वयं भी कृती बन जाती है। इन कृतियों में वे ही युग आदर्शक हैं जो नायक के सहायकों में होते हैं। कृतियों में कमा कौशल उत्साह स्वामिमिधत दूसरे का प्रमिप्राय समझने की शक्ति तीव्र स्मरण शक्ति मञ्जुरभाषित मर्म विज्ञान का ज्ञान आग्मिता आदि गुण होने चाहिए।¹¹²

पाश्चात्य मत

पाश्चात्य समीक्षकों ने छ कर्णों की अनिबर्त्यता स्वीकार की है।¹¹³—बस्तु चरित्र संवाद आतावरण शैली और उद्देश्य। किन्तु भारतीय मतानुसार कथा के भी नाटकों की तरह, तीन तरह माने जा सकते हैं—बस्तु नेता और रस।¹¹⁴ दोनों ही मतों में 'नेता' या चरित्र को कथा में आत्यधिक महत्त्व प्राप्त है। भारतीय साहित्यशास्त्र में 'नेता' या प्रधान चरित्र के विकास पर ही सम्पूर्ण कथा बसती है। किन्तु आधुनिक समय में प्रधान एवं गौण दोनों ही तरह के पात्रों को कथाकृति में समान अधिकार मिलता जा रहा है। ऐसी कथाकृतियों में गौण पात्र भी नेता बनने का अधिकार रखते हैं।¹¹⁵ कथा और पात्र एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसलिए कमी पात्र कथा के माध्यम से आये बढ़ते हैं कभी कथा पात्र के माध्यम से आये बढ़ती है। पहली स्थिति में प्रायः कथा आत्मकथा बन कर रह जाती है।¹¹⁶ इसीलिए कृति की सफलता के लिए पात्र और कथा का संतुलन आवश्यक है, बल्कि कथा से अधिक पात्र-संघटन पर ध्यान देना चाहिए।¹¹⁷ अन्धी कथा का आचार चरित्र विकास ही माना गया है।¹¹⁸ साथ ही समाज के वास्तविक या सत्य चरित्र ही कथा के पात्र बनने के अधिकारी नहीं हैं। संसार की वास्तविकता कसाकार की मनोवृत्ति के अनुकूल बनकर साहित्य में अभिव्यक्त होती है।¹¹⁹ इसीलिए कथाकार दुनिया के सत्य में कुछ जोड़ बटाकर

११२ वही, पृ० २०७

११३ वही पृ० २०७

११४ समीक्षा शास्त्र पृ० १५४

११५ वही

११६ हेनरी जेम्स

११७ आल्फ्रेड आर्च ही नाबेल, पृ० ४४

११८ 'स्टोरी इज ही लास्ट पार्ट'—ड्राइडल

११९ 'ही फाउण्डेशन आफ ए मुड डिफरन्स इज कैरेक्टर की एरिय एंड नयिय एन्स'—
ए० बनेट

१२० आल्फ्रेड आर्च ही नाबेल, पृ० ६१

घपनी रचनाएं करता है। वास्तव में तो कथा एक सूजन है जो वास्तविक जीवन से कुछ भिन्न है और उसके घपन नियम एवं सीमाएं भी हैं। वास्तविक जीवन में व्यक्तिगत का सिर्फ बाह्य परिचय मिला पाता है। उसके अन्दर की गोपनीय बातें फिर भी गोपनीय ही रह जाती हैं। कई तो उन्हें घपने अंतर में लिए ही मर भी जाते हैं। इस विविधता का उद्घाटन धार की कथाओं में हुआ है यद्यपि यह हमारी दुनिया की वास्तविकता से भिन्न वास्तविकता है। धार्मिक मनोवैज्ञानिक कठिनाई में ऐसे चिन्तों का सफल प्रकन हुआ है।^{१४१}

नायक-नायिका नेत्र भी मानवीय मनोविज्ञान स्वभाव और प्रकृति के आधार पर निश्चित किया गया है। जैम्स और मैकडगलस मानते हैं कि 'मनुष्य घपनी सहाय वृत्ति (इम्पल्सिबल) की प्रेरणा के बल पर ही सही प्रकार के काम करता है। कभी-कभी उसमें ऐसे मुन घा जाते हैं जिससे वह समग्र समाज का प्रतिनिधि या नितांत वैयक्तिक बन जाता है।'^{१४२} धारवा जाति वर्ग या तिन के अनुसार कार्य करता है। धार्मिक कथाओं के पात्रों में इस स्वामाधिक का अन्धा परिचय मिलता है। प्रमीर और नरीन, शमीर और अहरी ब्राह्मण और भूख धारि चरित्रों में अंतर स्वामाधिक ही है।

अरस्तू और चरित्र

ई० पूर्व चौथी सदी में हुए ग्रीस के महान विचारक अरस्तू ने पाठ्यक्रम सम्मता और संस्कृति को काफी प्रभावित किया। राजनीति और साहित्य-संबंधी उनकी मान्यताओं की धार भी समान रूप से धार प्राप्त है। उनके साहित्य-संबंधी विचार 'काव्यशास्त्र' (पेरिपोइटिकेस) नामक पुस्तक में उपलब्ध हैं।^{१४३} यद्यपि उन्होंने नाटक महाकाव्य ट्रेजेडी और कामेडी के अन्तर्गत धारि चरित्रों की ही व्याख्या की है किन्तु यह व्याख्या काफी व्यापक है और साहित्य के सभी अंशों पर समान रूप से लागू होने वाली है। अरस्तू ने चरित्र उसे ही कहा है जिसके बल पर हम धर्मिकताओं में कुछ सुधों का प्रसारण करते हैं।^{१४४} चरित्र उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की इति-विरति का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रमोदन को व्यक्त करे।^{१४५}

डा नैन्स ने घपने अनुवाद की भूमिका में अरस्तू की मान्यताओं और स्वापताओं पर पाठ्यक्रम विद्वानों की धारों का सम्यक विश्लेषण करने के बाद प्रोफेसर बुचर के मतों को ही माना है। प्रो० बुचर का कहना है कि अरस्तू ने व्यक्ति की नैतिकता पर धारि बल देने के बावजूद विविध व्यक्तित्व की महानता की विष्ठा की भी नहीं मुनाया है। अरस्तू का कुन नैतिकता का सुध वा मूर्खों के विचटन नहीं संवरन का

१४१ वही

१४२ समीक्षा धारत्र पृ० २२०

१४३ वही

१४४ अरस्तू का काव्य-धारत्र पृ० २०

१४५ वही

पुंग था, उस पुंग में नैतिक चरित्रों का त्यौटकरण हो चुका था। इसीलिए धरस्तू ने पारदर्श चरित्रों की सर्वत्र कल्पना की। उनकी बिचारधारा भारत के प्रायः महाकाव्यात्मक चरित्रों की याद दिलाती है। भारत में भी ऐसे ही महत् चरित्रों के बिरसपन को माग्गता मिली हुई थी।^{११९}

डा० नयेन्द्र के अनुसार धरस्तू ने चरित्र के सबभ में छ बुनियादी सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। पहली और सबसे महत्त्व की बात उसका 'मद्र' होना माना गया है उसका अर्थस्य भी मद्र माना गया है। मद्रता का यह पुंग प्रत्येक वय में संभव है—स्त्री में और दास में भी यद्यपि स्त्री को कुछ निम्न और दास को निहृष्ट प्राप्ती माना गया है।^{१२०}

दूसरी महत्त्व की बात है चरित्र का औचित्य। धरस्तू मानत है कि पुरुष में एक विशेष प्रकार का औचित्य होता है। परन्तु नारी-चरित्र में औचित्य या नैतिक-विकक धूम्य चातुर्य का समावेश अनुचित है।^{१२१} किन्तु, प्राकृतिक मत्तानुसार नारी और पुरुष चरित्र में केवल और तिन के अनुसार अन्तर जानना मातक है।^{१२२}। अस्तुतः, नारी और पुरुष-चरित्र में अब कोई अन्तर नहीं रहा। अब नारी केवल पुरुस्वामिनी नहीं रही। समाज की नाना धर्म प्रपासियों में उसका अब समान हिस्सा अधिकार और सहयोग है। यूरोप की नारी को भारतीय नारी की अपेक्षा पुष्ट्य के अधिक निकट है।^{१२३} 'नारी और 'बास' कहकर चरित्र की जिस सीमा का अस्सक्त धरस्तू ने किया है उसे वह स्वयं बहुत दूर तक नहीं मानते क्योंकि उन्होंने मद्रता का धारोप सामान्य सभी चरित्रों पर किया है। धरस्तू के अनुसार यह भी सत्य है कि कुछ चरित्रों में वर्तमान चरित्रों का संस्कार बढ़ा पड़ा होता है। किन्तु, यह अकरी नहीं कि जहाँ संस्कारों से उस वय के सभी चरित्र परिष्कारित होते हैं। धरस्तू के अनुसार मद्र पुरुषों का बिरस और पतन समाज के मन में सहानुभूति पैदा करता है। पठ-प्रभाव की दृष्टि से धरस्तू की माग्गता सभीचीन है। इसीलिए नायक की व्याख्या में धरस्तू इसी सहानुभूति और करुणा का ध्यान रखते हैं। 'अब इन दो सीपान्तों के बीच का अंतर रह जाता है ऐसा व्यक्ति जो धरस्तूत सम्बन्ध और ग्यापपरायण तो नहीं है फिर भी जो अपन दुर्मय या पाप के कारण नहीं बरन् किसी कमजोरी या नून के कारण दुर्मय का शिकार हो जाता है।'^{१२४}

नायक के इस विशेषण द्वारा धरस्तू भारतीय मत्त के करीब पहुच जाते हैं हालांकि धरस्तू करीब नहीं।^{१२५} भारतीय मत्त से धरस्तू के मत्त की तुलना करने के

१४६ 'शासरी में मानव का मय्यतर बिन्न होता है'—धरस्तू

१४७ धरस्तू का काव्य-शास्त्र, पृ० ३६

१४८ वही पृ० ४०

१४९ यद्यपि बीसवीं शताब्दी का महान मनोवैज्ञानिक डॉ० पुंग इस मत्त से बिलकुल निम्न धारणा रखता है

१२० समाज की मूषिका, पृ ३०

१२१ धरस्तू का काव्य-शास्त्र पृ० ३३

१२२ वही

में जीवन के विविध कार्य-व्यापारों का उल्लेख रहता है जो एक स्वान पर जुड़कर चरित्र के विकास में सहायक होते हैं। डा० नगेन्द्र ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए यह स्वीकार किया है कि यूरोप का परवर्ती नाट्य साहित्य और नाट्य सिद्धान्त कथामक की अपेक्षा चरित्रचित्रण को ही अधिक महत्त्व देता है। मार्सो विश्वपीयर ड्राइडम मोलिनर वेटे, ह्यूमन मेटरिफिक सा घाबि के नाटकों में चरित्र चित्रण को ही प्रधानता प्राप्त है। साब ही बड्के, मिफोल घाबि के नाट्याभोजन संबंधी दृश्यों में भी चरित्र को ही प्रधानता दी गयी है।^{११०} पर इसकी व्याख्या करते हुए डा० नगेन्द्र ने 'प्रसाद' की तरह प्रत्येक चरित्र को 'मानव-आत्मा की अभिव्यक्ति माना है।' मानव आत्मा की यह अभिव्यक्ति ही रस है। इसी रस्य की स्वीकृति या भासेष का नाम चरित्र है। इस सम्बन्ध में चरित्र चित्रण के लिए डा० नगेन्द्र ने आत्मतत्व मानवतत्व घाबि दृश्यों का प्रयोग किया है जो उनकी मौलिक चिन्ता का प्रमाण है।^{१११}

फोरेस्टर का वर्गीकरण

किन्तु, धरेबी के प्राचिनिक समीक्षक ई० एम० फोरेस्टर का कहना है कि धरस्तु के उपर्युक्त ब्याख्यात पुराने हैं। वे प्राचिनिक उपग्याओं नहीं नाटकों को दृष्टि में रखकर ब्यक्त किये गये थे। उसने धोडेधी पका वा भूतिसिध नहीं। नाटकों में घाबमी के सभी बुल्ल-सुब बटनाओं का रूप से भेते हैं। पर उपग्याओं में सिबक को चरित्रों के संबंध में घपनी राय देने चरित्रों के द्वारा या घापसी बाठालाप द्वारा भी घपने मंतम्य ब्यक्त करने एवं चरित्रों के गुण जीवन का रूख्योद्घाटन करने की स्वतंत्रता रहती है जिसका कोई बाहरी प्रमाण सहज में नहीं प्राप्त हो सकता है।^{११२} उपग्यास का यह भी कार्य है कि वह गुण जीवन का रूख्योद्घाटन करे।^{११३}

फोरेस्टर ने घपनी प्रसिद्ध पुस्तक घासपेकट्ट घाफ व नाबेल^{११४} के लोक (पीपुल) नामक अध्याय में चरित्रों को दो बर्गों में बांटा है—घपाट और घोल घबर्त्त घरल और दूढ़। कुछ विचारकों ने इन्हें बिकसित और पूर्बनिरिचत चरित्र भी कहा है। १७वीं शताब्दी में इन घपाट चरित्रों को हास्य चरित्र (ह्यू मरस) कमी-कमी बर्ष चरित्र एवं घनुकृति भी कहा जाता था।^{११५}

घपाट या फनीट चरित्र घपरिचर्तनधील एवं दूढ़ या रजड चरित्र परिचर्तनधील होते हैं।

घपाट चरित्र कथा में एक घास रूप लेकर घाटे हैं और घम्ट तक बैठे ही बने

११० धरस्तु का काव्यशास्त्र पृ० ६७

१११ वही पृ० ६८

११२ घासपेकट्ट घाफ वी नाबेल, पृ० ८१

११३ वही, पृ० ४३

११४ वही पृ० ६३

११५ वही

रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन, प्रतिनिधा या भावनाओं का आलोड़न प्रत्यालोड़न नहीं होता। उनमें एक खास किस्म की सन्नद (मेनरिज्म) होती है और ऐसे चरित्रों का निर्माण किसी एक ही विचार के आकार पर होता है।^{१११}

फोर्डस्टर ने धामे कहा है कि ऐसे चरित्र केवल एक पक्ष में व्यक्त किये जा सकते हैं 'मैं कभी भी मिस्टर मिखावर को बीरान नहीं कहूँगी।' मिखावर की पत्नी यह कहती है और वह अपने पति को कभी बीरान नहीं करती।^{११२}

सपाट या फ्लैट चरित्रों की विशेषता यह है कि वे छीन्नपहुचाने और पाद रखे जा सकते हैं। इसके लिए उनके परम्परागत चरित्र-विकास की पटीला आवश्यक नहीं। साथ ही सपाट चरित्र विरूपक के रूप में ही अच्छे लगते हैं। गम्भीर और करुण सपाट चरित्र ठो मढ़े (बोर) ही लगते हैं।

बूढ़ चरित्रों में यह क्षमता है कि वे हाम्य को छोड़कर अन्य सभी संविदनाएं पाठक के ध्यान-वैदा करते हैं। उन्हें स्पष्ट रूप से समझना उनकी प्रतिबिम्बाओं के बारे में कोई पूर्वनिश्चित कारणों बनाना कठिन है क्योंकि उनके बाह्य और आंतरिक रूप में अन्तर होता है। मधवतीचरम बर्मा की 'चित्रसेवा' में योगी कुमारबिरी और चित्रसेवा के चरित्र बूढ़ चरित्रों के ही उदाहरण हैं। उनके प्रारम्भ और प्रतिम प्रति निधामों में बड़ा अन्तर या खाता है। कुछ ऐसी बातें भी मिलती हैं जो समान्य हों-होते भी समान्य नहीं होतीं और जिसकी पाठ कभी सुन नहीं पाती इसीलिए वे चौंका देनेवाले होते हैं। फिर भी इन सख्त चरित्रों की प्रतिबिम्बाओं का विरवसनीय होना आवश्यक है। [२ टैस्ट घाफ ए सख्त करेक्टर इन ब्लेडर इट इन केपेकुल घाफ सर प्राइविंग इन ए कनविन्सिम वैनर]।^{११३}

चरित्र और मनोविज्ञान

मनुष्य का चरित्र मन की क्रियाओं के द्वारा निर्मित होता है। अतः चरित्र विकास के अध्ययन में मनोविज्ञान का बहुत महत्व है। प्राथमिक मनोविज्ञान ने मन की खोज में अमत्कारिक उन्नति की है। इन खोजों के परिणामस्वरूप मनोविश्लेषण नामक एक नया विज्ञान ही तैयार हो गया है। ऐसी खोजें करनेवाले मनोवैज्ञानिक का नाम सियमंड फ्रायड है। वे स्वयं एक प्रतिष्ठित डाक्टर थे। प्रायः बातों के आलावा, फ्रायड का यह भी कहना है कि मनुष्य को कुछ आधीरक बीमारियों का कारण मानसिक होता है और उसकी कुछ आधीरक बीमारियाँ भी उसके अप्रिय अनुभवों के कारण होती हैं।^{११४}

नवीन मनोविज्ञान की यह स्थापना है कि मन की तीन अवस्थाएँ होती हैं—
चेतन मन अचेतन (चेतनोन्मुख) मन और अचेतन मन।

१११ वही

११२ वही

११३ वही, पृ० ७२

११४ मनोविश्लेषण और आधुनिक क्रियाएँ, पृ० ११

चेतनावस्था में मन की समस्त क्रियाओं का हमें महंकार (ईगो) रहता है। हमारे समस्त विचार भी चेतन मन में ही आकर प्रकाशित होते हैं। पर चेतन मन में आकर प्रकाशित होने के पहले ये विचार इच्छाएँ, भावनाएँ, स्मृतिबाँधों के द्वारा अचेतन मन में संघुहीठ होती हैं और चेतना पर जाने को तत्पर रहती हैं। चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। जिस अवस्था में मन के विचार भावनाएँ आदि न हमें ज्ञात रहती हैं और न प्रयत्न से ही चेतना के स्तर पर आती हैं। उन्हें चेतना में आने अथवा अचेतन मन में उनकी उपस्थिति जानने के लिए ही इस विशेष विज्ञान की आवश्यकता होती है।

चरित्र की मनोवैज्ञानिक परिभाषा

चरित्र एक बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के सभी संस्कार आ जाते हैं। किन्तु मनुष्य का चरित्र इन सभी संस्कारों का पुंजमात्र नहीं है। मनुष्य में चरित्र बनी होता है जहाँ तक वह इन संस्कारों में अपनी बुनियाद बना लेता है। चरित्र वास्तविकता की सभी क्रियाएँ एक सिद्धान्त द्वारा परिभाषित होती हैं। एक ही वस्तु की प्राप्ति की ओर जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपनी धार्मिक और मानसिक क्रियाओं को केन्द्रित करता है, वह उतना ही बड़ा चरित्रवान कहा जाता है।^{१०} अनेक तरह की प्रारंभों इकट्ठी होकर चरित्र कहलाती हैं। इस तरह चरित्र-निर्माण में इच्छा शक्ति ही काम करती है।

स्थायीभाव और चरित्र

मैकडुगल का कहना है कि मनुष्य का चरित्र उसके स्थायी भावों का समुच्चय मात्र है। जिसके स्थायीभाव बँधे होते हैं उसका चरित्र भी बँधा ही रहता है। जिस व्यक्ति के मन में उच्च आदर्शों के प्रति अज्ञात भाव नहीं रहते, उसके व्यक्तित्व को कुण्ठित तथा चरित्र को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। मानव-मन के ये स्थायीभाव अनेक विचारों के अन्तर्गत एवं मनुष्य की अनेक क्रियाओं को संभावित करनेवासे होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मन में सुन्दर स्थायीभावों के रहने से अधिक महत्त्व की वस्तु जीवन में और कुछ नहीं है।^{११}

चरित्र के अधिकाधिक विकास को बताते हुए मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्ति जैसा बार-बार करता है वह उसका अभ्यास बन जाता है और इसी अभ्यास के अन्तर्गत मनुष्य का चरित्र बनता है। ये अभ्यास ही हमारे नैतिक जीवन के आधार हैं। अन्तर्गत अभ्यास से अच्छा और बुरे अभ्यास से बुरा चरित्र बनता है। एक ही प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों में जब मनुष्य एक-सा ही आचरण करता है तब वह उसका चरित्र समझ जाता है। एक शब्दक में इसका अर्थ है कि जब तक कि वह एक ही क्रिया-विधि

१०. सरल मनोविज्ञान पृ० २७१

११. वही, पृ० २७४

सुन्दर स्त्री को देखकर प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित होता है और उसे पाना चाहता है। सिर्फ सौन्दर्य, राबदण्ड या समाज के भय से ही वह ऐसा नहीं कर पाता। पर यदि स्वयं वह स्त्री किसीके सम्मुख अपने को समर्पण करे तो उसे ग्रहण करने में तो वह कोई संकोच नहीं करता। ऐसे व्यक्ति का कोई चरित्र नहीं होता। किन्तु जो व्यक्ति एकान्त में स्वयं धारमसमर्पण करनेवाली स्त्री को माता या बहन कहकर सम्बोधित करे, वह अवश्य ही चरित्रवान है। यह चरित्र उसकी इच्छा-शक्ति की साधना का परिणाम है। जब मनुष्य अपने नायों की गति को स्वयं अपनी इच्छा से और किसी दण्ड, मय या प्रेरणा से परिचायित नहीं करता तो उसकी यह पति के नियम की शक्ति ही इच्छा-शक्ति कहलाती है। जितनी प्रबल और बड़ यह इच्छा शक्ति होगी उतनी ही चरित्र में विशिष्टता आयगी। ऐसा व्यक्ति या तो परम दुष्ट होना या परम साधु ही। इच्छा-शक्ति से हीन व्यक्ति सदा अभ्यक्षित और परमुखा पेशी होगा। किन्तु एक विषय या प्रसंग में किसी व्यक्ति की बड़ता से उसका चरित्र नहीं मोटा जा सकता। अधिक से अधिक परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति को स्थायी रखता है वहीसे उसका चरित्र पहचाना जा सकता है। अतः मनुष्य के चरित्र की पहिचान का साधन है उसकी इच्छा-शक्ति। ट्राटर ने मनुष्य को स्थिर चित्तवालों और अस्थिर चित्तवालों में विभाजित किया है। स्थिर चित्त वाले चित्त समाज या भय में रहते हैं उससे सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विषय में उनका स्थिर मत होता है। अस्थिर चित्तवाले सदा मत बदलते रहते हैं और अनुभव के आधार पर अपनी मनोवृत्ति और प्रकृति भी बदलते रहते हैं।^{१०२}

प्लास्टिसिटी ने मनुष्य को दो भागों में बाँटा है—कल्पनाशील (रोमांटिक टाइप) और संस्कारशील (क्लासिकल टाइप)।^{१०३} कल्पनाशील प्रकृति का व्यक्ति तेजी से सोचता है और बहुमन्त्री होता है। वह निरन्तर शोकप्रिय बनने में सया रहता है। संस्कारशील बीरे-बीरे सोचता है और एक ही काम में लया रहता है। वह शोकप्रियता की चिन्ता नहीं करता और एकान्त-प्रेमी होता है।

चरित्र और व्यक्तित्व

धामठोर पर चरित्र और व्यक्तित्व में कोई विभेद नहीं माना जाता जब कि धरम में चरित्र और व्यक्तित्व आपस में विरोधी हैं। हर्बर्ट रीड के अनुसार मानव में अन्तर्भूत प्रकृति को ही चरित्र की संज्ञा दी जाती है।^{१०४} चरित्र में धारमनियम नियमों में धरने को धारण करने और प्राकृतिक वृत्तियों को नियमों के अनुकूल बदल देने की भावना है। किन्तु रीड के अनुसार चरित्र की वृद्धि के साथ ही व्यक्ति के अनुभवों का विकास रुक जाता है, प्रयत्न का आधिर्भाव समाप्त हो जाता है। इसी-

१०२ अभिनव नाट्य शास्त्र, पृ० १४१

१०३ वही

१०४ समीक्षाशास्त्र पृ० ३२

लिए दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं ।

रीड महोदय ने यह भी सिद्ध किया है कि फायद का ईशो ही व्यक्तित्व है जिसका वास्तविक अर्थ है उसका विकास । आदर्श व्यक्तित्व वासा प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक नये विचारों का भावनाओं का समन्वय करता समता है ।^{१०५}

इस तरह व्यक्तित्व और चरित्र में संतर्पण है । चरित्र से निम्न उसका व्यक्तित्व चरित्र कहलाता है जो चरित्र की विक्षेपता को व्यक्त करता है । किन्तु चरित्र से केवल जीवन चरित्र धारमकथा वा जीवनवृत्त का बोध होता है । एक प्राबुतिक ने चरित्र की परिभाषा यों की है— 'नियामक सिद्धान्तों के अनुसार मानव की स्वभाव अन्य वासनाओं का समन करके सम्मार्थों और भावनाओं को स्थायित्व प्रदान करना चरित्र कहलाता है ।'^{१०६}

व्यक्तित्व अर्थ से उन सभी बातों का बोध होता है जो किसी व्यक्ति में हैं और जिनपर उसे प्रभिमान होता है । इसके अन्तर्गत व्यक्ति की संवेदनाएं प्रवृत्तियां उद्बेग, प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना स्मृति बुद्धि-विशेष प्रादि मानसिक शक्तियां एवं धारीक बनावट अवस्था और दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध प्रादि धारी बातें या प्राती हैं । 'बुद्धि का विकास एकान्त में होता है, किन्तु चरित्र-निर्माण संसार के प्रवाह में होता है ।'^{१०७}

मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी प्रीङ्गावस्था में ही सम्पूर्णतः बनता और विकसित होता है । हम प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं । जो हम एक वर्ष पूर्व के वह भाव नहीं हैं । यदि हम अपने प्रापकी इस वर्ष की अवस्था से तुलना करें तो हम कठिना से अपने को पहचानेंगे ।^{१०८} सुविकसित व्यक्तित्व के लिए अपने अनुभवों की सुधीभूत करना भी प्रावश्यक है । आदर्श व्यक्तित्व वही है जिसमें सभी अनुभवों का संयोजन भी एक ही सत्ता द्वारा हो और व्यक्तित्व का कोई भी अंग इस संयोजन के बाहर न हो ।

यदि मनुष्य के विभिन्न अनुभवों के विभिन्न संस्कारों में विरोध हो जाता है, उसकी विभिन्न शक्तियों में एकता नहीं होती तो उसे हम व्यक्ति-विच्छेद की संज्ञा दे सकते हैं । यह एक दुःखप्रद मानसिक परिस्थिति है जिससे मनुष्य का सर्वत्व ही गप्ट हो जाता है ।

व्यक्तित्व के अंग

व्यक्तित्व के प्रधान अंग हैं व्यक्ति का रूप बुद्धि उद्बेगात्मक जीवन चरित्र तथा मानसिक दृढ़ता एवं सामाजिक जीवन ।

व्यक्ति के रूप के अन्तर्गत उसके धारी की बनावट उसकी अवयव प्राती है ।^{१०९}

१०५. विनोबा भावे

१०६. समीक्षा धारत्र पृ० ३३

१०७. वही, पृ० ३३

१०८. सरल मनोविज्ञान पृ० ३३२

१०९. सरल मनोविज्ञान, पृ० ३३३

बुद्धि और चरित्र

बुद्धि के गुण जन्मजात हैं और चरित्र के गुण मश्रित किये जाते हैं। एक प्रकार बुद्धिवाता व्यक्ति बुराचरित्र और सामान्य बुद्धिवाता चरित्रवान हो सकता है। संसार के बहुत-से संत-महारामा प्रकारबुद्धि के मही से पर से दुइवही से। बहुत-से प्रतिभावान व्यक्ति (मुपरनारमल) बुराचारी और व्यक्तिचारी पाये जाते हैं। वे अपनी प्रतिभा का उपयोग संसार के कल्याण में न कर, उसके विनाश में करते हैं।^{१०}

इस सिद्धिसे में एक विशिष्ट स्थिति देखी जाती है। अमेरिका के मनोवेज्ञानिकों ने वेसलाने के कौबियों की बुद्धि का परीक्षण करके ८० प्रतिशत कौबियों को मन्दबुद्धि का पाया। स्पष्ट है कि बुद्धि की कमी चरित्रनिर्माण में कमी का कारण बन जाती है।^{११}

किन्तु प्रकार बुद्धि का व्यक्ति धाये-नीचे छोड़कर मर्णाया या नियन्त्रण के प्रयत्न रखकर, अपने सभी क्रिया-कलाप उच्च हेतु से निर्धारित कर सकता है अवाञ्छनीय रास्ते को छोड़कर कल्याण का मार्ग अपना सकता है।

व्यक्तित्व का तीसरा प्रधान धर्म उद्विग्नता है जिसे मनोविज्ञान ने जन्मजात गुण माना है। यह किसीमें कम कियेमें अधिक होता है कोई स्वभाव से ही प्रसन्न और कोई दुःखी होता है। इसकी दृष्टि से भी मनोवेज्ञानिकों ने चार प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं—प्रदुःख उदास कोभी चर्चस जिसका पहले ही वर्णन किया जा चुका है।^{१२}

सामाजिकता की दृष्टि से भी देखा जाय तो सामाजिक जीवन में सुयोग्य व्यवहार के लिए बुद्धि से काम लेना आवश्यक है। जिस मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है वह अपने सामाजिक व्यवहार में वैसा ही सफल होता है।

धार्मिकतात्मक साक्षात्कार के अनुसार मनुष्य ने मनुष्यों के दो भेद किये हैं जो मनुष्य की सभी क्रियाओं को प्रेरित करत हैं—अन्तर्मुख और बहिर्मुख।^{१३} इन दोनों प्रवृत्तियों नाम व्यक्तियों की उसने छिद्र चार चार प्रकृतियां बताई हैं—विचारतात्मक मनु मन्वात्मक, धार्मिकतात्मक और अन्त प्रेरणात्मक।

इनमें से जो बहिर्मुखी विचारतात्मक प्रकृति के होते हैं वे नीतिवादी धार्मिक चारी होते हैं। बहिर्मुखी मनुमन्वात्मक प्रकृति का व्यक्ति यह मानता है कि जिससे उस मुक्त पान्ति सहाय मिले वही ठीक है। रोप सब मयाह्य है। बहिर्मुखी धार्मिकतात्मक व्यक्ति 'परान्न दुर्ममं सोके' 'रुणं हत्वा वृत्त पिबेत्' एवं 'आपो पिबो मौत्र करो' का सिद्धान्त मानते हैं। बहिर्मुखी अन्तःप्रेरणात्मक प्रकृति वाले सभी संभावनाओं के लिए अपनी अन्तःप्रेरणा का सहाय लेते हैं। ऐसे लोग कहा करते हैं— 'भिर मन कहुता

१०० मनोविज्ञानवेध और मानसिक क्रियाएं, पृ० २१२

१०१ वही

१०२ चरित्र मनोविज्ञान पृ० २८७

१०३ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २८६

लिए दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं ।

रीड महोदय ने यह भी सिद्ध किया है कि फायद का ईगो ही व्यक्तित्व है जिसका वास्तविक धर्म है उसका विकास । प्रारंभ व्यक्तित्व नामा प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक नये विचारों का भावनाओं का समन्वय करता बनता है ।^{१०६}

इस तरह व्यक्तित्व और चरित्र में अंतर है । चरित्र से भिन्न उसका व्यक्तित्व चरित्र कहलाता है जो चरित्र की विद्येयता को व्यक्त करता है । किन्तु, चरित्र से केवल जीवन चरित्र, आत्मकथा या जीवनवृत्त का बोध होता है । एक घासोचक ने चरित्र की परिभाषा यों की है— 'नियामक सिद्धांतों के अनुसार मानव की स्वभाव जग्य वासनाओं का बमन करके उद्घाटनों और भावनाओं को स्थायित्व प्रदान करना चरित्र कहलाता है ।'^{१०७}

व्यक्तित्व शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जो किसी व्यक्ति में हैं और जिनपर उसे प्रभावित होता है । इसके अन्तर्गत व्यक्ति की संवेदनाएं प्रवृत्तियां चर्चण प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना स्मृति बुद्धि-विवेक आदि मानसिक शक्तियां एवं शारीरिक बनावट प्रबन्धा और दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध आदि शारी बातें या आती हैं । 'बुद्धि का विकास एकान्त में होता है, किन्तु चरित्र-निर्माण संघार के प्रवाह में होता है ।'^{१०८}

मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी प्रीङ्गावस्था में ही सम्पूर्ण बनता और विकसित होता है । हम प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं । जो हम एक क्षण पूर्व के वह मान नहीं हैं । यदि हम अपने-आपकी इस क्षण की प्रबन्धा से तुलना करें तो हम कठिनाता से अपने को पहचानेंगे ।^{१०९} सुविकसित व्यक्तित्व के लिए अपने अनुभवों को सूचीबद्ध करना भी आवश्यक है । प्रारंभ व्यक्तित्व बड़ी है जिसमें सभी अनुभवों का संगठन भी एक ही सत्ता द्वारा हो और व्यक्तित्व का कोई भी अंग इस संगठन के बाहर न हो ।

यदि मनुष्य के विभिन्न अनुभवों के विभिन्न संस्कारों में विरोध हो जाता है, उसकी विभिन्न शक्तियों में एकता नहीं होती तो उसे हम व्यक्ति विच्छेद की संज्ञा दे सकते हैं । यह एक दुःखप्रद मानसिक परिस्थिति है जिससे मनुष्य का सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है ।

व्यक्तित्व के अंग

व्यक्तित्व के प्रधान अंग हैं व्यक्ति का रूप बुद्धि उद्देश्यारमक जीवन चरित्र तथा मानसिक दृढ़ता एवं सामाजिक जीवन ।

व्यक्ति के रूप के अन्तर्गत उसके शरीर की बनावट उसकी संज्ञा होती है ।^{११०}

१०५. विनोबा माधे

१०६. लबीका शास्त्र, पृ० ३३

१०७. वही, पृ० ३३

१०८. सरस मनोविज्ञान, पृ० ३३२

१०९. सरस मनोविज्ञान, पृ० ३३३

बुद्धि और चरित्र

बुद्धि के गुण जन्मजात हैं और चरित्र के गुण प्रशिक्षित किये जाते हैं। एक प्रकार बुद्धिवाला व्यक्ति दुर्बलचरित्र और सामान्य बुद्धिवाला चरित्रवान हो सकता है। संसार के बहुत-से संत-महार्थ्या प्रबलबुद्धि के नहीं थे पर वे वृद्धवृत्ति थे। बहुत-से प्रतिभावान व्यक्ति (सुपरमारमन) बुराचारी और ब्यभिचारी पाये जाते हैं। वे अपनी प्रतिभा का उपयोग संसार के कल्याण में न कर, उसके विनाश में करते हैं।^{१८}

इस सिद्धांतिसे मैं एक विशिष्ट स्थिति देखी जाती है। अमेरिका के मनोविज्ञानियों ने जेलखाने के कदियों की बुद्धि का परीक्षण करके ८० प्रतिशत कदियों को मन्दबुद्धि का पाया। स्पष्ट है कि बुद्धि की कमी चरित्रनिर्माण में कमी का कारण बन जाती है।^{१९}

किन्तु प्रबल बुद्धि का व्यक्ति प्रागे-पीछे सोचकर, मर्यादा या नियंत्रण के अन्तर्गच्छकर, अपने सभी क्रिया-कलाप उच्च हेतु से निर्धारित कर सकता है। असाध्य-मीय रास्ते को छोड़कर कल्याण का मार्ग अपना सकता है।

व्यक्तित्व का तीसरा प्रधान अंग उद्विग्नता है जिसे मनोविज्ञान ने जन्मजात गुण माना है। यह किसीमें कम किसीमें अधिक होता है कोई स्वभाव से ही प्रसन्न और कोई दुःखी होता है। इसकी दृष्टि से भी मनोविज्ञानियों ने चार प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं—प्रफुल्ल उदास कोभी अर्थात् जिसका पहले ही वर्णन किया जा चुका है।^{२०}

सामाजिकता की दृष्टि से भी वैसा ही बात तो सामाजिक जीवन में सुयोग्य व्यवहार के लिए बुद्धि से काम लेना आवश्यक है। जिस मनुष्य की अंसी बुद्धि होती है वह अपने सामाजिक व्यवहार में वैसा ही सफल होता है।

प्रायेणात्मक क्षमता के अनुसार युग ने मनुष्यों के दो भेद किये हैं जो मनुष्य की सभी क्रियाओं को प्रेरित करते हैं—अन्तर्मुख और बहिर्मुख।^{२१} इन दोनों प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों की उसने फिर चार चार प्रकृतियाँ बताई हैं—विचारारमक अनुभवारमक, प्रायेणात्मक और अन्तःप्रेरणात्मक।

इसमें से जो बहिर्मुखी विचारारमक प्रकृति के होते हैं वे नीतिवादी आचारवादी होते हैं। बहिर्मुखी अनुभवात्मक प्रकृति का व्यक्ति यह मानता है कि जिससे उसे सुख प्राप्त सहाय मिले वही ठीक है। शेष सब अप्राप्त है। बहिर्मुखी प्रायेणात्मक व्यक्ति 'परान्नं दुर्लभं सोके' 'अन्नं कृत्वा नृत्तं पिबेत्' एवं 'बाधो विधो मौन करो' का सिद्धान्त मानते हैं। बहिर्मुखी अन्तःप्रेरणात्मक प्रकृति वाले मानो संभावनाओं के लिए अपनी अन्तःप्रेरणा का सहाय लेते हैं। ऐसे लोग कहा करते हैं—'मेरा मन कहाँ

१८० मनोविज्ञानवेदक और मानसिक क्रियाएँ, पृ० २१५

१८१ वही

१८२ सरल मनोविज्ञान पृ० २८७

१८३ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २८६

है कि ऐसा होगा ही। यह प्रकृति स्थितियों में विक्षेप रूप से पायी जाती है। पुरुषों में व्यापारी ठेकेदार सट्टेबाज और राजनीतिज्ञ इसी प्रकार के होते हैं।

धर्ममूर्खी विचारधारात्मक प्रकृतिवाले अपने विचारों के आधार पर मन ही मन मनन करते रहते हैं। पार्थक्यिक वैज्ञानिक एवं सिद्धान्तवादी राजनीतिज्ञ प्रायः इसी प्रकृति के होते हैं जो सदा बिगलनशील कुछ-न-कुछ घुले हुए, बेडने कपड़े पहननेवाले और भोगों से कटपने वाले होते हैं।^{१४४} धर्ममूर्खी अनुभववात्मक प्रकृतिवाले अपने मन की बात कियानेवाले मीठी बूसरों से सहानुभूति रखानेवाले धार्मिकविज्ञापन से दूर और समन्वयात्मक प्रकृति के होते हैं। स्थिरां प्रायः इसी स्वभाव की होने के कारण ईर्ष्यानु होती है। ईर्ष्या का विक्षिप्त रूप स्त्री-जाति में पुरुषों के श्रेष्ठ सामाजिक पद के प्रति देखा जाता है।^{१४५} धर्ममूर्खी धार्मिकवात्मक प्रकृति का व्यक्ति प्रायः वा इष्ट वस्तु के साथ अपने धारकों का संतुलन नहीं रख पाता। कमाकार कवि चित्रकार, मूर्तिकार संगीतज्ञ प्रादि इसी श्रेणी में आते हैं और अपने मन की मस्ती के अनुसार संसार से अपना व्यवहार रखते हैं। धर्ममूर्खी ईरवात्मक प्रकृतिवाले सदा प्रार्थनावादी विचारों में मग्न रहते हैं। कल्पना के पुनर्जागृतवासे सगरी व्यक्ति अधिष्पत्यवत्ता पैगम्बर रहस्वमयी धार्मिकवात्मक प्रकृतिवाले विभिन्न रहस्वात्मक कृत्यों और शक्तियों की कल्पना करने वाले अमानुष प्रतिभाधीन व्यक्ति पत्रप्रच्छ महापुरुष सरस बुद्धिमान तथा मोक्षहितकारी व्यक्ति जो सदा उपेक्षित वस्तुओं का पक्ष लेकर चिन्ताने वाले होते हैं, इसी श्रेणी में आते हैं।^{१४६}

वशानुक्रम और आवेष्टन

भाषुनिक मनोविज्ञान इस बात को मानता है कि कुछ अवधारणों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी कुल-परम्परा से कुछ संस्कार ग्रहण करता है जो सांकेतिक और मानसिक दोनों ही तरह के होते हैं। इस तरह मनुष्य का चरित्र कुल-संस्कारों और बाह्यी संभति से मिलकर बनता है—जाहे बहु प्रच्छा बने या कुप। वास्यावस्था में ही प्रत्येक मनुष्य की कुछ इच्छाएं होती हैं। उनकी पूर्ति होती है तो मनुष्य प्रच्छा बनता है मरुर्ष्य रहने से उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य प्रपराय या धनीति की ओर जाता है। इसी तरह बालकाल से जाये तक मनुष्य का चरित्र-निर्माण होता बनता है जिसमें बंशानुक्रम और परिवेश दोनों का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। व्यक्ति के स्थायी भावों तथा धीन संस्थाई प्रादि का सम्बन्ध बंधानुक्रम से है और धर्म्य क्रिया-प्रतिक्रियाओं का सम्बन्ध परिवेश से। यदि वह परिवेश प्रार्थन न हो तो बहुधा वह चरित्र के विनाश का कारण हो जाता है।^{१४७} प्रार्थन परिवेश चरित्र निर्माण में सहायक भी होता है।

१४४ वही, पृ० २८७

१४५. मन के भेद पृ० ७१

१४६. सरस मनोविज्ञान पृ० १४५

१४७. धान मनोविज्ञान पृ० १२

बचानुक्रम के अनुसार घरीर की बनावट भी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में बड़ी सहायक होती है।^{१००} उदाहरण के लिए मनोबज्ञानियों ने सिद्ध किया है कि फ्रांस के बिबमात वीर नेपोलियन के ह्रास का कारण उसकी घाटीरिफ बिकृति ही थी। किन्तु, मनुष्य यदि सामाजिक जीव है तो उसके ऊपर परिवेश का ही एकमात्र प्रभाव मानना पड़ेगा यद्यपि बचानुक्रम का भी प्रभाव तो पड़ता ही है। अन्धे परिवेश के बिना अन्ध्या घादमी बमना कठिन है।

भापा पर भी परिवेश का ही प्रभाव प्रमाण रूप से पड़ता है। ऐसा देखा भी गया है कि अंगल में रहकर घादमी का बच्चा भी पशुओं की भापा सीख लता है।

बीबबिज्ञान के अनुसार भी 'हेरिडिटी' का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है यद्यपि परिवेश भी उसमें अक्षय्य व्यक्त होता है। बिकासवादी डारविन ने भी इसे स्वीकार किया है। यह उसी तरह की बात है जैसे कोई घादमी यदि नदी के किनारे बैठे तो उसपर बस घोर घाकाघ में उड़नेवासी बिक्रिया का प्रभाव पड़ेगा ही बिसे बियोरी घाक नेबरस सेनेबजन कहा जाता है।^{१०१}

भारतीय कर्मवाद के अनुसार ससार के सभी प्राणी पिछले जन्म का सत्कार भेकर उत्पन्न होते हैं और अपने पिछले जन्म के कर्मानुसार सुख और दुख भोगते हैं। किन्तु साब ही यह भी माना गया है कि मनुष्य यदि चाहे तो ज्ञान द्वारा अपने सभी इन्द्रियों को समाप्तकर समबुद्धि या स्थितप्रज्ञ हो सकता है। तभी वह कर्म-बंधन से मुक्त हो जाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति पुरु और सत्संगति से होती है। कुछ अन्धी प्रकृति के भोग भी कुर्सवति में पड़कर दुर्जन हो जाते हैं।

पारंपार्य सम्प्रदा कर्मवाद को नहीं मानती। वह कुत्त-अरम्पण के प्रभाव को मानकर भी उसे सांस्कारिक नहीं बल्कि प्राणि-शास्त्रीय और घाटीरिफ मानती है। किन्तु, यह सिद्धान्त अमात्मक सिद्ध हो चुका है। अ यदा इसे किस तरह समझा जाय या समझया जाय कि महापुरुषों के पुत्र प्रायः निकम्मे होते हैं और एक ही पिता माता के कई पुत्र भिन्न-भिन्न स्वभाव और प्रकृति क होते हैं। अतः इसका कोई अमूर्त और अप्रत्यक्ष कारण अबरय है। और, कर्मवाद क शाण ही इस प्रश्न का हल मिलना सम्भव है। पिछले जन्म के संस्कारों को मानकर ही हम अत्यन्त छोटी अक्षया में अपूर्व प्रतिभा का परिचय देनेवाले लोगों की प्रतिभा का रहस्य अमन्त्र सकते हैं।

परन्तु, यूरोपीय घाचार्यों ने संवति क प्रभाव के सिद्धान्त को अबरय स्वीकार किया है। इसलिये मनुष्य के स्वभाव को परखने के लिए उसकी प्रकृति और संवति पर बिचार करना जरूरी है। सत्सवति से मनुष्य के भाव और बिचार परिष्कृत होते हैं। कुर्सवति से जन्में बिकार घाता है, बुद्धि अविबेकी हृदय कठोर और मन बुष्कर्मों की और प्रेरित होता है।^{१०२}

१००. हीनभाव पृ० १६

१०१. पटना रेडियो से प्रसारित बार्ता, २०-११ ५६

१०२. मनोबिज्ञानेयन और मानसिक बियाएँ, पृ० ३६

सम्बन्धित सामाजिक जीवन और चरित्र विकास

मानव सामाजिक जीव है और कला सामाजिक प्रक्रिया है समाज-सम्बन्ध ही निरूपण रूप में है। प्रेरणा और स्फूर्ति की विभिन्न-स्वरूपता के कारण व्यक्तित्व-निरूपण वृत्तियों का संस्कार, विकास और प्रतिफलन होता है। रस-शास्त्री की दृष्टि में वे स्वाधी भाव हैं। बूँक मनुष्य का जीवन साकल्य-अहेमित व्यक्तित्व-संकुचित है इसलिए इन विषयताओं और विषयताओं की संकुचित सीमाओं को प्रतिफलन करने की इच्छा हर प्राथमी में होती है। वैयक्तिक व्यक्तित्व उनके विरोध और इनके पारस्परिक और सामूहिक संघर्ष को नियंत्रित करने में है।

व्यक्तित्व का निर्धारण कुछ हो जाने मात्र प्रवृत्तियों में नहीं बल्कि कुछ बनाने में है जिससे कुछ मिटाना पड़ता है और कुछ संभारना भी। मानव और मानवता की विविध धारणाओं के आधार पर मानवीय मानव-कल्याणवादी और मानववादी पार्श्वों का उपग्राहकों में स्वल्प-निर्माण होता है और इस तरह विविध मानव चरित्रों को उपस्थितकर सतत सजीव चित्रणकर सफल कृति की सृष्टि होती है। धर्म-धर्मशास्त्रिक पार्श्वों की पात्रता का आधार है अपने बृत्त और सीमा में सजवता सजीवता विकासोन्मुख गति और कुछ बनने और बनाने की साध प्रक्रिया।^{१२१} धर्मशास्त्रिक पार्श्वों की पात्रता के क्रमविकास के प्रथमतः से यह बात स्पष्ट होती है कि मूल वृत्तियों को सामाजिक पारिवारिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के कारण संकोच, विकास विस्तार और सीमा पिसती है एवं मौलिक समस्याओं के घेरे-के भीतर चक्कर काटनेवाला व्यक्तित्व विभिन्न रूप धारणकर सम्मुख उपस्थित होता है। जीवनक्रम में वृत्तियों का विकास सीमित रूप से होता है। इसीलिए उपग्राहकों में और साधकर एक ही उपग्राहक की रचनाओं में विभिन्न रूपान्तरों के साथ मौलिक धर्म की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं।^{१२२}

धील और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान की भाषा में धील को ट्रैस^{१२३} कहा जाता है। ईमानदारी, सिस्य शैशुप्य प्रथमवर्षाय श्रेय आदि व्यक्तित्व के लक्षणों को धीलशुभ्य कहते हैं। धीलशुभ्य योद्धा-बहुत स्थायी गुण है जो कई प्रवृत्तियों को मिटाकर बनता है।

इस प्रश्न पर बड़ा विचार है कि धीलशुभ्य स्थायी है या नहीं। इस बारे में हम यही कह सकते हैं कि धीलशुभ्य ऐसे स्थायी नहीं होते कि उनमें विकास-क्षमता ही ही नहीं। पर इस धर्म में वे स्थायी भी कहे जा सकते हैं कि प्रमुख और ज्ञान में वृद्धि के साथ ही मनुष्य के धारणाओं में साम्यत्व और वृद्धता या जाती है।

धील-शुभ एक दूसरे से स्वतंत्र हैं या आपस में सम्बन्ध ? इस बारे में भी यही

१२१ आलोचना (उपग्राहक विशेषण), पृ० १४३

१२२. यही

१२३. बाल मनोविज्ञान, पृ० १६६

कहा जा सकता है कि अनुभव और ज्ञानबुद्धि के साथ कुछ धीम-गुणों का संगठित हो जाना अनिवार्य है^{११४}—बाकी नहीं भी हो सकते हैं ।

भावाय रामचन्द्र शुक्ल का धीम निरूपण सिद्धान्त

भावाय शुक्ल^{११५} की राय में धीम हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सवाचार की प्रेरणा भाषणे प्राप्त करती है । इस धीम बसा की प्राप्ति भक्ति द्वारा होती है । काव्य के लेख में यह मनोविकास अपने समिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं । स्थायित्व की इसी प्रतिष्ठा द्वारा धीमनिरूपण और पाशों का चरित्र चित्रण होता है, जिस क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिन्दी का और कोई पुराना कवि नहीं आ सका । चारण-कास की प्रबन्ध रचनाओं में चरित्र-चित्रण को प्रधानता नहीं है । उसी तरह आर्यी भादि मुसलमान कवियों ने सिर्फ प्रेमपथ का निर्बंध किया है । इन धारणाओं में हम मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न स्वरूप नहीं पाते जिन्हें किसी व्यक्ति या समुदाय विधेय का लक्षण कहा जा सके ।

धीम के लिए सात्त्विक हृदय चाहिए । धीमनिरूपण के लिए किसी पात्र में धीमगुणों को अभिव्यक्त करना आवश्यक है । धीर, गम्भीर और सुसोम प्राप्त-करण की यह बड़ी विधेयता होती है कि वह दूसरे में बुरे भाव का बल्य आरोप नहीं करे ।^{११६} काव्य में चरित्र नायक में सौन्दर्य के साथ धीम की प्रतिष्ठा कर ही गई । धीम की सौन्दर्य का पूरक मान लिया गया और इसी भाचार पर धीरोदात्त धीरबलित धीरघात धीर धीरोदात्त नायकों एवं अपरिमित सौन्दर्य तथा अलौकिक धीम से सम्पन्न नायि कायों की सृष्टि की गई ।^{११७}

सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन प्रकृतियों के भाचार पर गोस्वामीजी के चरित्रों का यदि विभाजन किया जाय तो हम उन्हें भावर्ष और सामान्य में बाँट सकते हैं । भावर्ष चित्रण में हम शुक से प्राप्त तक सात्त्विक या तामस वृत्ति का निर्वाह पावेंगे । राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है । इस दृष्टि से सीता राम, भरत हनुमान और राजस भावर्ष चित्रण के अन्तर्गत एवं वररज सरसम्ब, विभीषण सुग्रीव कंकयी भादि सामान्य के अन्तर्गत आते हैं । भावर्ष चरित्रों से प्रकृति भिन्न सूक्ष्म अनेकस्वता नहीं मिलती । सीता, राम भरत हनुमान सात्त्विक भावर्ष और राजस तामस भावर्ष का उदाहरण है । साथ ही गोस्वामीजी ने समुदाय विधेय के धीम और प्रकृति के चित्रण पर भी ध्यान दिया है ।^{११८}

११४ वही पृ० ९००

११५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १८०

११६ वही

११७ समीक्षा आत्म पृ० १८६

११८. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ११८

आचार्य जगदीश पाण्डेय का वर्गीकरण

श्रियाधीनता की दृष्टि से हम शील को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

(क) लज्जशील—इस श्रेणी का व्यक्ति इन्हीं के बीच स्वयं अपनी राह बनाने वाला आचामक विरोध-समर्थ, अपनी स्वाभा से स्वयं बननेवाला और कृति-श्रम शोका होता है, ऐसा व्यक्ति मृत्युपर्यन्त अपनी सहिष्णुता, सांसारिक उत्साह, स्वामि मान और उपस्था से शोका पाठक या द्रष्टा के हृदय पर विराट भावोत्कर्ष का प्रमित प्रभाव छोड़ जाता है। बुखान्त नाटकों की भीर भावकों की गरिमा इसी में है।

(ख) शाल या शामा से शील पढ़नेवाले चरित्रों में 'आत्मविश्वास' का प्रीस्तर सँक सेना है, रामायण के सप्तमि हैं, सुधीन हैं और बहुत संस तक अनुमान भी हैं।^{११}

(ग) काष्ठशील—हृदियार सब करने के लिए शिलापट्टिका की जैसे बकरत होती है, जैसे राम के लिए प्रतिभायक रामच विसापट्टिका का काम करता है।^{१२} (घ) शिविका रूप शील^{१३}—वह है जो पात्र के अपने कर्मों बचनों से निर्मित न होकर अन्य पात्रों की श्रद्धा के आधार पर अपनी आकृति प्राप्त करता है, यथा जूलियस सीजर, ईश्वरु केसियस एन्टी तथा भीर बगठा की प्रतिभाओं से बनता है। उसका अपना योगदान केवल कपट—श्रीदास्य का है।

सफल शीलरचना सुगोम की शीमाबद्ध आकृति नहीं बनत इतिहास की मूलत कृति प्रतीत होती है जिसमें शरत्त से तालिक विश्वेव नहीं होता।

शील की शिखान्त शृंखला को हम शील-निदान कह सकते हैं।^{१४}

(क) सजीवता—शील की सजीवता प्रभावशालिता में है प्रभावोत्पादकता में नहीं। सजीव शील में प्रह, सपादान या प्रासक्ति और शंखि की विविधता पाई जायगी।

(ख) ससाग शील किसी बह मत्त बाब बह बर्ष आदि या बासना की किसी ऐकान्तिक विशेषता द्वारा निर्धारित होते हैं। इस शील से मुक्त पात्र नहीं है जिस पर पर है, जिस बासना के अधिकार से बिस है जिस बह में जिस परिस्थिति और जिस मत्तबाब में है उसी के कारण उसमें बह शील है।^{१५}

पात्र के संघर्षशील मुम की देव है शील^{१६} जहाँ पारिवारिक सम्बन्ध भी हादिक न होकर व्यावहारिक हो गये हैं।

स्वसदान शील की प्रामिभ्यक्ति में एक संमय है। इसका कुन पीस्वारमक है। बह इससे का शिखरलेपण न कर उसे प्रारमस्व करना चाहेंगा। ऐसे शील की शक्ति

१११. शील निरूपण पृ० ४

१००. वही पृ० ५

१०१. वही पृ० ६

१०२. वही, पृ० ७

१०३. वही पृ० १२

१०४. वही पृ० १३

बाबिता भी नैसर्गिक होती है।^{१०३}

(घ) मूलबन्धुत्व^{१०४} धीस ध्यष्टि में समष्टि निवेदन का व्यापित नियम है।

(घ) पिठरपाक विकास—पिठरपाक दर्शन का सख्य है—कच्चे चूड़े को घाय में पकाकर उसके मुख को परिवर्तित करने का सिद्धान्त।

बनबास की घाय में राम के चरित्र का कच्चा बड़ा रस दिया जाता है। बन बास में उन्हें सीता-विमोह, सफ़मण की मूर्च्छा और राक्षस से मुक्त करना पड़ता है। यदि वे बनबास के समय अपने कर्त्तव्य से मुकर जाते तो धीस की दृष्टि से वे परम राम हीक पड़ते।^{१०५}

(ङ) निरर्ष प्रवास—जहाँ मानवीय प्रवृत्ति या निवृत्ति सामान्य नैसर्गिकता का प्रतिरूपम कर जाय वहाँ निरर्ष प्रवास का बोध सयता है। धरत बाबू की किरन-बासा और सावित्री जो विषबा हैं—प्रम का मानसिक सुख तो लेती जसती हैं किन्तु संभोग की कामुकता से कभी धाकृत नहीं होतीं। जेस्या राजकुमारी की सखितीय निष्ठा में भी कहीं घसाबु बमन या धात्मप्रबन्धना नहीं है।^{१०६}

(च) संदिसष्ट विविधताधीस^{१०७}—वेन जामसन के नाटकों में यदि पति एक बार पत्नी के सतीत्व के प्रति संर्षक हो जाता है तो प्रत्येक परिस्थिति और दृश्य में भय और संका से भरता रहता है।

(छ) विकल्प-विसष्टधीस^{१०८}—इस धीस की धमिम्यक्ति नहीं होती व्यामिति होती है। विकल्प विसष्ट धीसों का व्यापार बाभी (स्वायत या संभावन) तक सीमित रहता है।

(ज) धीस रूपप्रधान^{१०९} न होकर जहाँ संस्कार प्रधान होता है वहाँ बासनाओं के प्रतिरिप्त संस्कार भी व्यक्तित्व के सूत्रम निर्णायक हो जाते हैं। संस्कारप्रधान धीस स्मृतिप्रधान धीस है। स्मृति में ही धमरत्व, मनुष्य का सारबत व्यक्तित्व है। अधिक्षित धामीन जहाँ घट्टहास करता है, वहाँ सुसंस्कृत व्यक्ति तिरके धोड़ा-सा मुस्कराकर अपने को धमिम्यक्त कर सेता है। 'जहाँ कठिन कंकरीसी भूमि पर व्यक्तित्व का पोषण होता है वहाँ यदि धीस में कुछ कठिनाई धा जाय तो यह उस मिट्टी में साहज्य की मुय-मुय से जली धानेबासी स्मृति, या अपने ही जीवनकास के बीते कासों की स्मृति से निर्मित होती।^{११०}

१०३. वही, पृ० १२

१०४. " "

१०५. धीस निरूपण, पृ० २३.

१०६. वही, पृ० ३२

१०७. वही, पृ० ३१

१०८. वही पृ० ३३

१०९. वही, पृ० ३४

११०. वही, पृ० ३६

(३) मन मेव प्रथवा अखण्ड प्रामाण्यरक्षी का सुन्दर ममता प्रामाण्य के दृग्ग या संबन्धित बंधा में ही पाया जा सकता है। इन्द्र एक ही साथ मन और भाषा की स्थिति है जिसमें बराबर उगाव बना रहता है। प्रेक्षक यह निश्चय नहीं कर पाता कि सामने लड़ी परिस्थिति में व्यक्ति कौन-सा मार्ग अपनाएगा। अनिश्चय की यह स्थिति दृष्ट्या की स्थिति है जो कभी बीज होती ही नहीं।^{११}

चरित्र के सम्यग् में प्रयोगवादी धारणा

अंग्रेज के प्रयोगवादी कथाकार श्री एलेन प्रिस्लेट ने अपने निबन्ध 'रिप्लेकशन फॉर दम प्रासपेक्ट्स ऑफ ट्रेडिशनल नावेल' में उपन्यासों के सम्बन्ध में कुछ सास विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका कहना है कि 'पात्र' शब्द का अर्थ महज 'बह' नहीं होता जो प्रनाम और पारदर्शी हो। उसका एक नाम होना चाहिए, बल्कि सम्भव हो तो दो नाम होने चाहिए। उसकी व्यक्तिगत विशेषताएं ही उसके कार्यों की बननी होनी चाहिए जिसके आधार पर पाठक उसे प्यार या प्यार करेगा।

प्रिस्लेट का यह भी कहना है कि पात्र को अविस्मरणीय होना चाहिए और व्यापक मान्यता के कारण उसका चरित्र बीजबन्ध भी होना चाहिए। विस्मय रस की सृष्टि के लिए सेवक कभी-कभी किसी प्रनाम बन्धे ऐम्पास या सनकी को भी उपस्थित कर सकता है। लेकिन इसपर उसे बहुत दूर नहीं से बाधा जा सकता क्योंकि अन्ततः यह तो अन्वयगत का ही पक्ष है।^{१२}

इसलिए, पात्र भी उपन्यास-लेखन का एकमात्र सक्षय मही हो सकता है कि साहित्य के इतिहास ने व्यक्ति-चित्रों का जो संघहात्म्य इच्छा कर रखा है, उसमें कुछ साहित्यिक मूर्तियों को और जोड़ दिया जाय।^{१३}

चरित्र-विकास और मनोविज्ञान

चरित्र-विकास की अनेक प्रभावितियां अब तक स्वीकार की जा चुकी हैं और भाषे भी बहुत-सी नवीन प्रभावितियों का उदय हो सकता है।

पात्रों के सामान्यतः अन्तरंग और बहिरंग—दो तरह के चरित्रित किये जाते हैं। अन्तरंग में मन में उठनेवाले भाव कार्य का कारण और अज्ञेय भावों का संघर्ष और उसके कारण तथा परिस्थितियां मन की भीतरी बंधा और उसके बाह्य प्रकटीकरण का रूप कर्तवी और करनी का अन्तर, स्वप्नों के कारण और अन्तःकरण आदि अनेक बातें हो सकती हैं जिन्हें पाठक जान या समझ सिया जाहूँता है।

बहिरंग चित्रण का सम्बन्ध पात्रों की साहसि वैचक्रुवा अवस्था नाम प्रिया, अनुभव आदि से होता है।

अन्तर्लक्ष्य चित्रण के लिए मनोविज्ञान का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। मनोविज्ञान की नवीन धारणाओं का प्रभाव चरित्र-चित्रण के चित्र पर भी पड़ा है। हिन्दी उपन्यासों में इस आधार पर किये गये चरित्रांकन की पद्धतियों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। उनमें से कुछ को निम्नलिखित ढीपक दिये जा सकते हैं।—

- (१) अन्तःश्लेषणों का चित्रण (माटिबेचन)
- (२) अन्तर्दृष्टि (इन्टरनल कन्सिडरेशन)
- (३) अन्तर्बिबाद (इन्टीरियर मोनोलोग)
- (४) मनोविक्षेपण (साइको एनेलिसिस)
- (५) मुक्त आसय (फ्री एसोसियेशन)
- (६) बाधकता विरसेपण (एनेसिसिस ऐन्जिस्ट्रेंस)
- (७) स्वप्न विरसेपण (ड्रीम एनेलिसिस)
- (८) नियन्त्रण प्रयत्नीकरण का विरसेपण—(डिस्प्लिसिमेन्ट एनेलिसिस)
- (९) सम्मोह विरसेपण (हिप्नो एनेलिसिस)
- (१०) विरसेपण (एनेलिसिस थाफ रिफ्लेक्शन)
- (११) पूर्व कृत्वात्मक प्रयासी (केस हिस्ट्री मथ)
- (१२) अन्तः सहसृति परीक्षा (वर्ब एसोसियेशन टेस्ट)^{११}

चरित्रों का क्रम-विकास : प्रेमचन्द युग

प्रारम्भिक युग

कथा-सहितसागर की भूमिका में श्री वैजय ने सोमदेव के इस ग्रन्थ की प्रशंसा में लिखा है—“भारतवर्ष कथा-साहित्य की सच्ची भूमि है। इस ग्रंथ का अंतिमी अनुवाद श्री० एच० टामी ने किया है। भूमिका में प्रायेण कहा गया है—“श्रवणकालीन कथाएँ, रक्तवान करनेवाले बँतारों की कहानियाँ सुन्दर काव्यमयी प्रेम-कहानियाँ और देवता मनुष्य एवं मनुष्यों के युद्ध की कहानियाँ भी इस संग्रह में हैं।”

इस तरह वैद उपनिषद् पुराण जाठक, रामायण महाभारत आदि में अव्यक्त कथाएँ तथा बहुविध चरित्र मिले पड़े हैं। महाभारत तो मानवता का महात्म महाकाव्यमय उपग्राह ही है जहाँ द्रौपदी, कुन्ती कर्ण जैसे धार्मिकयुद्ध और रक्षुत्वात्मक चरित्र मिले पड़े हैं। ऐसे चरित्र आद्य के उपन्यासों में भी विहित नहीं हो सके हैं। किन्तु इन ग्रंथों में चरित्र-विकास को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। संवाद-सूक्तों का सहारा अवश्य लिया गया है जो भारतीय साहित्य के अनेक अर्थों के उत्थान स्वयं हैं। संवाद-सूक्तों के अन्तर्गत सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक मनोरंजक और शिक्षाप्रद भाष्य प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए एक कहानी है ‘उदर-ज्वालना विषका आचार है’ श्रुत्येद १-२४१०, ऐतरेय ब्राह्मण ७-१ नीतिमंजरी पृष्ठ २०-२१। इस कथानक में अस्मिन्निष्ठ इन्द्राहु-नरेस राजा इन्द्रिचन्द्र के ही हैं जिनके जीवन की अंतिम अंकी विश्वमात्र की अमरपुरी में विश्वासार्थ पड़ी थी। आद्य भी पुण्यसन्निता मानीरथी अन्की अत्यव्यक्त की मनोरम कहानी भावुक अर्थों के अर्थों में सुनायी हुई प्रवाहित होती है। एक दूसरी कहानी है विक्रमोर्धवी। पुरुषरा और अर्धवी की यह कहानी वेद तथा पुराणों में खूब प्रसिद्ध है। कालिदास ने इसी कहानी को नाटकीय रूप प्रदान किया और इसे निरालम्ब प्रेममय रूप में चित्रित किया। यद्यपि वैदिक काल में इसका रूप कुछ अलग ही था। वैदिक कहानी में अन्तः

१ कथा सहितसागर, भूमिका, पृ० २१

२ वैदिक कहानियाँ, पृ० १

३ वही, पृ० ७

४ उदरवी, पृ० ५

को स्थापना करनेवाले पुस्करवा का परोपकारी और मानव-कल्याणकारी रूप चित्रित है। पुस्करवा मूर्ध है और ज्वरणी उषा जिनका परस्पर संयोग रात्रिक कास के लिए होता है। विपुल उषा की लोच में सूर्य दिन भर उसके पीछे घूमा करता है। इस रहस्यमय वास्यान को कबिन्दर कासिदास ने प्रणय का रूप प्रदान किया।^१ इन प्रारंभिक कथाओं के पात्र प्रायः ऋषि मुनि ब्रह्मचारी, राजा तथा पुरोहित के रूप में ही मिलते हैं।^२ किन्तु इन पात्रों में व्यक्तित्व का सर्वथा समान तथा विस्तृत परिचय भी नहीं रहता था। प्रायेण कबिन्दर वैदव्यास वास्मीकि जैसे महान कवियों ने वैद उपनिषद्, निरुक्त संहिता ब्राह्मण ऋग्य सादि के आधार पर महाभारत और रामायण सादि ग्रंथों की रचना की। इन्हीं ग्रंथों में सर्वप्रथम जीवित पात्रों वास्तविक पात्रों की मूर्ति हुई जिन्हें मात्र बर्ण शरित्र या व्यक्त-शरित्र नहीं माना जा सकता। इनमें बर्म और दयन गोम होकर पात्रों को प्रमुखता मिली। प्रमुख पात्रों का परिचय देने के लिए भ्रमण-भ्रमण सर्व और पर्व बने जैसे एकुन्दतोपास्यान रामोपास्यान सावित्री उषास्यान नसोपोपास्यान कर्षपर्व, होमपर्व, धत्यपर्व सादि। इन शरित्र-ग्रंथों से प्रेरणा लेकर ही तुसडी ने श्री रामशरितमानस की रचना की। सापुनिक कवि रैपिमीशरण गुप्त ने भी कहा—“राम तुम्हारा शरित स्वर्ग ही काव्य है कोई कवि नव शाय सहज संभाव्य है।”

पुराणों में रामायण और महाभारत की कथाओं का व्याख्यात्मक परिचय पहले संयुक्त था। पुराणों के पांच खण्डों में बंशानुसूच शरित्र-बर्णन को भी स्थान प्राप्त है। जैसे ब्रह्मपुराण में कृष्णशरित्र पद्मपुराण के भूमिखंड में सुवत शरित सादि। इन महान शरिर्षो को केवल धौपग्यासिक कल्पना ही नहीं माना जा सकता। उत्कलीन परिचित्वादि के अनुसार इन शरिर्षो में बहुत कुछ सत्य का धानास किया जा सकता है।

पुराणों के शरित्र-विकास प्रत्यक्ष नहीं हो पाये हैं। कथाओं और धास्तरकथाओं का धारण्यजनक मेल बिठाकर पात्रों की बंशावली और पारिवारिक संबंधों को जोड़ा गया जो कथाकार के लक्ष्य मस्तिष्क के परिचायक हैं। किन्तु, रामायण और महाभारत में पात्रों का बाह्य और आन्तरिक शरित्र-विकास संयुक्त रूप में उपस्थित किया गया है। वेदों और उपनिषदों की लक्ष्मी का अनुपमनकर पुराणों में भी पुत्र, गृह-मुक्तादि की पुत्रादिध धनप्रद मंत्र दुर्गापूजा विधि जलदान प्रशंसा सहजमन विधि स्त्रीबर्ण सादि^३ कथाओं को सामिल किया गया जिनसे शरित्र-विकास दब गया। धास्तरक से इन पौराणिक कथाओं ने दानकथाओं का रूप ले लिया, जिन्हें संस्कृत के कथा संघों में विकसित रूप प्रदानकर सजीव और मनोरञ्जक बनाया गया। इन कथाओं में अनुप्य की

१. वैदिक कहानियाँ, पृ० ११

२. हिन्दी कहानियों की प्रित्पविधि का विकास पृ० ८

३. हि० क० की प्रि० का वि०, पृ० ४

८. हिन्दुत्व, पृ० १६२

९. वही, १८१

उन्हें बोलने और समझने वाले पशु-पक्षियों पेड़-पौधों का प्रयोग चरित्र-विकास की व्यापक दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कथा सारिस्तावर में तो राजतन और पद्मवंश बाबू-टौना छम-कपट, हत्या और युद्ध बीतान पिशाच यज्ञ, प्रेत से लेकर पशु-पक्षी मिश्रणमें साधु, पियलकड़, कुषारी बेस्या बिट और कुट्टमी—इन सभी की कहानियाँ एकत्र हो गयी हैं।^{१०} बिदेसी साहित्य में 'इसोप्ट केबुस्थ' में भी ऐसे ही पात्रों को स्थान दिया है। इन भारतीय कथाओं की खास खूबी यह भी है कि मानव-जीवनना से इनका कहीं भी बिलगाव नहीं हुआ है यद्यपि मानव-जीवन की सम्यक अभिव्यक्ति इनके द्वारा नहीं हो सकी है। यह उनका उद्देश्य भी नहीं था बल्कि कि पंचतन्त्र के रचयिता ने शुरू में ही यह कहा भी है कि 'इस ग्रंथ का उद्देश्य राजकुमारों को शिक्षा देना एवं उन्हें पटु बनाना है।'^{११} संस्कृत साहित्य के ग्रन्थ गणकारों ने बंदी सुबंधु बाणभट्ट हुए घाबि धाठे हैं जिनकी रचनाओं को उपन्यास माना जा सकता है यद्यपि इन पर भी पौराणिक चरित्र काल्पितों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है तथा चरित्र-विकास की शैली का भी प्रभाव है। सातवीं सताब्दी के लगभग बंदी ने दसकुमारचरित की रचना की। सुबंधु ने बासबबत्ता की रचना की जिसकी कथा बृहत्कथा से ली गयी। इससे स्पष्ट है कि सुबंधु ने बासबबत्ता को लोककथा का साहित्यिक रूप दिया जिसकी शैली में पर्याप्त कथा भाव है।^{१२}

बाणभट्ट को कारंबरी और हर्षचरित में औपन्यासिक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कारंबरी की कथा की बीज-बिन्दु लोककथा (बृहत्कथा) से ही प्राप्त है।^{१३}

इन रचनाओं का व्यापक प्रभाव हिन्दी के धार्मिकीय ग्रन्थग्रंथ काल्पितों पर पड़ा और उतने काल्पित एवं चरित्र काल्पितों की एक पुष्ट परम्परा हिन्दी में उठीसे प्रारंभ होती है। लेकिन चरित्र विकास की दृष्टि से हिन्दी के ये चरित्र-काल्पित ग्रंथग्रंथ महारकाल्पितों के बिलने निकट हैं, उतने संस्कृत कथा-ग्रंथों के निकट नहीं। इन्होंने कारंबरी घाबि की परंपरा को ग्रहण नहीं कर पुरान-शैली को ही विकसित किया जिसका साहित्यिक रूप कालिदास के सर्वश्रेष्ठ महाकाल्पित रघुवंश और कुमारसंभव भारतीय के चरित्रकाल्पितों में एवं माय के चिमुपाल वच घाबि में प्राप्त होता है। प्रधान रूप से ये काल्पित ऐतिहासिक ही होते थे जिनमें कल्पना का सहारा बहुत कम लिया जाता था। इसीलिए इनमें विविध चरित्रों का जिन रूपरेखा नहीं मिलता जिन्हें मानव-चरित्र कहा जाता है और न धाज के परिवर्तित जीवन-मूर्त्यों की रसा ही इन महाकाल्पितों, चरित्र-काल्पितों और कथा कहानियों द्वारा संभव है। इनका उद्ये उतनी युग के लिए उपयुक्त है। इसीलिए ये धाज

१० कथा सारिस्तावर, पृ० २२

११ कुछ बिचार, पृ० २२

१२ भारतीय प्रमाख्यान की परंपरा पृ० ४५

१३ कथा सारिस्तावर, भूमिका, पृ० ७

१४ वही, पृ० ६

साहित्यक संघ के रूप में ही पड़े जाते हैं।

शरित्तरसम सम्य है। इसका पुराना उद्भव रूप 'शरित्' बहुत समय से प्रसिद्ध था। बोलचाल की भाषा में बड़े सिर से शरित् बोला जाने लगा था और पद्य लिखते समय भी कवि लोग इसका व्यवहार कर देते थे।^{१५}

प्राकृत अथर्ववेद साहित्य में शरित्कथा-काव्यों की भरमार है। विद्यापति की क्रीतिसत्ता उस युग के गुणानुबन्धमूलक शरित्काव्यों में सबसे अधिक प्रामाणिक है। स्वयंभू पुष्पवंत, धनपाम आदि प्रतिभाशाली बौद्ध कवियों ने भी ऐसे ही शरित्काव्यों का सृजन किया।^{१६} हिन्दी साहित्य के आदिकाल में यह परंपरा सूब धागे बड़ी। राजार्यों के गुणानुवाद के अलावा भयवान का गुणकथन भी कविचंद्र जैसे कवियों ने बसाबस शरित् जैसे शर्षों द्वारा किया। क्रीतिसत्ता के कवि विद्यापति ने भी पाठकों को पुराण का प्रसंग मान लिया—“पुस्य कहानी हों कहीं असु पसयाने पुनू।”^{१७}

इन शरित्काव्यों की संज्ञा की-कपीच एक ही है। कुल मिलाकर इन्हें ऐतिहासिक रोमांस की संज्ञा दी जा सकती है। बीसलदेव पसो आस्ता उदय की यशोगायार्यों बोला मारुता दूहा और राम्या, सिंहासन बलीसी आदि रचनाओं में काव्यनिक प्रेमशरित् और ऐतिहासिक-सामाजिक शरित् के आचार पर रोमांचक जीवन-शरित् मड़े पये। पर इनमें शरित् शिष्य को बसा स्थान नहीं दिया गया है, बीरोस्सास ही प्रधान है।^{१८}

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल या मध्यकाल में शरित्प्रधान प्रेमकाव्यन काव्यों की रचना हुई जिनमें शरित्-वर्णन को प्रमुखता मिली। किन्तु दोनों प्रकार के काव्यानों में मनोविकारों के इतने मिल्न-मिल्न प्रकृतिस्य स्वरूप नहीं दिखाई पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति या समुदाय का या समुदायविषेय का लक्षण कह सकें।^{१९} इसी काल में बामनी का पद्मावत मंझ की मधुमामती, उसमान की चिदावनी गुर मुहम्मद की इन्द्रावती और बुद्धहरन की पुष्पावती आदि शरित्काव्यों की रचना हुई। संज्ञा और शरित्कथन की दृष्टि से तुलसी का रामशरित्मानस केदार की रामचन्द्रिका आदि शर्षों के द्वारा इसी परंपरा का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शरित्-विकास (जीन-निरूपण) के क्षेत्र में मोस्वामी तुलसीदास को पहला प्रयोगकर्ता कवि माना है। [मोस्वामीजी को छोड़कर हिन्दी का और कोई पुराना कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता^{२०}]

हिन्दी के प्रारंभिक ब्रजभाषा पद्य बाठों-साहित्य को हिन्दी की प्रारंभिक कहा गया कहा जा सकता है। 'बीरासी वैष्णवकी बाठों' 'बो सी बावन वैष्णवकी बाठों'

१५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० २१

१६. वही

१७. आदिकाल, पृ० १२

१८. त्रिवेणी पृ० १५२

१९. त्रिवेणी पृ० १५२

२०. वही

आदि ग्रंथों में अधिक से अधिक कथातत्व के वर्तन होते हैं। इनमें एक छोटी-सी कथा वस्तु, एक बटमा और इन दोनों का आरोह प्रारोह तथा इनके विकास की एकसूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन कथाओं का ध्येय वही है कि ब्रह्मचर्य बर्म सर्वोत्कृष्ट है और ठाकुरजी परम महान हैं।^{२१} उदाहरण के लिए 'बो सी बाबन ब्रह्मचर्य की बार्ता' में "भी हुसाईजी के सेवक बो प्रेठ उदरे तिमकी बार्ता" है। कथा के अन्त में कहा गया है— 'मगबत्सेवा के प्राये सब बर्म तुच्छ हैं। यासुं अधिकी कोई बर्म नहीं है।

सो वे लोगों प्रेठ भी हुसाईजी की कृपासे मगबत्सीवा में गये ॥ बार्ता संपूर्ण ब्रह्मचर्य ॥"^{२२}
११९।

वेब से लेकर बार्ता-साहित्य की प्रमुखता रही है जिसे कभी विकास, कथा चरित्र, उसी कहानी, कथा आदि में अभिव्यक्त किया गया। इनमें नायक पात्र चरित्र हीरो-हीरोइन को प्रधान भूँज माना गया और कथा गीत रही। रामायण-महाभारत के बाद चरित्र-विकास (हीरोइटर पेरिड) को प्रधानता मिली।

धार्मिक युग यानी १७-१८वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने पर यह परम्परा समाप्त होती बीस पड़ती है। तब 'कथा' शब्द बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होने लगा।^{२३}

वैदिक काल में कथाएँ देवताओं की स्तुति और यज्ञ कर्मों के बीच लिखी रहीं। उनका ध्येय भी विमुक्त धार्मिक था। उपनिषद् काल में कथाएँ धारमज्ञान और प्राप्प्यात्म चर्चा से भरी रहीं। पौराणिक काल तक धाते-धाते उनमें जीवन की सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्ति होने लगी। बर्म समाज राजनीति का समावेश होने लगा। इस प्रभाव का उदाहरण सम्पूर्ण परबर्ती संस्कृत कथा साहित्य में मिलता है। पानी साहित्य में कथाएँ अपेक्षाकृत छोटी होकर बर्मप्रचार में उपयुक्त हुईं। प्राकृत और अणुप्रकाश में कथाएँ जीवन के शौकिक और यथार्थ बचतन पर आयीं। इसी समय प्रेमाख्यान और मनो रंजक कथाओं की सृष्टि हुई। कथा के इस विकास का अरम उत्कय भारतकाल और पायाकाल में हुआ एवं मध्ययुग के प्रेमाख्यानों और बार्ताओं में उनका पर्वबसान हुआ।^{२४} हिन्दी साहित्य का प्रारंभ १८०० ई० के लगभग होता है। भारतसे के पूर्व का १८०० से १८२८ ई० कथा-साहित्य मुख्यतः पौराणिक प्राख्यानों पर आधारित है। इस समय के तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं—भी लस्मूसाल का 'प्रेमसागर', सदन मित्र का 'नासिकेठो-पाखान' और इत्यादस्ता खा की 'रानी केठकी की कहानी'।^{२५}

पहले दोनों ग्रंथ पौराणिक आधार पर लिखे हैं। पर 'रानी केठकी की कहानी' मौलिक रचना मानी जाती है जिसमें 'प्रेम' सभी पात्र उच्च मध्यवर्गीय हैं। डा०

२१ हिन्दी कहानियों की अिस्पष्टि का विकास, पृ० ३२

२२ बो सी बाबन ब्रह्मचर्य की बार्ता, पृ० २१०

२३ आदिकाल पृ० ३९

२४ भारतीय प्रेमाख्यान की परंवर, पृ० ४१

२५ हि० क० की अि० का अि०, पृ० ३३

२६ " " " " पृ० ३७

हजारप्रसाद द्विवेदी 'इसे मुस्लिम परंपरा की अंतिम कहानी' मानते हैं।^{१०}

इसमें ऐतिहासिक नायक-नायिकाओं की तरह चरित्र चित्रण किया गया है जिसका व्यक्तित्व इसा-इसाया-सा प्रतीत होता है। रानी केतकी और कुंवर उदैमान का प्रेम, फिर दोनों राज्यों में लड़ाई, जाहू-टोने का करिश्मा अन्त में दोनों की छादी।^{११} लेखक ईशाप्रसाद साँ ने इस संबंधी कथा को 'कहानी' कहा है। इसी कारण हिन्दी के कुछ आलोचकों ने इसे हिन्दी की पहली कहानी माना है। लेकिन यह पूर्णतः अशुद्ध-निक कारण है। फिर भी इतना निश्चित है कि हमारे आलोच्यकाल में कथा की दिशा में इसका मुख्य सबसे अधिक है।^{१२} इसके बाद १८३७ तक यतिरोध रहा। 'भारतेन्दु से पूर्व तक का हिन्दी कथासाहित्य उपन्यास और कहानी किसी भी स्तर में नहीं जा सकता, क्योंकि न इसमें उपन्यास-कहानी की शिखरिधि थी और न कोई भाव विशेष।'^{१३}

डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस विकास को ही प्रारंभिक विकास माना है।^{१४} परन्तु, श्री शिवदानसिंह इस विकास को कोई महत्त्व नहीं देते। उनका कहना है कि इस कहानी को आरंभ-बिन्दु बनाकर हिन्दी कहानी के उत्थान और प्रत्यावृत्तन की बातें व्यर्थ हैं चाकर तब जबकि पूरी १९वीं सदी में केवल एक-दो कहानियाँ लिखी गईं—एक 'राजा भोज का सपना', दूसरी, 'अद्भुत अपूर्व सपना'। इसी समय में अनेक उपन्यास लिखे गये, लेकिन आधुनिक कहानियों का प्रारंभ २०वीं सताब्दी में ही आकर हुआ।^{१५}

भारतेन्दु-युग

इसी समय में 'हमीर-हठ', 'राजसिंह', 'महामय', 'सुमोक्षमा' आदि कई आख्यायिका प्राप्त होती हैं। किन्तु, वर्तमान कहानियों के मुकाबले में इनका मुख्य बहुत कम है। इन कहानियों में पात्रों की स्थिति और आर्थिक विकास की व्याख्या अधिक और घटनाओं के क्रमिक विकास का वर्णन कम मिलता है। एक कहानी 'कुछ आपसी कुछ अलगसी' इसका उदाहरण है।^{१६} चरित्र-विकास की दृष्टि से १९वीं सताब्दी अर्थात् आरंभिक काल की कहानियाँ काफी पीछे थीं।^{१७} ईशाप्रसाद साँ के उच्चवर्गीय पात्रों में विश्वसनीयता और भावना का निरन्तर अभाव है। सन्सुमान के 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पञ्चीसी' के पात्र पौराणिक हैं। उनमें संवाद नाटकीय प्रभाव से सृज्य और घटनाओं

१० हिन्दी साहित्य

११ हि० क० की सि० वि० का वि०, पृ० ३७

१२ वही, पृ० ३८

१३ वही, पृ० ३९

१४ हिन्दी पुस्तक साहित्य पृ० ३४

१५ हिन्दी साहित्य, पृ० ३०

१६ हि० क० का वि० अ०, पृ० ८९

१७ हि० क० का वि० अ०, पृ० ८९

की प्रधानता है। राजा शिवप्रसाद सिंघारैहिर के पाठों में भी चरित्रिक विशेषताओं के बर्णन नहीं होते।^{११}

भारतेन्दु युग में मुख्यतः दो प्रकार के पाठों का सुजन हुआ—चमत्कारिक और सामयिक। इस युग में चरित्रों का किञ्चित्मान ही विकास हुआ। तोता-मैना पुन बकाबली छत्रीली भटियारिन हाजिमताई घाबि में घाये चरित्र कल्पित और विचित्र भी हैं। यह युग कथा-विकास से अधिक समस्यामूलक नाटकों की रचना के लिए प्रसिद्ध है। और यह युग बहुतेरे सुधारवादी पाठोक्तों और समस्याओं का युग था भी। अंग्रेजों के प्रभाव से नई चम्पता और शिक्षा का विकास हो रहा था। १८८८ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद से देश में राष्ट्रीय जागरण की सहर फैल रही थी और इसी सिलसिले में बिदेसी साहित्य से भी हिन्दी का संबंध बढ़ा। इस युग में विद्वेष रूप से नाटक और उपन्यास रचे गये कहानियाँ कम यद्यपि प्राचिन कथा-विकासों का विकास यूरोप में हुआ न कि भारत में।^{१२} युग-जीवन की जरूरतों से प्रेरित यूरोप के सांस्कृतिक जागरण काल में साहित्य और कला के क्षेत्र की किम्वदीसता इसकी वैदिकपूर्व और समृद्ध न होती ता संभव है कि उपन्यास-कला को पूर्ण प्रीकृता और उत्कर्ष प्राप्त होने में और भी अधिक समय बनता। वहाँ भी तो उसमें कई सताभियाँ लज ही पयीं।^{१३}

परन्तु, फिर भी हिन्दी उपन्यासों का विकास केवल पाठ्यकार्य उपन्यासों की प्रेरणा से ही नहीं हुआ। हिन्दी से पहले बंगला में उपन्यासों की रचना होने लगी थी। उन्हीं हिन्दी में अनुबाधित किया गया और स्वतंत्र रचनाओं की भी सृष्टि हुई। प्रेमचन्द के घामन तक नहीं सिंसिसा जायी रहा। इस बीच आचार, धर्मनीति और समाज सुधार की भावनाओं से प्रोत्प्रेत उपदेष्टात्मक एवं मनोरंजन के लिए तिमस्ती और ऐसारी उपन्यास लिखे जाते रहे। इसलि एसे उपन्यास साहित्य की स्वावी सम्पदा नहीं बन सके। मुंसी प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यासों को प्रीकृता और चरित्र प्रदान की जो बंदिम रबीन्द्र और धरत ने बंगामी उपन्यासों को या महान पाठ्यकार्य उपन्यासकारों ने यूरोपीय उपन्यासों को प्रदान की। वस्तुतः प्राचिन हिन्दी उपन्यासों की बरंपरा का प्रारंभ प्रेमचन्द से ही होता है।^{१४}

रामचन्द्र सुक्स प्रभुवि घालोचक लाला भीनिबास दास के उपन्यास 'परीसा-पुर्' को हिन्दी का प्रथम और गये शिस्कों में बजा उपन्यास मानते हैं। इसका प्रकाशन १८८२ ई० में हुआ था। पर बा० माताप्रसाद गुप्त ने १८७१ में प्रकाशित 'मनोहर उपन्यास' को प्रथम मौलिक रचना माना है। इसके संपादक सदानन्द मिश्र एवं अमुनाय मिश्र हैं और मेरुका का नाम प्रसाद है।^{१५} जीवन के अंतिम दिनों में भारतेन्दुजी का

११. वही

१२. हिन्दी पद्य साहित्य, पृ० ४८

१३. वही

१४. वही, पृ० १८

१५. हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ३४

ध्यान 'उपन्यासों' की ओर गया था। उन्होंने कई व्याख्यायिकाएँ भी लिखना प्रारंभ किया था जिन्हें वे पूरा नहीं कर पाये। फिर भी उनके उत्साह दिसाने पर कई लेखकों ने कितने ही ग्रंथों का अनुवाद किया था। श्री गोस्वामी रामावरणजी ने 'दीप निर्वाण' तथा सरोजिनी एवँ बाबू गदावरसिंह ने कांबरी तथा दुर्गेशमंदिनी का अनुवाद किया था।^{४०} मधुमती स्वर्णमता अन्नप्रसा, पूर्णप्रकाश रामारामी, सौन्दर्यमयी भारिनी इसी प्रकार प्रसिद्ध हुईं।^{४१} इसके पश्चात् मृतम चरित्र मृतम ब्रह्मचारी श्री प्रज्ञान एक सुज्ञान, निःसहाय हिन्दू विधवा विपत्ति, जया लक्ष्मणता कामिनी नये बाबू, सास पतीहू बड़ा भाई, भूत रक्षिकसास आदि कई उपन्यास लिखे गये। इन सामाजिक ऐतिहासिक उपन्यासों के अलावा बाबू देवकीनंदन लक्ष्मी द्वारा अन्नकान्ता एवँ अन्नकान्ता सम्पत्ति नामक प्रसिद्ध ऐयारी और तिमिस्ती उपन्यासों की रचना हुई। इन ग्रंथों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि १९११ तक हिन्दी में ऐसे ही उपन्यासों की बाढ़ रही। देवकीप्रसाद शर्मा अयनामप्रसाद चतुर्वेदी किजोरीभाल गोस्वामी हरेकृष्ण जोहर और अन्नशेखर पाठक आदि ने ऐयारी उपन्यासों का तांता बांध दिया। भोपालराम महमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा अंगबहादुरसिंह, शेरसिंह विजयनाथय्य बिबेदी आदि कई अन्य लेखकों ने आसूरी के अतिरिक्त रोमांचकारी कथानकों की कानापूरी की।^{४२}

इस साहित्यिक लब्धजागरण का आभास हिन्दी के प्रथम उपन्यास परीक्षा-गुरु से ही मिल जाता है। इसके प्रकाशन के पूर्व हिन्दी भाषामायी जनता संस्कृत धरती फारसी के रोमानी विस्मयजनक आदर्शमूक और बनावटी साहस छल-छद्म से भरे भाषानों से ही अपना मनोरंजन कर रही थी।^{४३}

पर अंग्रेजी साहित्य से परिचित होने के बाद हिन्दी के लेखक नये युग की आकांक्षाओं और सामाजिक परिस्थितियों को समग्र रूप में व्यक्त करने के लिए काव्य की शास्त्रीय रुढ़ियों से मुक्त एक नये साहित्य रूप की ओर मुड़े। इस प्रयत्न में पहली सफलता परीक्षा-गुरु के संस्कृत की निवास दास को मिली। यह साक्षात् श्रीनिवास दास (१९०८-४४) मारलेगुमंडल का एक प्रतिभाशाली चरित्र थे।

साक्षात् श्रीनिवासदास^{४४}

फिर भी आधुनिक दृष्टि से 'परीक्षा-गुरु' की संवैधानिक योजना में अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं। सबसे-सबे अभाव और दुष्टान्त, मूलकथा से विस्तृत स्वतंत्र विवरण और उपरोक्तों से कथाप्रवाह में बाधा हुई है। पर मर्याद जीवन के आधार पर एक सौंदर्य और प्रसरणशील कथा का नियोजन उन्हें मातृकीय ढंग से विकसित करना और

४० आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० १७८

४१ वही

४२ हिन्दी मध्य साहित्य, पृ० १६

४३ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ६४

४४ परीक्षा-गुरु

चरित्रों में मानवीयता के कारण वे हमारे जाने-बूझने भीते-बाबते मनुष्य के रूप में पाठकों के सामने आते हैं।^{४५} एक नये मध्यमवर्गीय व्यापारी की स्थिति का चित्रण करते हुए इस उपन्यास में नई और पुरानी पीढ़ी का वैपश्य भी संकेतिक रूप में दिखाया गया है। इसका नायक मदनमोहन लक्ष्मिधर मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है और पुराने मध्यमवर्ग की संस्कृति में पने उसके पिता का रूप बूझता ही था।^{४६} लेखक ने लिखा है—“मदनमोहन का पिता पुरानी बात का धारणी था। वह सोचों को मूठी ठकक-भकक बिलाने के लिए फिजूलखर्ची नहीं करता था। काम-बचै के कारण हाकिमों और रईसों से मिलने का उसे समय नहीं मिल सकता था। क्योंकि पुरानी स्त्रियों के अनुसार बेद्योप्रति का भार केवल राजपुत्रों पर समझा जाता था।”^{४७} इस उपन्यास का एक पात्र ब्रजकिशोर कहता है—“हिन्दुस्तान की भूमि में उन्नति के सब साधन हैं फिर भी अकर्मण्यता के कारण देशवासी उन्नति नहीं कर पाते हैं।”

इस तरह परीक्षा-गुरु का चित्रण काफी चौड़ा है और उसपर तत्कालीन नागरिक समाज की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ प्रकीर्ण हैं। केवल औपन्यासिकता की दृष्टि से भी यह अपने ढंग की अकेली कृति है।^{४८}

लेखक ने पुस्तक की भूमिका में ही तत्कालीन कथाओं के चरित्र विकास की संक्षिप्त चर्चा करते हुए अपने पात्रों के बारे में कहा है मदनमोहन ब्रजकिशोर चुन्नीलाल, शिमुदवास कौन हैं इनका स्वभाव कैसा है हासत क्या है सब मेरे मीके पर कुलता जमा आयाया।^{४९} तात्पर्य यह कि परीक्षा-गुरु के पात्रों को अपेक्षित स्वतंत्रता मिथी वे मात्र लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं थे। लेखक ने ब्रजकिशोर के मन का विश्लेषण करते हुए लिखा—“इस समय मुझसे मदनमोहन की कुछ सहामाता न हो सकी तो मैंने संसार में खग्न लेकर क्या किया।”^{५०}

मूलतः बह्मचारी और सौ भजान एक सुजान—मी बामदृष्ट मट्ट द्वारा सिद्धित हो गतिक उपन्यास है। इनमें प्रथम-कल्पना का टकसानीपन या उपन्यासकता की विशेषताएँ तो नहीं मिलतीं किन्तु वे सुन्दर विचारों से भरे हुए हैं। इनमें उपमा भाषि धर्मकारों से लड़ी हुई जाया का साहित्य है और प्राकृतिक वर्णन मरे पड़े हैं। पात्रों का चरित्र चित्रण अच्छा हुआ है। कहा जाता है कि मट्टजी के पात्र वैसे ही हैं जैसे उन्होंने वास्तविक जीवन में पाये थे। ‘सौ भजान एक सुजान’ के चम्पू और पंचांगन के चरित्र में मट्टजी के चरित्र की मजकूर दिखाई पड़ती है।^{५१}

४५. धामोचना (१३), पृ० १२६

४६. वही

४७. परीक्षा-गुरु

४८. धामोचना (उपन्यास अंक), पृ० ६८

४९. परीक्षा-गुरु (निवेदन)

५०. वही पृ० १३०

५१. धामोचना (१३) पृ० ७४

इस समय संस्कृत कथा-साहित्यकारों के बीच पर भी उपन्यास लिखने के कुछ प्रयोग हुए। इसके उदाहरण हैं डा० बगमोहनसिंह का क्यादा स्वप्न (१८८८ ई०) और पंडित चंकिारत ध्यास का आरभ्यं वृत्तान्त (१८९३ ई०)। प्रथम कृति मध्यप्रधान, प्रसङ्गत, विचारमय कथनों से युक्त और सरस शृंगारी कविताओं से भरी है। दूसरी कृति प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की उज्ज्वलता की भावनाओं, विस्मयकारी विवरण और सामाजिक घातकों से युक्त है। इसका एक पात्र अंधेरा है जो पुरातत्व का ज्ञाता है और विमावती रंग में रंगे हिन्दू धर्म-विभूत, प्रत्येक भारतीय वस्तु के उपहासकर्ता बंगाली महाद्यय की नसलगा भी करता है। यह बंगाली पात्र अपने अरपोक स्वभाव के कारण पाठकों के हास्य-विनोद का भी सामन है।^{११}

किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२)

संबी प्रथम तक हिन्दी की सेवा करने वाले श्री किशोरीलाल गोस्वामी के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है— 'इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव बिन्दु बासनाओं के कम-रंग विचारपूर्ण कथन और जोड़ा-बहुत शरिर्क-विषय भी पाया जाता है।^{१२} संवत् १९१५ में इन्होंने 'उपन्यास' मासिकपत्र का प्रकाशन किया और १२ छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। पत्र साहित्य की दृष्टि से इन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।^{१३} इनके अधिकांश उपन्यासों के नाम प्रायः नायिका और कमी-कमी नायक के नाम पर रखे गये हैं।^{१४} इन्होंने एक भी बुखान्त सामाजिक उपन्यास नहीं लिखा। कई बुखान्त बंगला उपन्यासों का अनुवाद करते समय इन्होंने उन्हें सुखान्त बना दिया। उन्हें यह सझ नहीं कि बर्धनिष्ठ और शरिर्क पात्र के जीवन का अन्त दुःखमय हो।^{१५}

इनकी रचनाओं में जीवन और समाज के कतिपय यथार्थ बिन्दु संवादों की रूढ़ि के उपन्यासकारों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक योजना एवं हृदय और रूप वर्णन की कसा निकटे हुए रूप में प्रस्तुत की गयी है। इनके अधिकतर पात्र एक-से हैं यद्यपि उनकी कुछ अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ प्रबल परिलक्षित होती हैं।^{१६} पात्रानुसार भाषा रखने के क्षेत्र में उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा कृत्रिम और विचित्र-सी हो गई है।^{१७} पात्रों के विषय में अपना महत्वपूर्ण प्रकाशित करने और उपदेश देने की

१२ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ७०

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४९९

१४ वही पृ० १००

१५ अथवा त्रिवेणी लक्ष्मणता तारा, हीराबाई, लीलावती आदि

१६ आलोचना (१३), पृ० ७४

१७ वही

१८ वही, पृ० ७६

उठावनी के कारण इनके उपन्यासों में प्रायः कथा-प्रवाह एक-एक जाता है।^१ इनके प्रतिकारा पात्र मध्यम वर्गीय हैं और उनका चित्रण रोमांटिक प्रम-गति पर हुआ है। इस तरह उनके पात्रों पर रीतिकाल के नायक-नायिका भेद की गहरी छाप है।^२

देवकीनन्दन खत्री

देवकीनन्दन खत्री ने १८८१ ई० में हिन्दी तिमिस्मी और ऐयारी उपन्यासों की परंपरा बनाई। मनोरम मायाजात की सृष्टि और सीधी-सारी भाषा के कारण इनकी रचनाओं का बड़ा प्रचार हुआ और कहा जाता है कि इन तिमिस्मीं भी छंद करने के लिए ही बहुत-से लोगों ने हिन्दी भाषा सीखी। इस दृष्टि से इन रचनाओं का महत्त्व उचित ही माना जाता है।^३

इन रचनाओं का कथानक प्रायः एक-सा होता है। किसी सुन्दरी राजकुमारी पर मोहित कोई प्रेमी राजकुमार, उसके प्रतिचतुर ऐयार जिनके पास दीवार सांभले की कमान बेहोश करने की बड़ी होश में साने के लिए 'लज्जतबा' नाम की विद्योपधि बराबर रहती है। फिर उस प्रेमी राजकुमार का दुष्ट प्रतिस्वामी राजकुमारी को तिमिस्म में कैद करता है। अन्त में बाहु का वह हिरत प्रियेज तिमिस्म टूटता है और दोनों का विवाह सम्भव होता है। पर इन रचनाओं में न तो बाहु खीबन की वास्तविकताओं और न तो मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का ही प्रदर्शन हो सका है।^४ की खत्री इन रचनाओं के लिए फरसी के तिमिस्म 'होसदबा' के खत्री हैं। पर अपनी स्वर्णन कल्पना के आधार पर उन्होंने अपनी रचनाओं को मौलिक बना डाला है।^५ अग्रकाव्या का आधार बहुत-कुछ धर्मपौराणिक और काव्य के नायकों के समाज है। उसके ऐयार उधी तरह अपने खोपे हुए स्वामियों और साधियों का पता लगाते हैं जिस तरह ऊजस ने घासहा को बंधीगृह से मुक्त कराया या घासहा-ऊजस ने मिसकर अपने बेटे मतीजे इन्कल को अपनी बीरखा और कौलस से प्राप्त किया।

भावना और सीली की दृष्टि से तिमिस्मी उपन्यास चारण काव्यों के अनुपाती बाब पड़ते हैं। किन्तु लोकप्रिय होने के बावजूद इनमें मानवी भावनाओं और मनो-विकारों के लिए विशेष स्थान नहीं था।^६ इनमें सिर्फ बटना-बैचिम्ब की सृष्टि कर उल्लुका की तृप्ति का एकमात्र उद्देश्य था। मानवता के मानसिक उत्थान में ऐसी

१२. वही

१०. वही पृ० १२६

११. घालोचना (११), पृ० ७०

१२. घालोचना (११) पृ० ७१

१३. वही, पृ० ७२

१४. वही

१५. प्राग्निह्विता साहित्य का विकास, पृ० २७६

१६. वही, पृ० २७७

रचनाएं कोई योगदान नहीं प्रदान करतीं। इसीलिए साहित्य में इनका कोई स्थान नहीं है।”

वास्तविक जीवन में तो सज्जन से भी सज्जन पुरख सर्वत्र सुखी नहीं रहते। उन पर भी भाव्य का क्रोध बराबर प्रकट होता रहता है। पर भी कभी और गोस्वामी ने बुद्धान्त के प्रथी पाठकों से अन्तिम पृष्ठ फाड़ नामने को कह दिया है। यह मामल चरित्र के प्रति धम्याय है और लेखक जीवन के तथ्य से दूर हट गये हैं।” यह पात्रों के चरित्र का विश्लेषणकर उनके मानसिक पक्ष पर प्रकाश नहीं डालता और न मानव स्वभाव पर बुद्धियां दिखाकर अपनी रचना को धार्मिक स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न ही करता है।” किन्तु, सभी जी का ऐवार भूतनाय कोई साधारण पात्र नहीं है। पतमपील सामत बाद के घट्टाईस भाषों की घटनाओं के बटाटोप से मनु की तरह यह पात्र उमरकर पाठकों के समक्ष आता है और लेखक को भी अपनी स्वर्तन धात्मकता मिलने पर बाध्य कर देता है। यह भूतनाय मध्यमग का प्रतीक है। बुद्धों और महात्माओं के सपाट चरित्रों के बीच यही एक मादमी है जो बह बन आता है, जो बह बनना नहीं चाहता। उस समय का यह पहला पात्र है जिसके संवर उन्म है कचोट है।”

गोपालराम गहमरी (१८८४ ई०)

गहमरी कासुखी उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं जो पूर्ण रूप से इयर्लैंड और यूरोप के रोन हैं। यहां भी चरित्र-विकास की दृष्टि से इन कासुखी उपन्यासों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। किन्तु गहमरीजी के धार्मिक पात्र साभाविक हैं और उन्होंने धार्मिक तर साभाविक उपन्यासों की ही रचना की। इन पात्रों का थोड़ा चरित्र-विकास भी दिखाया गया है जो सिर्फ घटनाओं पर बल देने वाले हैं।”

अनुवाद

इसी काल में बंगला, मराठी, गुजराती धंधेजी भादि से कई ग्रंथों के अनुवाद हुए। मारलेगु ने मराठी से पूर्ण प्रकार अग्रजना का अनुवाद किया। अमला बुद्धान्त-मामा के नाम से ‘फूट्स धाक धानेस्ती’ का अनुवाद हुआ। इसके पहले ठग बुद्धान्तमामा (१८८२ ई०) और पुस्तिक बुद्धान्तमामा (१८९० ई०) में प्रकाशित हो चुके थे। ठग और मियां मिट्टू का पुस्तिक-काम्पटेबल स्वर्ण अपनी-अपनी कपार्प कहकर पुष्प-पाप के जराहरण पाठकों के सामने रखते हैं। इन रचनाओं को उपन्यास न कहकर यदि कथा-

१७ हिन्दी उपन्यास, पृ० ७२

१८. आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १८६

१९. वही, पृ० १८७

२०. आलोचना (१४) पृ० २७

२१. हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ११

बार्ता कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।^{७२}

निष्कर्ष

इस युग में सभी प्रकार के पात्रों का विकास हुआ, (१) ऐतिहासिक चरित्र—गोस्वामी के औपन्यासिक चरित्र, (२) सामाजिक पात्र—परिव्राजित आदि के पात्र (३) हृष्ट धर्मिक पात्र—श्री लक्ष्मी आदि के पात्र हैं। प्रथम वर्ग के पात्र धर्मिक सेलक स्काट की शैली पर लिखे गये। दूसरी श्रेणी के पात्र उपरोक्त वेदों या उपरोक्त ग्रन्थ करने के लिए विकसित किये गये। इनका भावार्थ व्यक्तिगत चरित्रिक सुधार है। ऐनारी तिलिस्मी जामुनी उपन्यासों के पात्र कानन कामल और रेनाल्ड्स आदि के वर्ण पर निर्मित किये गये। कुछ मिसाकर इन उपन्यासों का मुख्य केवल बटना-बैचिष्य रहा रसवर्धन आशाभिभूति या चरित्र-चित्रण नहीं।^{७३} इस युग में अधिकोत्तम मध्यमवर्गीय एवं उच्चवर्गीय पात्रों का विकास हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी और जामा बीनिवास-वास के अधिकोत्तम पात्र मध्यमवर्गीय हैं।^{७४} श्री लक्ष्मी के अधिकोत्तम पात्र उच्चवर्गीय हैं। इन हिन्दी उपन्यासों पर १९वीं सदी के उत्तरार्ध में हुए विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों का किसी-न किसी रूप में प्रभाव परिलक्षित होता है।^{७५} चरित्र-विकास के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों के पात्र मानवीय हैं, पर इनका न तो विकास हो पाया है और न उनका पूरा रूप सामने आ पाया है।^{७६} लेखकों के कठिन आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में बाधा हुई है। इसीलिए प्रेमचन्द एक भाते-भाते चरित्रों के विकास में ऐसा स्वात्मिक परिवर्तन हो गया कि पहले के कथा चरित्रों से इन नये चरित्रों का संबंध जोड़ने में शोच संकोच करने लगे। मानव चरित्रों के सूक्ष्म उद्घाटन और सामाजिक वास्तविकता के विचार और मार्मिक चित्रण के द्वारा प्रेमचन्द ने हिन्दी के कथा चरित्रों में शक्ति उपरिष्कृत कर दी।^{७७} उनकी कृतियों में निम्न और मध्यम श्रेणी के कुहस्तों के जीवन का बहुत सच्चा स्वरूप मिलता है।^{७८}

प्रेमचन्द से पूर्व यानी बीसवीं सदी के प्रारंभ में विभिन्न लेखकों द्वारा बहुत-से ऐतिहासिक सामाजिक और प्रेमक्यावक उपन्यास लिखे गये थे। पर उनमें भी बदनमन सहाय का ऐतिहासिक उपन्यास 'सास बीन' एवं मिथ बंधुओं का 'बीरमणि' उपन्यास कथा आदि की दृष्टि से अलक्षित महत्त्व के हैं। बाकी रचनाओं का स्तर

७२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४१७

७३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४१३

७४ धार्मिक हिन्दी साहित्य, पृ० १८३

७५ आलोचना (उपन्यास श्रृंखला) पृ० ७८

७६ वही पृ० ८०

७७ आलोचना (१३)

७८ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३७

बहुत साधारण है। फिर १९१८ में प्रेमचन्द का 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ जिसने हिन्दी उपन्यासों को साप्ताहिक स्तर पर ला बिखरया।^{१०} इस रचना के प्रकाशन से पहले दर्बनों सेबकों द्वारा लिखी गयी रचनाएँ बीते युग की बस्तु-सी समती हैं बिनाका प्राञ्च कोई साहित्यिक मूल्य नहीं रहा है।^{११} इन कृतियों के चरित्रों में सजीवता का प्रभाव और नायिका भेद वाले चरित्र-चित्रण की प्रधानता है।^{१२}

ऐयायी-विलस्मी उपन्यासों में वास्तविक जीवन से घसग सिर्फ़ इरत प्रगेज पारों की सृष्टि हुई।^{१३} शसुसी उपन्यास तो अश्रेयो उपन्यासों के साधार पर सिधे ही ये।^{१४} इससिण इन उपन्यासों के पात्र अवास्तविक है।

१९०३ से १९२३ ई० तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने युग के कथा-साहित्य को हर कृष्टि से प्रभावित किया। इस युग में सैकड़ों लेखक और बहुसंख्यक रचनाएँ प्रकाश में आयीं।^{१५} मासिक सरस्वती का नाम कहानी की छिस्म-विधि के धारम और विकास के इतिहास में सरा भरर रहेया।

डा० सखीनारायण मास^{१६} के अनुसार द्विवेदी-युग में कहानी के विकास में मुख्यतः साठ प्रकार के प्रयत्न हुए। पहला है रोक्कपीयर के नाटकों की इतिवृत्ति पर आधारित रचनाओं की सृष्टि। किशोरीलास घोस्वामी ने 'टेम्पेस्ट' के आधार पर इन्दुमती की रचना की जिसे डा० श्रीहृष्यलाल हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।^{१७} पर राय हृष्यदास बी बंपमहिता की 'बुसार्ई बानों' को सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।^{१८} इसके बिपरीत डा० रामरतन बटनायर इन्दु में प्रकाशित की अययंकर प्रसाद की 'घाम' नामक कहानी को प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।^{१९} सरस्वती के प्रारंभिक बर्षों में सिखी बिभिन्न कहानियों में चरित्र-विकास को एक निश्चित बिधा मिसी। चरित्र-विकास की कृष्टि से एी रामचन्द्र मुक्क इत 'प्यारह बर्ष का समय' प्रथम मौलिक कहानी है जिसमें कहानी के सभी तरब प्राप्त होते हैं।^{२०}

द्विवेदी-युग में गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद का अम्मुदय हिन्दी की पचास बर्षों

७९. हिन्दी पद्य साहित्य पृ० १४

८०. वही

८१. वही पृ० ३२

८२. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ७३

८३. 'नेमास्कृष का कुछ प्रभाव पं० किशोरीलास घोस्वामी आदि पर कभी-कभी ललित होता है।' आलोचना (१३) पृ० ७८

८४. महावीर प्रसाद द्विवेदी और जनका युग पृ० ३२६

८५. हि० क० अय सि० का वि०, पृ० १७

८६. आ० हि० सा० का वि० पृ० ३२२

८७. इक्कीस कहानियाँ, पृ० ३०

८८. हिन्दी कहानी पृ० ८४

८९. हि० क० की सि० का वि० पृ० १७

से श्री कालेबासी धर्मग्रन्थ साधना के फलस्वरूप हुआ। बरहुत: हिन्दी कहानियों की शिखरबिम्बि की निश्चित प्रतिष्ठित इन्हीं के द्वारा हुई और समष्टि रूप से एक नये युग के विकास का द्वार खुला।" इसी आधार पर हम हिन्दी कहानियों की शिखरबिम्बि के विकास और उत्थम सुत्र का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं।"

विकास क्रम की दृष्टि से प्रेमपत्र और प्रयास के पहले श्री अन्नपर धर्मा का स्वान धार्यधिक महत्त्वपूर्ण है। धार्मिक सम्प्रदायों के बाजपेयी ने उनकी कहानी 'उसने कहा था' को महानवा या 'एफिक' की संज्ञा दी है।" उनकी दूसरी कहानियाँ 'सुखमय पीवन के अमरवसरण एव 'बुधू' का काँटा के रघुनाथ के चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूरा सामाजिक हो गये हैं।" किन्तु, अमरवसरण के चरित्र में वह यन्मीरता नहीं है जो रघुनाथ में है। इस दृष्टि से रघुनाथ और भगवती के चरित्रों की सृष्टि धार्मिक यन्मीरता और मानवीय अराधन से हुई है।" उनकी कहानी 'उसने कहा था' के नायक सहनासिंह के चरित्र के मुख्यतः चार विकास हैं।" इस कहानी में चरित्र-विकास चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा का निर्वाह पूर्ण कलात्मक ढंग से हुआ है।" इस कहानी की मनोवैज्ञानिक परिणति होती है जो उस युग में एक गौरव की बात थी।" यथार्थ का निर्वाह करते हुए भी तुमरीबी ने धार्मिक को पूर्वतया निवाहा है।" इसीलिए डा० मयेन्द्र ने लिखा है— 'शक्ति और उपाचार के साथ ही वे ऐक्य के नाम पर बिदकनेवासे धार्मिकों में से नहीं थे।" कहानी के आरम्भिक अंश में वास-मनो विज्ञान का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक बरातल पर ही हुआ है।" अनेक अवस्था में सहना और सुवैशारमी के बीच का प्रेम कल्पना का रूप ग्रहण कर सेठा है जिसकी अरम परिणति आरमोदसर्ग में होती है।" अचकल प्रेम की निराशा उसके मन को और भी क्रोमस धरस तथा अवेदमसील बना देती है।" तब यह प्रश्न अचरम उठता है कि सहनासिंह का धार्मिकविज्ञान एक निरास व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया तो नहीं है

६०. वही पृ ६३

६१. आ० हि० सा० का इतिहास, पृ० ३२६

६२. धार्मिक साहित्य, पृ० १२८

६३. तुमरीबी की धर्म कहानियाँ, पृ० ८४

६४. हि० क० की सि० वि० का वि० पृ० ८४

६५. आ० हि० सा० का वि० पृ० ३३२

६६. हि० क० की सि० वि० का वि०, पृ० ८६

६७. तुमरीबी की धर्म कहानियाँ पृ० ११

६८. प्रतिनिधि, पृ० १८

६९. विचार और धनुमति, पृ० ४७

१००. तुमरीबी की धर्म कहानियाँ, पृ० ३६

१०१. हिन्दी कहानी पृ० ११८

१०२. मानवीय धनुमति १९३८, पृ० १४८

पर यह सम्भव नहीं है। सेलक ने इसे जस्सेस भी किया है कि सुवेदारती ने उससे अपने पति और पुत्र की प्राप्ति रक्षा की भीषण भागी भी बिचछे इस प्रश्न का पूर्ण निराकरण हो जाता है।^{१०९}

डा० गयेन्द्र ने हुनेरीबी के पात्रों को जिव्यादिस और बिनोबी माना है।^{११०}

जयशंकर प्रसाद

यों तो प्रसादजी ने सभी पात्रों का विचित्र अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के घात प्रतिघात के आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रणाली में किया गया है। पर उन्हें नारी-पात्रों के चित्रांकन में अधिक सफलता मिली है। उनके आदर्शपूर्ण पात्र व्यष्टि को समष्टि के लिए बलिदान करनेवासे हैं जिन्हें हम सद्योपुत्री पात्र भी कह सकते हैं।^{१११} उनके चरित्रों को नायिका-भेद की प्रणाली के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। 'वसाती' आदि कहानियाँ परकीया नायिका के प्रेम की भाँकी दिखाती हैं। समुद्र सहरण' नामक कहानी मुग्धा नायिका के प्रेम की भाँकी दिखाती है।^{११२} नारी चरित्र और उनका विस्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र बिन्दु है। य नारियाँ अपने अग्रिम रूप धारण और अनुपम व्यक्तित्व द्वारा कहानियों का मूल-संचालन करती हुई अपने अन्तर में घात प्रतिघात अन्तर्द्वन्द्व विद्रोह और उत्थम के तत्त्व छिपाये रहती हैं।^{११३} पुरुष पात्र प्रायः नारी-पात्रों के व्यक्तित्व की परिधि में घुमते हुए पाये जाते हैं और इसीलिए उनका विचित्र अनेकाकृत गौण और संक्षिप्त हो गया है। किन्तु, उनके नारी-पात्र पुरुष को पतन की ओर से जानेवासे नहीं हैं बल्कि पुरुषों को अपने कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए उनमें शोचन फूँकनेवासे हैं।^{११४}

डा० सखीनारायणसाहू ने^{११५} उनके नारी पात्रों को दो वर्गों में बाँटा है—
कदम और मातृक। 'ममता' कहानी की मुख्य स्त्री-पात्र ममता कदम की प्रतिमूर्ति ही है। यह विषय है और बाह में उसके एकमात्र सहायक पिता की हत्या हो जाती है। मिथुनी होकर, महान छोड़ वह मोंपड़ी में शरण लेती है और अन्त में अपूर्व कदम से धर जाती है।^{११६} फिर भी इनके नारी-पात्र स्वान-स्वान पर कमप्रमाण है। वे कभी प्रतिहिंसा के लिए क्रियाशील हुई हैं वहीं 'पूड़ीबासी' की अपूर्व साधिका बनकर अपनी

१०३ प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० २०

१०४ विचार और अनुमति पृ० ३०

१०५ जयशंकर प्रसाद पृ० ६७८

१०६ प्रसाद की कहानियाँ पृ०, १८७

१०७ अस्मि विधि पृ० ७७

१०८ वही, पृ० १८१

१०९ वही पृ० २०४

११० प्रसाद की कहानियाँ, पृ० २०९

तपस्या से पुरुष को पाती है।^{१११} स्त्री चरित्रों की व्यवहारणा में उन्होंने विभिन्न वैद्यकाल की स्थितियों को मिया है और सर्वत्र स्त्रीत्व को एक ही व्यवस्था से देखा है, समन्वयवादी दृष्टि से देखा है जो भारतीय स्त्री के सौन्दर्य का ही एक रूप है।^{११२}

उनके नाटी चरित्रों के विकास में बौद्ध-बोधन का भी काफी प्रभाव पड़ा है और इसीलिए उनमें प्रेम तथा क्षमा कल्याण और उत्सर्ग की भावना की प्रचुर मात्रा में मिलकर उन्हें धारण्य प्रतिमा बना जाता है।^{११३} आकाशदीप की जम्मा पुरस्कार की 'मधुसूक्ति' सातवती की सातवती धार्मिक लोक-संयम की भावना से अभिभूत प्रेम की धार देवियां भी हैं।^{११४}

पुरुष चरित्र

उनके पुरुष चरित्रों में भी प्रेम तथा भावुकता धार्मिक प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता है उनका मनोव्यवस्था। 'भूरी' का प्रेमी भावुक 'बैबा' का सपासक मौसी 'भैबा' का रामेश्वर 'जम्मा' का बुद्धिगुण और 'सातवती' का धनम ऐसे ही अद्भुत और मनोवै चरित्र हैं।^{११५} आर्थिक दृढ़ता संवेदनशीलता और उनके व्यक्तित्व में निहित विद्रोह, तद्वय और कल्याण की एक अन्तर्मुखी भावनाएँ धार्मिक उनका आर्थिक विशेषताएँ हैं। धार्मिक चरित्रों में भी प्रसादकी है मानवीय संवेदना और हीन की इस कलात्मक रूप से प्रतिष्ठा की है कि वे बरबस हमें आकर्षित कर लेते हैं। इस आकर्षक का रहस्य यह है कि प्रसादकी अपने इन पात्रों में किसी न किसी भाँति एक भावमंडल उपस्थित कर देते हैं जिसमें कल्याण की एक अद्भुत रेखा खिंची हुई रहती है।^{११६}

प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री-पुरुष चरित्रों में दो वर्ग हैं। धार्मिक रहस्यवादी और प्रतीकार्थक कहानियों के पात्र धार्मिक समाजवादी रूप के हो जाने से उनकी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है। लेकिन यथार्थ और कल्याण के संयोग से रचे गये चरित्रों में व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के प्रतिरिक्त उनके मनोभावों के भी उदाहरण मिलते हैं।^{११७} इस तरह इन प्रारम्भिक कहानियों में चरित्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व^{११८} में नहीं मिलते—वे सर्वथा एकांगी हैं।^{११९}

१११ शिल्पविधि, पृ० २०३

११२ धाँधी

११३ प्रसाद की कहानियाँ, पृ० ८५

११४ वही, पृ० १८३

११५ शिल्पविधि, पृ० १८१

११६ प्रसाद की कहानियाँ, पृ० १८७

११७ शिल्पविधि, पृ० १८२

११८ प्रसाद की कहानियाँ पृ० १८५

११९ शिल्पविधि पृ० २०६

बाद की कहानियों में स्त्री-मुख्य चरित्रों के निर्माण में समान रूप से जोर दिया गया।^{११०}

चरित्र-चित्रण के लिए प्रसादजी ने मुख्यतः नाटकीय^{१११} शैली को अपनाया यानी बटना और कथोपकथन के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण।^{११२}

धौपन्यासिक चरित्र

प्रसादजी के धौपन्यासिक चरित्र बहुत व्यापक हैं और उनके द्वारा समाज का चित्र उपस्थित किया गया है। किन्तु, प्रसादजी उतनी सजीवता के साथ कर्मों के प्रतीकों का निर्माण नहीं कर पाये हैं। उन पात्रों में वैयक्तिक विभूतियां प्रबल होती हैं जिनके द्वारा ही हम उन्हें जानते-महजानते हैं।^{११३}

'कंकाल' उनका प्रथम विचार-ग्रन्थ उपन्यास है। 'कंकाल' की प्रपञ्चा 'तितली' उनकी प्रथम कथालोक कृति है। स्वल्प शिक्षिता किसान-वासिका तितली के चित्रण द्वारा उन्होंने ग्रामीण जीवन में नया उत्साह और प्राम-निर्माण के लिए सम्मिलित और सहयोगी बेटी के प्रार्थन उपस्थित किये हैं।^{११४} ग्राम्य-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास महत्वपूर्ण है—चरित्र-विकास की दृष्टि से नहीं।^{११५} सन् ३० के बाद हिन्दी कथा साहित्य में जिस यथार्थवाद की नयी सहर आई, 'तितली' उसी की बेन है यद्यपि इसमें सूत्रबद्ध सञ्चालित पात्र और नियति के करिश्मों द्वारा उनके भाव्य-परिवर्तन भी बार-बार दिखाये गये हैं।^{११६} 'तितली' में भी भारत और ब्रिटेन में जनसाधारण को सतानेवालों की भी झंकी दिखाई गई है। एक छोटे बिजली से गरम कमरों में जाते ही कपड़े उतार देने की आवश्यकता बूसरी ओर वाले एबं बरफ में रात भर ठिठुरकर रातें बिताने वाले बरिज।^{११७} भारत और ब्रिटेन में गरीबों को सतानेवाले एक ही हैं—यह बेतना हिन्दी कथा साहित्य में यही पहली बार प्रकट हुई।^{११८}

प्रसादजी ने इस उपन्यास में पांच में होनेवाले वर्ग-सर्वय कमीदारों-महाजनों का प्रत्याहार और इनसे मड़नेवाले मजदूरों किसानों का चित्रण किया है। 'कर्मभूमि' के महत्त्व की तरह यहां भी एक महत्त्व है जो मजदूरों की भेंट और किसानों का सूद समान मात्र से ग्रहण करते हैं।^{११९}

११०. वही, पृ० २१६

१११. वही

११२. वही

११३. हिन्दी उपन्यास पृ० १३०

११४. प्राथमिक साहित्य पृ० ४१

११५. जयशंकर प्रसाद पृ० ३१६

११६. हिन्दी उपन्यास, पृ० १२२

११७. तितली पृ० १३

११८. लोकजीवन और साहित्य, पृ० ४०

११९. तितली, पृ० १७८

'तितली' में पूंजीवादी समाज में पशुघों-सा जीवन बिठानेवासे कीयता मजदूरों के जीवन की एक ससिप्य मंश्री भी मिसती है।^{११०}

'कंकाल' के पात्रों में बोड़ी बार्सनिक विचित्रता है। पर 'तितली' के सभी पात्र स्वामाधिक से लबते हैं। चरित्र-चित्रण कथावस्तु का विकास और उसका नाटकीय निर्वाह भी 'तितली' की विशेषता है। उसमें घाब के भाष्टीय मर-नाटी का यथार्थ चित्रण मिसता है।^{१११} 'कंकाल' यथार्थवाद की घोर उपगुण है तो 'तितली' पूर्णतः धार्मिकवादी दृष्टि है। 'कंकाल' की भांति 'तितली' बुझान्त नहीं है। उसमें अश्वे कर्मों का अण्डा और दुरे का बुरा परिणाम दिखाकर भाष्टीय कर्मफलवाद की पुष्टि की गई है। उपग्यास का लक्ष्य नारीत्व और पत्नीत्व की गरिमा का प्रदर्शन है।^{११२} प्रसादकी का एक अपूर्ण उपग्यास उनकी मृत्यु के बाद प्राप्त हुआ। इस ऐतिहासिक उपग्यास का नाम था इराबती। यदि यह पूरा होता तो ऐतिहासिक उपग्यासों में इसका महत्त्व पूरा स्थान होता।^{११३} प्रसादकी के उपग्यास मनुष्य को कमठता और साहस का संश्ले बेते है। इन उपग्यासों में मनुष्य अपने धाय्य का स्वयं निर्माण करने गया समाज बढ़ने और घाब की विडम्बनाओं और विभीषिकाओं का अन्त करने के लिए धातुर दिखाई पड़ता है। तितली ऐसी ही एक कर्मठ नारी है। उसके विषय में उपग्यास का एक प्रमुख पात्र इन्द्रदेव कहता है—“यही तो हम खोज रहे थे न ? मनुष्य मिरता है। उसका अन्तिम पक्ष दुर्बल है—संभव है कि वह इसीलिए मर जाता है। परन्तु” बिचने समय तक वह अपने अस्तित्व का प्रदर्शन कर सके उतने धन तक क्या बिया नहीं ? ‘उसके जन्म लेने का सङ्घस सफल हो गया।’^{११४}

प्रेमचन्द

कथाकार प्रेमचन्द पहले उपग्यासकार थे जिन्होंने स्वयं चरित्र प्रधान उपग्यास लिखे और दूसरों से भी बड़े उपग्यास लिखने को कहा।^{११५} उनके प्रतिनिधि मानव चरित्र हर वर्ग और हर क्षेत्र के हैं। इनमें खोपित-मीडित किसान, उन्हें सतानेवासे जमींदार-नवाब महाजन-साहूकार, हरिजन दलकार कसक पंजे-पुरोहित राजनीतिक कार्यकर्ता सरकारी अफसर और उनकी जी-जुट्टी करनेवासे सभी तरह के नीय मौजूद हैं। इस चरित्र-चित्रण में उन्होंने और-बदबंस्ती से काम नहीं लिया है। उनके नाम अपने जीवन की परिस्थितियों के अनुसार स्वामाधिक तरीके से अपनी-अपनी घुमिकाएं धरा करते हैं और प्रत्येक संवेदनशील हृदय में सहानुमति और आशोच

११०. सोकजीवन और साहित्य, पृ० ११

१११. धार्मिक कथा साहित्य, पृ० ७६

११२. हिन्दी उपग्यास, पृ० १२६

११३. हिन्दी के उपग्यासकार, पृ० ६०

११४. तितली, पृ० १४०

११५. प्रेमचन्द : एक विवेचन, पृ० ४४

बयाते हैं।^{१११}

जीवन की विषमताओं ने उन्हें भाग्यवादी बना दिया था। वे कहते थे कि "भगवान की ओ इच्छा होती है वही होता है।" लेकिन वह भाग्यवादिता बंसी ही है बंसी "कर्मभेदाधिकारस्ते मा फलेषु कुराचन।" सूरदास कहता है— तुम जीते मैं हारा। फिर सेलिये घरे बरा एम से सेने दो। हार-हारकर तुम्हीं से सेलिये। एक ब एक दिन हमारी जीत होगी।" यह जीवन की सड़ाई में हारे हुए एक ऐसे व्यक्ति के उच्चार हैं जो पराजय को परिणाम नहीं मानता महब एक घटना मानता है और जिसकी घाटा का सम्बन्ध कभी टूटना भी नहीं।^{११२} प्रेमचन्दजी ने सन् १८८२ की कुर्सीनिधीन नेतापीरी से लेकर सन् १९३६ तक के राष्ट्रीय आन्दोलन और साम्यवाद के उदय को हृत्कल्लो देखी थीं। इस अत्यन्त घोर विविध प्रवृत्तियों से आकुल युग की परिस्थितियों की ओ प्रतिक्रिया प्रेमचन्द में हुई बंसी उनके समकालीन किसी अन्य साहित्यकार में नहीं। साथ ही जिस सजगता और महान उद्देश्य के लिए प्रेमचन्द ने अपनी मेहनती सटाई सतनी सजगता भी अन्यत्र नहीं मिलती।^{११३} उनके जीवन क्रम को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है—पहला १६ वर्ष की आयु तक दूसरा ४१ वर्ष की आयु तक तीसरा क्रम तो मृत्युपर्यन्त मानता चाहिए। इसी समय में उन्होंने जीवन और मुग से निरन्तर मुठ करते हुए साहित्य के अनमोल रत्न प्रस्तुत किये।^{११४} इस युग में भारत की अर्थव्यवस्था खेती पर निर्भर थी। सहृदयों का अस्तित्व उनके राजनैतिक धार्मिक धर्मवा व्यावसायिक महत्त्व पर निर्भर था।^{११५} बाद में साम्राज्यवाद की छत्र छाया में भारतीय पूंजीवाद का विकास हुआ जिसे प्रेमचन्द ने महाजनी सम्मता को संबोधित है। 'मंगलसूत्र' की रचना के समय प्रेमचन्द ने 'महाजनी सम्मता' पर एक लेख लिखते हुए कहा है— "सारे कामों की गरज पसा है। मनुष्य समाज बं भाग्यों में बंट गया है। बड़ा हिस्सा भरने और कमालेवासों का है। छोटा हिस्सा हरे बड़े समुदाय को अपने बंध में किये है। पहले का अस्तित्व अपने मातृकों के सिवा पचीना बहाने बून गिराने और एक दिन बुपचाप इस बुनिया से बिबा हो जाने में लिए है।"^{११६}

प्रेमचन्द के साहित्य में ऊपर दिये तीनों युगों के मर्मस्पर्धी चित्रण मिलते हैं 'पञ्च-परमेस्वर' बंसी कहानियाँ भारतीय ग्राम-व्यवस्था के गौरव को प्रबोधित करती हैं। 'रंगभूमि' में धार्मिक सम्मता के धाममन की सूचना है। 'गोदान' में पूंजीवादी व्यवस्था के सारे कसक प्रकट हुए हैं। 'मंगलसूत्र' में साम्यवाद के धाममन की सूचना

११६ हिन्दी पद्यशास्त्र पृ० २७

११७ प्रेमचन्द एक आध्ययन पृ० ३७

११८ प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० १४

११९ प्रेमचन्द एक आध्ययन पृ० ९०

१२० प्रेमचन्द : एक विवेचना, पृ० १६

१२१ प्रेमचन्द, पृ० १७

है। फिर भी प्रेमचन्द मध्यवर्ति वर्ग के व्यक्ति थे इसलिए स्वभाव से समझीठाबासी। इसीलिए उन्होंने सब कुछ सही ढंग से देखने के बाद भी, उसके इनके रूप में क्रांति को ठंडे पानी में धीरे-धीरे डाल दिया। वे सचमुच प्रेमचन्द की सृष्टि ही कर पाये। पर सचमुच के जीवन की एक मात्र झलक दिखाकर ही यह मने थे गोबर को नई चेतना की बीजनी तो दे पाये, लेकिन मने मुम की क्रांति का बाह्य छेसे नहीं बना पाये।^{१५१}

महात्मा जयप्रकाश का उनका विस्तारवादी साम्यवादी बैसा जयता है। पर उनकी पकड़ बौद्धिक न होकर भावनात्मक है। उन्होंने अपने साहित्य में बुद्धि पर भावुकता को ठरवी है ही। एक मुनाकाश में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है— 'मैं नापीबासी नहीं हूँ। केवल महात्माजी के 'वैज्य धातु हार्ट' (हृदय-परिवर्तन) में विश्वास करता हूँ।'^{१५२}

अंग्रेजी राज ने यहाँ की समाज-व्यवस्था में प्रामुख परिवर्तन कर दिये। परिणामस्वरूप धर्मों में बर्फीदार, किसान, शेत-मजदूर, बुकानदार और साहूकारों का स्तर बना। यहाँ से उद्योगपति व्यवसायी मजदूर, छोटे शहरागर और बुकानदार एवं पैसेदार लोगों की सृष्टि हुई, जिनसे शिक्षित मध्यवर्ग बना है।^{१५३} मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग का जगम उद्योगों के साथ हुआ और औद्योगिक विकास के साथ ही इनकी संख्या और ताकत बढ़ी।^{१५४}

कांग्रेस के जगम के साथ ही राष्ट्रीय चेतना को बल देनेवाले विभिन्न तरह के समाज-सुधार के आन्दोलन हुए। इन सुधारकों को परम्परावादी निहित स्वार्थी, सामाजिक भ्रमण आन्धविश्वास एवं प्रपति की राह में रोड़े बिखानेवाले साधन से यानी धर्मों मोर्चों पर झड़ना पड़ा।^{१५५} इन प्रभावों ने प्रेमचन्द के पात्रों को भीतर रूप प्रदान किया और जगम उनमें भी परिवर्तन आता जसा गया।^{१५६}

राजनीतिक क्षेत्र में नापीबासी के पदार्पण के साथ ही प्रेमचन्दजी के जीवन का जया प्रामुख प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपनी जमी हुई पीढ़ी छोड़ी। लेकिन वे नापीबासी के जगम अनुयायी न बन सके। 'ब्रिजाधर' में उन्होंने असहयोग और सत्याग्रह के सिद्धांतों पर अपना सफ-सुबहा बाहिर किया है। नापी-दरविन समझौते के विरुद्ध 'कर्मसुमि' में उन्होंने ठीका व्यंग्य किया है। 'धोत्रान' में भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उनका प्रामुखता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। 'मंजुसूत्र' तो जगम मानविक विद्रोह का प्रतीक ही है। जीवन के अंतिम दिनों में वे जगम में साम्यवादी साधन की प्रशंसा करते जने थे।

१५२ सचमुच मूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द पृ० ५३

१५३ प्रेमचन्द जगम

१५४ प्रेमचन्द : एक प्रामुख पृ० १११

१५५ वही

१५६ वही पृ० ११२

१५७ प्रेमचन्द एक विवेचना पृ० ४१

उन्होंने प्राचा व्यक्त की कि भारत भी जीवन के उस भावस को प्रवक्ष्य ग्रहण करेगा।^{१४}

रबीन्द्रनाथ और सरत की तरह वे साहित्य में 'प्रेमिनिटी' के कायब नहीं थे। द्वितीय-युग की कठोर धार्ष्ण्यवादिता के परिणामस्वरूप उन्होंने अपने पात्रों को धार्ष्ण्यवारी बनाया है।^{१५} बच्चों के विकास के सम्बन्ध में उनको बारम्बार भी कि मानव बचपन न बिल्कुल समान होता है, न सकेह। उसमें दोनों का विभिन्न मिश्रण होता है। इसीलिए प्रेमचन्द मनुष्य के मनोविकारों के सख्य इतिहासकार बन सके। उन्होंने ग्रामीर-गरीब, अमीरार किसान हुक्काम और प्रजा की वास्तविक सारीरिक एवं मानसिक स्थिति का सख्य रूप दिखाया है।^{१६} उन्होंने शुरू से ही धार्ष्ण्यवारी पात्रों के निर्माण की चेष्टा की है जिसकी बरम परिणति 'मोदान' में धारक हुई है। प्रेमचन्द ने अपनी प्रत्येक कृति में एक धार्ष्ण्य पात्र की कल्पना की है। परन्तु, 'पबन और उसके बाद के उपन्यासों में ऐसा स्पष्टतया नहीं मिलता। यों 'निर्मला' में भी कोई धार्ष्ण्य पात्र नहीं है। 'मोदान के मेहता जो बाहें तो धार्ष्ण्य पात्र कह सकते हैं। यह पात्र ११३-१२ की धार्ष्ण्य गैठागिरी पर एक तीक्षा ध्यग है।^{१७} उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में बटना-बाहुस्य विचार पढ़ता है। पर बाद के सभी उपन्यास बचपन-प्रधान हैं और बचपन विकास के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रणाली का सहारा लिया है। बचपन-बिचन के लिए उन्होंने प्रतीकात्मक पद्धति और ध्यंसारक शैली का सहारा लिया है। किन्तु ध्यंन का प्रयोग सिर्फ उन्हीं पात्रों पर हुआ है जो उनकी धार्ष्ण्य बारम्बारों के प्रतिकूल रहते हैं।^{१८} 'बड़े बर की बेटी' 'बड़े भाई साहब' नाम की कहानियां एवं मोदान के कई पात्रों के परिचय में इसी ध्यंन का प्रयोग हुआ है। इस संबंध में वे एकरम निरपेक्ष नहीं रह पाते। अपने पात्रों को अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने की पूरी सुबिधा और स्वतन्त्रता तो वे प्रबन्ध देते हैं पर, कसारत्मक तटस्थता के बाबजूद अपने विचारों को व्यक्त करने में वे पीछे नहीं रहते।^{१९} उनका कहना या कि 'सीबे-सादे मनुष्यों की सीबी घादी बायें लिखा करो। उनके घानेबासे दिनों और रातों के सुखर काम्य की रचना करो। जीवन का विकास बेसा सरम होता है, बेसी ही सरम तुम्हारी कया होगी बाहिए।^{२०} बच्चों के बारे में उनकी राय थी कि 'वे ऐसे हों जो प्रबोमनों के घाने घिर न झुकायें, बासनायों के पंजे में न फंसें, जो बन्धुओं का संहार करके बिचय-भाव

१४क. प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० ३७

१४क. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० ७

१५. प्रेमचन्द एक अध्ययन, पृ० ८

१५१ प्रेमचन्द : एक विवेचना पृ० १६

१५२ प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० १८

१५३ प्रेमचन्द एक अध्ययन, पृ० २६३

१५४ साहित्य का उद्भव, पृ० १४२

है। फिर भी प्रेमचन्द मध्यमवर्ग के व्यक्ति थे इसलिए स्वभाव से समझीठावादी। इसीलिए उन्होंने सब कुछ सही ढंग से देखने के बाद भी उसके हमके रूप में क्रांति को ठंडे पानी में छीतल करके पेश किया। वे सदन सूरदास प्रेमचन्द की सृष्टि तो कर पाये। पर बलराज के जीवन की एक मात्र मूलक विद्याकर ही रह गये वे गोबर को नहीं बैतना की बैतनी तो वे पाये लेकिन नये युग की क्रांति का बाहुक छेते नहीं बना पाये।^{१४२}

महाजनी सम्यता का सतका विश्लेषण साम्यवादी जैसा लगता है। पर उनकी पकड़ बौद्धिक न होकर भावार्थक है। उन्होंने अपने साहित्य में कुठि पर माधुश्या को टरबीही ही है। एक मुलाकात में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—“मैं गांधीवादी नहीं हूँ। केवल महात्माजी के ‘वेम्ब घाक हार्ट’ (हृदय-परिवर्तन) में विश्वास करता हूँ।^{१४३}

संघेबी राज ने यहां की समाज-व्यवस्था में धामूस परिवर्तन कर रिये। परिणामस्वरूप बाबों में जमींदार, किसान बैत-मजदूर बुकानदार और साहूकारों का स्तर बना। सहूरो में उद्योगपति व्यवसायी, मजदूर, छोटे धीरापर और बुकानदार एवं पेशेवर लोगों की सृष्टि हुई, जिनसे चिसित मध्यवर्ग बना है।^{१४४} मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग का जगम जघोनों के साथ हुआ और धौद्योगिक विकास के साथ ही उनकी संख्या और ताकत बढ़ी।^{१४५}

क्रांति के जगम के साथ ही राष्ट्रीय बैतना की बस बैतनाले विभिन्न तरह के समाज-सुधार के धाम्भोजन हुए। इन सुधारकों को परम्परावादी निहित स्वार्थी सामाजिक धज्जान-धज्जविश्वास एक प्रपति की राह में रोड़े बिछानेवाले धासन से यानी तीनों मोर्चों पर लड़ना पड़ा।^{१४६} इन प्रभावों ने प्रेमचन्द के पात्रों को बीबित रूप प्रदान किया और क्रमशः उनमें भी परिवर्तन घाटा जसा गया।^{१४७}

राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी के पधार्षक के साथ ही प्रेमचन्दजी के जीवन का बया धम्याप प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपनी जमी हुई नोकरी छोड़ी। लेकिन वे गांधीजी के धग्य धनुयायी न बन सके। ‘प्रेमाधम’ में उन्होंने प्रसहयोग और सत्याग्रह के सिद्धांतों पर अपना एक-सुबहा बाहिर किया है। गांधी-इतविन समझीठे के विश्व ‘कर्मसूमि’ में उन्होंने ठीका व्यंघ्य किया है। ‘मोक्षान’ में भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उनकी धामुश्या स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। ‘मंजनसूब’ तो उनके मानसिक विग्रह का प्रतीक ही है। जीवन के प्रतिम दिनों में वे सस में साम्यवादी धासन की प्रसंसा करने सवे थे।

१४२ सनस्या मूलक जगम्यासकार : प्रमचन्द, पृ० ९३

१४३ प्रमचन्द पृम

१४४ प्रमचन्द : एक धम्ययन, पृ० १११

१४५ वही

१४६ वही, पृ० १११

१४७ प्रमचन्द एक विवेचना पृ० ४१

में भावसं की बेबी पर यथार्थ की बलि चढ़ा दी गयी।^{१११}

प्रेमचन्द के दश-चरित्र

मार्क्स एंगेल्स ने अपने घोषणापत्र^{११२} में लिखा था कि मनुष्य-समाज के सब तत्व का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और प्राधुनिक पूंजीवादी समाज में यह वर्ग-विरोध भीक्षु है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण देखूँगी देख सकती हैं।^{११३} 'कर्मभूमि' का मायक अमरकान्त अपने घर से भागकर जिस गाँव में जा टिकता है, वहाँ वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमाश्रम' में पीस खाँ का अत्याचार, तास्मुकदारों के मीनेजरोँ का अत्याचार और उनकी सम्पत्ता का सत्ता चित्रण हुआ है। गोदान में तो इस संघर्ष का मान चित्र उपस्थित है। साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी लिखाया है कि अपने किसानों के सामने धैर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुकूमतों के सामने बिस्कुल भीगी बिस्ती बन जाते हैं।^{११४} 'कया कस्त' में भी रियावा पर अत्याचार करनेवाले राजा बिद्यालक्षिण के साथ मैबिस्ट्रेट लोग कुत्तों जैसा व्यवहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति बोझ-सा असंतोष व्यक्त करने पर राजा साहूब की मदद में पुलिस आती है और जमारों पर मोमी बना देती है। मन्दिर प्रबन्ध की माँग करने पर हरिजनों पर मोमी भी जमती है। इन बातों से स्पष्ट है कि शोषकों के अत्याचारों की प्रति की राह में रोड़े धटकाने को हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गोदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का दून चुसनेवाले कौन-कौन तरह समाज में पब रहे हैं।^{११५}

किसान दश

प्रेमाश्रम जमींदारी-शोषण का और गोदान महाजनी शोषण का स्पष्ट चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में सन् २६ में मंत्री के मारे किसानों एवं उनके जमान बगरी आंदोलन का सजीव चित्रण है। राजसक्ति ने भी उच्च वर्ग की धोर से शक्ति-रक्षा के नाम पर रियावा के दमन में अपनी क्रूरता और बबरता का नम्र प्रदर्शन किया है।^{११६} इसीलिए चरित्र विकास की दृष्टि से कर्मभूमि का प्रेमचन्द के उपन्यासों में श्रेष्ठ स्थान है। किसानों के इस सरल और कुच्छी संसार में लचील सम्पत्ता धाकर पुराने जमान में जैसे बिजली डाल देती है और किसान छिल-निम्न होकर इधर-उधर बिखर

१११ साहित्य संघेय अगस्त सन् १९४४

११२ कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ३३

११३ प्रेमचंद पृ० १४

११४ प्रेमचंद : एक विश्लेषण, पृ० ७०

११५ कयाकार प्रेमचंद, पृ० ६६७

११६ प्रेमचंद एक विश्लेषण, पृ० १००

करते हुए निकले।^{१५५} इसी धारण की दृष्टि के लिए उन्होंने संसार की वास्तविकता में से अपने पात्रों को चुना। रंगभूमि का बीजांकुर उन्हें अपने गांव के एक धर्म भिक्षारी से मिला।^{१५६} सोफिया के चरित्र निर्माण की प्रेरणा उन्हें मिचेल एनीबेसेंट से मिली। कुछ विद्वानों की राय है कि 'कर्मभूमि' के नामक अमरकान्त की प्रेरणा का स्रोत पंडित पंत ही है। फिर भी प्रेमचन्द की कथा का मूल स्रोत चरित्र-चित्रण नहीं है। घटनाओं और पात्रों के संयोजन में समाज-सुधार और समाज के दाये बढ़ाने की भावना से प्रेरित है।^{१५७} उन्हीं सामाजिक समस्याओं को तीव्रता प्रदान करने के लिए चरित्रों और परिस्थितियों की योजना की है। गोदान को छोड़कर प्रेमचन्द ने कहीं भी वास्तविक दृष्टि से उन्मेषकारी पात्र की सृष्टि नहीं की। धारसंवाद के जाल में फँसे रहने के कारण ही उन्होंने घूरबास प्रेमचंदकर अमरकान्त चक्रवर घावि की सृष्टि की जो परीबों की सेवा करनेवाले एवं मानव से अधिक देवता जैसे मयते हैं। सिर्फ होती ही इसका घप बार है और इसीलिए वह एक अमर सृष्टि है।

उपन्यासों के भावकत्व के लिए उन्होंने बीरोबास पात्रों को नहीं चुना। बस्कि निम्नवर्ग के छन मर-भारियों को लिया जिनके चरित्र में सौन्दर्य, ईमानदारी विकास एवं मानसिक संवेदना अभाव्य हुई।^{१५८}

निष्कर्ष

डा० महेश्वर मटनागर का मत है कि जहाँ प्रेमचन्द समस्याओं को उपस्थित चर्चापाटित करते और उनका हल निकालने में प्रयत्न है वहाँ प्रथम धेनी के धर्म उपन्यासकार चरित्रांकन की क्रमा में प्राथमिक है। इस दृष्टि से वे विषयविकासगत रूप ग्यासकारों की प्रथम धेनी में नहीं आते। चरित्र-चित्रण में वे उपन्यास से अधिक कहा तियों में सफल हुए हैं।^{१५९} व्यक्ति से अधिक टाए बनाकर पेश करने के कारण उनके पात्रों में उतनी सजीवता नहीं या पाठी कितनी उदाहरणार्थ चरित्र के चरित्रों में मिलती है। किसी व्यक्ति के चरित्र को प्राकृतिक तौर पर बखब डालने^{१६०} घटनाओं के बटा टोप में चरित्रों को बीना बना डालने, समस्याओं के भीषे चरित्र-चित्रण को दबा डालने, यथार्थ से शुरू कर धारण पर पहुँचने के लिए कई पात्रों की हत्या तक कर डालने धादि के धारोप उन पर लपाये जाते हैं। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि 'रंगभूमि' का सूरदास प्रतिघोषित के सहारे और प्रेमचन्द की कथम के बस पर चढ़ा है। पवन

१५५. कुछ विचार, पृ० २४

१५६. वही पृ० ४७

१५७. प्रमचंद एक विवेचना पृ० १२३

१५८. प्रेमचंद चिन्तन और कला पृ० २१७

१५९. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रमचंद, पृ० २१२

१६०. कथाकार प्रमचंद, पृ० ७३३

में धारवा की बेटी पर यवार्थ की बलि चढ़ा दी गयी।^{१११}

प्रेमचन्द के वग-चरित्र

मार्क्स एन्गल्स ने अपने घोषणापत्र^{११२} में लिखा था कि मनुष्य-समाज के सब एक का इतिहास वग-संघर्षों का इतिहास है और सामुहिक पूंजीवादी समाज में वह वर्ग-विरोध नीबू है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण बखूबी देख सकते हैं।^{११३} 'कर्मभूमि' का नायक अमरकाण्ठ अपने घर से भागकर जिस गाँव में जा टिकता है, वहाँ वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमात्मन' में गौस खाँ का अत्याचार, ठाकुरकुमारों के मनेजनों का अत्याचार और उनकी सम्पत्ता का लूटपाट चित्रण हुआ है। मोदान में तो इस संघर्ष का मूल चित्र उपस्थित है। साप ही प्रेमचन्द ने यह भी दिखाया है कि अपने किसानों के सामने खर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुबकारों के सामने विरुद्ध भीषी बिस्ती बन जाते हैं।^{११४} 'काया कर्म' में भी रियावा पर अत्याचार करनेवाले राजा बिद्यासिंह के साथ मैजिस्ट्रेट लोग कुर्छों जैसा व्यवहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति थोड़ा-सा असंतोष व्यक्त करने पर राजा साहब की मदद में पुलिस घाटी है और जमरों पर योती जता देती है। मन्विर-अवध की माँग करने पर हरिजनों पर योती भी जताती है। इन बातों से स्पष्ट है कि घोषकों के अत्याचार सामने भी प्रगति की राह में रोड़े अटकाने की हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गोदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का लूट लूटनेवाले कौन-कौन तत्त्व समाज में पल रहे हैं।^{११५}

किसान वग

प्रेमात्मन जमींदारी-घोषण का और गोदान महाजनी घोषण का स्पष्ट चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में सन् २६ में मंत्री के मारे किसानों एवं उनके समान बन्दी आंदोलन का सजीव चित्रण है। राजसूत ने भी उच्च वर्ग की ओर से शक्ति-रक्षा के नाम पर रियावा के दमन में अपनी कृष्णा और बहणा का मूल प्रदर्शन किया है।^{११६} इसीलिए जरिज विकास की दृष्टि के 'कर्मभूमि' का प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्पष्ट स्थान है। किसानों के इस सरम और दुखी संसार में नवीन सम्पत्ता आकर पुराने ऋण में जैसे बिजली डाल देती है और किसान लिल-मिल होकर अन्ध-अन्ध विचार

१११ साहित्य संदीपा अगस्त सन् १९४४

११२. कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ३३

११३. प्रेमचंद, पृ० १४

११४. प्रेमचंद : एक विवेचना, पृ० ७०

११५. कपाटार प्रेमचंद, पृ० ६६७

११६. प्रेमचंद : एक विवेचना पृ० १००

करते हुए निकरें।^{११५} इसी धारण की पुष्टि के लिए उन्होंने संसार की वास्तविकता में से अपने पापों को चुना। रगभूमि का बीजांकुर उन्हें अपने पाप के एक धंसे भित्तारी से मिला।^{११६} सोफिया के चरित्र-निर्माण की प्रेरणा उन्हें विसेज एनीवैसेंट से मिली। कुछ विद्वानों की राय है कि 'कर्मभूमि' के नाटक अमरकान्त की प्रेरणा का स्रोत पंडित पंत ही है। फिर भी प्रेमचन्द की कथा का मूल उद्देश्य चरित्र-चित्रण नहीं है। घटनाओं और पापों के संयोजन में समाज-मुधार और समाज के घाये बढ़ाने की भावना से प्रेरित है।^{११७} उन्हीं सामाजिक समस्याओं को तीव्रता प्रदान करने के लिए चरित्रों और परिस्थितियों की खोजना की है। खोजना को छोड़कर प्रेमचन्द ने कहीं भी वास्तविक दृष्टि से सस्तेखर्चीय पात्र की सृष्टि नहीं की। धारणवाद के बाव में फँसे रहने के कारण ही उन्होंने सूरदास प्रेमशंकर अमरकान्त चक्रवर्त आदि की सृष्टि की जो यतीबों की सेवा करनेवाले एवं मानव से अधिक देवता जैसे समते हैं। सिर्फ होरी ही इसका अर्थ था है और इसीलिए यह एक अमर सृष्टि है।

उपन्यासों के नायकत्व के लिए उन्होंने बीरोबास पापों को नहीं चुना। बल्कि निम्नवर्ग के कम दर-भारियों को लिया जिनके चरित्र में सीधे, ईमानदारी विकास एवं मानसिक संवेदना उभरती हुई।^{११८}

निष्कर्ष

डा० महेन्द्र घटनापर का मत है कि जहाँ प्रेमचन्द समस्याओं को उपस्थित, उद्घाटित करने और उनका हल निकालने में सम्यक्तम है, वहाँ प्रथम श्रेणी के अर्थ उपन्यासकार चरित्रांकन की कक्षा में अद्वितीय है। इस दृष्टि से वे विश्वविख्यात उपन्यासकारों की प्रथम श्रेणी में नहीं आते। चरित्र चित्रण में वे उपन्यास से अधिक कहाँ दिनों में सफल हुए हैं।^{११९} व्यक्ति से अधिक टाइप बनाकर पेश करने के कारण उनके पापों में अतनी सजीवता नहीं आ पाती जितनी उदाहरणार्थ अरत के चरित्रों में मिलती है। किसी व्यक्ति के चरित्र को धाकस्मिक और परबद्ध बनाने^{१२०} घटनाओं के घटा टोप में चरित्रों को बीना बना आसने, समस्याओं के तीव्र चरित्र चित्रण को दबा आसने यथार्थ से दूर कर धारण पर पहुँचने के लिए कई पापों की हत्या तक कर आसने आदि के आरोप उन पर लगाये जाते हैं। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि 'रगभूमि' का सूरदास प्रतिप्रयोजित के सहारे और प्रेमचन्द की कलम के बल पर सड़ा है। बचन

११५. कुछ विचार, पृ० २४

११६. वही पृ० ४७

११७. प्रेमचंद एक विवेचना पृ० १२३

११८. प्रेमचंद चिन्तन और कला, पृ० २१७

११९. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, पृ० २१२

१२०. कथाकार प्रेमचंद, पृ० ७३३

में धारस की बेटी पर ययार्म की बसि चढ़ा दी गयी।^{१११}

प्रेमचन्द के वर्ग-चरित्र

मार्क्स एंगेल्स ने अपने धोपनापत्र^{११२} में लिखा था कि मनुष्य-समाज के सब तक का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और धाधुनिक पूंजीवादी समाज में यह वर्ग-विरोध भीबूद है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण बखूबी देख सकते हैं।^{११३} 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त अपने घर से भागकर जिस गाँव में जा टिकता है, वहाँ वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमाश्रम' में गीस हॉ का अत्याचार, छास्मुकरारों के मनेबरो का अत्याचार और उनकी सम्पत्ता का अन्धा चित्रण हुआ है। गौदान में तो इस संघर्ष का नम्य चित्र उपस्थित है। साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी दिखनाया है कि अपने किसानों के सामने दोर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुनकारों के सामने बिरुद्ध भीगी बिस्ती बन जाते हैं।^{११४} 'कपा-कल्प' में भी रियाया पर अत्याचार करनेवाले राबा विधानसिंह के साथ मीजिस्ट्रेट जोय कुर्तो बीसा ब्यबहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति बोझा-सा असतोव ब्यक्त करने पर राबा साहब की मदद में पुलिस भाती है और जमारों पर गोली जमा होती है। मन्धिर प्रबस की माँग करने पर हरिजनों पर गोली भी बसती है। इन बातों से स्पष्ट है कि धोपकों के अत्याचार सामने भी भगति की राह में रोड़े अटकाने को हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गौदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का नून नूननेवाले कौन-कौन तरह समाज में पक रहे हैं।^{११५}

किसान वर्ग

प्रेमाश्रम जमींदारी-सोपण का और गौदान महाजनी-धोपण का अेष्ठ चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में अन् २६ में मंत्री के मारे किसानों एव उनके गगान बग्दी धारोसन का अन्धी चित्रण है। राजधन्ति ने भी उरुण वर्ग की और से धारि रसा के नाम पर रियाया के समन में अपनी अूटा और बर्बरता का नम्य प्रदर्शन किया है।^{११६} इसीलिए चरित्र विकास की दृष्टि से कर्मभूमि का प्रेमचन्द के उपन्यासों में अेष्ठ स्थान है। किसानों के इस अरम और बुखी संसार में मनीन सम्यता धाकर पुराने अक में बैसे बिबली जान होती है और किसान अिल-मिल होकर अमर-अमर बिबर

१११ साहित्य संघ. अणस्त अन् १९४४

११२ कम्म्युनिस्ट पार्टी का धोपनापत्र, पृ० ३६

११३ प्रेमचन्द, पृ० १४

११४ प्रेमचन्द : एक बिबेचना पृ० ७०

११५ कपाकार प्रमचन्द, पृ० १६७

११६ प्रेमचन्द एक बिबेचना पृ० १००

जाते हैं।^{११७} इसी तरह योदान एक भारतीय किसान की जीवन-कथा है।^{११८} जिसका मध्यम वर्तमान से कहीं अधिक प्रभावपूर्ण और भयंकर है। यहाँ हिन्दी-साहित्य में पहली बार एक भारतीय किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है। रंग भूमि का घूरघाट वास्तव में किसान नहीं है। उसके पास थोड़ी-सी बंजर जमीन है और वह पेसे से मिचारी है। पर होरी पेसे और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से ठेठ किसान है।

नारी घग

प्रेमचन्द ने नारी को भी सिर्फ प्रेरक चरित्र के रूप में ही नहीं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधे लगाकर काम करनेवासे छापी के रूप में देखा है। उन्होंने नारी-हृदय की उन गहरात भावनाओं के आधार पर अपनी रचनाएँ कीं जिनकी युगों से अपेक्षा होती घायी थी।^{११९} इसीलिए प्रेमचन्द की नारी पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्षों के बीच घोर भी निखरी है। प्रेमचन्द नारी की स्वतन्त्रता के समर्थक होने के साथ ही संघर्ष और मर्त्या के भी समर्थक थे। इसीलिए बचन में आत्मता के चरित्र का विकास उस समय से होता है जब वह समाज को मुक्त करने के लिए घर से बाहर आकर संघर्ष करती है। रंगभूमि में सोफी भी इसी का उदाहरण है। उनकी सुमन और निर्मला विनासकारी बहू-प्रथा की शिकार बनीं। कायाकल्प की रोहिणी बहुविवाह-प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करती है। प्रेमचन्द नारी के स्वावलम्बन के समर्थक थे। नती परिवार की सुखदा धर्मिया और मावती इसके उदाहरण हैं। पर रतन और चौहरा ऐसी हैं जो इच्छा रखते हुए भी स्वावलम्बी नहीं हो पातीं। सुखदा की ही भाँति योदान की योविन्धी भी समाज के प्रथम पर गंभीरतापूर्वक सोचती है। पर अन्त में प्रेम के बल पर ही ये अपने पतियों के छाव एकठा के सूत्र में बँधती हैं। गामनी एवं पूर्वा के चरित्र में उन्होंने दृष्टि-बन्धन के विरुद्ध परिणामों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'शिवासन' में उन्होंने बेस्वामुक्ति की समस्या का सविस्तार चित्रण किया है। योदान में भी इस समस्या पर बह-विचार होता है। प्रेमचन्द के सभी बेस्वा-गात्रों ने वैदिक जीवन में नैतिकता के महत्त्व को बराबर माया है। सुमन और चौहरा बेस्वा मुक्ति को त्यागकर सम्मानित जीवन बिताने लगती हैं।^{१२०}

नारी का प्रेयसी, मातृत्व एवं भ्रातृपिनी का रूप प्रेमचन्द के उपगात्रों में अधिक निखरा है।^{१२१} योदान में मीठा योविन्धी से कहाँ है—“नारी केवल माता है और

११७. प्रेमचंद, पृ० २३

११८. प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० १०७

११९. प्रेमचंद : चिन्तन और कला पृ० २०९

१२०. वही पृ० २१९

१२१. प्रेमचंद उनकी कृतियाँ और कला, पृ० १९०

इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपजम मात्र है।^{१०२} प्रेमसी के रूप में सोफिया बिरजन, मगौरमा भुनिया सिनिया मासती धीर मायत्री का मच्छा चित्रण हुआ है। जबी यह भी है कि इनका प्रेम स्वार्थ पर नहीं बल्कि बलिदान धीर कष्ट सहन पर आधारित है। पाश्चात्य सम्प्रदाय की मकल करनेवासी तितली बनकर फुल देने वाली गोदान की मासती की मिस्टर मेहता द्वारा उगहूँने कट्टु प्रालोचना की है। पत्नी के रूप में योबिन्दो धीर बनिया (गोदान), कुस्तुम सुखबा एवं मुष्ठी (कर्म भूमि) बामपा (पवन) सुधा एवं निर्मला (निर्मला) अहिल्या (कायाकल्प), बिद्या (प्रेमाभन) सुमित्रा एवं पूर्णा (प्रतिष्ठा) धीर मुमन (सेवासदन) का सफल चित्रण हुआ है। मातृत्व के गौरव से सम्पन्न रानी बाहूबी बेबी, जगो, सुपमा एवं सुधीला, बनिया बिद्या धीर निर्मला विशेष उस्तवनीय हैं।^{१०३}

प्रेमचन्द ने उच्च मध्यम धीर मिन्द, सभी वर्गों की स्त्रियों का चित्रण किया है। योदान की बनिया समस्त निम्नवर्गीय नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।^{१०४} कुस्तुम मध्यवर्गीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। उच्चवर्ग की स्त्रियों में बिद्या सिता, श्रेष्ठ धीर कूठा पायी जाती है हासकि जाहूबी बेबी धीर सोफिया इसके भ्रम बाद हैं। कायाकल्प में देवप्रिया धीर प्रमायम में गायत्री के शरिर्ष इसी तरह के हैं।^{१०५} प्रेमचन्द न यह भी दिखाया है कि निम्नवर्ग की नारियों में ईमानदारी समा, क्या तथा सम्मानपूर्वक जीवन बिताने की मादना अवर्सेष्ठ रूप में बिद्यमान है। पर समाज व्यवस्था उन्हें उठने नहीं देती।^{१०६} प्रेमचन्द के छाहिरय में सिर्ष बीबन का सुजन करने वाली ही नहीं प्रत्युत बीबन को मेटूरक प्रदान करने वाली स्त्रियों के भी दर्शन होते हैं जो नारी के नये रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं।^{१०७} इस दृष्टि से प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में साहस्य, स्पष्टबादिता जीवनवर्षपराम्यता पुरुष-पात्रों से अधिक है।^{१०८}

धार्मिक वर्ग-चरित्र

प्रेमचन्द ने जनता के शोषण में धर्मिबुद्धि करनेवाले धर्म के ठेकेदारों का भी पर्याप्त क्रिया है जिन्हें लैनिग ने मुसामी के 'सफेदपोष बलील' की संज्ञा दी थी।^{१०९} प्रेमायम में सैयद ईबाद हुसेन के यहीमखाने का हान सुनिये—'तकदीर पर तो जिदरी का बारोमदार है। न किसीके गुलाम न किसीके नीकर। दुनिया में कामयाबी

१०२. योदान, पृ० ४३३

१०३. प्रेमचन्द, पृ० ६८

१०४. वही पृ० ८०

१०५. प्रेमचन्द पृ० ८१

१०६. प्रेमचन्द : चित्तन धीर कसा, पृ० २३०

१०७. वही, पृ० ८१

१०८. लील निरूपण पृ० २७

१०९. प्रेमचन्द पृ० २१

का मुस्ता तो घटरंजवासी है। घाबपी जरा गिरहवाज हो बस उसकी चाँदी है। बीसठ उसकी चाँदी है।" धार्मिक और धार्मिक संस्थाओं के संस्थापकों का यह कथा बिट्टा है। प्रेमचन्द की रचनाओं में सर्वत्र धर्मधर्मियों के डोंम और उनकी झूठा और पालंज पर टीका व्यंग है। ऐवासदन का सूत्रपात ही बाकिबिहारीजी के बसों द्वारा एक बिट्टोही किसान की हत्या से होता है।^{१०} प्रेमात्म का जानसंकर धर्म का डोंग रचकर ही घाबपी का सतीत्व मष्ट करने को तैयार होता है। जूट मिस के मजदूरों पर कुरूप होनेवाले 'मदन' के सेठ करोड़ीमस भी बाड़े में कामल बाँटनेवाले एक 'धर्मदाय' बीज हैं जो भी में बर्षी गिलाकर साबों का मुताफा करता है। कर्मभूमि के धर्मकान्त जैसे सिद्धि और बयोबुद्ध व्यक्ति ठाकरद्वारे में कुसने पर हरिजनों पर सात-जूटे और गोभियां तक बसवा देने में नहीं हिचकते। लेकिन कुब तो वे सभीम के साथ बैठकर भोजन भी करते हैं। जानसंकर और घाबपी भी ऐसे ही पात्र हैं।^{११}

अछूत वर्ग

समासोचकों में प्रेमचन्द को गांधी युग का लेखक कहा है। किन्तु, 'कर्मभूमि' से पता चलता है कि प्रेमचन्द अछूतों के लिए गांधीजी से अधिक चर्चे रखते हैं।^{१२} उन्होंने मानवता की पुकार सुनी है न कि शूद्राव की शरारतों की पुकार। उन्होंने हरिजनों की समस्या का धोपण की प्राचीनतम परम्परा का पालन करने के लिए विवेचन और विचार किया।^{१३} हनुमान-पूड़ी खानेवासे बिबड़े पहिनेने वालों से लफट करने वाले मन्दिर के ममवान के बारे में प्रेमचंद ने जो उल्लेख किये हैं वे 'भसासिकल' और धर्म हैं।^{१४}

मध्यम वर्ग

प्रेमचन्द की अधिकतर कृतियों का संबंध मध्यम वर्ग से है और उन्होंने इस वर्ग की समस्याओं पर सुन्दरता से प्रकाश डाला है। 'ऐवासदन' (१११४) उनकी प्रथम कृति है जो मध्यम वर्ग के जीवन को चित्रित करती है। इसी विषयवस्तु का निबन्ध करनेवाली 'मदन' उनकी अंतिम कृति है जहाँ उनकी कला की प्रौढ़ता और शिल्प-विद्या की पूर्णता प्राप्त हुई है।^{१५}

धोपक-धोपित चरित्र यनाम महाजनी सम्मता का धारित्रिक विदलेपण

ऐवासदन में महाजनी सम्मता पर टीका चोटें करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा

१४०. प्रेमचंद, पृ० १२

१४१. प्रेमचंद, पृ० १३

१४२. प्रेमचंद (दीक्षित) पृ० ८४

१४३. वही, पृ० ८६

१४४. वही १३१

१४५. प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० ६२

है—“जिस समाज में धरत्याचारी जमींदार रिश्बती कर्मचारी धरत्याची महाजन स्वार्थी बन्धु, धाबर और सम्मान के पात्र हों वहां दासमण्डी क्यों न धाबाद हों ? इस महा बनी सम्यता को पश्चिमी शिक्षा ने धीरे धीरे उन्मत्त प्रदान की है। इसी शिक्षा के परिणाम स्वल्प, धामीरवारी सम्यता के कारिगों के बीच से जानघंकर ऐसे व्यक्ति भी पाठे हैं जो अपनी रिघायी के प्रति कोई भी रियायत नहीं करते।^{१५५} बनी बर्न के सड़के यही शिक्षा पाकर ‘कर्मभूमि’ के उसीम धीरे ‘प्रेमाभम’ के प्वासासिह जैसे अफसर बनते हैं। रंगभूमि का जान सेबक एक नये व्यापारी बर्न यानी नये पूंजीपतियों के प्रतीक हैं। एक तरफ बनता का सोपन दूसरी धीरे प्रबचन—यही उसकी धरत है। ‘गोबान’ का गोबर नये बिरोही मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। ‘रंगभूमि’ में मजदूरों का मिम में लगीयी गई धाम सबहारा बर्न के प्रारम्भिक दिनों के उसके कारिग को व्यस्त करने वाले हैं जिसकी बर्न मार्क्स-एंगेल्स के कम्युनिस्ट घोषणापत्र में धाब से सो सास पहले की गई थी। यह सर्वहारा वर्ग अपने प्रारम्भिक दिनों में मध्ययुग के कारी यरों की सोई हुई हैसियत फिर से कायम करने की बभपूर्वक कोसिध करता है।^{१५६}

समाज की प्रत्येक शृंखला में हर स्तर पर बोंक की तरह सोयों का कुन कुसने वाले महाजनो का बिम हमें प्रेमचन्द की कृतियों में सर्वत्र प्राप्त होता है। ‘प्रेमाभम’ जमींदारी सोपन का बिम खीचता है धीरे ‘गोबान’ महाजनी सोपन की बिधय पापा है।^{१५७} ‘गोबान’ में एक जगह किसानों के स्वाभ का एक बुरप है। बस खया कर्ब चाहने वाले किसान को सिर्फ पांच मिसे धीरे पांच खये मजरता बस्तूरी बगीरह में कट पए। किसान ने खये सोटाटे हुए कहता है—धब यह पाँचों भी मेरी धीरे से रख सीबिए। एक खया छोटी ठकुराइन का मजरता है, एक बड़ी का, एक छोटी के पान खाने को एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह धापकी किया-कर्म के लिए।^{१५८}

प्रेमाभम का धारम्भ ही हाकिम के बीरे से होता है। बपरसी, पटवारी धीरे कारिगों का उखवा बिचन, नासिध धीरे कुर्की ऊपर से टिकस बढ़ती धादि के बिम जमींदार धीरे हुबकानों की मिस्तीमयत के सखीय बुरप हैं। कारिगे गीसका का बरबार इबाफा मपान की लबर से धीरे भी सजने लगता है। फिर भी इनके-बुके बिरोही किसान तो हैं ही। मनोहर भी उनमें एक है।^{१५९} धादसबाबी बभराज भी अफसरों के बपरसियों के बुरम की कहानी सुनाने वाला धीरे किसानों के लिए बिप्टी प्वासासिह के पाध फरियार करने वाला एक बिरोही है। ‘कर्मभूमि’ में किसानों के धाम-बैस को ‘कुक्क’ कराने वाले सिबिलियन अफसर मिस्टर बोय की कूरता का भी सखीय बिचन है।

१५६ प्रेमचंद, पृ० १३

१५७ कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ४३

१५८ प्रेमचंद, पृ० ३८

१५९ हिंदी उपन्यास में बर्न जाबता पृ० ११३

१६० प्रेमचन्द, पृ० ७९

राजे-महाराजे

'कायाकल्प' में इस वर्ग के लोगों का विस्तार से बर्णन हुआ है।^{१५१} इस उपन्यास का नामक बिखानसिंह इस व्यवस्था का प्रतिनिधि पात्र है। राजा ने तीन साधियों की थीं। उनकी सबसे बड़ी रानी बसुमती कहती है—“ऐसे ही ग्यावसीध होते वो सन्तान का मुंह देखने को न तरसते।” बिखानसिंह तीसरी पत्नी रोहिणी से प्रेमिक प्रेम करते थे जो अपने हृदय में “होए को पालती थी जैसे बिड़िया अपने घड़े को सेती है।” साथ ही रानी देवप्रिया का चित्र भी है जिसकी काम भेष्ट्याएं बुढ़ावस्था में भी ठीक हो उठती हैं। ‘रमभूमि’ में भी ताजुल्कारों जमींदारों और राजाघों का विचारत वातावरण समुपस्थित है। कुंवर भरतसिंह राजा महेश्वरप्रतापसिंह कुंवर पिनवासिंह, बसवन्त मगर के राजा धादि अपनी सभा के लिए बिदेसी साधन पर निर्भर हैं। जन नाह का बाना बारणकर तास्तुकेपारी देश-सेवा करने वाले राजा भी जो भवसर भाते ही अपने भसनी रूप में प्रयत्न हो जाते हैं।^{१५२}

ध्रुव का कहना है कि जब व्यक्ति वर्गों के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उस समय उसके व्यक्तित्व विचार सामूहिक विचारों में बदल जाते हैं।^{१५३}

समूह-चरित्र

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में समूह के मनोविज्ञान में पहरी पैठ का परिचय दिया है। राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों का समूह और जन-कोबाहुल्य आदि के दृश्य उनकी कृतियों में बड़े सजीव हो उठे हैं। डा० ईफानमती ने निर्धोष आरामियों के बिच्छू बहसकर उन्हें सजाएँ बिखाई थीं। उन्हें अपने बीच पाकर जनता घेर लेती है। बड़ी मुश्किल से प्रमत्तकर उनकी जान बचाते हैं।

‘रियासत का बीजान’ नामक कहानी में जनसमूह का अभिविवास बिखामा गया है।^{१५४} ‘कर्मभूमि’ में लोगों द्वारा बसवन्तकार का प्रतिरोध करने वाली मुभी मिखारिन के मुकबले का दृश्य है जहाँ उसके बिच्छू सच्चा बयान देने वाले डाक्टर को जनता की सी-सी धिक्कारें मिलती हैं। समूह में जीप हाँकने की प्रतिभा बड़ी अवर्षस्त होती है। ‘कर्मभूमि’ में उसका भी धरुणा बिचल हुआ है।^{१५५} पढ़े-लिखे सलीम और धमर कामत भी समूह की मनोबुद्धि से प्रभावित होकर मुभी मिखारिन को सजा देने वाले पत्र के मुंह पर ठीक फसले के बल्लू जमाने के प्रस्ताव से सहमत हो जाते हैं। बड़ी जनता उसकी रिहाई पर प्रसन्न होकर तरह-तरह से धपना उल्लाह प्रकट करती है।

‘समूह’ नामक कहानी में समूह की टीका-टिप्पणी सुनने लायक है। साथ ही

१५१ प्रमचन्द और जनता मुम पृ० ७६

१५२ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रमचन्द, पृ० ७५

१५३ पुप साहकोलाजी पंडे की एनैलायसिस धाफ बी इपो, पृ० १७

१५४ प्रमचन्द पृ० १११

१५५ वही पृ० ११४

अविचलित भाव से साठियों की भार सहनेवासी भीड़ की दृढ़ता का परिचय है तो आदर्श और सिद्धान्त के नाम पर अपने स्वभाव के प्रतिकूल परिहसक बनी रहती है। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति विभिन्न वर्गों की सहानुभूति और सहयोग का विश्लेषण किया है और आन्दोलन की असफलता के लिए देश के नेतृत्व की बोयी ठहराया है।^{१२५}

जमींदार वर्ग

गोदान के रायसाहब जमींदार वर्ग के सुन्दर प्रतिनिधि हैं। प्रेमचन्द में जमींदार वर्ग के विभिन्न-विभिन्न नमूने पेश किये गये हैं। जमींदार ज्ञानार्थकर प्रेमचन्द की तमाम रचनाओं में सबसे द्रष्ट पात्र है। बिदेयी सम्मता के सम्पर्क में भारी भूत और स्वामी जमींदारी प्रथा का कच्चा चिट्ठा उसके चरित्र में प्राप्त होता है।^{१२६} ज्ञानार्थकर के समुर कमसामन्त और कर्मभूमि के महन्त धासाराय पिरी एक दूसरी तरह के जमींदार हैं जो भूमि की रक्षा के लिए वर्ग का डोंग करने में कुशल हैं। देश की नई राजनीतिक परिस्थिति में निरपिठ की तरह रंग बदलने वाले समाज के इन लुटेरों का उनके साहित्य में विशद रूप से वर्णन हुआ है। प्रेमचन्द ने यह बताया है कि किसान वर्ग समाज का सबसे निहृष्ट और पीड़ित वर्ग है और उनपर सबसे पहले जमींदारों का शासन है। इस जमींदार वर्ग के महत्त्व से उबासीन रहना जो सबसे अधिक भयानक हो चुका है, सांपादिक परिवर्तन को असफल बनाना होया।^{१२७}

प्रेमचन्द के औपन्यासिक चरित्र

'बरबान' (१९०४) प्रेमचन्द की प्रारम्भिक रचना है। मध्यवर्ग के जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित करते हुए इसमें प्रेम और कष्टमय के संघर्ष का चित्रण है। किन्तु, इसकी चरित्र-सृष्टि सबल नहीं है और न प्रभाव-शक्तता भी है। कुछ पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके उसमें अपेक्षाकृत कसारतमकता और स्वाभाविकता अवश्य आई गई है। पर इस पद्धति का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो सका है। आत्महत्या और आत्मरत्याम द्वारा पात्रों की समस्या का समाधान त्रुटिपूर्वक समता है और लेखक की कसारतमकता की असमर्थता प्रकट करता है।^{१२८}

'प्रतिज्ञा' पूर्व-अज्ञात 'प्रेमा' का संशोधित रूप है। इसमें भी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि में विषय-विवाह की समस्या है। इसमें नई शैली एवं कवितादी विचारों का संघर्ष चित्रित किया गया है। किन्तु, इस उपन्यास के पात्रों में गतिशीलता का अभाव है। सिद्धान्तवाद और आदर्शवाद के चक्कर में पड़कर पात्र निर्जीव हो गये हैं। दीना

१२६ प्रेमचन्द (दीक्षित) पृ० १३७

१२७ प्रेमचन्द और उनका युग पृ० ३२

१२८ प्रेमचन्द, पृ ६९

१२९ प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० १७९

नाथ का चरित्र बनकर खोजी बन सका है। पर उपन्यास में उसे सम्यक् स्थापन प्राप्त है। पूर्व और पार्श्वी कमसाप्रकार के प्राकृतिक चरित्र-परिवर्तन पर पाठक को विश्वास करने का भी नहीं चाहता।^{१००}

सैवाश्रम प्रेमचन्द का प्रथम विद्विष्ट उपन्यास है और कथा की दृष्टि से महत्वपूर्ण। यह कृति भी मध्यवर्ग की समस्याओं और जीवन से संबंधित है। यह भी उद्देश्यनिष्ठ उपन्यास है। किन्तु इसमें सबसे चरित्रों की सृष्टि हुई है। चरित्र-विकास में परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दिखाया गया है। उपन्यास में सुमन और सुयम की समस्या ही मुख्य थी है। बोल-चरित्र अपेक्षाकृत प्रभावहीन और उपेक्षित हैं जिसका मुख्य कारण समस्याओं का चित्रण है।^{१०१} मानव-प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण संयत और स्वाभाविक है। इसलिए पहले की कृतियों की अपेक्षा सैवाश्रम अधिक कलात्मक है।^{१०२}

प्रेमाश्रम (१९१०) प्रेमचन्द की उपन्यास-कथा की प्रवृत्ति का सूचक है। इसमें शान्ति जीवन और पुरुषी समस्याओं का सफल चित्रण है। साथ ही पत्नी के प्रेम पर भी विचार किया गया है जो एक राष्ट्रीय प्रश्न है।^{१०३} इस कृति में पहली बार लेखक ने व्यापक समाज-संबंधों पर अपनी दृष्टि बौद्धाई है जिससे उपन्यास में कई वर्गों के पात्रों को लाया गया है। इन वर्गों के पात्रों की चरित्र-व्याख्या में लेखक को अच्छी सफलता मिली है।^{१०४} पर इन पात्रों पर परिस्थितियों का प्रभाव साधारण रूप से दिखाया गया है। शांतिकर के चरित्र में व्यापकता ही मिलती है, किन्तु, पुरुषी मनोवृत्तियाँ हर परिस्थिति में समान रहती हैं जो क्षमता वाली हैं। प्रेमचंद भी एक बृहद् धारसंबादी पात्र है जो मनुष्य से अधिक हैवता है। कमलाश्रम एक असाधारण पात्र है। लेखक की धारसंबाधिता के कारण इस उपन्यास में हृदय-परिवर्तन के कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे चरित्रों की जिजी प्रवृत्ति के वर्तन नहीं होते और वे अविचलनीय हो जाते हैं। ईशार हुसेन ईकलप्रसी और शिवनाथ धारि ऐसे ही पात्र हैं। गांधी विद्या मंडा, दीनानाथ धारि स्त्री-जनों के चरित्र भाविक हैं। मनोहर बलराम, कादिर अपटसिंह धारि ग्रामीण पात्रों के चरित्र खोजी और स्वाभाविक हैं।

प्रेमाश्रम की सबसे बड़ी कलात्मक दृष्टि है उसमें कई धारसंबाधियों की खोजना। यह पात्रों के साथ सम्बन्ध है और उन्हें सन्तुष्ट पाने में लेखक की असमर्थता सिद्ध करता है। तथ्यता है जब प्रेमचन्दजी के ऐसे पात्र लेखक की सुविधा के लिए बन जाते हैं—जैसे 'पवन' में जोहरा की मृत्यु रंगभूमि में तुरबाह और विजय की मृत्यु।^{१०५}

१०० हिन्दी उपन्यास (पवन), पृ० ११

१०१ प्रेमचन्द साहित्यिक विश्लेषण, पृ० ३३

१०२ प्रेमचन्द एक विश्लेषण, पृ० ४४

१०३ प्रेमचन्द एक विश्लेषण, पृ० ४६

१०४ हिन्दी उपन्यास में नय भावना, पृ० १२९

१०५ प्रेमचन्द उपन्यास और चरित्र, पृ० ३४

१०६ प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० १००

'निर्यंता' (१९२३) में रहस्य प्रया और अमरेश बिबाह की समस्याओं को लिया गया है। इन समस्याओं के नीचे पात्रों का अपना व्यक्तित्व बन-सा जाता है। उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं बचीता। किन्तु निर्यंता का चरित्र विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए विकसित होता है। हास्यिक इस चित्रण में भी लेखक ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली का कम से कम उपयोग किया है। निर्यंता के चरित्र द्वारा प्रेमचन्द ने नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से निर्यंता की यचना प्रेमचन्द के विशिष्ट चरित्रों में है।^{२०७}

'रंघूमि' (१९२४) प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। इसमें भारतीय समाज के सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र मिलते हैं। भर्म की दृष्टि से हिन्दू, मुसलमान और ईसाई पात्र भी यहाँ इकट्ठे मिलते हैं। उन पात्रों में बर्गगत और वर्गगत तत्कारों का कृपणतापूर्वक चित्रण किया गया है फिर भी सोफिया और सुरदास इसके प्रभाव हैं। उनमें बैधित्यकृता है^{२०८} और इसीलिए ये उपन्यास की धारणन शक्ति के स्तम्भ हैं। सामान्य चरित्रों का भी इस उपन्यास में सफल चित्रण हुआ है। रंघूमि के प्रामीण पात्र भरों सुभागी अमुनी, बजरंगी, नायकराम, ठाकुरवीर भादि का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक लगता है। पर यहाँ भी पात्रों की स्थायी व्यक्तता न होने के कारण सोफिया और विनय भारतमहत्या करते हैं। प्रभुदेवक को ही लीविए। बड़े विस्तार से उसकी चरित्र-व्याख्या के बाद लेखक उससे छूटकारा पाने के लिए उसे विनाशय भेज देता है। प्रेमचन्द की उपन्यास कला की यह स्पूनता खटकनेवासी है। बड़े, रंघूमि में अनावश्यक पात्रों की भी कमी नहीं है।^{२०९}

कायाकल्प (१९२८) में प्रेमचन्द की उपन्यास-कला ने विशिष्ट पलटा धारण है। इस कृति में पूर्वजन्म और अम्यात्म का सहारा लेकर इस कृति को अमरकारपूर्ण बनाने का प्रयत्न हुआ है। इसमें भूमिपति मध्य और निम्नवर्ग के पात्रों की योजना की गई है। किन्तु इसमें अम्यवर्ग का प्राधान्य है और प्रायः बहुत से प्रथम पात्र इसी वर्ग से सम्बन्धित हैं। सुंदी बन्धन मध्यवर्ग का एक 'ठिपिकस' पात्र है और इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने में प्रेमचन्द के साहित्य में यह एक अनुपम पात्र है। किन्तु आदर्शवाद के अन्तर्गत में वक्रकर अक्रमर का चरित्र यांत्रिक ही उठा है। मनीषेणों के प्रभाव में उसे एक सजीव पात्र नहीं कहा जा सकता। पूर्वार्थ की तुलना में उसके चरित्र का उत्तरार्थ ही और भी प्रभावहीन हो गया है। सामान्य पात्रों में लोपी का चरित्र बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है। शीघ्र पात्रों में यह प्रमुख पात्र है। 'कायाकल्प' के स्त्री-पात्रों के चरित्रांकन में पुरुष-पात्रों की अपेक्षा लेखक को अधिक सफलता मिली है। राजा विद्यामतिह की रानियों—बसुमती और रोहिणी के चरित्र भी उत्प्रेक्षणीय हैं। मनोरमा की मनोव्यथा और अतृप्त आकांक्षाओं का मार्मिक चित्रण

२०७. प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प पृ० ७२

२०८. प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० ७६

२०९. प्रेमचन्द : साहित्यिक विश्लेषण पृ० ८२

हुया है। बरुवर की मां निर्मला के संक्षिप्त चरित्र में भी प्रेम और परम्परा का इन्द्र सपत्नतापूर्वक चित्रित किया गया है।^{११०}

'मदन' में सामाजिक समस्याओं की धरोहरा व्यक्ति की समस्या को प्रकटता मिली है। रामनाथ का मिथ्या प्रार्थन और जासपा का सामूहिक प्रेम उपन्यास की कथा का आधार है। नारी-पार्श्वों में जासपा एक मये बंध की नाटी है।^{१११} इसके प्रमुख पात्र मध्यमवर्ग से आते हैं। पुलिस विभाग के अधिकारियों के चित्रण में बड़ी स्वाभाविकता है। अपराधग्रस्त व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण की दृष्टि से रामनाथ का चरित्र अस्सेखनीय है। 'मदन' की पात्र दृष्टि कसारमक है। उसमें अभावपूर्ण पात्र नहीं है। चिह्न बोहरा की बोजना में भुटि है। किन्तु, इस भुटि की परम्परा उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों से ही प्राप्त होती है।

'कर्मभूमि' (१९३२) में भारतीय जीवन और समाज को प्रभावित करनेवाली धार्मिक राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण है। इसमें भी सभी वर्गों के पात्र आये हैं। चरित्र विकास की दृष्टि से कर्मभूमि प्रेमचन्द के श्रेष्ठ उपन्यासों में है। सबीबता और स्वाभाविकता की दृष्टि से सभी का चरित्र अस्सेखनीय है। अमरकोट भी अल्प धार्यवादी पात्रों की धरोहरा धार्मिक सजीव है। बोन पात्रों में पठानिन सभोनी कासेबा आदि के चरित्र अस्से बल पड़े हैं। कर्मक्षेत्र में भी 'कर्मभूमि' की नारियां पुरुष-पार्श्वों से होकर प्रतीत होती हैं। नारी-पार्श्वों का मनो-बैज्ञानिक विश्लेषण एवं चित्रण पुरुष-पार्श्वों की धरोहरा धार्मिक सबीब हो सका है।^{११२}

'गोदान' (१९३६) प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस कृति का उद्देश्य ग्रामीण जीवन का चित्रण करना है। सामाजिक कठिनायों की सम्पुन्नता के लिए तयरी की समस्या भी सम्बद्ध है।^{११३} जमींदार, महाजन और किसान इस ग्रामीण व्यवस्था के मुख्य धर्म हैं। जमींदारों-महाजनों के शोषण और लूट का मकार्थ चित्रण वहां उपस्थित है। यह उच्च मध्यम और निम्नवर्ग के पात्रों के माध्यम से किया गया है।^{११४} अन्वय में जन्मा जैसे पूजिपति और रामसाहब जैसे जमींदार मध्यम वर्ग में मेहता मामठी और घोकारनाथ जैसे चरित्र एवं मिश्रवर्ग में छोटी योवर बिलिया, घोना हीरा भूरे आदि व्यक्ति आते हैं। गोदान के अधिकांश पात्र शोषण और शोषित वर्ग में बंटे हैं। शोषितों में किसान और मजदूर दोनों हैं। गोदान की पात्र-संयोजना में धार्यवादी पद्धति अत्यन्त ही सही है। वहां मेहता जैसे शैक्षिक धार्यवादी पात्र भी हैं किन्तु मेहता यथावत् से नाता नहीं छोड़ते। इसलिए वे प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों के धार्यवादी पात्रों जैसे निर्जीव नहीं हैं। इस दृष्टि से उन्हें धार्यवादी पात्र नहीं

११० प्रेमचन्द उपन्यास और चरित्र, पृ० १०६

१११ प्रेमचन्द और उनका युग पृ० ६८

११२ प्रेमचन्द उपन्यासकाल, पृ० १३६

११३ आलोचना (इतिहास विधेयांक), पृ० ११४

११४ प्रेमचन्द साहित्यिक चिन्तन, पृ० १३६

भी कहा जा सकता है। अन्य पात्र तो यथार्थवादी हैं ही। उपन्यास के अन्य गौण पात्रों में—खासकर ग्रामीण शरिर्षों में—स्वामाधिकता और सचीवता की कमी नहीं है। इस स्वामाधिकता का आधार यथार्थवादी शरिर्ष बिभन ही है। भूमिमा गोबर पुमिया, सिधिया पटेरबरी मिश्रुीसिंह धारि ऐसे ही पात्र हैं।

‘मदससून’ प्रेमचन्द का अन्तिम प्रपूर्ण उपन्यास है। इसमें मध्यवर्ग के नायक पात्र प्रमुख हैं। ‘मदससून’ के नायक देवकुमार एक धारसबादी साहित्यिक हैं। बड़ा लड़का सन्तकुमार पिता के धारसबाद को पसन्द नहीं करता। छोटा लड़का साधुकुमार पिता के धारसों का समर्थक है। किन्तु, बदसते हुए जमाने के बनकर में देवकुमार का धारसबाद टिक नहीं पाता। वे स्वयं मानसिक झमाकात में पड़ जाते हैं।^{११५} नायक के सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने लिखा है— ‘पंडित देवकुमार को धमकियों से झुकाया असम्भव था।’^{११६} देवकुमार एक प्रगतिपीछे व्यक्ति हैं। वे शोषकों से समझौते के विरुद्ध हैं।^{११७}

‘गोदान’ की तुलना प्रखर टालस्टाय के उपन्यास ‘युद्ध और शांति’ से की जाती है। इसमें धनेक नीचन्त पात्रों की सृष्टिकर लेखक ने पूरे कड़ी समाज की वैविध्यपूर्ण प्रकृतियों का यथार्थ चित्रण किया है। किन्तु इसमें किसी ऐसे शरिर्ष की सृष्टि नहीं की गई है जो ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला हो।

‘गोदान’ में भी भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले धनेक पात्रों की सृष्टि की गयी है।^{११८} पात्र के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने के उद्देश्य से प्रतिनिधि पात्रों की योजना की गई है। किसानों का प्रतिनिधित्व होरी करता है। सिधिया और उसका परिवार सख्तारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। पंडित दाठाशीम ठाकुर मिश्रुीसिंह कारकुम मोखराम पटवाडीलाल पटेरबरी ममक साहू दुलारी धारि महाजनो और सन्धवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्रामीण समाज के स्वार्थ और नतिक लोचसेपन का उच्चाटन करने के लिए भी कई पात्रों की सृष्टि की गयी है।

जमींदारों का प्रतिनिधित्व रायसाहब करते हैं। बैंकर बनना व्यापारी वर्ग का पहली बार ही बीच का लम्बा ब्रुसबोर सम्पादक का धोकारनाय, महता प्राध्यापक वर्ग का एवं मिर्बा लुईसिंह पहरी मस्त्रानों के प्रतिनिधि हैं। गोविन्दी ने भारतीय नाट्य का एवं मीनाक्षी ने नारी के धर्म का प्रतिनिधित्व किया है। बिबाह सम्बन्धी बदली हुई धारणाओं का प्रतिनिधित्व किया है। मामली की बहन धरोबिनी और रायसाहब के पुत्र सख्तपात ने जो रजिस्ट्री द्वारा बिबाह करके बिसायत जते जाते हैं। इस तरह ‘युद्ध और शांति’ की तरह विभिन्न प्रकृतियों से युक्त शरिर्ष-चित्रण द्वारा

११५ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० १३४

११६ मदससून, पृ० ६८

११७ प्रेमचन्द (बीसित) पृ० १७४

११८ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० १४६

'गोदान' भी उपन्यास के साधारण स्तर से ऊपर उठ जाता है।^{१९९}

प्रेमचन्द के औपन्यासिक नायक

प्रेमचन्द के नायक स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं जो लेखक की विभिन्न प्रवृत्तियों के परिचायक हैं। उनके नायकों की तीन प्रमुख कोटियाँ दिखाई पड़ती हैं—एक वे जो लेखक के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं दूसरे वे जिनमें प्रारम्भ से ही नेतृत्व करने की क्षमता है तीसरे वे जिनका निर्माण परिस्थितियों द्वारा होता चलता है। इन कोटियों में आनेवासे पात्रों के प्रसावा भी कई ऐसे नायक हैं जिनमें एक से अधिक गुण विद्यमान हैं। नारी-नायकों का निर्माण प्रायः सामाजिक समस्याओं को उपस्थित करने के लिए ही किया गया है। 'सैवासयम' की सुमन पुरुषों द्वारा स्थापित समाज की बोधी भर्खाबा और अर्हकार पर गहरी चोट करती है। 'निर्मला' बहुल-प्रथा, अनैस विवाह और प्राकृतिक पराधीनता से अस्त समाज का भीखित चित्र उपस्थित करता है। निर्मला स्वयं अनैस कृत विवाह की शिकार नारी की एक कवच प्रतिमा है।^{२००} सुमन का वास्तविक विकास बचन की आसपास में होता है। उसकी सृष्टि प्राचीन और नवीन सभ्यताओं के आधार पर हुई है जिसका अरम विकास 'गोदान' की मासती है।

यद्यपि प्रेमाश्रम के नायक प्रेमचंकर हैं किन्तु, ज्ञानचंकर की बृद्धता उनके ग्रन्थ पात्रों में नहीं मिलती। 'रंजभूमि' का नायक सुरदास सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना स्थानी नहीं रखता। सहाय स्वामाजिक मानवोचित गुणों-अवतुणों के कारण वह हमारे विश्वास का पात्र बन जाता है।

गोदान के होरी में नायक के सभी गुण हैं। किन्तु, उसमें परिस्थितियों को अपने अनुसार चमाने की शक्ति कहीं। वह एक साधारण और दब-पिटा किसान है जिसकी मृत्यु भी कारुणिक है। होरी से अधिक जीवन्त तो उसकी पत्नी यनिया जान पड़ती है। मासती १३ १६ के नारी-आगरण की प्रतिनिधि है, पर विश्वसनीय नहीं।

प्रेमचन्द के नायकों में आदर्श से यथार्थ की ओर एक नैतिक विकास पाया जाता है। नाथीबाही आदर्शवाद से प्रारम्भकर गोदान और मंजसूत्र तक आते-आते वे पुण्यता यथार्थवादी हो जाते हैं। किन्तु होरी के यथार्थ जीवन-विकास के बाद भी उनके नायकों की प्रेरणा का आधार भारतीयता ही है और उरी के आधार पर उनका जीवन-व्यापार चलता रहता है।^{२०१} सुरदास से होरी तक उनके नायक आदर्श से यथार्थ की ओर निरन्तर उग्रुत्तर चहुँते हीचते हैं।^{२०२} 'गोदान' कष्ट और मूख की रिल बहलानेवासी कहानी है। होरी मानवीय और ईवी दोनों प्रकार की ताकतों का शिकार

२१३. समालोचक, अग्रत १३३३, पृ० ४७

२२०. प्रेमचन्द : एक विवेचना, पृ० २७

२२१. त्रिभुवनसिंह, आकाशवाणी इलाहाबाद दिनांक १ १०-२८

२२२. हिन्दी उपन्यास (अनन) पृ० २०६

हो जाता है।^{२१९}

मोक्ष का गोबर उनके पात्रों के विकास की जरूरत सीमा है। वह नई पीढ़ी के असतोष का प्रतीक है। वह पापकों की दुनिया को मिटाने की बात सोचता है। गाँव से वह सहर मानता है। किन्तु प्रेमचन्द उसके चरित्र का क्रांतिकारी विकास करने में असमर्थ होते हैं। उन्होंने महाजनी सम्मता की विवृति के चित्रण में ही उसे खपा डाला। यह महाजनी सम्मता ह्यासोग्मुक्त जमींदारी सम्मता को तेजी से निगलती जा रही है। किसान यदि गाँव के छोटे महाजनों का टिकार है तो जमींदार बैंकों और बड़े महाजनों का कर्जदार। इसीलिए सभ्यों में ही सही पर यह जमींदार भी पूँजीबारी व्यवस्था का विरोध करता दीखता है।^{२२०}

प्रेमचन्द की कहानियों के चरित्र

प्रेमचन्द के पात्र साधारण समाज के जीव हैं। उनमें महानता अमत्कार, अमानवीयता और परमानवीयता (अनह्यमन और सुपरह्यमन) नहीं मिलती। किन्तु, उनमें सहज स्वामाधिक और व्यावहारिक सद्गुणों का परामर्श भिन्नता है। पात्रों की उपरोक्त उपलब्धियों का प्रदर्शन के वैयम्य (कन्ट्रास्ट) दिखाने या पूर्ण अवस्था को पश्चात् अवस्था का जबाब देने की प्रवृत्ति को अपनाकर करते हैं।^{२२१} उन पात्रों में एक स्वस्थ व्यापारधीमता मिलती है। इसीलिए कम्प्रेन्सा में आचार में और मानसिक गति में उनके पात्र अर्थात्-से लगते हैं। उनमें यदि आदर्श हैं तो वह भी व्यावहारिक आदर्श है। पंच परमेस्वर, बड़े घर की बेटी ममक का बारोगा, सज्जनता का बंड आस धीठा परीक्षा आदि कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। प्रेम संबंधी कहानियों के उनके पात्र भी स्वस्थ प्रेम के पोषक हैं, प्रेम के रोमी नहीं। यह लेखक की विशेषता है। उनकी कहानियों में अनेकों अमर चित्रों और चरित्रों के दर्शन होते हैं। कजाकी सतरंज के खिनाड़ी कदम के बाप-बेटे के चरित्र और चित्र इसके उदाहरण हैं।^{२२२}

चरित्र विकास धार चरित्र-कल्पना के क्षेत्र में उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक और विस्मय-विधि अत्यन्त सुदृढ़ है। उनके पात्र सभी जगह सभी उम्रों और समाज के सभी स्तरों से आते हैं। उनमें अशुद्ध-बुरे सभी तरह के लोग आते हैं। यहाँ तक कि पशु पक्षी आदि भी उनके चरित्रों की सीमा के भीतर आ जाते हैं जैसे 'पूत की रात' में जबरज एवं 'भारताराम' में तोता। फिर भी अवेबनारमक दृष्टिकोण से प्रेमचन्द मध्यवर्गी के कथाकार हैं। किन्तु, उनके पात्र कभी चरित्र की अदृष्टताएँ या मानसिक

२२३ प्रेमचंद एक विशेषता, पृ० १७

२२४ अमर्ष : चित्त और कजा, पृ० ८४

२२५. प्रेमचंद : उनकी कहानी कला, पृ० ८६

२२६ वही पृ० २०२

वृत्ति) उन्नीचा नहीं करते।^{१००} उनकी कहानियों में सर्वथा भावार्थ और यथार्थ के बीच के बीच कायम-मुक्त यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है।^{१०१}

किये कहानों में चरित्र को सम्पूर्ण रूप में देखने के लिए उसके मूर्त और प्रसून दोनों रूपों को देखना आवश्यक है। अक्सर मैं तो इस प्रसूर्त रूप की प्रतिष्ठा प्राप्त ही कहानों में पलकटता पाती है। और प्रेमचन्दजी अपनी कहानियों में सभी दुस्त चरित्रों के दोनों ही रूपों को उपस्थित करने में सफल हुए हैं।^{१०२}

ऐतिहासिक दृष्टि से हमकी कहानियों में चरित्रों को तीन भागों में बांटा जा सकता है—प्रथम काल १९१० से १९२० ई० तक द्वितीय काल १९२० से १९३० ई० तक और तृतीय काल १९३० से १९३६ तक मानना चाहिए। इन तीनों कालों के चरित्रों में कलात्मक और भावात्मक दृष्टि से स्पष्ट अंतर है। प्रथम काल में चरित्रों की सिर्फ व्याख्या हुई है। द्वितीय काल में उनका विकास प्रादुर्भाव-मुक्त यथार्थवाद की ओर हुआ है। और तृतीय काल में कथाकार ने चरित्रों की ओर सिर्फ इशारा भर कर दिया है।^{१०३}

प्रच्छादना तथा बुराईयाँ हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं।^{२३४} घतरंज के सिमाङ्ग के भीरु और निर्वा साहब बुड़ी काकी सुभागी कंसायी बौद्धम, दफ्तरी घात्माराम, मैकु भादि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के कृत्य या क्रिया-प्रभाव नहीं बरन् उनके मनो-भावों के दशन हमें मिलते हैं। बुड़ी काकी के मनोभावों को देखिये— 'एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न कड़ाह के पास ही चलकर बैठू। पूड़ियाँ छन छनकर लेंती होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निरासकर पास में रखी जाती होंगी।'^{२३५} कहीं-कहीं सामोरा पात्र भी सामने घात हैं और बिना कुछ बोले या कहे अपने मनो-भावों का पूरा नक्शा हमें दे जाते हैं— 'दफ्तरी ने ससाम किया और उस्टे पात्र छोटा उसका इस तरह मोटना कितना सारपूर्ण था। इसमें सज्जा भी संतोष था पकटाया था। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। लेकिन उसका बेहरा कह रहा था मुझे विश्वास था कि घाप यही उत्तर बेंगे इसमें मुझे शक भी संविह न था।' इस काल की ऐसी ही कहानियों में स्त्री और पुरुष स्वयं अपने मनोभावों का विश्लेषण कर जाते हैं।^{२३६} 'प्रेम का स्वार्थ' में भी स्त्री के मनोभावों का इसी तरह विश्लेषण है। इस काल के पात्रों की मानवीय पूर्णता का अधिक स्पष्टीकरण हुआ है। इन चरित्रों में इनके अन्त-अन्त मित्रत्व की स्थापना और आंतरिक तथा बाह्य दोनों पक्षों का विश्लेषण हुआ है। इसीलिए इन चरित्रों में अधिक समीक्षा और मानवीय तत्त्व मिलते हैं जिससे ये कहानियाँ अधिक वैज्ञानिक हैं।^{२३७} इस तरह प्रेमचन्द ने अपनी प्रारंभिक कहानियों में आचार विकास काल की कहानियों में चरित्र एक उनके मनोभाव तथा अन्तिम काव्य या उत्कर्ष काल में उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का विश्लेषण किया। उत्कर्ष काल तक आते आते चरित्रों की आदर्शवादी माय्यताएँ और उपदेशात्मकता पीछे छूट गयी और वे कहानी के चरित्रों की भाँति अपने सच्चे रूप में हमारे सामने आये^{२३८} इसीलिए उत्कर्ष काल की कथन 'मनोभूति तथा' और 'बाहु' आदि कहानियों का पूरा अद्यतन चरित्रों के मनोभावों पर आधारित है।

आलोचकों ने उनपर आरोप लगाये हैं कि उनके पात्रों में गहराई नहीं है और समस्याओं की पृष्ठभूमि में उन्हें अपने चरित्रों को नहीं देखा है। पर ऐसी बात नहीं। प्रेमचन्द ने फायद के सिद्धान्तों को देखा परन्तु और फिर रह कर दिया। 'मिठ पदमा' का चरित्र-चित्रण इसका एक उदाहरण है— 'भोग में उसे कोई नैतिक बाधा नहीं थी इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी।'^{२३९} किन्तु प्रेमचन्द ने इस विकार और कृता को महत्व नहीं दिया। वे निरस्र प्रेम के समर्पक थे।

२३४. मित्रविधि, पृ० ६६

२३५. प्रेमपचीसी पृ० १३३

२३६. प्रेमचंद उनकी कहानी कला, पृ० १४८

२३७. प्रेमचंद—उनकी कहानी कला पृ० १४४

२३८. आलोचना (१४), पृ० ३

२३९. प्रेमचंद, जीवन और कृतित्व पृ० १७१

गुणियों उपस्थित नहीं करते।^{२२७} उनकी कहानियों में सर्वथा आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के बीच आदर्शोन्मुख यथाववाद की प्रतिष्ठा हुई है।^{२२८}

द्विती कहानी में चरित्र को सम्पूर्ण रूप में देखने के लिए उसके मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों को देखना आवश्यक है। अतएव मैं तो इस अमूर्त रूप की प्रतिष्ठा प्राय ही कहानी में उल्लेख्यता पाती हूँ। और प्रेमचन्दजी अपनी कहानियों में तभी पुष्प चरित्रों के दोनों ही रूपों को उपस्थित करने में सफल हुए हैं।^{२२९}

ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी कहानियों में चरित्रों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—प्रथम कास १९१० से १९२० ई० तक, द्वितीय कास १९२० से १९३० ई० तक और तृतीय कास १९३० से १९३६ तक मानना चाहिए। इन तीनों कासों के चरित्रों में कलात्मक और भावात्मक दृष्टि से स्पष्ट अंतर है। प्रथम कास में चरित्रों की सिर्फ व्याख्या हुई है। द्वितीय कास में उनका विकास आदर्शोन्मुख यथाववाद की ओर हुआ है। और तृतीय कास में कथाकार ने चरित्रों की ओर सिर्फ इशारा भर कर दिया है।^{२३०}

प्रारंभिक काल में कहानियों की श्रुतिका से चरित्र-विकास प्रारंभ होता है जैसे 'पंच परमेश्वर' का प्रारंभ।^{२३१} पहले परापाक के बाद भी उनका भी न भय तो एक दूसरे परा में उन्हीं सुन्मग रोख और असन्तुष्टि की मित्रता का विषय बर्णन किया है।^{२३२} इस तरह शुरू में ही अपने पात्रों का बहुपुंय परिचय दे जाते हैं और पाठकों को उनके विषय में कुछ धोखता नहीं पड़ता है। यही स्थिति छोट उपदेश मर्यादा की बेबी पाप का अभिकांड आदि कहानियों के पात्रों के परिचय में भी है। इस तरह प्रथम कास की कहानियों के पात्र^{२३३} आचरण प्रधान हैं न कि चरित्र प्रधान। रानी सारंभा परीसा सज्जनता का बंध नमक का वारोगा आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। इनमें पात्रों के आंतरिक पक्ष का परिचय बिरहुत नहीं मिलता—सिर्फ उनके चरित्र का बाह्य पक्ष ही पढ़ता है। इसी कारण उनके पात्रों की मानवीय पूर्णता स्पष्ट नहीं हो पाती।

द्वितीय काल की कहानियों के पात्रों में उनका चरित्र विकास अधिक स्पष्ट है। यहाँ हम पात्रों का चरित्र और उनके व्यक्तित्व के निपटरे हुए स्वल्प का वर्णन करते हैं। इस कास में चरित्र विस्मय या व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा की आभासिद्धा व्यक्ति है, उसकी दुर्बलताएं और आंतरिकता है। उनके द्वन्द्व संघर्ष और उनकी समस्त

२२७ प्रमचंद : उनकी कहानी कला, पृ० ५३

२२८ द्विस्वचिचि पृ० ७६

२२९ प्रेमचंद उनकी कहानी कला, पृ० ५३

२३० द्विस्वचिचि, पृ० ६६

२३१ समसरोज पृ० ४४

२३२ वही

२३३ प्रेमचंद : उनकी कहानी कला पृ० ५४

घण्टाइयां तथा बुराइयां हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं।^{२३४} शतरंज के खिलाड़ के मोर घोर मिर्जा साहब बूढ़ी काकी सुभागी कैभायी बीरम बपतरी आत्माराम मकू आदि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के हृदय या क्रिया-कलाप नहीं बरन् उनके मनो-भावों के दखन हमें मिलते हैं। बूढ़ी काकी के मनोभावों को देखिये— 'एक पूड़ी मिलती तो बरा हाम में लेकर बैठती। क्यों न कड़ाह के पास ही बसकर बैठू। पूड़ियां छन छमकर ठंरती होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निनासकर पास में रखी जाती होंगी।'^{२३५} कहीं-कहीं सामोच पात्र भी सामने आते हैं और बिना कुछ बोले या कहे अपने मनो-भावों का पूरा नक्शा हमें दे जाते हैं— 'बपतरी ने उसाम क्रिया घोर उस्टे पांज लोटा 'उसका इस तरह लोटना कितना सारपूज था। इसमें सज्जा थी संतोप था पकवावा था। उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला। लेकिन उसका चेहरा कह रहा था मुझे विश्वास था कि आप यही उत्तर देंगे, इसमें मुझे आश भी संदेह न था।'^{२३६} इस कास की ऐसी ही कहानियों में स्त्री और पुरुष स्वयं अपने मनोभावों का निरूपण कर जाते हैं।^{२३७} 'प्रेम का स्वांग' में भी स्त्री के मनोभावों का इसी तरह चित्रण है। इस कास के पात्रों की मानवीय पुण्यता का अधिक स्पष्टीकरण हुआ है। इन चरित्रों में इनके अलग अलग निरालय की स्थापना और आंतरिक तथा बाह्य दोनों पराओं का चित्रण हुआ है। इसीलिए इन चरित्रों में अधिक सजीवता और मानवीय तत्त्व मिलते हैं जिससे ये कहानियां अधिक शैक्षणिक हैं।^{२३८} इस तरह प्रेमचन्द ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों में आचार, विकास काल की कहानियों में चरित्र एवं उनके मनोभाव तथा अन्तिम कास या उत्कण्ठ कास में उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का चित्रण किया। उत्कण्ठ कास तक आते-आते चरित्रों की भावधारावी माग्गताएं और उपदेशात्मकता पीछे छूट गयीं और वे कहानी के चरित्रों की भांति अपने अपने रूप में हमारे सामने आये^{२३९} इसीलिए उत्कण्ठ कास की कथन 'मनोवृत्ति तथा' और 'बाहु' आदि कहानियों का पूरा अद्यतन चरित्रों के मनोभावों पर आधारित है।

आलोचकों ने उनपर आरोप समायें हैं कि उनके पात्रों में गहराई नहीं है और समस्याओं की पृष्ठभूमि में उन्होंने अपने चरित्रों को नहीं देखा है। पर ऐसी बात नहीं। प्रेमचन्द ने फ़ायद के सिद्धान्तों को देखा परसा और फिर रद्द कर दिया। 'निस पक्का' का चरित्र-चित्रण इसका एक उदाहरण है— "भोग में उठे कोई नैतिक बाधा नहीं थी इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी।"^{२४०} किन्तु, प्रेमचन्द ने इस विचार और कृंठा को महत्व नहीं दिया। वे निरस्र प्रेम के समर्पक थे।

२३४. सिम्पबिधि, पृ० ६६

२३५. प्रमपचीखी, पृ० १३३

२३६. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४७

२३७. प्रेमचन्द—उनकी कहानी कला पृ० १४८

२३८. आलोचना (१४), पृ० ३

२३९. प्रेमचन्द जीवन और इतिहास पृ० १७१

स्त्री-पुरुष के प्रेम से सर्वत्र रहने वाली कहानियाँ उन्हीं बहुत ही कम मिलीं। प्रेमभाव का लोभ (व्यक्तिगत बराबर से) उनके मान-बराबर में पर्यन्त सीमित है।^{१००} मर-मारी के प्रेम—उनका यौग प्रेम धरत की भाँति प्रेम के वीरानों की विह्वल मनःस्थिति का विनाश उनकी कथा के विषय नहीं बन पाये हैं।^{१०१} वहाँ उन्हीं ऐसे चित्र खींचे भी हैं, वहाँ उनके बीच से कीर्ति और संवेद्य शक्ति दिखाई देता है। उनके प्रेम में वासना की दुर्बल नहीं है। वे प्रेम की अन्त परिणति विवाह को मानते हैं।^{१०२}

कहानियों के स्त्री-चरित्र

प्रारम्भिक काल की कहानियों में प्रेमचन्द ने स्त्री-पुरुषों को सामूहिक रूप से धारणकारी और मर्यादाकारी के रूप के चित्रित किया है। वे परंपरागत माध्यमों और लोकनिधा से सहजी हुई हैं। 'मर्यादा की बेटी' की प्रथा कही है— बिना तरह वहाँ जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। बिय खा लूँगी या छापी मैं कटार मारकर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रखूँगी। यह मारी इस बर्बर सजाव और उसकी माध्यमों के बसके स्वयं अपने को मरने वाली मर्यादावादिनी है।^{१०३} बड़े घर की बेटी की धार्मिकी शीत की मोहावरी पंच-परमेश्वर की छात्रा रानी सारंगी पाप का धर्मिण्ड की राजनन्दिनी समासस्या की राजिनी गिरिजा और ममता की माँ प्राणि ऐसे ही स्त्री-चरित्र हैं। ऐसे ममता है कि स्त्री-चरित्र की इन माध्यमों के पीछे भारतीय स्त्रियों की धार्मिक संयुक्त परिवार में आस्था की परंपरागत भावना है। वेदक की स्त्री चरित्रों के बारे में विद्व-सुम्बरम् की भावना भी इनमें लिखित है।^{१०४}

विकास काल की कथाओं में स्त्रियों का रूप उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत होता है। यही इस काल के चरित्रों की पहचान और उनकी विशेषता है।^{१०५} इस काल की स्त्रियाँ धार्मिक मुक्त और स्पष्टवादिनी हैं। यहाँ तक आते आते उनमें अंतिकायी परिवर्तन या आता है। 'धंधलार' में स्त्री कही है—“मैं सब काम करने से काम नहीं लेनेगी सहेते-सहेते हमारा कामकाज पक गया।” साहूष्य में स्त्री के स्वर्गों में भाँति और स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा है—“मुझ में जीव है भेतना है बड़ क्योंकर बन जाऊँ मैं अपने को समझित नहीं समझती 'पम पम पर लंका की चोर अपमान समझती हूँ' कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए भ्रमता फिरे यह असह्य है। पुरुष नवों स्त्री का भाव्यविभाटा है, स्त्री

१००. दिव्यविधि, पृ० ७४

१०१. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० २३०

१०२. दिव्यविधि, पृ० ७३

१०३. प्रेमचंद : उनकी कहानी कला पृ० १२०

१०४. प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन पृ० १३६

१०५. दिव्यविधि, पृ० १११

क्यों तिरय पुरुषों का आशय चाहे, क्यों उनका मुंह ताके।” ‘ब्रह्म के स्वांग’ की वृत्ता पुरुष के छोड़सेवन पर कृपित होकर सोचती है—“यह घर घर मुझे काण्ठगार सगता है, किन्तु मैं तिरास नहीं हूँ।”^{१४६} ईश्वरी म्याय विष्वस नैरात्म्यसीसा शंखनाद धीर धाति धारि कहानियां ऐसी ही हैं। इस विकास काल में स्त्रियों का चरित्र बहुत निखरा है। वे घर यथार्थ मातृभूमि पर बड़ी होकर अपनी असक्षियता को पहचानने की कोशिस करती हैं।^{१४७} फलतः उनके चरित्र में स्त्री-मुलम लोच नहीं है। उत्कर्षकास की स्त्रियों में दोनों रूप समान मिलते हैं। मिस पद्मा का स्त्री-चरित्र धति धामुमिक दृष्टिकोण से विभित किया गया है।^{१४८} दूसरी धीर कुसुम है जो अपने पति को ‘बेवता पुर राजा’ कहकर उपेक्षा न करने की प्रार्थना करती है।^{१४९} अन्त में तंग धाकर कहती है—“ऐसे बेवता का बडे रहना ही अण्डा है। जो धारमी इतना दनी स्वार्थी धीर नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा।”^{१५०} इस प्रकार प्रारंभिक काल के स्त्री-चरित्र पूर्ण धारदर्शवादी एवं विकास काल में वे एकपक्षीय हो जाती हैं यानी अतिकारी है तो धत तक बेसी ही बनी रहती हैं।^{१५१} उत्कर्षकास में ये ही स्त्री चरित्र नारी-मनोविज्ञान धीर मनोमार्थों के प्रतिनिधि हैं। समका चरित्र स्वामाधिक धीर यथार्थ है धीर वे मानव-मुलम तमाम उदार-बकाव परिस्थितियों धीर मनोमार्थों से धनुप्राभित हैं।

पुरुष-चरित्र

पुदय चरित्रों के चित्रण में भी प्रेमचन्द की माध्यताएं बही हैं जो स्त्री चरित्रों में। उनमें केवल इतना ही अंतर है कि स्त्री चरित्रों में असंतोष एवं धाति की भावना पुरुषों से अधिक है वे धारदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हैं। यह तो दुई प्रारंभिक काल की कहानियों में पुरुष पार्थों की स्थिति। द्वितीय काल की कहानियों में समाज के सभी प्रमुख या साधारण चरित्र मिले गये हैं। उनमें अमार, बोबी माथी बापछाह, नबाब तालुकेदार धीर अंग्रेज तक धा गये हैं।^{१५२} नीकरी पैसे के सभी पुरुष चरित्र भी इनमें धामिल हैं। बाब की कहानियों में पैसे को छोड़कर व्यक्ति धीर उधका चरित्र अधिक उभरा है। ‘साज फीता’ ‘ईश्वरीय म्याय’ धीर ‘बिक का बिबाला’ धादि कहानियां इसी कोटि में धाती हैं।^{१५३} प्रेमचन्द ने इन पार्थों के द्वारा

१४६ प्रेमचन्द—उनकी कहानी कला पृ० १३०

१४७ वही पृ० १३२

१४८. वही, पृ० १८२

१४९. मानसरोवर, पृ० १२

१५०. वही पृ० २४

१५१. चित्तचिचि, पृ० १०८

१५२. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४९

१५३. चित्तचिचि • ११२

स्त्री-पुंस्य के प्रेम से संबंध रखने वाली कहानियाँ उन्हींने बहुत ही कम लिखीं। प्रेमभाव का क्षेत्र (व्यक्तिगत बराबर से) उनके भाव-व्यक्त में पर्यंत सीमित है।^{१००} नर-नारी के प्रेम—उनका भोग-प्रेम धरत की भाँति प्रेम के दीवानों की विह्वल मन-स्थिति का चित्रण उनकी कथा के विषय नहीं बन पाये हैं।^{१०१} वहाँ उन्हींने ऐसे चित्र खींचे भी हैं वहाँ उनके बीच से कोई और संदेश झँकता दिखाई देता है। उनके प्रेम में वासना की बुर्राह नहीं है। वे प्रेम की चरम परिणति विवाह को मानते हैं।^{१०२}

कहानियों के स्त्री-चरित्र

प्रारंभिक काल की कहानियों में प्रेमचन्द ने स्त्री-पात्रों को सामूहिक रूप से धारदर्शवादी और मर्यादावादी के रूप के चित्रित किया है। ये परंपरागत माध्यताओं और सौकरिता से सहजी हुई हैं। 'मर्यादा की बेटी' की प्रमा कहती है— 'बिच तरह यहाँ जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। बिय का झुंघी धा छाठी में फटार धारकर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रखूँगी।'^{१०३} यह नारी इस जर्जर समाज और उसकी माध्यताओं के बरखे स्वयं अपने को नष्ट करने वाली मर्यादावादिनी है।^{१०४} बड़े घर की बेटी की प्रान्तीय सौत की सोबाबरी, पंच-परमेस्वर की बाना रानी धारबा, पाप का धमिलकुंड की राजमन्दिनी प्रभावस्वा की रात्रि की विरिबा और ममता की माँ धारि ऐसे ही स्त्री-चरित्र हैं। ऐसे जगता है कि स्त्री-चरित्र की इन माध्यताओं के पीछे भारतीय स्त्रियों की धारदर्श संकुष्ट परिवार में धास्वा की परंपरागत भावना है। सेखक की स्त्री चरित्रों के बारे में विब-मुन्वरम् की भावना भी इनमें लिखित है।^{१०५}

विकास काल की कथाओं में स्त्रियों का रूप उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत होता है। यही इस काल के चरित्रों की पहचान और उनकी विधे पता है।^{१०६} इस काल की स्त्रियाँ धार्मिक मुखर और स्पष्टवादिनी हैं। यहाँ तक धाटे धाटे उनमें काठिकाठी परिवर्तन धा जाता है। 'संखनार' में स्त्री कहती है— "धन समझने कुम्भने से काम नहीं जतेना सहते-सहते हमारु कसेबा पक गया।" धाबूपन में स्त्री के स्वरो में काठि और स्वतंत्र व्यक्तित्व की बोपना है— "मुझ में बीब है, धेतना है बड़ कर्कोकर बन जाऊँ मैं अपने को धधगिन नहीं समझती पग पग पर संका की धोर धधमान समझती हूँ। कोई चरबाहे की धाठि मेरे पीछे लाठी धिए धूमता धिरे यह मसह है। पुंस्य नयों स्त्री का माध्यविधाता है, स्त्री

१४०. धास्पधिधि, पृ० ७४

१४१. प्रेमचन्द उनकी कहानी कता, पृ० २३०

१४२. धास्पधिधि, पृ० ७५

१४३. प्रमबंध : उनकी कहानी कता, पृ० १२०

१४४. प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन पृ० १३६

१४५. धास्पधिधि, पृ० १११

बयों नित्य पुरुषों का धारण करते, बयों उनका मुँह ठाँके। 'ब्रह्म के स्वांग' की बुद्ध्या पुरुष के लोचसेपन पर कुपित होकर सोचती है—“यह घर धन मुझे कायगार भगता है किन्तु मैं निराश नहीं हूँ।”^{१००} ईश्वरी ग्याय विष्वस मीरास्वसीसा संसाराध और शक्ति प्रादि कहानियाँ ऐसी ही हैं। इस विकास काल में स्त्रियों का चरित्र बहुत निखरा है। वे अब यथार्थ भावभूमि पर खड़ी होकर अपनी घससियत को पहचानने की कोशिश करती हैं।^{१०१} फलतः उनके चरित्र में स्त्री-मुलम भोज नहीं है। उत्कर्षकाल की स्त्रियों में बोगों रूप समान मिलते हैं। मिस पद्मा का स्त्री-चरित्र प्रति प्राचुरिक वृष्टिकोष से पिबित किया गया है।^{१०२} दूसरी ओर कुसुम है जो अपने पति को देखता, गुरु राजा' कहकर उपेक्षा न करने की प्रार्थना करती है।^{१०३} अन्त में लंग धाकर कहती है—“ऐसे देखता का बठे रहना ही अच्छा है। जो धावमी इतना बनी, स्वार्थी ओर नीच है उसके साथ मेरा निर्बाह नहीं होगा।”^{१०४} इस प्रकार धारमिक काल के स्त्री चरित्र पूर्ण आदर्शवादी एवं विकास काल में वे एकपक्षीय हो जाती हैं यानी अतिकारी हैं तो अंत तक बेसी ही बनी रहती हैं।^{१०५} उत्कर्षकाल में ये ही स्त्री-चरित्र गारी-मनोविज्ञान और मनोमात्रों के प्रतिनिधि हैं। उनका चरित्र स्वामाधिक और यथार्थ है और वे मानव सुलभ तमाम उत्तार-चढ़ाव परिस्थितियों और मनोमात्रों से अनुप्राणित हैं।

पुरुष-चरित्र

पुरुष चरित्रों के चित्रण में भी प्रेमचन्द की माय्यताएँ बही हैं जो स्त्री-चरित्रों में। उनमें केवल इतना ही अंतर है कि स्त्री-चरित्रों में अंततः पूर्ण एवं शक्ति की भावना पुरुषों से अधिक है, वे आदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हैं। यह तो हुई धारमिक काल की कहानियों में पुरुष पात्रों की स्थिति। द्वितीय काल की कहानियों में समाज के सभी प्रमुख या साधारण चरित्र सिये गये हैं। उनमें अमार, घोड़ी मासी बाबसाह, नबाब ठाकुरेदार और अंग्रेज तक आ गये हैं।^{१०६} नीकरी वेष्टे के सभी पुरुष चरित्र भी इनमें शामिल हैं। बाय की कहानियों में वेष्टे को छोड़कर व्यक्ति और उसका चरित्र अधिक उभरा है। 'वास पीठा', 'ईश्वरीय ग्याम' और 'बैठ का विवाहा' धारि कहानियाँ इसी कोटि में आती हैं।^{१०७} प्रेमचन्द ने इन पात्रों के द्वारा

१०४ प्रेमचन्द—उनकी कहानी कला, पृ० १३०

१०५ वही पृ० १३२

१०६ वही, पृ० १०२

१०७ मानसरोवर, पृ० १२

१०८ वही पृ० १४

१०९ सिस्पिबि, पृ० १००

११० प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४६

१११ सिस्पिबि • ११२

जनता के महान विप्लव का काम किया और उसकी बेतमी को निहारा।^{१३४} धार्मिक कहानियों के पुरुष चरित्र सपाट और एकांगी हैं। विकास काल में धार्मिकवाद के प्रति प्रेम रहने के कारण यथार्थवाद की ओर उनका झुकाव होते हुए भी उनका स्पष्ट और सच्चा रूप सामने नहीं आ सका है। उत्कर्ष काल में आकर उसी पुरुष चरित्र का स्पष्ट रूप सामने आता है। कफन के लिये मागे गये पैसे से सख्त पीकर बोनो बाप बेटे मीठ में आ जाते हैं और कहते हैं—“कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे बीते भी उन बहने को बिचड़ा न मिसे सधे मरने पर क्या कफन चाहिए, कफन तो साध के साध बन ही जाता है। पुरुष-चरित्र की यह स्वामाधिकता ‘मुस्नी-बडा’ ‘जाब की कसर’ ‘पूख की रात’ आदि कहानियों में स्पष्ट है। इन पात्रों में प्रपनापन है और वे हमारे जीवन के दर्पण हैं। पर ये सभी पात्र पतनोन्मुख, धनीतिक और अर्जित हैं।^{१३५}

बाल-चरित्र

प्रेमचन्द की कहानियों में बालकों की मनोबन्धा का भी अच्छा चित्रण हुआ। पंच-परमेश्वर बीसी धार्मिक कहानियों में भी वे उपस्थित हैं। पंचायत की रीवाज के समय के बातावरण का एक चित्र देखिये—“सड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई धापस में गायी-गमोच करते और कोई रोते थे।” यह बेस के समय बालकों की मनो-बन्धा का चित्रण है और सामूहिक एवं समाजोद्धार के प्रवर्तकों की प्रवृत्तियों का सख्त सुन्दर रूप है। दूसरी प्रवस्था या विकास काल की कहानियों में उन्होंने बालकों को भी कहानी का पात्र बनाया है।^{१३६} ‘विमाता का मुन्नी भी ऐसा ही एक बालिका है। ‘बुड़ी काफ़ी’ में बालिका साइली भी ऐसी ही पात्र है। ‘दुर्गा का मंदिर’, ‘मुद्दू’, ‘संतनाथ महुली’ ‘सच्चाई का उपहार’ आदि कहानियों में बालक-पात्रों का उल्लेख चित्रण हुआ है।^{१३७} महावीर में वह मुख्य पात्र है। ‘सच्चाई का उपहार’ और ‘बोरी नामक कहानियों में पाठ्याभा जानेवाले बच्चों के मनोविज्ञान का चित्रण हुआ है। रामसीमा कजाकी और ईदमाह का संबंध नामक भर तथा परिस्थिति से है। ईदमाह बाल-मनोविज्ञान की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस तरह ‘सच्चाई के उपहार’ की पंथीवादी प्रेरणा से प्रारंभिक बाल-चरित्र के विविध रूपों को दिखाते हुए वे कजाकी बालक और ईदमाह के इतिहास तक पहुँचे हैं। इन कहानियों में उन्होंने भारतीय घर, भारतीय विद्या और माता पिता की उत्तरदायित्वहीनता का सच्चा चित्र खींचा है।^{१३८} अक्षर बाल-चरित्रों का विकास दूसरे चरित्रों या पात्रों की विशेषताओं के प्रदर्शन में भी किया गया है।

१३४ प्रेमचन्द और उनका युग, पृ० १३२

१३५ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० १०३

१३६ वही २०३

१३७ प्रेमचन्द : साहित्यिक विश्लेषण, पृ० १६६

१३८ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० २२६

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

प्रेमचन्द परम्परा के साहित्यिकों में भी कौशिक का नाम सर्वप्रथम है। 'मी' तथा 'मिहारिणी' नामक उनके दोनों सामाजिक उपन्यासों में यथार्थ तथा भावार्थ का सम्मिश्रण है जो समकालीन प्रार्यसमाज आदि सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रांशुओं की सुधारवादी प्रवृत्ति के प्रत्यक्ष हैं।^{१९९} कौशिकजी ने अपनी कृतियों में पात्रों के चरित्रांकन में अपनी ओर से कुछ कहने की कोशिश नहीं की। उन्होंने अपने पात्रों को स्वतंत्र रूप से विकसित होने को छोड़ दिया। उनके पात्र बटनाओं और समस्याओं के बीच से स्वतंत्र रूप से विकसित हुए हैं और यही उनकी सबसे बड़ी सफलता है। इस तरह का विकास प्रयासपूर्वक न होकर स्वाभाविक और यथार्थवादी हुआ है। उन्होंने उपन्यास रचना की इस सर्वश्रेष्ठ प्रणाली को अपनाते हुए समाज का चित्रण किया है और अपने पात्रों के रूप में समाज के विभिन्न वर्गों का स्पष्टीकरण किया है। वे पात्र अपनी परिस्थितियों का निर्माण भी करते हैं और उनसे निमित्त भी होते हैं। वे सिर्फ परिस्थितियों के पीछे शोइते नहीं नजर आते। सेबक ने ठाकुर बर्नसिंह के रूप में पुराने बमीदार समाज का चित्र उपस्थित किया है। यशोदा के रूप में उन्होंने एक महान चरित्र का निर्माण किया है। मिहारिणी बस्तो भी एक महान चरित्र है। रामनाथ ब्रजकिशोर, स्वामनाथ दिव्यनाथ योक्तप्रसाद ब्रजमोहन नाम आदि किसी न किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि के रूप में सफल चरित्र हैं।^{२००} बर्नसिंहजी और कमा-कुसुमता की दृष्टि से कौशिकजी को हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त है।^{२०१} प्रेमचन्दजी के पात्रों की तरह कौशिकजी की कहानियों के नामों का चरित्र भी बटना-विशेष से टकराकर सहसा परिवर्तित हो जाता है। उनकी प्रति सफल कहानी 'चाई' इसका उदाहरण है। इस तरह चरित्र का नाटकीय विकास दिखाना कौशिकजी की विशेषता है। कौशिकजी की अनेक कहानियों का उद्देश्य किसी मोहक प्रसंग का नाटकीय रूप से सौंध्य-विवरण उपस्थित करना रहता है। 'रक्षा-बन्धन' नाम की कहानी इसका उदाहरण है। कौशिकजी प्रायः कपोपकपर्णों से कहानी का प्रारंभ करते हैं जिसमें पात्रों के कुछ पारस्परिक संबंधों का उद्घाटन होता है। उत्तरवादा के पात्रों का परिचय भी वे करते हैं। इसलिए ऐसे परिचयात्मक वाक्य विस्तृत किन्तु ठीक भी लगते हैं। जैसे "पाठक समझ गये हों कि जनरलम कौन है" — विस्तृत किन्तु है।^{२०२} उनके पात्र जीवन के सीधे-सादे मनोविज्ञान पर चलते जाते हैं। कौशिकजी ने भाषाओं के द्वारा भी पात्रों का परिचय दिया है। जैसे बच्चों का परिचय उनकी भाषा के जरिये—मिसगाड़ी (रेसगाड़ी), बमी (बड़ी) बूत

१९९. हिन्दी उपन्यास, पृ० ५६

२००. हिन्दी के उदाहरणकार, पृ० ७९

२०१. वही, पृ० ८१

२०२. प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १०

(दूर) । वे प्रायः पात्रों के आचरणों की भी सफाई देते रहते हैं जो उनकी कथा का एक शीप है ।

शिवपूजन सहाय

श्री शिवपूजन सहाय का उपन्यस 'बेहाती दुनिया' को भाषार्थ नभिन बिनो जन शर्मा ने भारतीय भाषाओं में प्रथम महान् प्राञ्जलिक उपन्यास माना है । " हमकी कहानियों में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास देखने को मिलता है । 'पुती मैना' इसका एक उदाहरण है ।"^१

सुदर्शन

सुदर्शनजी ने अपनी कहानियों में दो विरोधी भाव धाराओं का विस्फेपन किया है जैसे 'हार की जीत' । इस कहानी के नायक भारती एक चिटणी साधु हैं । पर उनमें गुस्सूहता और धोड़े के प्रति मानव सुसभ्य भावसक्ति का अन्तर्द्वन्द्व चमत्ता है जिसका लेखक ने सफ़्त विनम्र किया है ।

राजा राधिकारमण सिंह

राजा राधिकारमण सिंह के पात्रों को हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं । पहले स्त्री पात्र हैं जो अत्याचार पीड़िता हैं । ये प्रायः एक ही शीप में डबी मिलती हैं । 'संस्कार की विमसा 'पुष्प और नारी' की सुभा 'राम रहीम' की बेला, 'सूरदास' की यनिया आदि नारियाँ समान गुणों से परिपूर्ण हैं । वे अत्याचारों को सहती हुई सुंदर अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष करती हैं । पर ये स्त्री-नायक यह कहती हुई समती हैं कि अब समय के अनुसार सतीत्व की परिभाषा में परिवर्तन की जरूरत है । पुष्प पात्रों में दो श्रेणियाँ मिलती हैं—एक आदर्शवादी दूधरे नायकों के गुणानुसार । नायकों के ये पुत्रों सामन्ती व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं । राम-रहीम के गजाब साहब ऐसे ही एक पात्र हैं । तीसरे वर्ग में विभिन्न तरह के पात्र हैं जिनका कथा में शीप स्थान है । ऐसे पात्र सात्विक और कुट्ट दोनों ही तरह के हैं ।

इन सभी प्रकार के पात्रों का राजा साहब की इतियों में सफलतापूर्वक विनम्र हुआ है । उनके पात्रों में वैयक्तिक विषयपताएं प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और उनका उत्थान-पतन भी अत्यधिक स्वाभाविक ढंग से होता चलता है । वे अपने पात्रों को बार-बार कसीटी पर कसते हैं जिसके लिए वे मनोवैज्ञानिक प्रभासी का सहारा लेते हैं । अन्तिम निष्कर्ष तक वे पाठकों के अर्थत परिचित हो जाते हैं ।

कहानियों में उनके पात्रों की वैयक्तिक विषयपताएं और भी समरी हैं ।

वे जो कुछ भी अपने पात्रों के बारे में कहना चाहते हैं, कथोपकथन के माध्यम से

२६३ साहित्य, अर्थत, १९३०, पृ० ६२

२६४ प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १७

कहते हैं अपनी ओर से कुछ नहीं कहते। इस कपोपकथन के द्वारा ही उनके पात्रों का सारा चरित्र पाठकों की आँखों के सामने आ जाता है। यह उनकी लास विशेषता है जिससे चरित्रांकन में उन्हें असाधारण सफलता मिली है। उनके पात्र अधिक सजीव और स्वामाबिक बन पाये हैं। इसका एक कारण यह भी है कि उनके पात्र साधारण जन हैं। जेनेट्र की तरह उन्होंने असाधारण पात्रों को अपने चरित्र-चित्रण के लिए नहीं चुना है जिससे उनमें अस्वामाबिकता नहीं पायी है।^{१११}

उनकी भाषा मुहाबरेदार और उर्दू मिश्रित है जो पाठक को अद्भुत आनन्द प्रदान करती है।

चतुरसेन शास्त्री

भाचार्य चतुरसेन शास्त्री 'उष' एवं ऋषभचरण जैन आदि हिन्दी साहित्य के प्रकृतिवादी कथाकार हैं। इनकी रचनाओं में ऐसे नर-यक्षुओं का चित्रण हुआ है जो समाज के कौड़े हैं और इन भक्तों ने पुण्य और त्रिष्यों के बाह्य सीखने के चित्रण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है।^{११२} श्री शास्त्री पर प्रसादजी का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। बुझ्बा में कासू कर्तू मोरी सबनी नूरजहाँ का कौशल सिंहपड़ बिबय बसन्त पूर्वाहुति भंडा आदि इनकी अमर कहानियाँ हैं। इनके अधिकांश औपन्यासिक चरित्र भी प्रकृतिवादी और ऐतिहासिक हैं जिनका कृत्रिम चरित्र विकास भी नहीं हो पाता है। समस्याओं और घटनाओं को लेकर वे अक्षय्य बन पड़ते हैं पर अन्त तक उन्हें नहीं निभा पाते और न एक संघटित कथा का निर्माण कर पाते हैं। इनके पात्र अक्षय्य सजीव हैं परन्तु वे उपन्यासों की घटनाओं से असय-बलग से प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं ये पात्र आक्षय्यता से अधिक यथापवादी और कहीं-कहीं अत्यधिक कास्य निक हो उठते हैं। उन्होंने साधारण पात्रों की साधारण समस्याओं का चित्रण नहीं किया है। बसामी की मपर-बहू में कुछ सबसे पात्रों का निर्माण अक्षय्य हो पाया है। किन्तु उनके अधिकांश पात्र निर्जीव और अस्वामाबिक दीख पड़ते हैं।^{११३}

राय कृष्णदास

राय कृष्णदास के चरित्र अत्यधिक मादुक एवं कल्पना के बराबर पर सिर बिल हुए हैं। उनके विकास में मनोबैज्ञानिक दृष्ट सफलता से विभित हुआ है। 'गहुमा' और 'असन्नता की प्राप्ति' आदि इनकी कहानियों में इसी प्रकार की विशेषताओं के दर्शन होते हैं।

१११. राजा राजिदारमपतिहू व्यक्तित्व और कला पृ० १०१

११२. आ. हि० सा० का विकास पृ० ११६

११३. हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ९३

“उग्र”

उग्रजी के उपन्यासों का प्रधान विषय व्यक्ति और समाज है। इन दोनों के ही बिरलपन में उन्होंने कटु व्यंग का सहारा लिया है। समाज की पुबसताओं की बिस्ती उड़ाना ही उग्रजी के विचार से समाज-सुधार का मार्ग है।^{१०८} उग्रजी ने यपार्थ के नाम पर बैस्वालय मठालय और इसी प्रकार के बनिठ एवं धुनिठ बर्य में बाकर चरित्रों को परखा और प्रभ्यन किया। इसीलिए बनारसीबास चतुर्बेरी जैसे विद्वानों ने इस तरह के साहित्य को ‘बासलेटी’ की संज्ञा दी।^{१०९} वे पात्रों के बाह्य चित्रण में जैसे सफल रहे जैसे मानसिक चित्रण में नहीं। उन्होंने मनुष्य के अंतर के चित्रण पर ध्यान नहीं दिया। इनके पात्रों में व्यक्तिगत विशेषताओं की अपेक्षा बर्गगत विशेषताएं अधिक भिसती हैं। उग्रजी ने इन बर्गगत चरित्रों का सफल चित्रण किया है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने समाज के बिठ धंग का चित्रण किया है, इससे वे स्वयं पूर्ण परिचित हैं।^{११०}

चतुरसेन दासजी सप्र एवं भूपनचरण धारि ने अग्रजी के रोमांचकारी उपन्यास लखन रहस्य धारि से प्रेरणा ली। फलस्वरूप इनके उपन्यासों का प्रसंगीत होना स्वाभाविक है।^{१११} बाकसेट चन्द्र हरीनों के बतूठ दिल्ली का बलान सराबी बीबाबी धारि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

याचस्पति पाठक

प्रेमचन्द्र और प्रधाब की विशेषताओं को लेकर ही इनकी कहानियों का विकास हुआ है। इनकी प्रायः प्रती कहानियां चरित्र-प्रधान हैं। सूरबास कल्पना कायन की टापी एवं केरीबाली धारि इनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। इन्होंने प्रायः उपेक्षित बुद्धी और काव्यिक चरित्रों को ही अपनी रचनाओं का विषय बनाया है।

विनोदशंकर व्यास

व्यासजी की कहानियां चरित्र प्रधान होती हैं। इनकी कहानियों में चारित्रिक दृष्ट की तीव्रता मुख्य रूप से दिखलाई गयी है। ‘कल्पनाओं के राजा’ नामक कहानी में नायक के मानसिक दृष्ट का सफल चित्रण है। इन्होंने अपनी कहानियों में प्रायः बिठिष्ट चरित्रों का चित्रण किया है जो कल्पनात्मक एवं मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण हैं।^{११२}

१०८. ‘बाकसेट’ की मूरिका, पृ० ४

१०९. इण्डिकोल पृ० ४

११०. हिन्दी उपन्यास, पृ० २००

१११. गिरपबिदि, पृ० २३६

११२. वही पृ० २३६

जी० पी० श्रीवास्तव

श्रीवास्तवजी हास्यरस के सज्जक हैं। पर उनके चरित्र अप्रासंगिक भस्माघातिक एक मण्डित प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में 'सतखोरीनाम' जैसे हास्यास्पद चरित्रों की सृष्टि की। किन्तु, इस हास्य में गुरचि-संस्कार, उक्ति-वचिभ्य एवं बुद्धि-विकास नहीं है। सिर्फ मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद कार्यों द्वारा हास्यरस की सृष्टि का प्रयास किया गया है। फिर भी उन्हें अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई जिससे उस समय की सामाजिक चेतना के स्तर का भी पता चलता है।

अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागरने भी 'सेठ बाकेमल' नामक हास्यरस के उपन्यास की रचना की है। इसमें प्राचीन संस्कृति के प्रेमी एवं वर्तमान की सभी बातों को धर्मगत मानने वाले सेठ बाकेमल एवं बीबेबी—ये दो प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास की भाषा भी चरित्र-विकास में सहायक है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि 'निराला' की रचनाओं में हास्य और व्यंग्य चरित्रों का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'बुस्तीभाट' एवं 'बिस्लेपुर बकरिहा' नामक उनके दो उपन्यासों में ये चरित्र उभरकर आये हैं। 'बुस्तीभाट' में चरित्र-विकास स्वाभाविक ढंग से हुआ है। 'बिस्लेपुर बकरिहा' का नायक पग-पग पर ठोकरें खाता है पर साहस का त्याग नहीं करता। बिस्लेपुर का चित्रण तटस्थ ढंग से हुआ है।

निरालाजी के प्रथम कहानी-संग्रह की 'सुकुल की बीबी' कहानी भी एक सामाजिक एवं व्यंग्य-प्रधान कहानी है। इसमें संस्मरण शैली अपनायी गयी है। इसमें निरालाजी की कहानी-कला अपरिपक्वता के अन्तर्गत है। 'श्रीमती गजानन्द आस्त्रिणी' में एक ऐसी घसटी स्त्री का चित्रण हुआ है जो अपने पति को प्रसन्न रखने एवं प्रेमी को चिढ़ाने के लिए पतिव्रत बर्ण पर निराला लिखती है। यह एक सफल चित्रण है। 'बतुरी बमार' उनकी एक प्रगतिशील कहानी है। 'बिस्लेपुर बकरिहा' की तरह इसमें भी संस्मरणपरक शैली का उपयोग किया गया है। इनके अलावा अन्तरा अलका एक प्रभावशाली—ये तीन उपन्यास एवं सभी और लिखी नाम के कहानी संग्रह भी हैं। इन पुस्तकों में स्त्री-चरित्रों के चित्रण को प्रधानता मिली है। यहाँ हम निरालाजी की स्त्री-स्वातन्त्र्य के प्रथम समर्पक के रूप में पाते हैं। पर वे स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छ्रितता के समर्पक नहीं हैं। इन कृतियों में नारी के प्रेमपूर्ण चिन्तित और संस्कृत रूप को दिखाने का प्रयास किया गया है।

निरालाजी ने इन कृतियों में भारतीय परिवार की पवित्रता का समर्पण किया है। उन्होंने समाज में होम-आसे—सासकर स्त्रियों पर—अत्याचारों का वास्तविक चित्रण किया है। साथ ही प्रायः चरित्रों की सृष्टिकर अत्याचारों से लोहा लेने की

भावना का भी समर्थन किया है। जमींदार की चरित्र प्रकृति की धार 'भयका' की प्रेमा का प्रतिरोध इसका उदाहरण है। 'भयका' के चरित्र और विजय जमींदारों और सरकारी अधिकारों के विरुद्ध लोगों में जाकर जनता को संघटित करते हैं। 'निष्काम' में भी यही भावना है। उसका 'कुमार' एक समर्थ चरित्र है। अन्तर में निरामाजी ने क्रांतिकारिता पर बल दिया है, किन्तु समाज में किसानों के जीवन का अन्त विजय हुआ है। विजय की दृष्टि से निरामाजी बंधनबद्ध के समर्थक और समाधान की दृष्टि से वैज्ञानिक हैं। कवि होने के बावजूद उनके कथा-साहित्य में कल्पना का निरन्तर प्रयोग नहीं मिलता है। आज के कलाकारी युग में उनके चरित्र 'पिछड़े हुए' और 'भांगट भांग डेट' बन सकते हैं। पर वे भारतीय जन-जीवन का सच्चा रूप दे सकते हैं। इसमें कोई संक नहीं।

मगधतीप्रसाद साजपेयी

साजपेयीजी लुधियाना के माधुका कथाकार हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में कथात्मक का स्वभाव बहुत कुछ समान ही है। मनोविश्लेषण के माध्यम पर उनकी कहानियों में जो चरित्र-विकास दिखाया गया है, उसे हम प्रेमचन्द की परम्परा से कुछ घाबे बढ़ा हुआ पाते हैं। उनकी कहानियों में 'फ्लूटेट' नामकों का बहुत्व है जिसके माध्यम से उच्च और मध्यमवर्ग के निम्न संस्कारों एकाधिक भावनाओं, वैयक्तिक कर्तव्यों और मनोव्यवस्थाओं का चित्रण किया गया है। इस तरह उनकी कहानियों में कथरुप या साप्ताहिक कोमाइली का चित्र नहीं, बरन् वैयक्तिक मनोव्यवस्थाओं की उपस्थिति किया गया है। अन्तस्वरूप, इनके पास निरासकारी दार्शनिक, रोजमर्रा और कष्ट सहनेवाले धार्मिकवादी हैं और उनमें भेदों का भी अभाव है।

उनकी रचनाओं के मूल में एक-सम्बन्धी बड़ी प्रकृति है जो बी० एच० सारेख की रचनाओं में मिलती है।^१ उनके पास जीवन-संघर्ष के मीठान में उतरते तो हैं, पर अंत में कामचिकार, नियति की निर्णयता और जीवन में निराशा के धारण होकर चोखने-चिन्ताने लगते हैं। वे अपना पुरखाने प्रकृतिक न कर नियति को धारण-समर्थन कर देते हैं जो सामग्री युग का दर्शन है।^२ इसीलिए साहित्य में ऐसे पात्रों की सृष्टि सिर्फ समाज में निम्नवर्गता और योही भावुकता को प्रसारने वाली होती है जो साहित्य का अन्त सत्य नहीं।

सुन्दारनलाल वर्मा

वर्माजी ने स्वयं कहा है—“मेरे उपन्यासों के पास मेरे जीवन के अनुभवों के परिधाम हैं। उनमें से बहुत से तो मेरे अन्तर्कर्म में भी घाबे हैं।^३ इसीलिए उनके

२०३ हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० २०

२०४ आ० कथा-साहित्य, पृ० १४६

२०५ उपन्यासकार सुन्दारनलाल वर्मा, पृ० १४३

पार्श्वों की स्पन्देका इतनी स्पष्ट और उमरी हुई है कि उनके व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता और भिन्नता सुरक्षित है। पार्श्वों की सूक्ष्म आर्थिक विशेषताओं और बाह्यस्वरूप के विस्तृत विवरण द्वारा वे उनका सजीव चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करने में सफल हुए हैं। 'गढ़-कुंभार' में नागदेव और अग्निदत्त के धार्मिक मठन प्रकृति और स्वरूप आदि का समग्र ही पृष्ठों में चित्रण हुआ है।^{१०९}

बर्माजी के प्रायः सभी प्रमुख पात्र आकर्षक हैं और पाठकों के मन पर अपना स्थायी प्रभाव डालने में सफल होते हैं। पार्श्वों में व्याप्त उन्मत्तता निर्दोषता और निस्पृहता बीते सामन्तवारी युग के प्रभाव के परिचायक हैं।^{११०}

इनके पार्श्वों की दो श्रेणियाँ हैं। पहले वे हैं जो सिर्फ सड़ने-भिड़नेवाले ईमानदार, बीर साहसी और अपनी धुन के पक्के हैं। शोचित होने पर इन्हें दुःख और विवेक से कोई ठास्मुक नहीं रहता। दूसरे वे हैं जो बीर और साहसी होने के साथ ही लोभुप विमर्षी घामर्षी और स्वेच्छाचारी भी हैं। इनमें सामन्ती दुर्गुणों का प्रचण्डतम रूप मिलता है।

उनकी नारी पुरुष से कहीं अधिक ऊँची है। उनमें बाह्य सौंदर्य और सावध्य के अतिरिक्त आंतरिक तेज भी है। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी प्रेरणा है। नारी सम्बन्धी उनकी यह धारणा प्रारम्भिक उपन्यासों में अधिक कल्पनामय एवं रोमांटिक है।^{१११} 'गढ़ कुंभार' की ताप एवं 'बिछटा की पद्मिनी' की कुमुद उपन्यासकार की इसी प्रारम्भिक प्रकृति की उपज हैं। बाब की कृतियों में वे सचर्य की कठोर भूमि पर अपना बौद्ध विचारों हैं। कचनार भूयमयनी ज्ञानी स्त्री और सुरबाई ऐसी ही नारियाँ हैं। लक्ष्मीबाई तथा अहिस्त्राबाई में ये गुण धरती चरम सीमा पर विचार पड़े हैं।

इनके प्रसादा उनकी नारियों में ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी धाकाशामयी, मोमती सातसा की पुतली कृन्ती धन एवं धार्मिक सुख की सोसुप भ्रमना आदि नारी-चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं।

बर्माजी के उपन्यासों का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। उनके पार्श्वों में सभी वर्गों और क्षेत्रों का समावेश है—बासकर ऐतिहासिक क्षेत्र। यद्यपि प्रेमचन्द और धरद्वन्द्व की परम्परा से भी धार्ये बढ़े हैं। इसीलिए उनकी तुलना अस्तर विदेदी उपन्यासकार स्काट से भी जाती है। बर्माजी को सभी वर्गों के पार्श्वों के चित्रण में अपूर्व सफलता मिली है। प्रासोचक श्री विद्याधरण प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'बृहदावतलाल बर्मा साहित्य और समीक्षा' में बर्माजी के पार्श्वों का व्यापक वर्गीकरण और विस्तृत विवेचन किया है।^{११२}

२४६ लोवजीवन और साहित्य पृ० ७८

२४७. वही पृ० ७४

२४८. वही पृ० ७८

२४९. बृहदावतलाल बर्मा साहित्य और समीक्षा, पृ० २३

राजीवम्भ भाई, तातार और एक बीर राजपूत आदि कर्मात्री को प्रारम्भिक ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। धाये बसकर उनकी कथा का विकास कलाकार का दृष्ट, पेरसाह का न्याय सौदर्य प्रतियोगिता और सफुराहो भी दो मूर्तियाँ में मिलता है। इन समस्त कहानियों में चरित्र-विकास की प्रेमबंध-परम्परा का निर्वाह है। प्रसाद की भाँति उनमें ऐतिहासिक वातावरण, खोज और स्वाभाविकता भी मिलती है। बाद में कर्मात्री ने सामाजिक समस्याओं के धावार पर भी सफ़्त सामाजिक कथा किया लिखी है। ये कहानियाँ निरिच्छत रूप से चरित्र-प्रदान हैं। किन्तु इन कहानियों में भी उनकी धार्यबाधिता, चरित्र के प्रति निष्ठा एवं मान्यता की विद्यत भावना सर्वत्र प्रतिष्ठित हुई है।

उपन्यास के क्षेत्र में उनका स्वान भत्यान्त यौत्सवपूर्ण है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक मध्ययुगीन भारतीय इतिहास से लिये गये हैं। इनका विस्तार १४वीं से १२वीं शताब्दी तक है। इनमें अश्वि जातियों के जीवन-संपर्क एवं त्याग-बलिदान की पावन मूर्ती तथा लफ़ालीन मूर्ती, लखनऊ, बिस्वी आदि की स्थिति के सम्बन्ध चित्र दिखाई पड़ते हैं।^{२६०}

कर्मात्री के ऐतिहासिक उपन्यास प्रयाग 'धार्यबाधी' हैं जिनमें सामन्ती संस्कृति का चित्रण हुआ है। सेसक ने अपने चरित्रों को घटीत बीरव के संरक्षक के रूप में चित्रित किया है।

'यह कुंवार' का नायक नायक अपने युग का अनुकूल प्रतिनिधि है। प्रथम में निरपेक्ष मिलने पर वह प्रतिहिता के लिए युद्ध करता है।

बिराटा की पहिनी की नायिका कृपुद अनुपम सुन्दरी है। उसके लिए युद्ध होते हैं। अंत में अपने प्रेमी कुंवरविह के प्रति प्रेम का पूर्ण प्रदर्शन करके वह देवता में बनने को चिन्तित कर देती है। कृपुद के चरित्र में रोमांस और धार्य का बर्णन बारी रूप सज्जा निरूपण है।

मुसाहिबनू में सामन्ती युग के पाठकों का उज्ज्वल चरित्र दिखाया गया है। मूर्ती की रानी की कथा तो अव्यक्तियात है ही। सेसक ने सबकीबाई का चरित्र-चित्रण इतिहास तथा भावुकता के सुलभ अन्वय के धावार पर किया है। राज बिनीपतिह की रानी को बारी कथनार में धार्यसंभम दुइता ध्यात्मामिज्ञान आदि चरित्रिक रूप प्रचुर मात्रा में है। सेसक ने सामान्य रूप से भी धार्य ब्रह्म कर अपनी लारसाहिनी कृति का चरित्रक दिया है।^{२६१}

धार्मिक कथा युवकवनी अपनी बीरता, सौंदर्य और अनुपम सुन्दरता के कारण म्हातिवर के जानतिह तोमर की परिणीता बनती है, संयम स्वाध्याय, सहिष्णुता, उदारता आदि उसके मुर्ती का चित्रणकर सेसक ने उसे एक धार्य भारतीय महिला के रूप में उपस्थित किया है।

२६० धाकाउबाधी, लखनऊ (१११२५), अजकिओर निघ

२६१ हिन्दी उपन्यास (प्रथम), पृ० १४१

'दूटे काटे उपन्यास की मायिका मूरबाई नृत्यकला और संगीत से बर्बर माधिरघाह और मुहम्मदघाह को भी मुग्ध कर देती है। घंट में वह एक साधारण उर्दिक की पत्नी बनती है। बृन्धान में भीरा-सूर के पक्ष पाती हुई वह आत्मविभोर हो जाती है। लेखक ने उसे नरित और प्रेम के रंगों में रोगकर उसके चरित्र को बमकाया है।

पेसवा माधवजी सिन्धिया को एक लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है। एक विनायक, साहसी, दूरदर्शी और विचारवान राजनीतिज्ञ के रूप में इनके उज्ज्वल चरित्र के चित्रण में लेखक को पूरी सफलता मिली है।

मायिका के रूप में राणी महिस्माबाई के चित्रण में लेखक ने इतिहास के यथावस्थ चित्र उपस्थित किये हैं।

लेखक ने इन कृतियों में भारतीय नारीत्व की मर्यादा को पुनः जाग्रत किया गया है। सामाजिक उपन्यासों में धार्मिक युग की विभिन्न समस्याओं को लिया गया है। इन सामाजिक उपन्यासों के नायक भी निम्न व्यवस्था मध्यमवर्ग के हैं। इनके चरित्र-चित्रण में लेखक ने यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया है। साथ ही सभी कथाओं में रोमांस की अतिशक्तिशाली धारा विद्यमान है।^{५१}

'मन्त्र मेषा कोई' की मायिका कुन्ती नारी-स्वतन्त्रता की पोषक एक शिक्षित तरुणी है। उसके चरित्र में कर्तव्यशीलता बुद्धि एवं धार्मिकता और प्राचीनता का समन्वय मिलता है।

'समन' में बहेब प्रया पर आरोप है। बेबीसिंह की परिधीता रामा केवल १०० पैसे का बहेब न पहुंचने के कारण बबसुर द्वारा परित्यक्त है।

'कुंडली चक' का नायक धर्मित चरित्रवान, निर्दोषी, बुद्धियों का सहायक एवं न्यायप्रेमी है। धर्मित के रूप में लेखक ने भारतीय समाज के मुचकों के लिए एक धारण उपस्थित किया है।

'प्रसागत' में संयस का चरित्र प्रधान है। कृषियों की निवृत्तता एवं यथार्थ चित्रण ही उसके चरित्र में प्रधान है। इस पात्र में भी लेखक ने धारण भारतीय युवक की रूपना की है।

'कजी न कमी' में देवजू नामक मजदूर का चरित्र प्रधान है। लेखक ने इस कृति में धारणमुख यथार्थ की सृष्टि की है।

'धमरबेल' का हेसराज एक पूर्णतः यथार्थवादी चरित्र है। उसमें धार्मिक के सभी बुर्युष हैं। फिर भी लेखक ने घंट में उसके चरित्र में सुधार दिखाया है।^{५२} इस उपन्यास में धरकाई धार्मिकता योजनाओं का यथार्थ रूप उपस्थित किया गया है। किन्तु, इस कृति में चरित्र की दृष्टि से कोई भी उच्च चरित्र नहीं पाया है।

२५२ हिन्दी उपन्यास, पृ० १४६

२५३ धार्मिकता, लखनऊ, ३ १० ३० प्रसारित बर्ता

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न घुमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के भावार्थोग्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं 'सब' और अतुरसेन छास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो चाराघों के वर्णन होते हैं। इस युग के अंतिम चरित्रों में यथार्थ के चार धर्म रूपों के भी वर्णन होते हैं, यथार्थोग्मुख भावार्थवादी (अर्थवादी) मनोविश्लेषणकारक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र प्रसन्न) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (पद्मपाल) और लटख या वैज्ञानिक यथार्थ (झारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का अभी प्रारंभ ही हुआ था।^{५०}

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामबिंसास शर्मा^{५१} धार्मिक आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हुआ कि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवश्य प्रसूते रहे। प्रसादजी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार हैं। सबर्णों और आश्रमों में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अर्थ भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराशा के सभी उपन्यासों पर इसका महुरा रंन है। प्रसादजी की 'तिलसी' छायावादी पुठनी है। गोदान की मामठी सुनीता अथि और रेखा धार्मिक छायावाद के श्रेणीक पात्र हैं।^{५२} छायावाद तो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'धारमकथा' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की शक्तिपूजा' में निराशा-निश्चित राम की कबल असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बार के रूपों में छायावादी भावना को प्रकृत करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकास सुनीता अशका और ललाक बीटी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विग्रोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में धारार्थ को टूटते हुए पाते हैं और मोहर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र अब धार्मिक-राजनीतिक प्रभिया के निष्कर्ष के रूप में घाने सने। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की रूख बीधियाँ नहीं हैं।^{५३} हालांकि सन २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि नया राजनीति कथा साहित्य में, उस समय जहाँ का व्यक्तित्व सबसे अधिक भाँतिटापी था।^{५४}

५०४ बी नाबेल एंड बी पीपुल पु० ८७

५०५. संस्कृति और साहित्य, पु०, ४३

५०६ छायावाद, पु० १४३

५०७ आलोचना (१३), पु० ६०

५०८. प्रेमचन्द (धर्मा) पु० १२

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर : चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक मतिरोध और घसीम निगछा दिखाई पड़ती है।^१ इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएँ हैं जिसमें सारी उन्नत-युवक के बीच लेखक ने अपने को निरीह, असह्य और निहत्था महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-शुद्ध नष्ट हो गये। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कबम-कबम पर झुकना पड़ा।^२ इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्वतः असह्य पाकर वह निराशा और कूटा का शिकार हो गया।^३ उसके संवर की मानवता और बिबेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी बिडम्बना के समक्ष उसका रास्ता भूल बैठना प्राक्व्यवहनक नहीं। प्राक्वर्ष है अगर तो सिर्फ इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी विरसपति से लड़कर ही तो जीवन के मूर्खों की स्थापना करनी है। किन्तु, ऐसा वह समझ नहीं पाया। मरकर निराशा न उसकी आत्मा को बड़ और बेठना को कुंठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की संवादमान छाया को ही अपना मान लिया और इस तरह नितांत व्यक्तिवादी कला का हमारे साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कला जनजीवन से दूर होने के कारण मरणासन्न हो जाती है।

धी धीमे के उपन्यास इसी प्रमेय निरादय के परिणाम हैं जिनमें सीमर्य तो यदा काव्यनिक सीमर्य का भी प्रभाव है। उनमें सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ भी नहीं मिलता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चित्र हैं। इतनी बोझिल, मतिहीन और तिसिस्मी कहानी पढ़ना बर्ष की परीक्षा नहीं तो क्या है।^४

अन्त में इसाचन्द्र बोधो एवं मगवतीचरण वर्मा जैसे क्वाति-प्राप्त कलाकारों ने भी अपने उपन्यासों में बरान एवं मनोबिज्ञान के धरातल पर नवीन चरित्रों की

१ धालोचना (१०), पृ० २७

२ अध्यायन के विचार, पृ० ११२

३ नयी समीक्षा, पृ० ४२

संस्कृति और साहित्य पृ० ८७

४ धालोचना (१०) पृ० ७२

५ वही, पृ० २८

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न धूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं 'उड़' और चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो पारामों के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरणों में यथार्थ के चार धर्मियों के भी दर्शन होते हैं यथार्थोन्मुख आदर्शवाद (वेनेश्वर) मनोविश्लेषकारत्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र, प्रह्लय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (मद्यपाल) और लट्ठन या वैज्ञानिक यथार्थ (डारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का धर्म प्रारंभ ही हुआ था।^{२४४}

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामविकास वर्मा^{२४५} आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से परस्य प्रकृते रहे। प्रसारकी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। सबसे और आधर्मों में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराशा के सभी उपन्यासों पर इसका गहरा रंग है। प्रसारकी की 'ठिठली' छायावादी पुठली है। गोदान की मासठी सुनीता सचि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।^{२४६} छायावाद ठो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-सो चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की अक्षितपूजा' में निराशा-विहित राम की कबल असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बाद के वर्षों में छायावादी भावना को ब्रह्म करने के बावजूद यथार्थों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल सुनीता अक्षय और ललाट जैसी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें बिहोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को टूटते हुए पाते हैं और मोहर की कई यथार्थवादी दृष्टि सामने आती है। चरित्र धर्म आर्थिक-राजनीतिक प्रभिया के निष्कर्ष के रूप में माने लये। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की गह्रस्य भीधिया नहीं है।^{२४७} हालांकि सन २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अंतर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अक्षय कहा जा सकता है कि नया राज नीति कथा साहित्य में उस समय उड़ी का व्यक्तित्व सबसे अधिक जातिकारी था।^{२४८}

२४४ बी नाथेल एंड बी पीयुल पृ० ८७

२४५. संस्कृति और साहित्य, पृ , ४३

२४६ छायावाद पृ० १४३

२४७ आलोचना (१३) पृ० ६०

२४८. प्रेमचन्द (सर्मा), पृ० १३

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर . चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक गतिरोध और असीम निराशा दिखाई पड़ती है।^१ इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएँ हैं जिसमें सारी उपलब्ध-सुबल के बीच सेलक ने अपने को निरीह प्रसन्न और निहत्था महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-बंध नष्ट हो गए। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कदम-कदम पर झुकना पड़ा।^२ इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्वतः असहाय पाकर वह निराशा और कूटा का शिकार हो गया।^३ उसके अंदर की मानवता और विवेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी विडम्बना के समक्ष उसका रास्ता भूल बठना आश्चर्यजनक नहीं। आश्चर्य है अथवा तो सिर्फ इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी विसंगति से सड़कर ही तो जीवन के मूल्यों की स्थापना करनी है। किन्तु ऐसा वह समझ नहीं पाया। मरकर निराशा ने उसकी आत्मा को जड़ और बेतला को कूठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की अन्वयमान छाया को ही अपना मान लिया और इस तरह निर्यात व्यक्तिवादी कथा का हमारे साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कथा अन्वयमान से दूर होने के कारण मरणासन्न हो जाती है।^४

श्री अनेक के उपन्यास इसी अनेक निराशा के परिणाम हैं जिनमें सीमित तो क्या आत्मिक सोच का भी अभाव है। उनमें सामाजिक या वैयक्तिक अर्थ भी नहीं मिलता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चित्र हैं। इतनी बोझिल अतिहीन और विविधता जहानी पड़ना अर्थ की परीक्षा नहीं तो क्या है।^५

अनेक इसाक्षर ओपी एवं भगवतीचरण वर्मा जैसे स्थापित-प्राप्त कथाकारों ने भी अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के अराजक पर नवीन चित्रों की

१ आलोचना (१०), पृ० २७

२ अन्वयमान के विचार, पृ० ११२

३ नयी समीक्षा, पृ० ४२

संस्कृति और साहित्य, पृ० ८७

४ आलोचना (१०), पृ० ८२

५ वही पृ० २८

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न भूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न सिद्धांतों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शमूख बचार्थवादी पात्रों एवं 'उग्र' और अतुरसेम छात्रों के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरित्रों में यथार्थ के चार धर्म रूपों के भी दर्शन होते हैं, बचार्थमूख आदर्शवाद (जैनेन्द्र) मनोविस्लेषवात्मक या व्यक्तिनिष्ठ बचार्थ (इलाचन्द्र, प्रज्ञेय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (बसुपाल) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (आरकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चरित्रों का घसी मारेंम ही हुआ था।^{१००}

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पद्धतियों का चित्रण हुआ।

डा० रामबिलास शर्मा^{१०१} आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रयास से अवश्य ग्रहण रहे। प्रसादकी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। उग्रों और आधर्मों में प्रेमचन्द के उल्लासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम है। निरासा के उन्नी उपन्यासों पर इसका पहला रंग है। प्रसादकी की 'वित्तबी' छायावादी पुस्तकी है। मोदान की मालती, सुनीता, अग्नि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।^{१०२} छायावाद तो सेलक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-शो चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी अंतर्मुख ही बना रह गया। 'राम की अविधुजा' में विपत्ता-विधित राम की कथन अंतर्मुखता उस युग के व्यक्ति की ही अंतर्मुखता है। बार के वर्षों में छायावादी भावना को ग्रहण करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान बचान चित्रण की ओर गया। कंकाल, सुनीता, अलका और अनाक जैसी रचनायों में नये चरित्रों की कृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। मोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को दृष्टे हुए पाते हैं और मोबर की नई बचार्थवादिनी कृष्टि सामने आती है। चरित्र अब धार्मिक राजनीतिक प्रक्रिया के निष्कर्ष के रूप में घाने सने। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की चरित्र नीतियाँ नहीं हैं।^{१०३} हासांकि तन १० से १० और ४० में बहुत बड़ा अंतर है। पर प्रेमचन्द के अन्त्ये युग का सिंहावलोकन करने से यह अवरय कहा जा सकता है कि क्या राजनीति क्या साहित्य में उस समय छायावादी का व्यक्तित्व सबसे अधिक बाधकारी था।^{१०४}

१०४ की नारैत एव ही वीपुल, पृ० ८७

१०५. संरुति और साहित्य, पृ०, ४३

१०६ छायावाद पृ० १४३

१०७ आलोचना (१३) पृ० ८०

१०८ प्रेमचन्द (शर्मा), पृ० ११

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर : चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक गतिरोध और घसीम निराशा दिखाई पड़ती है।^१ इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएँ हैं जिसमें घाटी उपस-पुनर्न के बीच भेसक ने अपने को निरीह, प्रस ह्राय और निहत्ता महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-बंध नष्ट हो गये। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कदम-कदम पर झुकना पड़ा।^२ इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्वतः प्रसह्राय पाकर वह निराशा और कुठा का शिकार हो गया।^३ उसके धंवर की मानवता और विवेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी विह म्वना के समक्ष उसका रास्ता घूम बठना प्राश्चर्यजनक नहीं। प्राश्चर्य है अगर तो विषे इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी बिसंगति से लड़कर ही तो जीवन के मूल्यों की स्थापना करनी है। किन्तु, ऐसा वह समझ नहीं पाया। अथकर निराशा ने उसकी आत्मा को जड़ और बेतता को कुंठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की संशयमान छाया को ही यथार्थ मान लिया और इस तरह गितांत व्यक्तिवादी कथा का हमारे साहित्य में प्राबुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कथा जनजीवन से दूर होने के कारण मरभासप्त हो जाती है।

श्री अनेन्द्र के उपन्यास इसी अमेध नैराश्य के परिणाम हैं जिनमें सौन्दर्य तो गया कास्मिक सौन्दर्य का भी अभाव है। उनमें सामाजिक या व्यक्तिगत यथार्थ भी नहीं मिश्रता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चिन्त हैं। इतनी बोझिल गतिहीन और तिलिस्मी कहानी पढ़ना बर्ष की परीक्षा नहीं तो क्या है।^४

अज्ञेय इलाचन्द्र जोसी एवं अगवठीकरण वर्मा जैसे क्याति-प्राप्त कथाकारों ने भी अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के अरातस पर नवीन परिशों की

१ आलोचना (१०), पृ० २७

२ अध्यायन के विचार, पृ० ११२

३ नयी समीक्षा, पृ० ४२

संस्कृति और साहित्य, पृ० ८७

४ आलोचना (१०), पृ० ८२

५. यही पृ० २८

सिंहावलोकन

संश्लेष में वे विभिन्न भूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के धार्षोष्ण यथार्थवादी पात्रों एवं उग्र और जतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरित्रों में यथार्थ के चार अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं, यथार्थोष्ण धार्षोष्ण (जैनेन्द्र) मत्तोविहसेपचारमक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र, प्रज्ञेय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (सच्चिदानन्द) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (भारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का अभी प्रारंभ ही हुआ था।^{१००}

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामबिलास शर्मा^{१०१} आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद में भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालाँकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवगत नहीं रहे। प्रसादजी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार हैं। उग्रों और धामरों में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निरासा के सभी उपन्यासों पर इसका महुरा रंब है। प्रसादजी की 'तितली छायावादी पुतली है। मोरान की मामली सुनीता उधि और रेखा धारि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।^{१०२} छायावाद तो लेखक या कवि की धारमानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'धारकथा सिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी अहमर्ष ही बना रह गया। 'राम की अक्षितपूजा' में निरासा-विहित राम की कल्प अहमर्षता उस युग के व्यक्ति की ही अहमर्षता है। बार के बपों में छायावादी भावना की प्रवृत्त करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल सुनीता अक्षका और उलाह जैती रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। मोरान के अंत में होरी के रूप में धारर्ष को दृष्टे हुए पाठे हैं और मोरर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र जब धार्मिक-राजनीतिक प्रतियोग के निष्कर्ष के रूप में आने लगे। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की खूबसूरत भीषिया नहीं है।^{१०३} हालाँकि इन २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि क्या राज भीषि क्या साहित्य में उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक नाटिकायी था।^{१०४}

१०४ बी नाथल एंड बी पीयूल्, पृ० ८७

१०५. संस्कृति और साहित्य, पृ०, ४३

१०६ छायावाद पृ० १४३

१०७ आलोचना (१३) पृ० ३०

१०८ प्रेमचन्द (शर्मा), पृ० १९

घसी हाथ भी हुआ। कौशिक ने चरित्र-विकास के लिए संभाषण शैली का सबसे अच्छा उपयोग किया। 'मा' में इसके अन्धे उदाहरण मिलते हैं जिनसे कथा-चरित्र के विकास विस्तार एवं चित्रण में पर्याप्त सहायता मिलती है।^{११} इस प्रकार बचन शैली में मनो विज्ञान और संभाषण कला के संयोग से चरित्र-विस्तार का पूर्ण विकास हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस विकसित शैली के उदाहरण मिलते हैं।^{१२}

किन्तु कुछ हदियों जैसे ब्रजलाल सहाय के 'सौन्दर्योपासक', रामचन्द्र शर्मा के 'कर्मक' एवं इलाचन्द्र बोधी की 'बृगामयी' में चरित्र-विकास के लिए मिला शैली भी अपनानी गयी। इनमें उपन्यास की पूरी कथा उत्तम पुरुष सर्वनाम (मैं) में कही गयी है। किन्तु यह शैली केवल वहीं उपयुक्त है जहाँ एक ही प्रधान चरित्र हो एवं अन्य सभी चरित्र सामान्य तथा संख्या में भी कम हों।^{१३} साथ ही श्री चन्द्रशेखर पाठक के 'कार्यना-रहस्य' और ब्रजलाल सहाय के 'राधाकांत' में संभवतः रबीन्द्रनाथ के 'बद और बाहर' की घसी अपनाकर दो-तीन प्रधान चरित्रों में स्वयं अपने मुँह से अपनी कहानियाँ सुनाई हैं। इस शैली में लिखे कहानक को समझने के लिए भी पाठकों को विभाग सझाना पड़ता है यद्यपि प्रधान चरित्रों के चित्रण की दृष्टि से इसकी उपमोचिता धरम्य है।^{१४}

इनके प्रतिरिक्त पत्रों द्वारा एवं बायरी के सदस्यों द्वारा भी चरित्र-विकास विस्तार की दो और प्रयत्न शैलियाँ हैं। 'उप' भी का 'अन्द हसीनों के सतुठ' पत्र शैली में लिखा उपन्यास है। इस शैली के द्वारा कहानक को समझने में धरम्य कठिनाई होती है। किन्तु चरित्रों का क्रमिक विकास और उनके मनोभावों का सुन्दर विस्तार होता चलता है। अन्धे का 'नदी के द्वीप में' इस शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।^{१५}

प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य में दर्शन मनोविज्ञान एवं साम्यवादी विचार-धारा ने चरित्र-विकास को प्रभावित किया। मानवतावाद मुगर्धन का मूल बरतल बन गया। नैतिक मायताओं और धारणों में व्यापकता आई। प्रत्येक व्यक्ति अपने बृष्टिकोण और व्यक्तित्व के आधार पर हूर प्रहन पर अपने मतव्य स्थिर करने लगा।^{१६} शियायाम टारथ गुप्त^{१७} अनेक अन्धेय, इलाचन्द्र बोधी भगवतीचरण वर्मा साहि ने इस युग के व्यक्ति-सापेक्ष जीवन-दर्शन के आधार पर अपनी रचनाओं में मानव-उपेक्षा और चरित्र-निष्ठा पर बल दिया। अन्धेय मानव धर्मार्थपद के केवल और धर्मकेवल मन के

११. भा० हि० सा० का वि०, पृ० २०६

१२. भा० सा० और मनो०, पृ० ७८

१३. भा० हि० सा० का वि०, पृ० २०८

१४. वही

१५. वही

१६. विवेचना पृ० १२३

१७. सिन्धुविधि, पृ० २३६

सृष्टि घबस्य की किन्तु, समकालीन समस्याओं से वे भी बचते रहे।^१ बिजलेसा बिहार सुनीता, पारसनाथ भादि प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य की उपमन्त्रि हैं चाहे वे कृत्रिम चरित्र ही क्यों न हों।

यसपाल अस्क एवं राजाकुण्ड भादि ने इन कृत्रिमों से बाहर निकलकर मानसबाबी यचार्य के आभार पर नये चरित्रों का सृजन किया। पहाड़ी ने साधारण कथा-विधान और सीमित चरित्रों को लेकर मज्ज बासना खारीरिक्त सूक्ष्म और मीन विकारों को अपनी कथा का विषय बनाया।

मनोविज्ञान के समावेश से इन उपन्यासों में चरित्र-विकास का नया द्वार खुला और कथा-सौंदर्य में भी प्रसूतपूर्व अभिवृद्धि हुई।^२ अब लेखकों ने मानव हृदय और मस्तिष्क के वास्तविक नाटक के प्रदर्शन की आवश्यकता पर ध्यान दिया। यह पाठकों के सामने पार्श्वों का हृदय खोलकर रखने लगा।^३ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चित्रण पर अधिक और देने की यह प्रवृत्ति हिन्दी में लगभग १९२१ के बाद आई।^४ प्रेमचन्द और रंगभूमि में इसके सुंदर उदाहरण मिलते हैं। किन्तु प्रेमचन्द के बाद के कथा-चरित्रों में स्वामाधिक मनोविश्लेषण की परंपरा का प्रारम्भ हुआ। इसी धौंधी को घपनाकर इसाचन्द्र एवं बीनेन्द्र भादि ने ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो सामाजिक जीवन में घासानी से प्राप्त नहीं हो रहे थे।^५

कथा के प्रारंभिक चारित्रिक विश्लेषण में लेखक का ध्यान सिर्फ पाठकों के मनोरंजन पर था। इसीलिए पाठकों को चौंका देने वाले दबी पार्श्वों की अधिक सृष्टि हुई।^६

चरित्र-विकास की धौंधी में प्रथम मोड़ इस युग में आया जब कथाकार ने ठटस्य होकर चरित्रों का वर्णन-विश्लेषण प्रारंभ किया। मनोविज्ञान के सहारे यह चरित्र विकास और भी अधिक परिष्कृत और पूर्ण बना।^७ मन और मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले काम स्वान बातावरण और परिस्थिति का विशद वर्णन उपन्यास साहित्य में उपस्थित किया जान लगा।

कंकाल और रंगभूमि में इसके घनेकों उदाहरण मिलते हैं।

धौण्ड्यासिक पार्श्वों का द्वितीय विकास चार्ताताप या कपोककपन की

१. अल्पविधि, पृ० २४३

२. नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० १९

३. अल्पविधि पृ०, २८८

४. विवेचना

५. नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १८

६. डॉ० बाण्योय

७. नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १८

८. घा० हि० क० छा० और मनो०, पृ० ७१

९. घा० हि० छा० का वि०, पृ० २८७

यूरोप मध्यवर्ग के बीचम्यपूर्ण सचपमूसक एव अनिश्चित जीवन को संभवतः ऐसे ही रचना प्रकार की भावश्यकता थी जो काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ के अधिक निकट हो। अस्तु प्राथमिक उपन्यासों में इसी भावना को पुष्टि मिली।^१

मध्यवर्गीय चरित्रों का विकास

भारतवर्ष में मध्यवर्ग का उदय १९वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस देश की सामग्री प्रथमवस्था को बिस्तृत विघ्नरहित कर दिया था। लेकिन इसी घंटे के बीच से अंग्रेजों के न आहूने पर भी इतिहास की गति ने निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।^१ इसी अवधि में लखनऊ भारतीय पूंजीपति वर्ग ने वाणिज्य व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। साम्राज्य की नींव को मजबूत करने के लिए खोले गये स्कूलों-कालेजों विद्वानिद्यालयों ने क्लीक डाक्टर, अध्यापक क्लर्क आदि के रूप में एक नये मध्यवर्ग को जन्म दिया। बड़ा समाज धर्म समाज पियासोफिकल आंदोलन इसी नवीन मध्यम वर्ग की चिंतन-धारा के फल थे। इसी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी जन्म दिया।^२ १९१४ तक यह मध्यवर्ग अपने पुरे रूप में सामने आ गया था यद्यपि अपने वर्ग-स्वभाव के अनुसंधान कौटुंबिक एवं सामाजिक मर्यादा तथा आर्थिक अनिश्चयता की चक्की के दो पाटों के बीच यह पिस रहा था।^३ इस वर्ग के दो छोर थे—दूधी व्यापारी और पकड़-लिसे बाबू लोग। ये दोनों ही हमारे कथा-साहित्य में मौजूद हैं। नवाबों राजाओं का स्थान प्रक सेठों ने ले लिया है और मुसाहिबों एवं हासी-महालियों का स्थान छोटे-मोटे क्लर्क या मुधियों ने।^४

पूंजीपति वर्ग पैसे के बल पर अपनी सभी भाकांक्षाएं पूरी कर सकता है। निम्नवर्ग की दुरी आर्थिक स्थिति में उसमें अनपेक्षित भाकांक्षाएं होती ही नहीं।^५ बच रहता है यह मध्यवर्ग जिसमें विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग होते हैं और उनमें स्वाभाविक ईर्ष्या-द्वेष विरोध पूरी मात्रा में रहते ही हैं। अर्थात् से उसकी भाकांक्षाएं भी प्रतृप्त रहती हैं। परिणामस्वरूप वह मन की प्रतृप्तियां सुसम्भालने लगता है और परम्परा ही बैयक्तिक हो जाता है।

मन की इसी मुल्की को सुसम्भालने में प्रेमचन्द के उपन्यासों की स्वस्य परम्परा का सोप हो जाता है और हिन्दी उपन्यास डा० रामनिवास शर्मा के शब्दों में 'सादी जम्बर' की परम्परा पर बस निकलते हैं जो 'धन धनके ह्रास की सीमा तक पहुँच चुके

२९. आलोचना (१३), पृ० १२३

३०. आलोचना (१३), पृ० १२३

३१. हि० ग० सा० पृ० २२

३२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १११

३३. आलोचना (१४) पृ० ३०

३४. हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना, पृ० १७

विषय उपस्थित किसे ।”

सम्प्रति सम्पूर्ण मानवीय विचारधारा में फ्रायड और मार्क्स का सर्वाधिक प्रभाव स्पष्ट है। फ्रायड ने मन को जीवन का आधारभूत तत्व माना और मार्क्स ने भौतिकता धरति पदार्थ को। एक का स्वरूप मनोविज्ञान है तो दूसरे का भौतिक विज्ञान या साम्यवाद ।”

मनोवैज्ञानिक पद्धति में मनस्तरल भाष्यम से मानव चरित्र का विश्लेषण एवं विश्लेषण होता है क्योंकि मनुष्य मानसिक गतिविधियों के ही कारण अपने जीवन की धारकता पाता है ।” इस पद्धति का ध्येय मनुष्य की बाह्य प्रकृति से उसके भीतरी सुत्रों को समझना और मुक्तकाना है। इस युग के उपन्यासों में यह एक प्रमुख धारा है जिसका प्रारंभ बोधीजी ने किया। बोधीजी के मनोविश्लेषण की यह एक विशेषता है कि उन्होंने मानव के बाह्य और अंदर—दोनों जीवनो की प्रगति में जो सम्बन्धोभास्य संबंध हैं उसे स्पष्ट किया। इसी कारण वह यह भी मानते हैं कि फ्रायड और मार्क्स एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि एक ही सत्य के पुरक दृष्टिकोणों के प्रवर्तक हैं ।” इस तरह धार्मिक उपन्यासों में उपन्यास की मुख्य वस्तु—यानी पात्रों का मनोविश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण—के धर्म में बहुत बड़ा परिवर्तन धा चुका है ।”

धार्मिक उपन्यासों में मिथुनाचार की चर्चा भी खूबकर होने लगी है। अश्वेत, बौद्ध यद्यथास इसायान्त्र बोधी अरक द्वारकाप्रसाद इसके उदाहरण हैं। राहुसजी के अथ धीमेय सिंह सेनापति आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में जिस मुक्त विश्वास का महोत्सव मनाया गया है, वह सिर्फ इतिहास की ही रक्षा नहीं, मा उसे सिर्फ द्वितीय युग की आदर्शवादिता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया ही नहीं कहा जा सकता बल्कि यह फ्रायड के कामभूतक सिद्धांतों का समर्पण है कि हमारे धारे आन्तरिक संघर्षों के भ्रम में कामवासना ही है ।” इसायान्त्र बोधी ने अपनी पुस्तक विश्लेषण में इस धारा पर गड़े चरित्रों का सुन्दर विश्लेषण किया है।

चरित्रविकास में फ्रायड के सिद्धांतों का सर्वप्रथम प्रयोग उर्दू के कथाकारों ने किया। श्री कृष्णचन्दर और कथाना महमद अम्बास ने इसके स्वरूप पक्ष को धीरे समायत हसन मंटो एवं अस्मत्त अपताई ने इसके अस्वल्प और पोपमीय पक्ष को अपनी कहानियों में स्थान दिया। अस्मत्त और मंटो की तरह पहाड़ी एवं यद्यथास ने भी” इसके दूसरे पक्ष को धरनाया। यद्यथास से अधिक पहाड़ी ने नान वर्णन को प्रथम दिया।

२२ वही, पृ० २४४

२३ अमीता शास्त्र पृ० २६३

२४ वही पृ० २६०

२५ वही, पृ० १०२

२६ आ० हि० का सा० और मनो० पृ० १४५

२७ वही पृ १५४

२८ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० १७

यूरोप मध्यवर्ग के वैयम्यपूर्ण सभ्यमूलक एवं अनिश्चित जीवन को संभव ऐसे ही रचना प्रकार की आवश्यकता थी जो कास्परिक होते हुए भी यथार्थ के अधिक निकट हो। अस्तु धातुनिक उपग्याप्तों में इसी भावना को पुष्टि मिली।^{१५}

मध्यवर्गीय चरित्रों का विकास

भारतवर्ष में मध्यवर्ग का उदय १९वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य काब ने इस देश को सामन्ती अर्थव्यवस्था को बिस्कुल विध्वंस कर दिया था। लेकिन इसी ध्वंस के बीच से अंग्रेजों के न जाहने पर भी इतिहास की शक्ति ने निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।^१ इसी अर्थ में नबोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग ने वाणिज्य-व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। साम्राज्य की नींव को मजबूत करने के लिए छोटे-छोटे स्कूलों-कॉलेजों विश्वविद्यालयों ने यकीन बाजार अभावपूर्ण बसकें धारि के रूप में एक नये मध्यवर्ग को जन्म दिया। बहुत समाज भाव्य समाज वियासोफिकल प्राबोमन इसी नवीन मध्यम वर्ग की बितन-कारा के फल थे। इसी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी जन्म दिया।^२ १९१४ तक यह मध्यवर्ग अपने पूरे रूप में सामने आ गया था अथवा अपने वर्ग-स्वभाव के अनुकूल कौटुबिक एवं सामाजिक मर्यादा तथा धार्मिक अमिस्वतता की चक्री के दो पाटों के बीच यह पिस रहा था।^३ इस वर्ग के दो छोर थे—बैठी व्यापारी और पढ़े-लिखे बाबू लोग। ये दोनों ही हमारे कथा-साहित्य में मौजूद हैं। नवाबों राजाओं का स्वाग भव सेठों ने से लिया है और मुसाहिबों एवं शानी-महाशयों का स्वाग छोटे-मोटे बसकें या मुंशियों ने।^४

पूंजीपति वर्ग पैसों के बस पर अपनी सभी आकांक्षाएं पूरी कर सकता है। निम्नवर्ग की बुरी धार्मिक स्थिति में उसमें अनपेक्षित आकांक्षाएं होती ही नहीं।^५ बच रहता है यह मध्यवर्ग जिसमें विभिन्न धार्मिक स्तरों के लोग होते हैं और इनमें स्वाभाविक ईर्ष्या-द्वेष विरोध पूरी मात्रा में रहते ही हैं। अर्थात् से उसकी आकांक्षाएं भी अतृप्त रहती हैं। परिणामस्वरूप, वह मन की कुत्तियां मुलम्हाने भगता है और अलग ही बयवितक हो जाता है।

मन की इसी मुल्की को सुलम्हाने में प्रेमचन्द के उपग्याप्तों की स्वस्थ परम्परा का मोप हो जाता है और हिन्दी उपग्याप्त डा० रामबिज्ञास चर्मा के चर्चों में 'चाड़ी बप्पर' की परम्परा पर बस निकलते हैं जो 'भव उनके ह्रास की सीमा तक पहुंच चुके

२८. आलोचना (१३), पृ० १२३

३०. आलोचना (१३), पृ० १२३

३१. हि० म० सा०, पृ० २२

३२. हिन्दी उपग्याप्त और यथार्थवाद, पृ० १३१

३३. आलोचना (१४), पृ० ३०

३४. हिन्दी उपग्याप्त में वर्गभावना, पृ० १७

हैं और ज्यादा दिनों तक पाठकों को जससे बहुसामा न जा सकेगा ।^{१६}

ब्रेमचन्द के युग में ही 'प्रसार' भी ने उनकी बर्बत चित्रण प्रणाली का विरोध किया और उपन्यासों के लिए आत्यधिक स्वच्छंदता का द्वार उगमुक्त कर दिया था । ब्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने यथार्थ के नाम पर वैयक्तिक चित्रण के हेतु सुन्दर सीसी और चित्र का आभिव्यक्ति तो भवस्य किया पर उनके द्वारा चित्रित जीवन समाज की किसी प्रसस्त भूमिका पर प्रतिष्ठित नहीं हो पाया ।^{१७}

द्वितीय विश्वयुद्ध ने जहाँ एक ओर पृथ्वीपटिबर्ग को आत्मानाम कर दिया, निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति को भी बड़ा चलात ही किया जहाँ निम्न मध्यवर्ग को अपनी सारी कोशिशों के बावजूद हाट, बाजारी और मुटनपूर्ण समझौता ही हाथ लप सका ।^{१८} इस स्थिति में भारतीय साहित्य आसकर हिन्दी साहित्य मुख्योत्तरकाशीन विश्वसाहित्य के अनुकरण और प्रभाव में पूर्णरूप से आया ।^{१९} युद्ध के दौरान में ही बंगाल का अकाल आया सन् ४२ की अंति हुई बाद में देशविभाजन और देशज्वापी बने हुए जो विश्व इतिहास में अपनी अर्थकरता के लिए वैमिसान हैं ।^{२०} हालांकि इसके साथ ही १९४७ में भारत-पाकिस्तान को आजादी भी मिली पर दोनों देशों में अर्थकर बेरोजगारी गरीबी कामोत्तेजना और बर्बरता का जस समय जो उदय हुआ था वह अभी भी मौजूद है । इस सारी परिस्थिति ने मिलकर एक अनास्था 'करने' या 'न करने' की 'निराशा' की भावना को जन्म दिया । नबोधित स्वतंत्रता की किरबे भी बनता के जीवन को आलोचिककर इस निराशा की भावना को समाप्त न कर सकी^{२१} और यहाँ से ही लेखकों के दो वर्ग बने—एक कृठित निराशावाचियों का हूँसत प्रगतिशीलों का जिन्होंने सारी वीर-इच्छा की खिलाफ कलम का बंध छोड़ा ।^{२२} इस तरह ही हीर में समाजवादी यथार्थ पर आचारित चरित्रों का सृजन हुआ ।^{२३} अकाल भुजमरी साम्प्रदायिक बर्गों और राजनीतिक बमन के विरुद्ध पहली बार साहित्य के खेन में आवाज उठी । भारत की सभी अघातों के भेदकों ने अपना संन बनाकर साम्प्रदायिक भगड़ों और देश के दुस्वर्गों के खिलाफ अपने हस्ताक्षरमुक्त बोधना-यत्र प्रकाशित किये ।^{२४}

१६. प्रगतिशील साहित्य की सत्रस्यार्थ, पृ० १२६

१७. आलोचना (१३), पृ० ६

१८. हिन्दी उपन्यास में अयभावना, पृ० १२१

१९. संस्कृति और साहित्य पृ० ८१

२०. हि० सा०, पृ० ३६

२१. आलोचना (१०) पृ० ६७

२२. अय्ययन के विचार, पृ० १६

२३. ओर इतान मर गया, पृ० ६

२४. संवेत, पृ० २४६

जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्र प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के आग्बस्यमान महात्म हैं। उनकी कृतियों में बुद्धि और हृदय का सफल एवं बुद्धर समागम एवं सामन्स्य बीरता है।^{१४} उनके उपन्यास 'परब' एवं 'त्यागपत्र' तथा अनेक कहानियाँ कृतित्व के रत्न हैं। किन्तु अपनी साहित्य-साधना के उत्तरार्ध में वह जो राह मटके तो फिर कभी राह न पाई। उनके धर के कोमल, स्पन्दनशील त्रिवेकी कलाकार ने बम तोड़ दिया है और सयता है कि प्रथ उसकी रत्ता नहीं हो सक्ती।^{१५}

जैनेन्द्र के औपन्यासिक चरित्र

जैनेन्द्र के उपन्यासों में उनके दार्शनिक विचार नहीं छप सके हैं। इससे कृतियों के कलात्मक सक्ष्य और चरित्र विकास में अस्पष्टता आई है। अपने मानसिक अचरोचों के कारण उनके नारी चरित्र सीमित अथुरे और अतबुद्ध-से सयते हैं। मनोविज्ञान के साथ दार्शनिकता का सही समन्वय न कर पाने के कारण उनका चित्रण अतिप्रसन्न हुआ है।^{१६} डा० देवराज तपास्याय के अनुसार उनके औपन्यासिक चरित्र कायचिन्तन और वेस्त्यस्तवाधी आचार पर गढ़े गये हैं।^{१७}

विपयंस्त^{१८} मनोवज्ञानिक चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण 'सुनीता' का हरिप्रसन्न है जिसकी आत्मा में कहीं पाँठ पड़ी है जो अपने भीतर किसी मेह को पात्र रखा है। एक प्रसन्न के अतर में वह सुनीता को कहता है—“में तुमको चाहता हूँ समूची तुमको चाहता हूँ।” सुनीता निराकरण हो जाती है और कहती है—“अपने को मारो मत कर्म करो। मुझे चाहते हो तो मुझे ले लो। और हरिप्रसन्न की कामुकता शांत हो जाती है।

सुनीता' का भीरुता भी एक मनोवज्ञानिक प्रसाधारण पात्र है जो हरिप्रसन्न को संसार में अनुरक्त करने के लिए अपनी पत्नी को ही पिच्छरी के रूप में प्रयोग करना चाहता है।^{१९} परस्पर होड़ और परस्पर उत्सर्ग होने की आकांक्षा ही प्रयत्नी जीवन की बिंबना है जिसका अरत से बड़ा सुन्दर अण्ययन और उपयोग विपा है और जो हमें मये जीवन के निर्माण के लिए मये सूत्र देते हैं।^{२०} श्री जैनेन्द्र ने जो विरोधी आचर्यों को जो पुस्य पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। नारी-पात्रों द्वारा वे अुनाम का काम लेते

४४ आलोचना (१०) पृ० ६६

४५ वही

४६ आलोचना (२४) पृ० ४

४७ आ० हि० सा० और मनो०, पृ० १३७

४८ वही

४९ सुनीता पृ० ३६२

५० आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २८५

५१ जैनेन्द्र—साहित्य और समीक्षा पृ० २०७

हैं।" इस तरह उनके उपन्यासों में चरित्र चित्रण के लिए एक भारी घोर दो पुरुष की योजना की गयी है। मुख्य चरित्रों के असाधारण पात्र तो जैसे अपनी कोई हस्ती रखते ही नहीं। चरित्र के पात्रों की 'जमी' की तरह उनके उपन्यासों में 'डार्ड-पात्र' हैं। इसके बादबूद समस्याओं के प्रति उनकी प्रतिभियाएँ धन्य मित्र-मित्र हैं।" सबका मनस्तव भी धन्य-धन्य है। इस प्रकार उनके नापी पात्र सिद्धान्त प्राप्त होने पर भी कलाकार के जाने-प्रगजाने कुछ हो गयी है जो साहित्य के लिए एवं घोर बिस्मय की वस्तु है।"

उनके उपन्यासों में एक महान् आदर्शवादी किन्तु निरा निष्क्रिय एवं आर्धनिक पात्र भी पाता है। उनका पराधित होनेवासा कीई वृत्त पात्र प्रातिकारी प्रियासीम बलियाओं के लिए उद्यत और बहुत कुछ सर्व्व हुषा करता है। किन्तु पांशीवादी अहिंसा दर्शन क आचार पर बड़ा गया वह नायक प्रकर्मभ्य एवं निष्क्रिय क्यों होता है। इससे तो पांशीवाद से सैद्यक का अपरिचय ही सिद्ध होता है। लीसपी नारी पात्र पतिव्रत और सतीत्व के इन्द्र की प्रतीक होती है। परिस्थितिवश वह पति की घोर भुक्तनी है एवं आरक्ष उसे प्रेमी की घोर बसीटता है।" संवुमारो बाजपेयी का कहना है कि धार्मिक अर्थ में उन्हें मतोर्ध्वानिक उपन्यासकार कहना ठीक नहीं। उनके मन की पुरियायों ही उनके विभिन्न पात्रों के रूप में व्यक्त हुई हैं। जैनेन्द्र का कहना है कि "वे हृषीकेश आत्मा के प्रतीक हैं, हमारे मताग्रहों के नहीं।"

जैनेन्द्र ने मध्यवर्गीय बौद्धिक पात्रों का चित्रण किया है। वे अपने विचार इन्हीं के माध्यम से व्यक्त करते हैं।" जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास परख में चरित्रों की धार्मिक प्रवृत्ति और बुद्धि के संघर्ष का चित्रण है। 'सुनीता' के हरिप्रसन्न और सुनीता दोनों कंटापस्त व्यक्तित्व हैं। इस उपन्यास में न चरित्रों की धार्मिक प्रवृत्ति बुझकर शेष लकी है और न उन्हें बुद्धि के द्वारा संघर्षित किया जा सका है। इस प्रकार का इन्द्र मध्यवर्गीय सैद्यक के व्यक्तित्व में ही संभव है।" त्वायपत्र की मुमाल को जीवन के

१२ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २५८

१३ वही पृ० २३८

१४ वही पृ० २३३

१५ जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृ० १७१

१६ नया साहित्य नये प्रश्न पृ० २३६

१७ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २३६

१८ वही, पृ० २६२

१९ वही, पृ० २६१

२० जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृ० १८

२१ नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० २३६

२२ विवेचना पृ० १२१

अतः एक विगारा नहीं मिलता और अंत में वह स्वयं टूट जाती है।^{१३} 'सुन्दरा' और 'दिवर्त' में आकर उनका अस्पष्ट दार्शनिक धारणा बिस्फुल टूट जाता है। ऐसा अपने लपटा है जैसे उनकी नारी दूसरों को सरीर देने के लिए ही अमररिक्त हुई है। इसके विपरीत नारी-पार्श्वों में उच्च ज्ञान योग-प्रकृति के दर्शन नहीं होते।^{१४} 'सुन्दरा' की अस्पष्टता ही धारण इस उपन्यास का सबसे बड़ा गुण है।^{१५} अपने अंतिम उपन्यास के पात्रों पर लेखक बिस्फुल छाया हुआ है। उसमें का दार्शनिक और उदस्य इस्टन स्वयं बनेन्द्र का प्रतिबिम्ब है।^{१६} पूरे उपन्यास में नाथ और एसिबाबेस ही ऐसे दो पात्र हैं जिनका अपना व्यक्तित्व है।^{१७}

जैनेन्द्र के औपन्यासिक नायक

प्रेमचन्द या उनके समकालीन लेखकों के पात्र स्पष्ट होते थे। उनमें कुछ अन्त बूझ नहीं था। किन्तु जैनेन्द्र के पात्र चिरंतन नविक मूर्तियों की खोज में अटकनवाले प्राणी हैं। जिनकी के कुछ सात निर्यामिक क्षणों में वे छोड़े बिस्वस्तीय और सृष्टि धारणीय प्रतीत होते हैं या हमारे विचारधर्मों को अपने बेकर हमारी अनुसंधानात्मक प्रकृति को आघत करनेवासे होते हैं। 'अपने कामों और चिंतन के द्वारा वे एक प्रभाव और एक बेचैनी प्रकल्प पैदा कर जाते हैं। किसी बड़े आदर्श की ओर इति कर्ते हैं। इसी इति को सबल या प्रज्ञा बनाने के लिए ही लेखक उनकी मानसिक गति-विधि का विश्लेषण करता है।^{१८} उनके नायक भावना और चिंतन के क्षेत्र में चिंतने सबल हैं अपने कार्यक्षेत्र में नहीं। भावना के माध्यम से व्यक्ति के परिष्कार की व्यक्ति नारी विचारधारा के वे पोषक आत पड़ते हैं।^{१९} उनका धार्मिकता भी अस्पष्ट होता है। स्वीकृत नविक मूर्तियों के सबल में अपनी संकाएं उठाकर वे हमारी विवेक-बुद्धि को अक्षय अक्षय करते हैं।^{२०}

डा० लक्ष्मीनारायण साह^{२१} ने उनके पात्रों को छ अणियों में बांटा है—प्रथम ऐतिहासिक चरित्र जैसे यथोक्तिजय, बसविलका जयवीर, अमरसिंह द्वितीय पीराधिक चरित्र जैसे अंकुर, पावती इन्द्र धारि तृतीय लौकिक राजा रानी बैरागी धारि

-
- १३. धातुनिक साहित्य पृ० १६६
 - १४. आलोचना (१३), पृ० १३१
 - १५. आलोचना (१०) पृ० ६८
 - १६. आलोचना (१३), पृ० २१
 - १७. वही
 - १८. नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २६१
 - १९. धातुनिक साहित्य पृ० १६१
 - २०. विवेचना पृ० १२१
 - २१. आकाशवाणी, इलाहाबाद १ १२ २८
 - २२. धातुनिक साहित्य पृ० २४६

अनुभूत धार्मिक चरित्र पंचम विभूत भावार्थक और काव्यिक और अंतिम प्रती-
कार्थक पद्य-पद्य आदि ।

सभी ऐतिहासिक चरित्र किसी न किसी रहस्यार्थक शक्ति से प्रेरित एवं अपनी
हृद में महान और धारण हैं ।

पौराणिक चरित्रों के द्वारा नीति और दर्शन पर प्रकाश डाला गया है ।

सौक्य चरित्रों में चरित्रिक निष्ठा सबल रूप से व्यक्त हुई है ।^{७३}

सौक्य कथाओं पर कुछ सबल धार्मिक चरित्रों की भी सृष्टि हुई है ।

'भासकराज' नामक कहानी का बीरगी इसका प्रतिनिधि है । बीरगी के व्यक्तित्व से
किसी परोक्ष सत्ता की ओर भी प्रेरित होने का संकेत मिलता है ।^{७४}

नीलम देश की राजकन्या उसकी ससिवा और वहाँ पहुँचनेवाला राजकुमार
भावारथक और काव्यिक चरित्रों के उदाहरण हैं । राजकुमार और राजकुमारी में
परस्पर बहू और प्रार्थना के व्यक्तित्व का संकेत है ।^{७५}

पद्म-पद्मे बीच-अंतु आदि प्रतीकार्थक चरित्रों में मनुष्य जीवन उसकी नीति
व्यवहार तथा जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला गया है । इन कहानियों का उद्देश्य चरित्र
निर्माण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा है ।

कहानियों में चरित्र

उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियों को चार श्रेणियों से बाँटा जा सकता है—
पहली है 'मास्टरजी' जैसी कहानियाँ जो किसी चरित्र के जीवन के संक्षेप पर
आधारित हैं दूसरी है 'एक रात' जैसी कहानियाँ जो कुछ चरित्रों के जीवन-चक्र पर
आधारित होकर भी मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं
तीसरी है 'कहानियाँ जो जीवन के किन्हीं विविध चरित्रों की कुछ श्रेणियाँ उपस्थित
करती हैं चौथी है 'मित्र विद्याधर' जैसी कहानियाँ जो चरित्र-विकास के आधार
पर प्रस्तुत की गयी हैं । इन कहानियों में चरित्र विकास को ही प्रधानता मिली है—
कथात्मक केवल साधनमात्र है । श्री जीनेन्द्र ने इस चरित्र-विकास को बनाकर से
स्वभाविकता की ओर उदाहरण से चरित्रता की ओर एवं भाईरव से प्रसाद की ओर
बढ़ने वाला विकास बतसाया है ।^{७६} ये चरित्र अन्तमु खी एवं किसी न किसी अन्तर्मुख
ओर भाव-अतिपातों से अनुभावित रहते हैं । इन्हें पूर्ण रूप से समझना तो कठिन प्रबन्ध
है फिर भी ये प्रसाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं ।^{७७} 'एक रात' का जयराज और

७३ हिन्दी कहानी और कहानीकार, पृ० १२२

७४ हिन्दी कहानी और कहानीकार, पृ० १३४

७५ हिन्दी कहानी, पृ० १२०

७६ मित्रविधि, पृ० २३१

७७ एक रात, पृ० ३

७८ विवेचना, पृ० १२१

सुदर्शना 'राजीव की मायी' का राजीव, मास्टरजी घोषाल बाबू क्या होया, बंदी प्राशुतोष, बान्सी की बान्सी आदि इस तरह के अमर चरित्र हैं। ये चरित्र प्रायः साधारण बंब की कहानियों में आये हैं।^{७१}

चरित्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व-विक्षेपण मुख्यतः चार साधनों से हुमा है—आत्मविक्षेपण, मानसिक ऊहापोह, अश्वेतम विक्षिप्त एवं उन्मत्तों और कार्य द्वारा।^{७२}

डा० देवराज मे^{७३} उनकी कहानियों को फायद और गेस्टास्टवादी मनो-विज्ञान पर आधारित बताता है। 'अयसधि' की कहानियों में प्रमुख रूप से और 'पावेव' की कहानियों में यत्र-तत्र गेस्टास्टवादी मनोविज्ञान मौजूब है।

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के आंतरिक स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई तरह की पद्धतियों का आविष्कार किया है।^{७४} 'एकरात' 'दृष्टिरोप' आदि कहानियों में श्री जैनेन्द्र ने उन पद्धतियों का आचारमक उपयोग किया है।^{७५}

विचारमग्न मानव के वैचिष्य और वैचिष्य को श्री जैनेन्द्र ने अपनी कथाओं में उभारा है और यही उनकी विशेषता है। वे समाज और राजनीतिक परिस्थितियों को भी नहीं भूसे हैं। पर इन चीजों का चित्रण उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से किया है और व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक आधार पर।^{७६} इस तरह वे जीवन में और भी गहरे पैठ सके हैं जहाँ प्रेमपत्र की पट्टण नहीं की।

अक्सर जैनेन्द्र की (११०३) तुलना अंग्रेजी उपन्यासकार मेरिडिय (१८२८) से की जाती है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि ये दोनों अपने-अपने साहित्य में एक नई प्रवृत्ति के पोषक हैं। जैनेन्द्र के पुरुष पात्र र्भंग होने के कारण मारी को भीत नहीं पाते। मेरिडिय के पुरुष पात्र निर्भय बुराप्रही और अहंकारी होने के कारण मारी के भीतर रम नहीं पाते। इस तरह दोनों के पुरुष एव मारी पात्रों में पृथक्त्व एवं भूरी बनी रहती है।^{७७}

अपने चरित्रों के बारे में श्री जैनेन्द्र का कहना है कि "वे मेरे अन्दर से आये हैं" इसलिए मेरे मनोनुकूल लगते हैं। उन्हें 'अतिमनोवैज्ञानिक कहा जाता है तो मैं मुन भेठा हू। कारण—जो हूँ सो हूँ।"^{७८}

७१. प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० ६८

७२. अस्वविधि पृ० २३४

७३. आ. हि० क० सा० और मनो०, पृ० १२३

७४. वही, पृ० १३१

७५. नीलम देव की राजकन्या, पृ० १०

७६. आ० हि० सा० और मनो०, पृ० १३३

७७. साहित्य दर्शन पृ० २११

७८. आनन्द, विसम्बर १९३८, पृ० २५

अज्ञेय

ऐसक अज्ञेय हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है नकार नहीं।^{८०} फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अक्षमता का भाव है। 'बिहार' की भांति यह 'बोबे' में रहने वाला और बाहर से बचपने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे यह संस्कृति की 'स्वाधीनता' का नाम देते हैं।^{८१}

अज्ञेय ने व्यक्ति के आंतरिक उद्घापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विरलेपय मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।^{८२}

अज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तित्वादी हैं। कोई बिरोहार्थक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंकार के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आचारविधिसा मनोवैज्ञानिक विस्लेषण ही है।^{८३} किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुल्लस और मानवतावादी है।^{८४} इस अहंकार का प्रयोग उन्होंने सब स्त्रियों और प्रकारों में किया है और इसी की उदात्तता से उन्हें अपने चरित्रविधान में पूरी सफलता भी मिली है।^{८५}

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति बिरोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के संक्रम में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'धनु' का शान 'तम्बर दस' का रतन 'बोही' का मैं 'अभिषाप' की कमन और मेरिया आदि चरित्र इसी बिरोह के प्रतीक हैं।^{८६} इन चरित्रों का निर्माण करवा घापन और मूक बलिदान के तर्कों को लेकर हुआ है जो स्त्री-मुख्य दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही बिरोह की भावनाओं से घोटप्रौत है—'मैं बिरोही हूँ इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मानती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।'^{८७}

मनोविरलेपण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविरलेपण का तरीका अपनाया है कभी आन्तरिक सपनों द्वारा मनोविरलेपण किया है।^{८८} बोही साँप और तियनेसर आदि कहानियाँ चरित्र के आन्तरिकविरलेपण के आचार पर ही निर्मित हैं।^{८९}

८० नया हिन्दी साहित्य एक सूचिका, पृ० १६७

८१. वही, पृ० २००

८२. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६

८३. वही, पृ० १७१

८४. निष्पत्ति, पृ० २६३

८५. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २१२

८६. हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १३७

८७. कोठरी की बात, पृ० १३२

८८. विवेचना पृ० १२२

८९. बिहार और विरलेपण पृ० ६२

‘मनुष्य का माय्य’ और ‘पुसिस की सीटी’ आदि कहानियों में सकेतों एवं सूक्ष्म हास-भाषों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मन-स्थिति का सफ़ल अभ्ययन किया गया है।^१ इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों, प्रश्नों और धांकाछाषों पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।^२ बाब कहानियों में आकर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोसाहसपूर्ण जगत से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक चिन्तन की दुनिया में विस्फुल्ल सिमटे से बीसते हैं।^३

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र-विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—‘खेहर एक बीबनी एवं ‘नदी के द्वीप’ तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

‘खेहर एक बीबनी’ हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक भूस्वाकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे ‘निष्प्रेम क्रांतिकारी’ आत्म्यात्मिक प्राणी ‘मयकर, घोर उठल घहंवाही या किसीने उसे आनेवाले उपन्यासों के लिए ‘प्रकाश स्वप्न’ बताया है।^४ खेहर ने स्वयं खेहर का परिचय देते हुए कहा है—‘खेहर अन्ध’ या बड़ा’ आदमी नहीं, खेहर एक ‘आयस्क स्वतन्त्र’ और ‘घोर ईमानदार’ व्यक्ति है।^५ खेहर स्वयं अपने बारे में कहता है—“ मैं मया हूँ अथवा हूँ मैं ही प्रतिष्ठा हूँ बिसे भविष्य पूरा करेगा एक बिसा हूँ जो मनुष्य के लिए रह जायगी।^६ खेहर घोर अन्ध है—कस्तना के बीचमहस में अपना जीवन काटनेवाला जहाँ ‘बाबसों से बने हुए सूत के अस्त्र पहननेवाली राजकन्या रहती है।^७ इसीलिए वह अज्ञेय है। उसे आधा का कोई आनन्द नहीं दीखता क्योंकि वह अज्ञेयवादी है, सामाजिक जाति के मय से अर-अर कापने वाला है।^८

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से अन्ध मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।^९ खेहर को बुद्धि या संस्कृति की सभी उपसम्पत्तियाँ प्राप्त हैं किन्तु वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।^{१०}

- १७ परम्परा, कोठी की बात, पृ० १
 १८ सिम्पदिधि, पृ० २६८
 १९ आ० हि० ४० सा० और मनो० पृ० १२३
 २०० हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०
 २०१ खेहर एक बीबनी भूमिका, पृ० १०
 २०२ वही पृ० २३८
 २०३ नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका पृ० २०१
 २०४ आत्मनिर्देश, पृ० ५८
 २०५ आलोचना (१३), पृ० १३४

प्रश्न

केसक प्रश्न हिन्दी साहित्य के जाने-माने सैद्धक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है नकार नहीं।^{१०} फिर भी इस व्यक्तित्व में एक विपन्नता और अकस्य का भाव है। 'दोखर' की भाँति वह 'अंधे' में रहने वाला और बाहर से पहराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्हीं संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रहा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।^{११}

प्रश्न ने व्यक्ति के प्रांथरिक उद्घापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विरसेपन नीसिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।^{१२}

प्रश्न के सब चरित्र व्यक्तिवादी हैं। कोई विद्विहात्मक पात्रना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंस्व के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आचारधिसा मनोवैज्ञानिक विस्सेपण ही है।^{१३} किन्तु प्रश्न के चरित्र का यह अहंस्व उदात्त समुन्नत और मानवतावादी है।^{१४} इस अहंस्व का प्रयोग उन्हीं सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने विस्वविधान में पूरी सफलता भी मिली है।^{१५}

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मुस्त्रों और समस्याओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'अनु' का ज्ञान 'तम्बर बस' का पठन 'द्रोही' का मैं 'अभिज्ञाप' की कर्मण और मेरिया आदि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।^{१६} इन चरित्रों का निर्माण करना योग्य और मूक बलिदान के उल्लो को सैकर हुआ है जो स्त्री-पुरुष दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाओं से प्रोतप्रोत है—“मैं विद्रोही हूँ इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मांगती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।”^{१७}

मनोविरसेपण के लिए प्रश्न ने कभी सीधे मनोविरसेपण का लीका अथ भाषा है, कभी मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविरसेपण किया है।^{१८} द्रोही साँप और सिगनेसर आदि कहानियाँ चरित्र के आरम्भिक विस्सेपण के आधार पर ही निर्मित हैं।^{१९}

८७ तथा हिन्दी साहित्य एक भूमिका, पृ० १२७

८८. वही, पृ० २००

८९. आ० द्वि० क० सा० और मनो० पृ० २०६

९०. वही, पृ० १७१

९१. विस्वविधि, पृ० २६३

९२. आ० द्वि० क० सा० और मनो० पृ० २१२

९३. हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १२७

९४. कोठरी की बात पृ० १३२

९५. विप्रेचना, पृ० १२२

९६. विचार और विरसेपण पृ० ६२

'मनुष्य का भाग्य' और 'पुमिस की सीटी' आदि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव भावों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मनःस्मृति का सफ़ल अभ्ययन किया गया है।^{१००} इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों प्रदनों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एक संस्कारों की कमी नहीं।^{१०१} बाब कहानियों में बाहर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एक कोसाहुसपूर्ण व्यक्त से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक बितन की दुनिया में बिस्तुल सिमटे से दीखते हैं।^{१०२}

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र विकास

बाब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—'खेहर एक बीवनी' एवं 'नदी के द्वीप' तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने बासा है।

खेहर एक बीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे 'गिरहोदय क्रांतिकारी' 'असामाजिक भाभी' 'भयकर, बोर, सट्टा पहूबावी' या किसीने उसे मानवामे उपन्यासों के लिए 'प्रकाश स्वप्न' बताया है।^१ खेहर ने स्वयं खेहर का परिचय देते हुए कहा है—'खेहर अन्धा' या 'बड़ा' घादनी नहीं, लेकिन एक 'जागरूक स्वतन्त्र' और 'बोर ईमानदार' व्यक्ति है।^{१०३} खेहर स्वयं अपने बारे में बहता है—^{१०४}

मैं नया हूँ अपूर्व हूँ नई प्रतिज्ञा हूँ बिसे भविष्य
पूरा करना एक जिज्ञा हूँ जो मनुष्य के लिए रह जायगी।^{१०५} खेहर बोर घंटा
है—अन्धना के धीसमहम में अपना जीवन काटनेवाला नहीं "बादलों से
बने हुए नूत के बदन पहननेवाली राजकन्या रहती है।" इसीलिए वह अकेला है। उसे
मासा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह व्यक्तिबारी है, सामाजिक जाति के
अप घ वर-वर कापने बासा है।^{१०६}

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यम का विस्तोड हुआ है।^{१०७} खेहर को बुद्धि या संस्कृति की सभी उपलब्धियाँ प्राप्त हैं जिन्हें वह सही संस्कृति के विचरन का उपकरण बनाता है।^{१०८}

१०० परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १

१०१ प्रिस्मियिधि, पृ० २६८

१०२ आ० हि० क० सा० और मनो पृ० १३३

१०३ हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०

१०४ खेहर एक बीवनी, भूमिका, पृ० १०

१०५ वही, पृ० २३८

१०६ नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका पृ० २०२

१०७ आत्मदीपक पृ ३८

१०८ आलोचना (१३), पृ० १३४

अज्ञेय

रेलक अज्ञेय हिन्दी साहित्य के बाने-माने सेलक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है नकार नहीं।^{१०} फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अक्षमता का भाव है। 'बिहार' की भांति वह 'बोबे' में रहने वाला और बाहर से बबराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।^{११}

अज्ञेय ने व्यक्ति के पौरुषिक ऊहापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विरलेपन मौखिक है। वे झुमठ एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।^{१२}

अज्ञेय के उस चरित्र व्यक्तित्वाधी है। कोई विद्रोहात्मक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंकार के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण व्यापारिकता मनोवैज्ञानिक विस्लेषण ही है।^{१३} किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुन्नत और मानवतावादी है।^{१४} इस अहंकार का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने चिन्तनविधान में पूरी सफलता भी मिली है।^{१५}

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूर्खों और समस्याधों के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंश में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'उभू' का ज्ञान 'गम्बर दस' का रतन, 'द्रोही' का मैं, 'अभिजाप' की कर्मण और मेरिया पारि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।^{१६} इन चरित्रों का निर्माण कक्षा, घोषण और मूक बसिदान के तर्कों की सेकर हुआ है जो स्त्री-गुरुप दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाधों से प्रीतप्रोत् है—“मैं विद्रोही हूँ इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मानती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।”^{१७}

मनोविरलेपण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविस्लेषण का तरीका अपनाया है, कभी मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविस्लेषण किया है।^{१८} द्रोही साँप और सिन्धुनगर पारि कहानियाँ चरित्र के आत्मविस्लेषण के आधार पर ही निर्मित हैं।^{१९}

१०. कथा हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, पृ० ११७

११. वही, पृ० २००

१२. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६

१३. वही, पृ० १७१

१४. शिल्पविधि, पृ० २६३

१५. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २१२

१६. हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १३७

१७. कोठरी की बात पृ० १३२

१८. विवेचना, पृ० १२२

१९. बिहार और विस्लेषण पृ० ६२

‘मनुष्य का माग्य’ और ‘पुमिस की सीटी’ भाबि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव-भाषों के सहारे मनुष्य की कर्मद्वेषणाओं और मन-स्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।^१ इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों प्रदर्शों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।^२ बाब कहानियों में आकर इनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोमाह्वनपूर्ण बगल से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक बित्तन की दुनिया में विस्तृत सिमटे से खिंचे हैं।^३

अशेष के उपन्यासों में चरित्र-विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—‘खेहर एक बीबनी एवं ‘नदी के द्वीप’ तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

‘खेहर एक बीबनी’ हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने इसे ‘निर्दोष्य काठिकाटी’ ‘सामाजिक प्राणी’ ‘मयकर, घोर, उदरत भृशवादी या किसीने उसे घानबासे उपन्यासों के लिए ‘प्रकाश स्वप्न’ बताया है।^४ लेखक ने स्वयं खेहर का परिचय देते हुए कहा है—‘खेहर ‘अच्छा’ या ‘बड़ा’ भावनी नहीं लेकिन एक ‘आयस्क स्वतन्त्र’ और ‘घोर ईमानदार व्यक्ति है।^५ खेहर स्वयं अपने बारे में कहता है—“ मैं नया हूँ अपूर्ण हूँ नई प्रतिभा हूँ जिसे भविष्य पूरा करेगा एक शिक्षा हूँ जो मनुष्य के लिए रह जायगी।^६” खेहर घोर अंतर्दृष्टा है—कल्पना के दीप्तमहल में अपना जीवन काटनेवाला नहीं। “बादलों से बने हुए सून के बस्तन पहननेवासी राजकन्या रहती है।” इसीलिए वह धकेला है। उसे प्राणा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह अन्तर्दृष्टा है। सामाजिक जाति के मय से बर-बर कांपने वाला है।^७

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।^८ खेहर को पुत्रु या संस्कृति की सभी उपलब्धियाँ प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।^९

१७ परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १

१८ प्रिन्सिपलि, पृ २६८

१९ आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० १९३

२० हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०

२१ खेहर एक बीबनी, मूमेका, पृ० १०

२२ वही, पृ० २३८

२३ नया हिन्दी साहित्य एक मूमेका पृ० २०१

२४ आत्मोपदे, पृ० ३८

२५ आत्मोपदे (१३), पृ० १३४

प्रज्ञेय

लेखक प्रज्ञेय हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है तकार नहीं।^{८०} फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और धबसाह का भाव है। 'दिखार' की भाँति वह 'बोये' में रहने वाला और बाहर से भयराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के समीची व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।^{८१}

प्रज्ञेय ने व्यक्ति के घातक अज्ञानपोह को समझने की कोशिश की है। उसका चरित्र-विरसेपन मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।^{८२}

प्रज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तित्वापी हैं। कोई विद्रोहारमक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंकार के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आधारशिला मनोवैज्ञानिक विरसेपन ही है।^{८३} किन्तु प्रज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुल्लस और मानवतावापी है।^{८४} इस अहंकार का प्रयोग उन्होंने सब कर्मों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने चित्तबिम्बान में पूरी सफलता भी मिली है।^{८५}

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति बिद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंक्रम में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'तबु का आन 'नम्बर दस' का रठन 'डोही' का मैं 'धमिछाप' की कर्मों और मेरिया धारि चरित्र इसी बिद्रोह के प्रतीक हैं।^{८६} इन चरित्रों का निर्माण करुणा दोषण और मूक बलिदान के तत्वों को लेकर हुआ है जो स्त्री-मुख्य क्षेत्रों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही बिद्रोह की भावनाओं से घोटप्रोत है—“मैं बिद्रोही हूँ इत्रमिएँ कि मेरी प्रकृति यह माँपती है। मेरी जीवन-समिध की यही निष्पत्ति है।”^{८७}

मनोविरसेपन के लिए प्रज्ञेय ने कभी सीधे मनोविरसेपन का तरीका प्रयुक्त नहीं किया है, कभी मानसिक सपनों द्वारा मनोविरसेपन किया है।^{८८} डोही साँप और सिगनेसर धारि कहानियाँ चरित्र के धारमविरसेपन के आधार पर ही निर्मित हैं।^{८९}

८० नया हिन्दी साहित्य : एक मूल्यांकन, पृ० १६७

८१ वही पृ० २००

८२ धा० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६

८३ वही, पृ० १७१

८४ चित्तबिम्बि, पृ० २६३

८५ धा० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ११२

८६ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १२७

८७ कोठरी की बात, पृ० १३२

८८ विवेचना पृ० १२२

८९ दिखार और विरसेपन, पृ० ६२

‘मनुष्य का भाग्य’ और ‘पुनिस की छोटी बाब कहानियों में सकेतों एक सुषम हाथ भाषों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मन-स्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।’^१ इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों प्रश्नों और प्राकाशाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एक संस्कारों की कमी नहीं।^२ बाब कहानियों में बाबर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एक कोसाहसपूर्ण जगत से सम्बन्ध दृष्ट-सा यथा है और वे अपने मानसिक चित्त की दुनिया में बिस्कुल घिपटे से बीखते हैं।^३

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र-विकास

यह इनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—‘रोखर एक बीवनी एवं ‘वही के द्वीप’ तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

‘रोखर एक बीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे ‘निरह्वय क्रांतिकारी’ ‘सामाजिक प्राणी’ ‘मयकर, घोर, उदत्त बहुभाषी या किसीने उसे मानवासे उपन्यासों के लिए ‘प्रकाश स्वप्न’ बताया है।’^४ लेखक ने स्वयं रोखर का परिचय देते हुए कहा है—‘रोखर ‘अच्छा’ या ‘बड़ा’ भावमी नहीं लेकिन एक ‘आपसक स्वतन्त्र’ और ‘भोर ईमानदार व्यक्ति है।’^५ रोखर स्वयं अपने बारे में बहूँठा है—“ मैं तथा हूँ अपूर्ण हूँ नई प्रतिष्ठा हूँ जिसे अविष्य पूरा करेगा एक शिक्षा हूँ जो मनुष्य के लिए रह जायगी।”^६ रोखर जोर प्रतर्पिता है—‘कल्पना के घोरमहल में अपना जीवन काटनेवाला बहूँ’^७ “बाबलों से बने हुए मृत के वस्त्र पहननेवाली राजकुम्या रहती है।”^८ इसीलिए यह भ्रमेता है। उसे प्राधा का कोई भासोक नहीं होखता क्योंकि वह व्यक्तिवारी है सामाजिक जाति के भय से धर-धर काँपने वाला है।^९

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।^{१०} रोखर को पुनः प्रा संस्कृति की सभी उपलब्धियाँ प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।^{११}

- १७ परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १
- १८ अिस्त्यपिचि, पृ० २६८
- १९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० १९६
- १०० हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०
- १०१ रोखर एक बीवनी भूमिका, पृ० १०
- १०२ वही, पृ० २३८
- १०३ तथा हिन्दी साहित्य एक भूमिका पृ० १०१
- १०४ आत्मनेपद, पृ० ५७
- १०५. आतावना (१३), पृ० १३४

होती।^{१११}

किन्तु सेलक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हब तक घसा भारत"^{११२} माना है—“सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।”^{११३} उन्होंने उसे ‘उस समाज का—जो सभ्यता में प्रप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सञ्चा चित्र’^{११४} माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का प्रारंभ है बाल, चन्द्रमाधव का उपसम्बन्ध।

प्रगतिशील आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की प्रकृति माना है।^{११५} एक आलोचना विचारका ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए ‘अस्वाभाविक’ और ‘असम्भव’ बताया है चूँकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।^{११६}

अज्ञेय द्वारा पिहित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यवर्ग के अर्थकाय-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक लेखन की सीमा भी बँध गयी है।^{११७} जिस तरह मैडम बोवरी के चरित्र में फ्लोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को लय कर दिया है, वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास-विशेषता है।^{११८}

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश यावनाछादित संभवतः पीढ़ा-भङ्गित और संकटग्रस्त हैं। इन विपन्नताओं में यदि कोई लय या राग उन्हींने खोजा भी है तो या तो वह प्रभूरा रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।^{११९} सेलक ने ‘सेक्टर’ की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। सेक्टर उसी समय अदभ्य कर्मशील बनाने का प्रतिनिधि होकर फाँसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो पैयार लोग उसे उस कालकोठरी से छुड़ा से जाते। वह यदि रामचन्द्र का नायक होता तो जनता के समर्थकों के बीच फाँसी के फंदे की धूम

१११ साहित्यानुसौजन्य पृ० २६१

११४ आत्मनेपद, पृ० ७३

११५ वही

११६ वही

११७ हिन्दी काव्य पर आगत प्रभाव पृ० २०६

११८ आनोदय पत्रद्वारा १९२८

११९ आलोचना (२४) पृ० ५

१२० ए. टी. दाहलक आगत श्री नादक पृ० ९७

१२१ आधुनिक साहित्य, पृ० १७५

धार्मिक स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह धर्म धारण और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाता बाह्यता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने^{१०६} पुरुष के प्रति इस अस्वाभाविक काम प्रथमा स्वतंत्र प्रेम (होमोसेक्स)^{१०७} की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। धारण और 'कुमार' तो उसके बंध निकले। किन्तु धर्म को उसका आत्मकेंद्रित धर्म अपने अधिकार में एकत्र लाया हुआ कि यह देखकर मानव की ओर उन्मुखता और धार्मिक स्वच्छंदता का समर्पक है।

देखकर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके हर्ष-विरह कुछ और भी अस्पष्ट से छाया-श्रावी है। देखकर स्वयं भी अस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अंतर्मन तो भ्रमसा ही रहने की बीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन चन्द्रमाधव रेखा, गीरा—सभी के सभी उच्च शिक्षा पात्र मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ धार्मिकों ने रेखा में धर्म को और भुवन में देखकर को देखने की कोशिश की है। निःस्वयं ये चरित्र प्राप्त में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विपत्ति है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गीरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। धर्म देखकर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।^{१०८} भुवन देखकर की भांति अराजकतावादी भी नहीं। वह पर-बुद्धि में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की जड़ समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गीरा नाम की दो विन्धुओं के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धांतों को मूलक्य नहीं मिल पाया।^{१०९}

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र चन्द्रमाधव एक 'मिडियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस वर्ग के चरित्र की अस्पष्टियों को अस्पष्ट बीजत रूप से उपस्थित करता है।^{११०}

स्वयं देखकर ने 'नदी के द्वीप' को 'चार संवेदनाओं का अध्ययन' मान कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।^{१११} लक्षक ने यह भी कहा है कि मेष संवेदना मान इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही मुनिमित्त विश्वास्य व्यक्ति-चरित्र हो बीजत हो" यही काफ़ी है।^{११२}

धार्मिक की विवरणतिह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को अजीब नहीं मानते। भुवन और चन्द्रमाधव को वे एक ही धर्म के दो रूप मानते हैं। रेखा और गीरा भी एक ही हैं—सिर्फ उन्नत का फरक है दोनों में। वे भुवन के धर्म को आद्य पुरुषाने की निमित्तमान है। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ नहीं

१०६ इण्डिकोस पृ० १४

१०७ धा० हि० सा० और मनो, पृ० २७०

१०८ धार्मिकता (१३), पृ० १३४

१०९ वही पृ० १३२

११० वही,

१११ धार्मिकता, पृ० ७९

११२ धार्मिकता पृ० ८६

होती।^{१११}

किन्तु सेलक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी 'किसी हद तक ससाधारण'^{११२} माना है—'सब नहीं तो चार में से तीन क अनुपात से।'^{११३} उन्होंने उसे 'सब समाज का—बो सस्या में प्रप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सञ्चा चित्र'^{११४} माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और अत्रमाधम है। रेखा का आदर्श है दान अत्रमाधम का उपलब्धि।

प्रयत्नशील आलोचक डा० रामचिदास वर्मा ने अश्लेष के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।^{११५} एक आलोचना विचारवा ने इस कृति के श्रो-पात्रों को इसलिए 'अस्वामिदिक' और 'असम्मम' बताया है चूकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।^{११६}

अश्लेष द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यम क प्रकाश-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे धीरग्याविक लेखन की सीमा भी बँध पयी है।^{११७} जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में पत्रोक्षेपर ने अपने व्यक्तित्व को लप कर दिया है वैसे ही अश्लेष ने भी किया है जो उनकी खास विशेषता है।^{११८}

अश्लेष के औपन्यासिक नायक

अश्लेष के दोनों ही उपन्यासों की मादमूमि और परिवेष्ट वातनाछावित सशत पीड़ा-भङ्गित और संकटप्रस्त है। इन विषयताओं में यदि कोई लय या राग उगहने खोजा भी है तो या तो वह अमूर्त रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।^{११९} सेलक ने 'खेखर' की कल्पना १९१०-१२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। खेखर उसी समय अदम्य कर्मशील बमाने का प्रतिनिधि होकर फाँसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह अत्रकाता संतति का पात्र होता तो ऐयार खोप उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रमचन्द का नायक होता तो अनता के अयत्रयकारों के बीच फाँसी के फँदे को भूम

१११ साहित्यानुशीलन, पृ० २६१

११४ आत्मनेपद पृ० ७३

११५ वही

११६ वही

११७ हिन्दी काव्य पर प्राग्ल प्रभाव पृ० २ ६

११८ आलोचय, अक्टूबर १९१८

११९ आलोचना (२४) पृ० ५

१२० ए ट्रीटाइस दान बी नाथल, पृ० ९७

१२१ आधुनिक साहित्य पृ० १७५

धार्मिक स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह 'शक्ति, सारदा और कुमार' (पुरुष) को धनाना चाहता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने^{१०६} पुरुष के प्रति इस धार्मिक काम धंधा स्वनिपी प्रेम (होमोसेक्स)^{१०७} की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। सारदा और कुमार' तो उसके बच निकले। किन्तु शक्ति को उसका धार्मिकीय यह धन धार्मिकार में पकड़ माया हासिक यह देखकर मानव की योग्यता और धार्मिक स्वच्छंदता का समर्पक है।

शेखर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके 'दर्श-निर्देश' कुछ और भी स्पष्ट से छाया-प्राणी है। शेखर स्वयं भी स्पष्ट रह जाता है क्योंकि प्रसन्नता तो पुंजता ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र मुबन अन्धमाधव रेखा गीत—सभी के सभी उच्च शिक्षा पात्र मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ धार्मिकों ने रेखा में शक्ति को और मुबन में शेखर को देखने की कोशिश की है। निस्सन्देह ये चरित्र धार्मिक में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विपरीतता है। मुबन का व्यक्तित्व रेखा और गीत में छिपकर संकीर्ण हो गया है। शक्ति शेखर के लिए टूट जाती है। पर रेखा मुबन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।^{१०८} मुबन शेखर की भाँति धार्मिकतावादी भी नहीं। वह पर-गृहस्वी में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की बड़े समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गीत नाम की दो विपुलों के प्र-सर्पक है। इसीलिए उसके सिद्धांतों को मूर्खता नहीं मिस पाया।^{१०९}

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र अन्धमाधव एक 'मिथ्याकार' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस वर्ग के चरित्र की प्रसंगिकता को धार्मिक चर्चित इम से उपस्थित करता है।^{११०}

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को "चार संवेदनाओं का अध्ययन" मान कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।^{१११} लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिश्चित विश्वास व्यक्त-चरित्र हो जीवन हो" वही काफ़ी है।^{११२}

धार्मिक की विश्वासविह्वल जीवन इस उपन्यास के पात्रों को उन्नीच नहीं मानते। मुबन और अन्धमाधव को वे एक ही चित्रके का दो रूप मानते हैं। रेखा और गीत भी एक ही हैं—सिर्फ उभर का फर्क है दोषों में। वे मुबन के घड़ की घाघ पहचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ नहीं

१०६ बुष्टिकोप पृ० १४

१०७ धा० हि० सा० और मनो०, पृ० २७०

१०८ धार्मिकता (१३) पृ० १२४

१०९ वही पृ० १३२

११० वही

१११ धार्मिकता पृ० ७२

११२ धार्मिकता पृ० ८६

होती।^{१११}

किन्तु लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हद तक भसा चारम"^{११२} माना है—“उब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।”^{११३} उन्होंने उसे “उस समाज का—जो सख्या में अग्रगण्य है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र”^{११४} माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रैखा और चन्द्रमाभव हैं। रैखा का धारण है ज्ञान, चन्द्रमाभव का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा० रामबिंसास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की समकृति माना है।^{११५} एक आलोचना-विद्यारवा ने इस कृति के नवो-पात्रों को इतना ‘प्रस्थापनिक’ और ‘सम्मनन’ बताया है चूँकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।^{११६}

अज्ञेय द्वारा पिहित रोमांस एक अस्तमूख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उष्ण मध्यमर्ग के अकलाय-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक सैलन की सीमा भी बँध गयी है।^{११७} जिस तरह मैडन बोबेरी के चरित्र में एडोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को सब कर दिया है, वैसे ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास विशेषता है।^{११८}

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की मातृभूमि और परिवेश यातनाच्छादित, घनस्त पीड़ा-मग्नित और संकटघन है। इन विपमताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अमूरा रह गया है या पूरा होठे-हाठे अप्रासंगिक हो गया है।^{११९} लेखक ने ‘धरार’ की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। देखकर उसी समय अथम्य कर्मशील जमाने का प्रतिनिधि होकर फाँसों की कोठरी में बँध होता है। अमर वह चन्द्रकांठा बँधति का पात्र होता तो ऐबार लोय उसे उस कालकोठरी से छड़ा से बाटे। वह यदि अमरत्व का नायक होता तो अनता के अययकारों के बीच फाँसी के छँके को घुम

- ११३ साहित्यानुसूलन, पृ० २६१
- ११४ अस्तमैपद, पृ० ७३
- ११५ वही
- ११६ वही
- ११७ हिन्दी काव्य पर आगत प्रभाव, पृ० २०६
- ११८ आलोच्य अस्तमैपद, १९२८
- ११९ आलोचना (२४) पृ० २
- १२० ए इतिहास ज्ञान से नावेल पृ० ६७
- १२१ आधुनिक साहित्य, पृ० १७१

आदिम स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह घृति, सारवा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाता जाहता है। बिदेसी उपन्यासकार प्राइस्ट ने^{१०६} पुरुष के प्रति इस आस्वाभाविक काम भयवा स्वतन्त्र प्रेम (होमोसेक्स)^{१०७} की मनोबैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। सारवा और कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु घृति को उसका आत्मकेंद्रित ग्रह अपने अधिकार में पकड़ साया हासोंकि यह शिखर मानव की शोक सम्भ्रमता और आदिम स्वच्छंदता का समर्पक है।

खेलर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके इर्द-बिर्द कुछ और भी प्रस्पष्ट से छाया-प्राणी है। शिखर स्वयं भी प्रस्पष्ट रह जाता है क्योंकि प्रत्यर्जन तो भुंजसा ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप के पास भुवन अन्नमाधव रेखा पीर—सभी के सभी उच्च सिखा पात्र मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ आलोचकों ने रेखा में घृति को और भुवन में खेलर को देखने की कोशिस की है। मिस्सनेह ने चरित्र मापस में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विपमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गौर में छिपकर संकीर्ण हो गया है। घृति खेलर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पुर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।^{१०८} भुवन खेलर की घृति अघातकतावादी भी नहीं। वह पर-गृहस्त्री में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की बड़ें समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गौर नाम की दो किशुओं के प्र-तर्पण है। इसीलिए उसके सिद्धांतों को मूर्तरूप नहीं मिस पाया।^{१०९}

नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र अन्नमाधव एक मिडियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस ढंग के चरित्र की प्रसंगियों को अत्यन्त शीघ्रत ढंग से उपस्थित करता है।^{११०}

लेखक ने 'नदी के द्वीप' को चार संविधानों का अध्ययन' मान कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।^{१११} लेखक ने वह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिश्चित विश्वास्य व्यक्ति-चरित्र हो पीरत हो" बही काफी है।^{११२}

आलोचक की शिखरानाँह जीहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और अन्नमाधव को वे एक ही सिक्के का दो रक मानते हैं। रेखा और गौर भी एक ही हैं—सिर्फ उम्र का फर्क है दोनों में। वे भुवन के ग्रह को आघ गहृचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं नहीं

१०६ इण्डिकोव, पृ० १४

१०७ आ० हि० सा० और लो०, पृ० २७०

१०८ आलोचना (१६) पृ० १३४

१०९ वही पृ० १३४

११० वही

१११ आत्मनेपद पृ० ७२

११२ आत्मनेपद पृ० ७६

होती।^{११९}

हिन्दु संस्कृत में अपनी कहानी को एक पात्रों को भी "किसी हद तक प्रसारण"^{१२०} माना है—"सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात है।"^{१२१} जहाँ उसे 'उस समाज का—जो संस्था में प्रभाव है—उस समाज के व्यक्तियों का संस्था विषय'^{१२२} माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति-चरित्र रेखा और चरित्रभाव है। रेखा का आधार है दान चरित्रभाव का उपलक्षण।

प्रतिपक्षक आलोचक डा० रामविकास शर्मा ने प्रज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।^{१२३} एक आलोचना-विचारदा ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'मस्त्राभावि' और 'मस्त्रम्ब' बताया है चूँकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।^{१२४}

प्रज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख्य व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पृष्ठ के लिए उच्च मध्यम वर्ग के प्रकाश-जीवियों में जहाँ अपने पात्रों का खोज है विसंगत धीरशास्त्रिक लेखन की सीमा भी बँध गयी है।^{१२५} जिस तरह मध्यम बोधेरी के चरित्र में प्रज्ञेय ने अपने व्यक्तित्व को लय कर दिया है वैसे ही प्रज्ञेय ने भी किया है जो उनकी साथ विशेषता है।^{१२६}

प्रज्ञेय के औपन्यासिक नायक

प्रज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की मातृभूमि और परिवेश घातनाशरित, संवत्स पीड़ा-मजिद और संकल्पस्थ है। इन विपन्नताओं में यदि कोई लय या राग जहाँ खोजा भी है तो या तो वह मधुर यह गया है या पूरा होते-होते प्रारंभिक हो गया है।^{१२७} लेखक ने 'दिखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संघाम के दिनों में की थी जयन्ति पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। दोसर उसी समय प्रथम कर्षण लयाने का प्रतिनिधि होकर काँची की कोठी में बँध होता है। प्रथम वह चरित्रात्ता संतति का पात्र होता तो ऐसा ही उसे उस कासकोठी से छड़ा ले पाते। वह यदि प्रथम का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच चरित्र के फरे को चुन

११९ साहित्यानुसंधान, पृ० २६१

१२० प्रथमनेपथ, पृ० ७३

१२१ वही

१२२ वही

१२३ हिन्दी काव्य पर आगत प्रभाव, पृ० २०६

१२४ आलोच्य प्रवृत्त, १९३८

१२५ आलोचना (२४) पृ० ३

१२६ ० टीकाइय दान की वादल, पृ० ६७

१२७ आधुनिक साहित्य, पृ० १७३

धार्मिक स्वच्छता में विश्वास करते हुए भी वह सधि धारणा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाता जाहूँ है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने^{१०६} पुरुष के प्रति इस धार्मिक काम धर्म का स्वसिद्धी प्रेम (होमोसेक्स)^{१०७} की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। धारणा और 'कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु सधि को उसका धार्मिकोचित ग्रह अपने अधिकार में पकड़ जाया हुआ कि यह खेतर मानव की योग्यता और धार्मिक स्वच्छता का समर्थक है।

खेतर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके हर्ष-निर्भ कुल और भी प्रस्पष्ट है जाया प्राणी है। खेतर स्वयं भी प्रस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अन्तर्मन तो बुद्धता ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन अग्रमात्रक रेखा और—सभी के सभी उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ धार्मिकों ने रेखा में सधि को और भुवन में खेतर को देखने की कोशिश की है। निःसन्देह वे चरित्र धारण में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विषमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और वीरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। सधि खेतर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।^{१०८} भुवन खेतर की भाँति धार्मिकतावादी भी नहीं। वह घर-गृहस्त्री में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की बड़े समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और वीरा नाम की दो विधियों के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धांतों को मूलरूप नहीं मिल पाया।^{१०९}

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र अग्रमात्रक एक 'मिथियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस बम के चरित्र की प्रसन्नियों को प्रत्यक्ष जीवंत रूप से उपस्थित करता है।^{११०}

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को 'चार संवेदनाओं का अध्ययन' मात्र कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।^{१११} लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि 'प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिश्चित, विश्वास्य व्यक्ति चरित्र हो जीवंत हो' यही कांछी है।^{११२}

धार्मिकता की विवशानतिह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और अग्रमात्रक को वे एक ही छिन्ने का दो रूप मानते हैं। रेखा और वीरा भी एक ही हैं—विश्व जल का एक ही दोनों में। वे भुवन के ग्रह को बाध पहुँचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतंत्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ नहीं

१०६ इण्डिकोप, पृ० १४

१०७ धा० हि० सा० और मनो०, पृ० २७०

१०८ धार्मिकता (१३), पृ० १३४

१०९ वही पृ० १३४

११० वही,

१११ धार्मिकता पृ० ७२

११२ धार्मिकता पृ० ७६

होती।^{११}

किन्तु, सेलक ने अपनी कहानी को एम पार्श्व को भी "किसी हद तक प्रसा-
धारण"^{१२} माना है—“सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।”^{१३} उन्होंने उसे
'उस समाज का—जो संस्था में प्रप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सञ्चा
चित्र"^{१४} माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चरित्रमात्रक हैं। रेखा
का आदर्श है दास चरित्रमात्रक का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा० राजनिवास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों की विवेची
साहित्यकारों की मनुकृति माना है।^{१५} एक आलोचना। विचारदा ने इस कृति के स्त्री-पार्श्वों
को इसमिए 'धत्तामाविक' और 'प्रसम्भन बताना है चूकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।"^{१६}

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी
पूर्ति के लिए उच्च मध्यमवर्ग के अर्थकाष्ठ-जीवियों में उन्होंने अपने पार्श्वों को खोजा है
जिससे धीरग्यासिक लेखन की सीमा भी बँध गयी है।^{१७} जिस तरह मंडन बोयेरी के
चरित्र में पत्तोक्षेपर ने अपने व्यक्तित्व को व्यक्त कर दिया है वैसे ही अज्ञेय ने भी किया
है जो उनकी सास-विशेषता है।^{१८}

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की मातृभूमि और परिवेश यातनाच्छादित
संस्कृत पोड़ा-मजिबत और सकटप्रस्त हैं। इन विपमताओं में यदि कोई लय या राग
उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह धमूय रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो
गया है।^{१९} सेलक ने 'रोखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय सभाम के दिनों में
की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। रोखर उसी समय अरब्य कर्मशील
जमाने का प्रतिनिधि होकर फाँसी की कोठरी में बँध होता है। अगर वह चरित्रकांता
संघर्ष का पात्र होता तो ऐयार जोय उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि
प्रमत्त का नायक होता तो जनता के अयत्नकारों के बीच फाँसी के फंदे को चूम

११३ साहित्यानुशीलन, पृ० २६१

११४ अज्ञेयपत्र पृ० ७३

११५ वही

११६ वही

११७ हिन्दी काम्य पर आगत प्रमाण, पृ० २०६

११८ आलोच्य अष्टद्वार, १९२८

११९ आलोचना (२४) पृ ३

१२० ए डीबाइज आन बी नावेल्, पृ० ६७

१२१ आधुनिक साहित्य पृ० १७३

कर गये सवा नेता या विल से छूटकर कहीं किसी साम्प्रदाय की स्थापना कर बासता^{११} पर सेखर के सामने ये दोनों रास्ते नहीं थे। इसीलिए फाँसी की कोठरी में मुरबु की सासग्न छाया में वह बहरे सोचने को विवश है।

मुबन सेखर की तरह १९३२ के भारत का नहीं १९४८ के भारत के परिवेश पर गढ़ा गया पात्र है। सेखर में बुनूस है उसमें व्यक्ति स्वयंसेवक है। नबी के द्वीप में भीड़ है उसमें व्यक्ति फँस गया है। इसीलिए मुबन एक अजीब परिवेश में है। सेखर कर्म प्रतिभ्युत था। पर मुबन क्या करे यह उसे समझ में नहीं आता। इसी अनिश्चय के बीच संभवतः मानवता के प्रसंग में वह जीवन, स्वाधीनता और आत्मोपलब्धि के प्रश्नों को छठाठा है।^{१२} सेखर के रूप में अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भकर मुबन कैबल प्रतीक्षा के स्थिर और स्थितिहीन द्वीप तक पहुंच पाता है।^{१३}

अपने प्रकाशित होनेवासे नये उपन्यास 'अपने-अपने अक्षमबी' के बारे में लेखक ने कहा है कि इसके पात्र बिबेधी हैं। जिस प्रकार मृत्यु कुछ के लिए अपनी और कुछ के लिए अक्षमबी होती है, वही उपन्यास की वस्तु है।^{१४}

इलाचन्द्र जोशी

पी इलाचन्द्र जोशी की उपन्यास-कला दो धाराओं में बँटकर बही है।^{१५} पहली धारा के उपन्यास सामाजिक मनोविकारी एवं मानवीय संतुलनबोधता पर आधारित हैं। उनमें मनुष्य स्वभाव के बड़े अर्थिक संघर्षों का भी चित्रण हुआ है। बाद में उन्होंने बाह्य सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर अपनी रचनाएँ कीं और यही धारा अब उनकी उपन्यास-कला की मुख्य धारा है। पहली धारा की मुख्य रचनाएँ हैं 'पहें की छाती' एवं 'मिठ धीर छाया'। दूसरी धारा की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं 'मुक्तिपत्र', 'मुबह के मूले' 'जिप्सी' और 'जहाज का पंजी'।

जोशीजी के औपन्यासिक चरित्र

वक्तात्मक दृष्टि से जोशीजी के उपन्यासों का मूलाधार चरित्र है। इनके निर्माण उद्घाटन तथा व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने व्यक्तित्वहीन परावृत्त का सहारा लिया है। चरित्र के अंतर में प्रवेष्टकर उसकी वृत्तियों—दुर्बलताओं और अक्षमताओं—का उद्घाटन करना ही उनकी कला की साधारण-दिशा है।^{१६}

कुछ सातोषकों में व्यक्तित्व-जन की पीड़ा और कृपा का चित्रण करने के लिए

१२२ आकाशवाणी, इलाहाबाद, २०-१०-४०

१२३ प्रसारिका, १९४० पुस्तक-सितम्बर, पृ० ४१

१२४ आकाशवाणी इलाहाबाद, २०-१०-४०

१२५ कामोदय, मार्च १९६२, पृ० ४३

१२६ आलोचना (१८), पृ० ९३

१२७. नया साहित्य, नये प्रश्न, पृ० १८

उनकी आसोचना की है। किन्तु, यदि व्यक्ति की चिन्ता नहीं की जाय तो हमें दुनिया के बारे में सोचने-समझने का कोई कारण नहीं मिल सकता क्योंकि व्यक्ति ही वह इकाई है जो दुनिया की चिन्ता करने वाला है।^{११८} बोधीजी के उपन्यासों के व्यक्ति के माध्यम से जीवन या मस्तिष्क में ठहरती हुई मानव-चेतना के प्रवाह को अच्छी तरह देखा और समझा जा सकता है। फिर भी बोधीजी ने व्यक्ति के बहुमात्र पर तीव्र प्रहार किये हैं। 'पर्व की रानी' का नायक इन्द्रमोहन इसका प्रमाण है।^{११९}

'बहुमात्र का पंछी' उनका मनीषितम उपन्यास है जिसका नायक मध्यवर्गीय एवं स्वल्प बौद्धिकता का एक सभल चरित्र है।

शेक्सपीयर के नाटकों की तरह उनके उपन्यासों की नायिकाएं नायकों से कहीं अधिक प्रबल और प्रभावशालिनी हैं। प्रायः पात्रों के साथ ही उनके उपन्यासों में एक संयममूर्ति पात्र की योजना की गयी है जैसे 'मा मिक्लेबेक्स' (बिजट्टर ह्यूपो) में बिजट्टर धर-बाहर (रबीन्द्र) में नायक का प्रत्यापक है। 'पर्व की रानी' में निर्दलना का दुष्ट भी वैसे ही एक पात्र है।^{१२०} कुछ मिसाकर उनके पात्र सिद्धांतों सुधारों और आदर्शों की प्रस्तर-प्रतिमाएं नहीं हैं।^{१२१} उनमें जीवन की सफलता विफलतामयी सजीवता है। उनके नायक किसी एक परिवार या वर्ग के प्राणी नहीं। वे सम्पूर्ण मानव-परिवार के सञ्चलन सबस्य के रूप में हमारे सामने आते हैं।^{१२२}

आधी के उपन्यासों में प्राये पात्रों पर विचार करने से यह भी प्रतीत होता है कि उनके प्रारम्भिक उपन्यासों के कई पात्र अपने यत्किञ्चित् परिवर्तित रूपों में उनके बाद के उपन्यासों में भी आते हैं। व्यक्ति की अन्तर्मुखी समस्याओं पर विचार करने वाले उपन्यासों में ऐसे निमाही और दृढस्थ दृष्टिकोण रखने वाले पात्र बहुपमे गये हैं।^{१२३}

उनके पात्र अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी भी होते गये हैं।^{१२४} 'निर्वासित' का ठाकुर धीरबसिंह ऐसा ही एक पात्र है। प्रारम्भिक चरित्र 'भग्ना' को सम्पादी में 'अपनी' के रूप में पहचाना जा सकता है हालांकि परिस्थितियों के अनुसार इन पात्रों का रूप भी परिवर्तित होता गया है।^{१२५} 'मुक्ति पत्र' की सुनंदा 'सुबह के सूनै' की निरिजा और जिन्दी की अनिया पहले की कृतियों में प्रायः मारी-पात्रों के परिवर्तित रूप हैं। 'निर्वासित' के महीप को बार-बार न बुझाकर 'बहुमात्र का पंछी' के आचार्य

११८ इलाबन्ध बोधी के उपन्यास, पृ० १३३

११९ हिन्दी कथा साहित्य, पृ० १०८

१२० आकाशवाणी, इलाहाबाद, १५-१२-५६

१२१ आ० हि० कथा सा० और मनो, पृ० २३१

१२२ आकाशवाणी इलाहाबाद, १५ १९ ५८

१२३ हिन्दी उपन्यास और पत्रापत्र पृ० २२२

१२४ आसोचना (१८), प० ६३

१२५ इलाबन्ध बोधी के उपन्यास, पृ० १००

नायक में एक बार लाया गया है। यह सुबुद्ध, चीसवान और हंसोड़ व्यक्ति महीप का ही पूरक है।^{११०}

व्यक्तित्वाधी उपन्यासकार होने के कारण प्रायः एक ही मानसिक कृंताओं से प्रसूत व्यक्ति उनके उपन्यासों का केन्द्र होता है। किन्तु, परिपासर्क के साथ इस व्यक्ति के व्यंग्योपमापय सम्बन्ध को न देख पाने के कारण 'संन्यासी' से लेकर 'निर्वासित' तक उनके उपन्यासों की परिमति पद्यमय और निपटाराभाव में हुई है।^{१११} जोशीजी ने इसकी सफाई देते हुए कहा है— 'और नायकों की गाथा लिखने वाले उपन्यासकारों की कमी नहीं पर दुर्बल व्यक्तियों को कथा-नायक बनाने का सीमान्त प्रकृति मुझे ही प्राप्त है।'^{११२} यह बात सत्यतः सही है। उनके पात्र प्रकर्मण्य निष्क्रिय घासही मचार्य से नाटा न रखनेवासे स्वच्छन्द मीन सम्बन्ध रखनेवासे हैं जो एक साथ कई नाटियों से घिसते हैं और घास में उन्हें घोसा भी देते हैं।^{११३} घासोचनाओं के उत्तर में जोशीजी ने कहा है कि 'घास के समाज से मनोविकार प्रसूत चरित्र-नायकों को साकर, उनका उच्छ्वा मनोविकसिपण करके ही व्याधियों का निराकरण किया जा सकता है और अपने साहित्य में मैंने ऐसा ही किया है।'^{११४}

जोशीजी के नारी-पात्र धारमहान करनेवासी पति-परायणा नहीं हैं। वे सुन्दर सोचने वाली एवं व्यक्तित्वपूर्ण हैं। सज्जा मंचरी मंचिनी घांति नीलम प्रतिमा सुनबा—सभी ही सभी व्यक्तित्व की सुकृता से समन्वित हैं। जोशीजी ने कहा है कि ऐसी सबसे और सचेत नारियों की सृष्टि करके मैंने घास के भुप की संपर्पधील नारी का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास किया है।^{११५}—ऐसी नारी जिसमें विद्रोह के बीज हैं जो पुरुष के साथ समझौता नहीं करती और उसके परिणाम को भी मुक्तने को स्वयं अपने ही बस पर तैयार रहती है।^{११६}

मनोविज्ञान की योजना द्वारा इनके पात्रों में कुछ विघपताएं बिसाई पड़ती हैं। वे हैं घासमन के विस्फोट, घां हीनभाव तथा सेवक स्वामाधिक जीवन नहीं बीना, बिचित्र क्रिया-कलापों वाले।^{११७}

जोशीजी ने मध्यकाल की समस्याओं को कृंताओं को मनोविज्ञान की पुस्तकों में देखा है।^{११८} फलतः 'पर्व की रानी और प्रेत की छाया' जैसे उनके उपन्यासों में मनो-

११६ वही

११७ साहित्य समीक्षा मन्थन १९४४ पृ० १९४

११८ हिन्दी पृ० ७०६

११९ हिन्दी उपन्यास और पद्यावधार, पृ० २२२

१२० बिजलेप पृ० १६९

१२१ बिजलेप, पृ० १२४

१२२ बिजलेप, पृ० १७१

१२३ घासोचना (१८) पृ० ७७

१२४ घासोचना (१९) पृ० १३२

विस्फेपन यत्रयत् हो गया है जिससे चरित्रों को व्यक्तित्व भी नहीं मिल पाता। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ ऐसे ही अमूर्त सिद्धांतों पर गढ़ा गया एक पात्र है।^{१००}

बोधीबी के कथनानुसार उनका निर्वासित उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन की कहानी है। इसमें मध्यवर्ग के कुंठाग्रस्त व्यक्ति के जीवन की व्यर्थता का करम चित्र खींचा गया है। महीप नीलिमा आदि ऐसे ही पात्र हैं। प्रतिमा और धारदा के रूप में नारी-जागरण को कुछ निश्चित स्वरूप प्रदान करने की कोशिश की गयी है अक्षय पर हृत्निमता के कारण वह असफल हुई है।^{१०१} धारदा के माध्यम से सर्वहारा जाति के विषय में प्रकट किये गये विचार अर्थशास्त्रिक हैं। उनसे सिर्फ पढ़े-लिखे वर्ग की चिंतन धारा का बोझ-छा पटा बसता है।^{१०२}

डा० मधुमीनारायण सास^{१०३} ने उनकी कहानियों के समस्त चरित्रों को तीन श्रेणियों में बांटा है। असाधारण में कापासिक रात्रिचर प्रेतात्मक एवं धराबी आदि हैं। दूसरे हैं साधारण चरित्र जिनमें रोगी परिचयकता एवं मध्यवर्ग के अर्थ चरित्र हैं। तीसरे हैं वे चरित्र जो अथिक्त बसिष्ठ सुदृढ़ और सर्वग्राही हैं।

चरित्र का तीसरा प्रकार अर्थात् 'मैं' लेखक के चरित्रविधान का प्रमुख अंग है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों का प्रतिनिधि नायक 'मैं' ही है।^{१०४} किन्तु यह उनकी विशेषता है कि इस 'मैं' का विस्फेपन भी उन्होंने निर्ममतापूर्वक किया है। वस्तुतः, आत्मविस्फेपन द्वारा चरित्रों का उच्चाटन ही उनकी आस विशेषता है। चरित्र को उन्होंने अतिरिक्त करके नहीं देखा है। वे मात्रतन्त्र और चरित्र-विस्फेपन को ही कहानियों की आत्मा मानते हैं।^{१०५}

श्री बोधी हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार^{१०६} नामक पुस्तक में अपने को कथाबन्धाद से प्रभावित नहीं मानते। पर आलोचक डा० देवराज उपाध्याय ने^{१०७} उन्हें कथाबन्धादी ही माना है। श्री सिधदान्तसह पौहान एवं हिन्दी के कुछ अन्य आलोचकों ने भी उन्हें कथाबन्धादी ही माना है।^{१०८} डा० देवराज 'किञ्चनेक' नामक कहानी की नायिका सम्मोहिनी को तो विस्तृत कथाविषय ही मानते हैं।^{१०९} कुछ प्रदलों के उत्तर

१४४ वही

१४६ इलाक़्क़र बोधी साहित्य और समीक्षा पृ० १३

१४७ आलोचना (१३), पृ० १३३

१४८. धिक्कविधि पृ० २७३

१४९. आ हि० क० सा० और मनो० पृ० २६८

१५०. हिन्दी कहानी पृ० २०६

१५१ पृ० १३०

१५२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २२२

१५३ साहित्यानुशीलन पृ० ३८

१५४ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २२२

में सम्मोहिनी जो कुछ कहती है उसमें ऋषभ के अनुकूल बहुत-सी बातें हैं।^{११९} एक पाकेटमार को बड़ी-बड़ी सनका पानेवाले बाबुओं और मासखार सेठों की बेइ काटने पर परम प्रसन्नता होती है। कारण बताते हुए यह कहता है इस तरह 'मन ही मन अपने को वसंतों का स्वयंसिद्ध प्रतिनिधि समझकर मैं खुश हो बैठा हूँ।' यह भी ऋषभियन मनोवृत्ति की सूचना देने वाला वक्तव्य है।^{१२०}

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा का सुप्रसिद्ध एवं सर्वप्रथम उपन्यास है 'चित्रलेखा'। इसके नायक बीजगुप्त के बारे में सम्राट जगद्गुप्त ने कहा है—'तुम एक महान धारणा हो।

तुम मनुष्य नहीं देवता हो।'^{१२१} और फिर महामनु रत्नांबर ने कहा—'बीजगुप्त योही है उसके हृदय में संसार की समस्त बासनाओं का निवास है, ईश्वर पर उसे विरासत नहीं स्वयं तथा नरक की उसे कोई चिन्ता नहीं।'^{१२२}

बीजगुप्त योही होते हुए भी योही कुमारगिरि से भेठ सिद्ध हुआ। बासना में भी वह व्यस्त है। नर्तकी चित्रलेखा के प्रति उसकी बासना प्रणय प्रेम में सीन हो जाती है। कुमारगिरि का पतन होता है। बीजगुप्त स्वयं देवता बना और नर्तकी चित्रलेखा का भी उद्धार कर मया।

प्रेमचरित्र युगीन परिचों से 'चित्रलेखा एक चरित्र विकास में काफी प्रगति हुई है।^{१२३} 'अशित-स्वार्थ' के धारकों की स्थापना श्री वर्मा के उपन्यासों का मूल उद्देश्य है। 'चित्रलेखा में बीजगुप्त तथा चित्रलेखा 'टैङ्गे-मेङ्गे रास्ते' में पंडित रामनाथ के तीनों पुत्र 'मातिरी बाबू' में ज्येष्ठ तथा रामेश्वरी के चरित्र शैलक के दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।^{१२४} 'तीन बिल' के नायक रमेश के विचारों में 'प्रेम का अंत विवाह है।'^{१२५} पर उसकी सहपाठिणी और प्रेमिका प्रमा विवाह को धार्मिक सम्बन्ध' कहती है। प्रमा की असहमति से रमेश विदित हो गया। तभी वह सराबी और बेव्या-पामी बना।^{१२६} वह कहने लगा—'बपया ही चरित्र है प्रेम बुनिया में कहा है जो कुछ है सो पसा है।'^{१२७} पर सरोज नाम की बेव्या ने उसकी धाँसे खोली। रमेश के प्रेम में वह मिट गयी और चार लाख की सम्पत्ति उसे विपसत में छोड़ गयी। फिर प्रमा ने उसे पनी देकर विवाह का प्रस्ताव किया। रमेश ने अनाथ दिया

११९ वही, पृ० २६७

१२० वही

१२१ चित्रलेखा

१२२ वही

१२३ हिन्दी उपन्यास (पब्ल), पृ० ६६

१२४ वही

१२५ घालीबना (१३), पृ० १३६

१२६ हिन्दी उपन्यास (पब्ल), पृ० १०२

“पुण्य को धरौं देने के बदले तुम उसका भग जाहती हो और यह बेस्यानृति है।” इस तरह रमेश ने एक बेस्या में कुछ प्रेम और एक संभ्रांत युवती में बेस्यानृति के दर्शन किये।

‘टिंके-मेढ़े रास्ते’ में हमारे बटिस जीवन के दृश्य हैं। उसके बुढ़, धिंसित निष्ठावान नायक पंडित रामनाथ बड़े सड़के दयानाथ को कांग्रेस में शामिल होने पर और मझले समाजों को समाजवादी वन में शामिल होने के कारण त्याग देते हैं।^{१११} भारतवादी छोटे पुत्र को स्वयं फाँसी पर चढ़ने को तैयार करते हैं। अंत में उन्होंने महसूस किया कि सब कुछ के बावजूद ‘वह जीवन में बुरी तरह हार रहे हैं।’ जिम्बपी की यह फाँस-निष्ठा तो हर व्यक्ति के जीवन में समी ही रहती है। ‘भाबिरी बाब’ का नायक रामेश्वर भी सब कुछ हारकर गाँव से बम्बई भागा। वहाँ उसे अपने नर बालों से पीड़ित जमेसी मिली। जमेसी अंत में उसे आत्मसमर्पण करती है।^{११२} पर फिर रामेश्वर के कारण ही उसका पतन होता है। अंत में रामेश्वर ने प्रायमी बनने की ठानी। वह बम्बई का ‘दादा बना पर यहीं जीवन का आखिरी बाँध हार गया। ‘अपने बिसौने का युवराज बीरेश्वरप्रताप भी ऐसा ही एक चरित्र है—हालांकि वह धिंसित सुसंस्कृत और एक कलाकार है जिससे वह धीमती कैरा कोमल का अत्यामी आराध्य देव भी बन सका है।^{११३} आज के संभ्रांत और धिंसित उच्च वर्ग पर ‘अपने बिसौने में अत्यधिक तीखा प्यंग है।^{११४}

भूमे-बिसरे चित्र’ उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें चार पीढ़ियों तथा उनके पास-पास के युग का चित्रण है। इसमें दो दर्जन पात्रों का चित्रण है। इस दृष्टि से इसे हम एक नया प्रयोग भी कह सकते हैं।^{११५} इसके व्यासाप्रसार गंगाप्रसाद छिनकी और भीष्म हिन्दी उपन्यास के समर पात्र हैं। हालांकि बिचर रूप से उस पूरे युग के प्राथिक सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे का चित्र इसमें नहीं आ सका है, तो भी इस दृष्टि से भी उपन्यास में कोई बड़ी कमी नहीं बीबती।^{११६}

डा भगवतधरण उपन्यास में^{११७} इस उपन्यास की नायियों की आर्थिक नैतिकता के चित्रण को संभावना की दृष्टि से समुचित कहा है। उनकी उम्र में संतो और नैसासों के चित्रण को बीरे बीरे जमारने की बरुरत भी।

‘भूमे-बिसरे चित्र’ के बाव ‘सामर्थ्य और सीमा’ का प्रकाशन बर्माजी की सफल प्रयोगशीलता का एक सुन्दर उदाहरण है। यह केवल दस व्यक्तियों की कहानी है जो

१६६ वही, पृ० १०४

१६७ वही, पृ० १०७

१६८ वही

१६९ आकाशवाणी सप्तमः, १७-११ २८

१७० आकाशवाणी, प्रवृत्त १९५९, पृ० ३७

१७१ वही

१७२ आकाशवाणी (साहित्य विशेष) ६०, पृ ११

सात-आठ दिन के अन्तर घटित हो जाती है। समूचा उपन्यास मात्र की दुनिया पर एक टीका और सफल व्यंग्य है। इसके पात्र मात्र के सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

निष्कप रूप में यह कहा जा सकता है कि बर्माजी के पात्रों की अपनी विशेषता है। वे वर्ग का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं। पर उनमें अपनी चरित्रिक विशिष्टताएँ भी हैं। इस तरह बर्माजी के पात्र व्यक्तिवादी उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं।^{१००} पर उनके व्यक्तियों की समस्या समाज की समस्या है। इसलिए उनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी या स्वयं उन्हें व्यक्तिवादी कहाकार नहीं कहा जा सकता।

बर्माजी के सभी पात्र परिस्थितियों के पिन्कार हैं और उही से उनके जीवन के उत्थान-नतन का निर्देशन होता है।^{१०१} ये पात्र बाह्य परिस्थिति के सम्मुख झुकते अवश्य हैं। किन्तु धार्मिक दृष्टि उनके चरित्रों को ऊँचा उठा देता है। इससे सैलक के मनो-वैज्ञानिक अध्ययन की विशेषता ही प्रकट होती है।^{१०२}

बर्माजी के पात्र मानव सुख दुर्बलताओं से अन्वेषित और उनपर विजय पाने वाले हैं।

उनके मुख्य पात्र अधिक धार्मिक हैं। उनकी नारी पुरुष पर आभित एवं त्याग मयी है। इसीलिए पुरुष को उसके आगे नत होना पड़ता है। पारंपार्य विद्या-प्राप्त प्रभा वही तित्तियाँ अवश्य इसका प्रभाव हैं।

उनके प्रायः सभी पात्रों की यह व्यक्तिगत विशेषता है कि बाह्य परिस्थितियों से पराजित होकर भी उनका अन्तर कभी हार नहीं मानता।^{१०३} हाँ इतना अवश्य है कि ये पात्र परिस्थिति की अहारबीबारी की सीमाओं में बिरे हैं, जहाँ से उन्हें मुक्ति की कोई राह नहीं दिखाई देती।^{१०४} मृत्यु भी इन पात्रों को बरस नहीं करती है। इसी कारण उनके चरित्रों को दुर्बल कहा जा सकता है।^{१०५}

बर्माजी की कहानियाँ के चरित्र

ये चरित्र अपनी दुर्बलता को ही जीवन का आधार मान लेते हैं। पराजय प्रपना मृत्यु की नायिका इसका एक उदाहरण है। 'काश मैं नष्ट सकता' की नायिका दूसरा उदाहरण है।

इनके चरित्र-विवाह में संसद की भी प्रधानता मिली है।^{१०६} पर इस तरह के

-
- १०० हिन्दी उपन्यास (अनन्त), पृ० ६५
 १०१ विमलेश्वर पृ० १६४
 १०२ आलोचना (२०) पृ० ५०
 १०३ हिन्दी उपन्यास, पृ० १०५
 १०४ हिन्दी उपन्यास और संपादन पृ० १२२
 १०५ प्रतिनिधि कहानियाँ पृ० ६९
 १०६ बहानी और बहानीकार पृ० १०५

चरित्र 'उद्य' के चरित्रों की तरह 'प्रतिरञ्जित' या भयवतीप्रसाद बाबपेयी के चरित्रों की तरह 'राम' न होकर सत्य के घबिक समीप है।^{१००} इसके विपरीत प्रेमचन्द्र तथा उस परम्परा के लेखकों ने यौनवृत्ति से ऊपर उठकर विवाह-बंधन को ही प्रधानता दी है। प्रायिक बंधन्य के कारण असफल प्रेम का पूर्ण चित्रण बर्माबी के 'तीन बर्षों' में पहली बार मिलता है हालांकि स्फूर्त चित्रण पहले भी कई कृतियों में हो चुके थे।^{१०१}

ऐसा लगता है कि बर्माबी को व्यावहारिक मनोविज्ञान की मर्मभरी जानकारी है।^{१०२} उन्होंने धात्र के प्रत्येक व्यक्ति को निस्सहाय, कमजोर एवं मनोमार्थों का गुलाम माना है।^{१०३} 'कायरता' का भाषक इसका उदाहरण है। 'दिव्यता' धीरे-धीरे कहानी में नारी का कथन रूप चित्रित हुआ। उन्होंने नारी को पुरानी रीतिरिवाज के बन्दन में डूबा हुआ चित्रित किया है जो हमारे समाज की एक हकीकत है। बाप एक वेग, प्रेजेन्स, एक विचित्र बनकर धीरे उत्तरदायित्व प्रादि कहानियों में धामु निकाशों का चित्रण हुआ है जो पंखों के लिए अपने प्रेम को बेचने वाली हैं। पराक्रम प्रयत्न मृत्यु की घुबनेपक्षीनेवी एम० ए० ने धामुनिक स्त्रियों के प्रति पुरुष की उभेसा और स्वायत्तता का प्रतिनिधित्व किया है।^{१०४} बर्माबी की कहानियों का एक भाग ऐसा भी है जिसमें धामुनिक सम्यता एवं डोमी बुनिया पर कसकर ध्यंग किये गये हैं।^{१०५} 'बो बकि' इसका एक उदाहरण है। अपनी कहानियों के द्वारा बर्माबी का यह संदेश है कि "धात्र मानव में अहंशक्ति जगाने की बड़ी आवश्यकता है।"^{१०६}

यशपाल

प्रेमचन्द्र के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में भी यशपाल का प्रमुख स्थान है। अपने उपन्यासों एवं कहानियों में उन्होंने इस युग के जीवन और संघर्षों का सफल चित्रण किया है।^{१०७} यशपाल ने यह भी दिखाया है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था के कारण मनुष्य के अने उदार सिद्धांत और संकल्प भी खटाई में पड़ जाते हैं और उसे बीच से मोच कर्म करने को विवश होना पड़ता है। धात्रोचकों की राय है कि समाज की इस वास्तविकता का चित्रण करने में वे प्रतिरञ्जित एकांगी हो गये हैं और उन्होंने बालबुद्ध-कर नय प्रसंगों को सामा है एवं राजनीतिक रोमांस लिखे हैं।^{१०८} धात्रोचकों का कहना

१००. प्रतिरञ्जित कहानियाँ, पृ० २७

१०१. धात्रोचका (उपन्यास धात्र), पृ० २१६

१०२. हिन्दी कहानी, पृ० १८४

१०३. नया हिन्दी साहित्य एक नूतिका पृ० २३

१०४. वही

१०५. कहानी और कहानीकार, पृ० १७४

१०६. धामुनिक साहित्य पृ० १७१

१०७. नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १७

१०८. अग्रतिमोल साहित्य की समझना पृ० २१०

है कि—यह एकांगिता इसलिए आई है कि उन्होंने जीवन की समस्त समस्याओं को 'सिस्नोदर' की समस्या के रूप में ही देखा है।¹⁴⁵ लेकिन यह कहकर उनकी रचनाओं का वास्तविक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह प्रश्न एक हीकांत है कि यज्ञपाल ने 'अधिक्रांश' इस समाज-व्यवस्था से पीड़ित लोगों का ही चित्र खींचा है जिस कारण मानव प्रकृति के मूल्यांकन में उन्हें सिस्नोदरवासी समझने का भ्रम पैदा होता है।¹⁴⁶ और यह चाहे उनका इरादा हो या नहीं, पर ऐसा भ्रम भी अस्वामाधिक नहीं। उनके 'अधिक्रांश' पात्र नकारात्मक ही हैं हालांकि 'दिव्या' का मारिच और 'मनुष्य के रूप' का बर्नासिंह इसके अपवाद हैं। यज्ञपाल का एकांगी किंतु निर्मम ध्यान ही उनकी कला का पोजिटिव (संबिधायक) पक्ष है। अपने चरित्रों के माध्यम से उनका यही कहना है कि मौजूदा समाज में ऐसा होता है—मनुष्य के विचार और कर्म में भयंकर अंधम्य प्रचलन पैदा हो गया है।¹⁴⁷ उन्होंने इसी स्थिति के खिस्ताफ बिरोह जपाना है।

यज्ञपाल के औपन्यासिक चरित्र

अपने सर्वप्रथम उपन्यास 'बाबा-कामरेड' में उनके नाटिकापी जीवन की धनु भूत पटमाओं का चित्र है। कुछ घासोचकों का यह भी कहना है कि 'बाबा' के रूप में प्रसिद्ध नाटिकापी बन्धुधर बाबाब का और हीरा के रूप में स्वयं लेखक का व्यक्तित्व झलकता है।¹⁴⁸ बाबा कामरेड में जो है, वह 'सुनीता' और 'पयेरवासी' में नहीं है। उनके दूसरे उपन्यास 'दिण्डोही' में 'पोरान' के पश्चात देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का सफल चित्रण हुआ है।¹⁴⁹ इसमें व्यक्ति, समाज राष्ट्र अन्तर्गत—सभी घासे हैं और इन्हीं के अनुसार चरित्रों और समस्याओं की विविधता भी घा भयी है।¹⁵⁰

'पार्टी-कामरेड' पर के चुन्हे से लेकर बम्बई के प्रसिद्ध नाचिक-बिरोह और नवियों-ठडकों पर बनता के बीरतापूर्ण साम्राज्यविरोधी संपर्कों का चित्रण है।

'मनुष्य के रूप' में भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति बिरोह की भावना जाग्रत करने का ही उद्देश्य है। बर्नासिंह के चरित्र में युव की परिस्थिति का अच्छा चित्रण है।

दिव्या और अमिता—ऐतिहासिक उपन्यास हैं। दिव्या घोषित भारतीय ब्रतता का प्रतीक है।¹⁵¹

१८१ यज्ञपाल और हिन्दी कथा साहित्य पृ० १४३

१८२ हिन्दी साहित्य के घराबी बचें पृ० १६६

१८३. हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार पृ० ७०

१८४. हिन्दी उपन्यास और पदार्पणवाद पृ० २०३

१८५. सामयिकी, पृ० ६८४

१८६. वही, पृ० २३३

१८७. धार्मिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि, पृ० १३३

प्रमिता में विश्वस्थाति की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

भाषर्सबाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को पहली बार यद्यपाल ने अपनी उपन्यास कला में आसा बिसे नागर्भुन, रांमेय राबव, अमृतदाय और फनीश्वरनाथ रेणु आदि सबल बना रहे हैं।^{१११}

'भूठा-सब उनके सब तक के प्रकाशित उपन्यासों में सर्वोत्कृष्ट है। विभाजन के पूर्व का लाहौर दिस्ती आर्मभर एवं सबनऊ इस कृति के घटनासबस हैं। 'भूठा-सब' के अधिकार पात्र मध्यम वर्ग के हैं और उसमें इस वर्ग का यथार्थ एवं सजीव चित्रण हुआ है। डा० रामबिनास शर्मा का कहना है कि मध्यवर्ग का चित्रण करते हुए लेखक स्वयं उस वर्ग के दृष्टिकोण से प्रभावित हो गया है।^{११२} इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें आये सभी पात्र अत्यधिक सजीव हैं और प्राणवान हैं जिनकी संख्या भी ४० के करीब है। यह लेखक की असाधारण सफलता है हालांकि इनमें 'होरी' या 'सूरदास' या 'बूँद और धनुर्' की टाई की तरह पाठक को अभिभूत कर देनेवाला कोई खरिज नहीं आ सका है।^{११३} उपन्यास के मुख्य खरिज हैं तारा, जयदेव एवं असद। फिर भी खरिजों की इस चित्रणाला में हिन्दू-कृषिवाद की चौखट^{११४} पर सिर पटक-पटककर जान दे देनेवाली 'यंती' का खरिज कितना गौरवपूर्ण है। 'भूठा-सब' देश-विभाजन और सभी तरह के परिणामों को बड़ी ईमानदारी से चिहित करता है।

डा० रामबिनास शर्मा ने यद्यपाल के नायकों की कटु आलोचना की है। उन्होंने यद्यपाल की राजनीति को भी सुनीता की परम्परा पर थिपकाई हुई कागज की एक स्लिप माना है। वे 'बिम्बा' को उनका सबसे प्रभावशाली उपन्यास मानते हैं क्योंकि उसमें राजनीति की स्लिप नहीं झकझकाती।^{११५}

यद्यपाल ने मध्यवर्ग से अपने खरिजों को लिया है। मजदूर या किसान श्रेणी से सीधा सम्पर्क न रहने के कारण उन्होंने उनके प्रति सिर्फ शैक्षिक सहायुभूति व्यक्त की है। पर उनके मनोविज्ञान समस्याओं तथा वैज्ञानिक जीवन के चित्रण का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया है।^{११६} इसलिए खरिजों के चुनाव की उनकी सीमा प्रेमचन्द की तुलना में तो बहुत अधिक संकुचित है ही नामाङ्कन, अमृतदास नायर, एवं बृन्दावन जाल वर्मा जैसे उपन्यासकारों से भी अधिक संकुचित है।

पर मध्यवर्ग की सीमा के भीतर उन्होंने बहुत से सफल खरिजों की सृष्टि की है। उनके खरिजों में पूरी सजीवता है और वे हमारे बीच के ही आवसी जैसे लगते हैं। 'याबा' 'बेसहोही' में राजवती और खल्ला और मारिय जैसे उनके

१११ आलोचना (२१), पृ० ८८

११४ हिन्दी टाइम्स, १७ मार्च, १२, पृ० २

११५ आनन्दल, अक्तूबर, १९२८, पृ० २१

११६ हिन्दी टाइम्स, १७ मार्च १२, पृ० २

११७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० ११७

११८. नया पत्र, मई, २२ (अ २ क)

धीनस्थानिक चरित्र बहुत ही सफल बन पड़े हैं। फिर भी बटनामों और परिस्थितियों पर अधिक ध्यान देने के कारण उनके चरित्र दुर्बल समझे हैं। उनमें स्वतन्त्र व्यक्ति का अभाव बीछता है और वे लेखक के हाथ की कठमुतली से बनते हैं। बटनामों द्वारा 'बेसहोही' में डा० भगवानदास खन्ना 'दिव्या' में दिव्या और 'मनुष्य के रूप में सोमा' का चरित्र-विकास होता है।^{१९९} पर इस चरित्र विकास में मनोविज्ञान की पूरी मदद नहीं मिली है। बेसहोही में राज दिव्या में दिव्या के चरित्र में जो परिवर्तन है, वे पूर्व तथा क्रमिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। और इसीलिए स्वाभाविक भी।^{२००}

उनकी कृतियों में दूढ़ (राजदंड) और सपाट (कब्र) दोनों ही तरह के चरित्र मिलते हैं। पर हमारे के मुताबिक दूढ़ चरित्रों का ही बाहुल्य है। 'बाबा कामरेड' में शैल बाबा और हरीस दूढ़ चरित्र हैं एवं मनुष्य के पति अमरनाथ सपाट चरित्र। 'बेसहोही' में राजाराम सपाट चरित्र है।^{२०१} उनके चरित्र प्रायः टाढ़प हैं। दादा, खन्ना धारि अपने-अपने बर्णन का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। शैल धार्मिक चिंतित कालेज की लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है।^{२०२} दिव्या सामन्तकालीन कुचली हुई नारी का प्रतीक है। दरभौर सामन्तों का एवं पृथुवेन बासबर्ण का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार अन्य कृतियों के पात्र भी बर्णित हैं।

चरित्र-विकास के लिए उन्होंने मनोविज्ञान के स्वाभाविक सूत्रों को पकड़ा है जिसे हम सरल और सामान्य कह सकते हैं। इसीलिए उनके मनोविज्ञान बनेत्र, अज्ञेय और अज्ञेय बोधी से मिलन किस्म का है।^{२०३}

विविधता ही उनके चरित्र-चित्रण की विशेषता है। अपनी कल्पना की बारीकियों से उन्होंने अपने विविध पात्रों की माननामों को धारमसात किया है। इसीलिए वे 'मीठक' के अर्थों में बहुरा की प्राप्ति एवं अठन्नी पर अपना अरि केचने वाली 'फोफिता' की माया भी बोल सकते हैं।^{२०४} इसके साथ ही उनके चरित्रों में धार्मिक जीवन की गहराई भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। श्रीकृष्णदास ने अपने चरित्रों को समाजबारी मर्त्य के आधार पर गढ़ा है इसलिए उनके और प्रेमचन्द के मर्त्य में काफी अंतर है।^{२०५}

उनके उपन्यास 'बेसहोही' में 'भोदान' के बार पहली बार देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्धित व्यक्तियों का सफल चित्रण है। पर डा० रामविनायक शर्मा धारि प्रगतिशील भावों के ने इसके चरित्रों को सम्बन्धित जीवन

१९९. आलोचना (१३), पृ० २०६

२००. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ३६०

२०१. अज्ञेय पृ० २८८

२०२. हिन्दी उपन्यास पृ० २६३

२०३. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २७५

२०४. आनन्द और हिन्दी कथा साहित्य पृ० १३

२०५. अज्ञेय से एक अंतर १९३७

का यौगार्जित चित्र मानकर घसफस बताया है।^{१०६} डा० घर्मा ने इसी सिद्धिमें मैं कहा है कि उनके सभी नायक आत्मपीड़ा के चिकार हैं और नारी की करुणा को उकसाते हैं। डा० खन्ना और भाबरिया ऐसे ही चरित्र हैं।^{१०७} 'मनुष्य के रूप' के पात्रों का कमबख्त मानसिक विकास प्रबन्ध दिखाया गया है।^{१०८} पर डा० घर्मा की राय में ये पात्र अपने में वृत्तीवादी व्यक्तिचार को चुनौती देने की दृढ़ता नहीं रखते।^{१०९} इसीलिए प्रगतिशील साहित्य में इंसान की चिन्मयी पर नये डंग से सोचने-विचारने के दृष्टि कोण का उनमें प्रभाव है। साथ ही उनके सभी मुख्य चरित्रों का अंत भी मीत में होता है जो उनकी उलझनों को स्पष्ट करने वाला है।^{११०}

मेजर स्वयं भी अपने तीन चार प्रमुख पात्रों में एक बन जाता है। मारिया यद्यपाल के निकट बीसता है। कबिबर मैमितीघरम गुप्त ने तो मारिया को यद्यपाल ही समझ लिया है।^{१११}

उनके निकट का बुरा पात्र है हरीश जो नास्तिकारी होने के साथ ही मनुष्य भी है। 'सुनीता' के हरिप्रसन्न की तरह वह भी सैन को बिना कपड़ों के देखना चाहता है। बाबू में हरिप्रसन्न की पृथ मुद्रा का बर्णन तो बर्नेत्र ने स्वयं किया है पर हरीश अपना बर्णन घाप करता है जो अधिक मनोवैज्ञानिक है।^{११२} ठिठ भी स्त्री-मुख्य के सम्बन्धों के चित्रण में ने एक बिल्कुल (मोरबिड) मनोवृत्ति का परिचय देते हैं।^{११३}

उनकी रचनाओं में भी एक पत्नी एक पति, एक मित्र का सनातन त्रिकोण बार-बार उभरकर आता है। घाव के बीचम में यह त्रिकोण प्रबन्ध ही है पर घटना ही नहीं है, और भी बहुत-सी बातें हैं।^१

यद्यपाल के नारी-चरित्र

नारी के सम्बन्ध में यद्यपाल का दृष्टिकोण कहीं तो मार्क्सवादी है और कहीं उलझ हुआ। प्रगतिशील साहित्य नारी का स्वाधीनता का समर्थक है।^{११४} मार्क्सवाद स्वच्छ विकास में स्वच्छ बस पीने का' समर्थक है। पर यद्यपाल यद्यार्थ का चित्र खींचते हुए कमी-कमी और धरतीसता की धोर झुक जाते हैं, 'दादा कामरेड' की सैन

२०६ संस्कृति और साहित्य, पृ० २६१

२०७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० १२

२०८ हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० २१४

२०९ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० १२१

२१० यद्यपाल और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० १२६

२११ मेजर से एक भेंट में यद्यपाल द्वारा दी गई सूचना, १९२७

२१२ सा० हि० क० सा० और मनो० पृ० २७३

२१३ आलोचना (२४) सम्पादकीय

२१४ संस्कृति और साहित्य पृ० ३०४

२१५ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ पृ० १२२

में पढ़ती बार उन्होंने गारी के प्रति भावनों की स्थापना की। सैन विचारों एवं कर्म से स्वतंत्र तथा पुरुष के कर्मे से कर्मा मिनाकर स्वयं करीबानी गारी है। पर मारठीय धारणों के समुहार उसके जीवन में बहुत-सी खटकने वाली बातें मौजूद हैं। पर 'बेसहोही' में गारी के चित्रण में—जम्हा राज ममुना, दुमगां, नगिठ में—के मावर्त बाद से विमुख हो गये। वहाँ गारी पुरुष की भोप्या है—पुरुष के साथ मिलकर संघर्ष करनेवाली नहीं।^{१११} 'रिष्या' में गारी-चित्रण में के अधिक सफल है—उसका स्वयं और बुबल रूप दिखाने में सफल हुए। 'पार्टी कामरेड' में उन्हें इससे भी अधिक सफलता मिली। पीठा का चरित्र उनके सभी गारी-पार्श्वों की अपेक्षा अधिक निखरा हुआ है। मनुष्य के रूप की सोमा और प्रयतिशील गारी के रूप में मनोरमा के चित्रण में भी के सफल रहे।

फिर भी उनके गारी-पार्श्व पुरुष पार्श्वों से अधिक स्वयं है। 'रिष्या' में रिष्या और मनुष्य के रूप में सोमा के बिना उपग्याह बन भी नहीं सकता। इस सम्बन्ध में डा० रामबिनास वर्मा का कहना है कि वे कड़िबाद से लड़ने वाली पुढ़ गारी का चरित्र अपने कथा-साहित्य में कहीं भी नहीं के गये हैं।^{११२} चूंकि उनका दृष्टिकोण सामंती पूंजीवारी प्रोत्साहक है।^{११३}

यद्यपि के गारी-चरित्रों की तुलना बेखर की चरित्रों से की गई है। समाज के बन्धनों में खकड़ी, घरीर और मनोरमा से हीन गारी में के प्रारम्भिकता जगना चाहते हैं। बेखर का भी लक्ष्य है "यदि तुम भावदायक होना चाहती हो तो अपनी धीनित परिधियों को तोड़कर बाहर निकलो और बगला को प्रभावित करने का प्रयत्न करो।"^{११४}

फहानियों में चरित्र-विनास

यद्यपि के अपनी कहानियों में मुख्यतः सांख्यिक संघर्ष और वर्ण-भेदना के प्रयत्न से चरित्रों की सृष्टि की है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व में संघर्ष और खिरोह की भावना व्याप्त है। इसी कारणों पर के चरित्र यथार्थवादी भी हैं।^{११५} उन्होंने इसे स्पष्ट किया है कि धार की हलचलों के मूल में धर्म है सम्भता धर्म-प्रधान है और समाप्तार्थ भी धार्मिक है। समाज क्यों के बंटा है—एक ओर धीनित दूसरी ओर धीनक और पूंजीवति है।^{११६} बीच में सम्भर्ष है जिसमें धर्मक स्तर है और इस स्तर भेद के कारण उसकी समाप्तार्थ भी भिन्न-भिन्न है। कर्म फल, दुःख संघ्याती, गई बुनिया को बुनिया ४२० धर्मियण, काला घादमी रोटी का मोल धारपी का बचना

११६ आलोचना (११) पृ० २०६

११७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ पृ० ११६

११८ साहित्य वर्तन, पृ० २४६ २०

११९ साहित्यिक पृ० २८६

१२० प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १०२

घाबि घनेक कहानियां घाबिक समस्याओं पर आधारित हैं। 'कर्म-फल' में घुहबिहीन मिलनमों का चरित्र विकास दिखाया गया है। यद्यपि ने इस सम्बन्ध में घनेय की घामोपमाओं का उत्तर देते हुए कहा है कि 'घबि मेरे पात्र बसती-कपटी घाबिक-राजनीतिक उद्योगों हैं तो मैं समझता हू कि मैं घपने उद्देश्य में सफल हुआ हू।'^{१११} यद्यपि की कहानियों में मानव की दिव्य धारणा के वर्णन होते हैं। 'हलाम का टुकड़ा' बँसी ही एक सफल कहानी है। यह कहानी 'हूमन से अधिक 'दिवाहन' है। यह लेखक की प्रतिभा का सबूत है।'^{११२}

शांतिप्रिय द्विषी^{११३} ने यद्यपि को चरित्रांकन की दृष्टि से प्रेमचन्द की ठिरो-ठिठ प्रतिभा की उद्यमसक्ति माना है।

वे प्रायः दो विरोधी चरित्रों या परिस्थितियों को उपस्थितकर अपनी कहानियों में विचित्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ईश के बकरे की तरह पहले तो घपने पात्रों को खूब खिंसाकर बह मोटा बनाते हैं। फिर, समय पर वे उसे हलाम कर डालते हैं।'^{११४} वे अपनी कहानियों में वैयक्तिक स्पर्श देना भी नहीं भुसते।'^{११५} 'आनदान' (कहानी संग्रह) की 'हूरम' नामक कहानी उसका एक उदाहरण है। प्रेमचन्दोत्तर कहानियों में यह वैयक्तिक स्पर्श प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

यद्यपि ने अपनी सामाजिक माध्यताओं को बदलाओं के रूप में चित्रितकर वर्तमान जीवन-सम्बन्ध और परम्परा से उसके समर्थ का प्रच्छा चित्रण किया है। इसका कारण स्वयं उनका जीवन और जीवन का अनुभव है जो उन्हें कापिस से प्रारम्भ कर बम और तमबा लेकर ससन्न जाति के प्रयत्नों में जान की बाजी मया देने तक से गया।'^{११६}

यौन-संघर्षों की भरतीलता के बारे में भी उन्होंने सफाई दी है। उनका कहना है कि 'पाठक के दिमाग को 'कैपचर' करना और समाज की विचित्रियों को 'उधारने' के उद्देश्य से ही ऐसे प्रसंग घाबे हैं।

घाघाय नन्दपुसारे बाबपेयी ने घनेय और यद्यपि के चरित्रों की तुलना की है। उनका कहना है कि दोनों में घपनी-घपनी लूटियां हैं। घनेय के चरित्र समाज के उच्च रहन-सहन एवं बौद्धिक उत्कर्ष को दिखाते हैं तथा यद्यपि के चरित्र समाज के वैयक्तिक पर प्रहार करते हैं।'^{११७}

१२१ हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार पृ० ७१

१२२ विचार-प्रवाह, पृ० १०६

१२३ सामयिणी पृ २८३

१२४ यद्यपि और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० १६०

१२५ हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार, पृ० ६६

१२६ वही, पृ० ७०

१२७ गया साहित्य लघु प्रश्न पृ० १८१

उपेन्द्रनाथ 'घरक'

उपेन्द्रनाथ 'घरक' प्रेमचन्द-परम्परा के कथाकार हैं। विषय दृष्टिकोण भाषा सीसी आदि सभी दृष्टियों से उन्हें प्रेमचन्द-संस्थान का ही कथाकार माना जायगा।^{१००} वे यथार्थवादी कथाकार हैं। इसीलिए उनके चरित्र इसी धारा से भाये हैं। उनके सभी पात्र साधारण तथा मध्यवर्ग से मिले गये हैं।

उनके उपन्यासों के पात्रों के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष एवं विकास की समस्या है।^{१०१} उनके नारी एवं पुरुष-पात्रों के विकास में एकसमता एवं एकरसता दिखाई पड़ती है। पात्र के मध्यवर्गीय व्यक्ति की भाग्यिक एवं बीज कृताघों को उनके पात्रों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।^{१०२} पात्र के समाज में सार्वनिष्ठ व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवन-मापन करना बड़ा कठिन है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के रीढ़हीन दुर्बल और हेय जीवन उसकी छोटी-बड़ी बटनाएँ तथा सीमित संकुचित विचारों को भी उनकी कृतियों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।^{१०३}

घरक ने युव-मानव की नैतिकता और मानवता को समारकर देखते हुए बड़ी सतर्कता से अपने चरित्रों को पढ़ा है। वे चरित्र साहित्य के माध्यम से युव और जीवन की अभिव्यक्ति हैं।^{१०४} घरक की प्रतिक्रिया सार्वक लीखी यथार्थ और जनवादी है। 'मर्म राख' में उन्होंने आदर्शोन्मुख जीवन की भी झलक दी है। वे सिर्फ समाज के कड़वाही संस्कारों पर ही प्रहार नहीं करते बल्कि नये समाज के निर्माण की ओर संकेत करते हैं।^{१०५} इसीलिए 'मर्म राख' के पाठकों को ऐसा भी लग सकता है कि उसमें उनके अपने जीवन के प्रतिबिम्ब हैं।^{१०६} उनके चरित्र रोमानी होते हुए भी जन-संपर्क एवं नये युव की स्थापना में विश्वास करते हैं।^{१०७} 'बादली रात और अन्नगर' के चरित्र विश्वास और साहस के साथ मानव की 'अभिनव चरित्र' के गीत गाते हैं। 'मर्म राख' का एक चरित्र कवि जाठक एक दूसरे पात्र जगमोहन से कहता है — "बर्तमान संघर्ष में वह अपनी सीढ़ियोंवाला कृति छोड़ चुका है। मर्म राख में छोपी हुई बिनगारी की तरह वह अनायास जमक उठेगा।"^{१०८} एक समय का पत्र बी० ए०

२२८. दोषाब पृ ६१

२२९. नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १९

२३०. वही पृ० १२२

२३१. हिन्दी उपन्यास (बबल), पृ ११७

२३२. कथावाचक की कथा बराही, पृ० ७३

२३३. मर्म राख विज्ञापन

२३४. वही

२३५. अन्नगर की बेटी पृ० ४२

बादली रात और अन्नगर, पृ० ६८

२३६. मर्म राख पृ० ६३

पाठ करते ही मुझको के लिए मौकरी के बरबाबे चुन जाते थे। प्रायः ही ए० को बक-
 षट् मेट्रिक से भी अधिक नहीं।^{१००} सब सदियों की बरसाती रात ही दुनिया है और
 भीमे से कमजोर-सा है यह जीवन।^{१०१} लेकिन प्राया यही है कि मुझ होमी पुरज
 निकलेया और यह कमजोर सुतेगा।^{१०२} इसीलिए अपमोहन कहता है कि 'बिना इस
 समाज का छाँटा बदले हम जैसों के लिए कुछ नहीं हो सकता।^{१०३} इसी उम्मीद पर
 ऐसे जीवनान भी रहे हैं जिनकी 'आन फलत पर रोज की है जिनके दिनों में 'तड़प'
 है 'पुकार मापुस' है।^{१०४} इस देश में ऐसे हजारों-आखों बेकार युवक हैं जिन्हें जीवन में
 प्रवेश विचार पड़ता है, जो समझते हैं कि यह सब उनकी 'क्रिस्तल सराब होने के
 कारण है। प्रायः इतना सख्त कम्पीटीशन है कि बात सकेर कर लने के बाद भी
 सफलता मिसनी मुश्किल। कासेज में जिन्हें उदीयमान कवि कथाकार, नाटककार
 हैला, एक बार कम्पीटीशन में बैठने के बाद कविता-कहानी लिखना तो बुर रहा,
 पढ़ने की बात भी वे नहीं सोचते।^{१०५}

शिवदानसिंह चौहान^{१०६} का मत है कि 'गर्म राख' में लेखक ने मनुष्य की कुटि
 लता शूद्रता स्वार्थलोकुपता एवं कामुकता का ही चित्रण किया है। केवल हरीश
 बुरी तथा एक हृदय तक कवि बसंत एवं कमुषा इसके प्रपचार हैं। इस तरह 'गर्म राख'
 के किसी भी पात्र में घपना व्यक्तित्व नहीं है। बार, दूसरे पात्रों में मनुष्यता पाने की
 बात तो छोड़ बीबिए पर आम्बोलनकारी हरीश भी मात्र आम्बोलनकारी ही है।
 सरया के प्रेम को ठुकराकर अपमोहन भी ऐसा ही निर्बैयक्तिक आम्बोलनकारी बन
 जाता है एवं मानवमात्र के प्रति प्रेम का पाठ हरीश से सीखकर संतुष्ट हो जाता
 है।^{१०७}

धरक के उपन्यास 'गिरजी वीबारें' में धार्मिक विषमता तथा प्रेम-सम्बन्धी
 कूटनी की समस्याएं चेतन के व्यक्तित्व को आधार बनाकर उठायी गयी हैं। सब कुछ
 होते हुए भी चेतन की बेच-बेचना इतनी कमरी हुई है कि वह एक मनोवैज्ञानिक
 'केस'^{१०८} हो जाता है। चरित्र-विकास की दिशा में चेतन मध्यवर्गीय चारित्रिक गुणों
 की बीबारों को छोड़कर घागे जाता चाहता है।^{१०९}

२३७ वही पृ० ११६

२३८ वही पृ० १७४

२३९ वही, पृ० १७६

२४० वही

२४१ वही

२४२, गर्म राख, पृ० ५२८

२४३ साहित्यमागसीलन, पृ० २३९ ४०

२४४ वही

२४५, धालीबना (१३), पृ० १३०

२४६ हिन्दी उपन्यास, पृ० १२०

उपेन्द्रनाथ 'अधक'

उपेन्द्रनाथ 'अधक' प्रेमचन्द-परम्परा के कथाकार हैं। विषय, दृष्टिकोण भाषा सीमा आदि सभी दृष्टियों से उन्हें प्रेमचन्द-संस्थान का ही कथाकार माना जायगा।^{१००} वे मध्यावधि कथाकार हैं, इसीलिए उनके चरित्र इसी समाज से घाबे हैं। उनके सभी पात्र साधारण तथा मध्यवर्ग से लिये गये हैं।

उनके उपन्यासों के पात्रों के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के स्वयं एवं विकास की समस्या है।^{१०१} उनके नारी एवं पुरुष-पात्रों के विकास में एकसमता एवं एकरसता दिखाई पड़ती है। पात्र के मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक एवं यौग कृष्णों को उनके पात्रों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।^{१०२} पात्र के समाज में सशक्ति व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करना बड़ा कठिन है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के रीढ़हीन कुर्बान और हेम जीवन उसकी छोटी-बड़ी बटनाएँ तथा सीमित संकुचित विचारों को भी उनकी कृतियों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।^{१०३}

अधक ने युव-मानव की नैतिकता और मानवता को उभारकर देखते हुए बड़ी सतर्कता से अपने चरित्रों को बड़ा है। वे चरित्र साहित्य के माध्यम से युव और जीवन की अभिव्यक्ति हैं।^{१०४} अधक की प्रतिक्रिया, सार्वक सीखी मध्यावधि और जनवादी है। 'गर्म रात' में उन्होंने आदर्शमूलक जीवन की भी झलक दी है। वे सिर्फ समाज के कड़वाही संस्कारों पर ही प्रहार नहीं करते बल्कि नये समाज के निर्माण की ओर संकेत करते हैं।^{१०५} इसीलिए 'गर्म रात' के पाठकों को ऐसा भी लय सकता है कि उसमें उनके अपने जीवन के प्रतिबिम्ब हैं।^{१०६} उनके चरित्र रोमानी होते हुए भी जन-स्वयं एवं नये युग की स्थापना में बिदबास करते हैं।^{१०७} 'आदमी रात और अजमेर' के चरित्र विस्वास और साहस के साथ मानव की अभिनव शक्ति के बीज पाते हैं। 'गर्म रात' का एक चरित्र कवि जातक एक बूढ़े पात्र अपमोहन से कहता है — "वर्तमान संवर्ष में वह अपनी सौदनोंवालाक कृति को चुका है। गर्म रात में छोपी हुई बिनवादी की तरह वह अनायास जमक उठया।"^{१०८} एक समय या जब बी० ए०

२२८. दोआब पृ० १३

२२९. नया साहित्य नये प्रबल, पृ० १९

२३०. बही पृ० १५३

२३१. हिन्दी उपन्यास (जबन), पृ० ११७

२३२. अनायास अपनी कम पराधी पृ० ७३

२३३. गर्म रात विज्ञापन

२३४. बही

२३५. अजमेर की बेटी पृ० ४३

आदमी रात और अजमेर, पृ० १८

२३६. गर्म रात पृ० ६३

पास करते ही मुबकों के लिए नीकरी के दरवाजे खुल जाते थे । पात्र बी० ए० की बक-
 प्रत मैट्रिक से भी प्रथिक नहीं।^{२३७} अरु सबियों की बरसाती रात ही दुनिया है और
 मीथे से कम्बल-सा है यह जीवन।^{२३८} लेकिन भाषा यही है कि सुबह होगी सूरज
 निकसेगा और यह कम्बल सूखेगा।^{२३९} इसीलिए अपमोहन कहुता है कि 'बिना इस
 समाज का बाँधा बरसे हम अँसों के लिए कुछ नहीं हो सकता।^{२४०} इसी उम्मीद पर
 ऐसे शीशवान जी रहे हैं जिनकी 'जान फकत बंद रोज की है, जिनके दिनों में 'तड़प'
 है, 'पुकार मापूस' है।'^{२४१} इस दौर में ऐसे हजारों-नासों बेकार युवक हैं जिन्हें जीवन में
 प्रवेश दिखाई पड़ता है जो समझते हैं कि यह सब उनकी 'किस्मत खराब होने के
 कारण है। भाव इतना सख्त 'कम्पीटीशन' है कि बाब सके' कर लेने के बाद भी
 सफलता मिलनी मुश्किल। कालेज में जिन्हें उदीयमान कवि कथाकार नाटककार
 देखा, एक बार कम्पीटीशन में बैठने के बाद कविता-कहानी मिलना तो दूर रहा
 पढ़ने की बात भी ने नहीं छोड़ते।^{२४२}

विश्वदानसिंह जीहान^{२४३} का मत है कि 'गर्म राख' में लेखक ने मनुष्य की कुटि
 लता शुद्धता स्वार्थसोक्षुपता एवं कामुकता का ही चित्रण किया है। केवल हरीश
 बुरो तथा एक हर तरु कवि बसंत एवं कमुषा इसके प्रपचार हैं। इस तरह 'गर्म राख'
 के किसी भी पात्र में अपना व्यक्तित्व नहीं है। अरु दूसरे पात्रों में मनुष्यता पाने की
 बात तो छोड़ दीखिए पर धाम्नीसतनकारी हरीश भी मात्र धाम्नीसतनकारी ही है।
 अरुवा के प्रेम को ठुकराकर अपमोहन भी ऐसा ही निर्ब्यक्तिक धाम्नीसतनकारी बन
 जाता है एवं मामकमात्र के प्रति प्रेम का पाठ हरीश से सीखकर संतुष्ट हो जाता
 है।^{२४४}

अरु के उन्मत्त 'पिरली दीबारें' में प्रायिक विषमता तथा प्रेम-सम्बन्धी
 कुंठा की समस्याएं जेतन के व्यक्तित्व को आधार बनाकर उठायी गयी हैं। सब कुछ
 होते हुए भी जेतन को सेक्स-जेटना इतनी उभरी हुई है कि वह एक मनोवैज्ञानिक
 'केस'^{२४५} हो जाता है। चरित्र-विकास की दृष्टि में जेतन मध्यवर्गीय पारिविक गुणों
 की दीबारों को तोड़कर घाने जाना चाहता है।^{२४६}

२३७ वही पृ० ११९

२३८ वही पृ० १७४

२३९ वही, पृ० १७६

२४० वही

२४१ वही

२४२ गर्म राख पृ० १२८

२४३ साहित्यानुधीतन, पृ० २३९ ४०

२४४ वही

२४५ धाम्नीसतना (१३), पृ० १३७

२४६ हिन्दी उन्मत्त, पृ० १२०

'सितारों के बेल' में समाज के सीमित जीवन का चित्रण है। साथ ही सदा और बंसीलाल के चरित्र-चित्रण द्वारा एक पौराणिक धार्षिक की प्रमाणनीय प्रस्थापना तथा काल्पनिक सिद्ध करने की शिष्टा की गयी है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा एक मनोवैज्ञानिक संरचना पर आधारित है। उसमें जो धारण्यें और अद्भुत हैं उसे क्रायड के एडिपस प्रसिद्धि के सिद्धान्तों के आधार पर ही समझ जा सकता है।^{२४०} बंसीलाल की उपस्थिति जब डा० भद्रतराम द्वारा सदा की प्राप्ति में बाधा बनती है तो बंसीलाल को बिय दे दिया जाता है।^{२४१} इस कथ को भी प्राथमिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर समझ जा सकता है।

परक के एक अन्य उपन्यास 'बड़ी-बड़ी घाँसें' की मूलभूत विषयवस्तुओं को प्रतीकार करते हुए भी लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसे 'संनस्त पात्रों की जटलाहीन कथा' माना है।^{२४२} इसमें लक्ष्मीकांत ने पात्रों को प्रत्यक्ष नियंत्रित और अनुसंधित रखा है, जिस कारण उनका चरित्र विकास सब-सा गया है। पात्रों को 'डिप्लॉमेटिक' कहा जा सकता है चितका प्रपत्ता परित्यक्त है ही नहीं। इसीलिए कोई भी पात्र अपनी स्वभाविक मन स्थिति द्वारा परिभाषित नहीं है। उपन्यास का मायक संकीर्ण बाकी रामतीर्थ या देवाजी की बर्मपत्नी आदि सभी विक्षिप्त या धर्मविक्षिप्त ही समझे हैं। कुछ पात्र तो बिस्कुल महत्त्वहीन हैं जो केवल की तरह पैदा होते और भिन्न होते हैं।^{२४३}

'पत्थर घन पत्थर' में पहली बार निम्नवर्ग के एक पात्र को नायक बनाकर समाज में सदायै जाने वालों की निरीहता और बेबसी का चित्रण किया गया है। गिरती बिबारे की बेटन की मां माहराम मन्नी बेटन 'गर्म राख' की सत्याजी बड़ी-बड़ी घाँसें की बाबी और गरीब ऐसे ही पात्र हैं। 'पत्थर घन पत्थर' का इसलरीन भी ऐसा ही एक प्रमत्त पात्र है। इसलरीन की सहायकता में वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति हमारे मन में विद्रोह की भावना प्रपत्ती है। इसके घाँसें और घाप हमारे पास पवित्र बाती के रूप में धाते हैं।^{२४४} उपन्यास में मुझर पात्रों के प्रभावना कुछ मूक पात्र (ममू, ईदू, बोड़ा और रास्ता) भी हैं चितका प्रपत्ता प्रपत्त प्रसिद्ध और महत्त्व है।

परक के पात्र साधारण लोग हैं। उनकी कृतियों में धर्मती मुय के नायकों के समाज कोई बला-बलावा सुबह और धार्षिक पात्र नहीं है। उनके चरित्रों का कोई निश्चित विकास भी नहीं है क्योंकि ये पात्र मध्यवर्ग ही धाते हैं।^{२४५}

थैरवप्रसाद गुप्त ने परक को निम्न मध्यवर्ग की आधार बनाकर अपनी

२४० आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ २४

२४८ वही

२४९ आत्मोचना (१७), पृ ११०

२५० वही, पृ० ११२

२५१ पत्थर घन पत्थर, पृ० २९

२५२ वही

रचनाएं करनेवाला सबसे अधिक 'एकाग्र' साहित्यकार माना है।^{१११} प्रेमचन्द के ऐसे ही पात्रों से उनकी तुलना करते हुए उन्होंने अरक के चरित्रों की यथार्थता की प्रशंसा की है।^{११२} एवं उन्हें प्रेमचन्द के चरित्रों से अधिक विकसित माना है। किंतु, मध्यवर्ग की ऐतिहासिक वृत्तमूल यकीनी के कारण यह भी एक सत्य है कि अरक के पात्र कोई निर्माण नहीं कर पाते; बल्कि कहना तो यही चाहिए कि उनमें स्वतंत्र निर्माण की शक्ति का पूर्ण अभाव है।^{११३}

अरक की कहानियों में चरित्र-विकास

अरक के कथा-चरित्र अक्षय सीमित हैं, परन्तु उनमें विविधता है। वे हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके चरित्र साधारण और प्रतिनिधि—बो धर्मियों में बटि जा सकते हैं। साधारण सर्वमुक्त परिचित और व्यापक चरित्रों का रहस्योद्घाटनकर अरक पाठकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।^{११४} 'कासे साहब का रिश्ता बाता 'बपूसे' का हुस्से 'बाबी का बाकर 'तीन ली चौबीस' का हैबर और 'उबास' का बंदन इसके अमर उदाहरण हैं। इनका चरित्र-चित्रण अरक ने हमारा चरित्र चित्रण किया है।

उनके प्रतिनिधि चरित्र विमुख यथार्थवादी परम्परा में बने हैं। कुछ विघटित मनोवैज्ञानिक स्थितियों और भावों के आचार पर इनकी सृष्टि होने के कारण उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र न होकर प्रतिनिधि या टाइप हो गया है।^{११५} इन चरित्रों में मन-स्थितिगत विशेषता की मुख्यता है और वे निरपेक्ष से अधिक सामेलिक हैं।^{११६} 'पिचरा' की घाति 'पत्नीघट' के लाना साहब 'अंकुर' की सेंकरी 'उबास' का बंदन 'नामूर' का सुरभीत और ईस्वर बंजन का पोबा' का बुद्धा आदि हमारे जीवन-दृश्य के प्रतिनिधि अधिक और चरित्र कम हैं। इनके चरित्र-विकास का सबसे बड़ा कीलक चरित्रों का रहस्योद्घाटन एवं उनकी सौमार्थों—कूटियों पर कटु व्यंग्य करना ही है।^{११७} इनकी कहानियों में चरित्र विकास काफ़ी स्वल्प और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। अरक की एक कहानी 'पत्नीघट' इसका एक उदाहरण है।^{११८} अरक ने अपने पाठकों एवं आलोचकों की इस बात के लिए धिक्कारती की है कि वे उनकी कहानियों को समझ

२२३ वही

२२४ वही पृ० २२

२२५ आलोचना (२४), पृ० ६

२२६ सिल्पचित्रि, पृ० २८०

२२७ प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १०६

२२८. शोभा पृ० ६२

२२९. वही

२३० सिल्पचित्रि, पृ० २८३

महीं पाते।^{१११} उन्होंने विभाजन से संबंधित अपनी कुछ कहानियों में एक बात डरो अपनी प्रकृति है एक नया वृत्तिकीय पैस किया है, जैसे 'टिबलसैंड'। परक की एक प्रसिद्ध कहानी 'बच्चे' में एक 'ग्युरोटिक कैरेक्टर' का चरित्र विकास दिखाया गया है।^{११२} 'कहानी लेखिका और बेहसम के सात पुत्र' भी उनकी बड़ी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानी है।^{११३} परक के एक दूसरे कहानी-संग्रह 'पक्ष' की 'ठहुरा' 'एम्बेस्सर', 'टोपिया और डाक्टर' 'बेबसी' आदि कहानियों में मनुष्य-चरित्र की मजबूतियों का बड़ा ही मध्य चित्रण है।

परक ने नगरों और सहरों का भी चरित्र-विकास दिखाया है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में लाहौर का धार्मिक सुन्दर चित्रण हुआ है।^{११४} लेखक 'भो होगरी' ने अपनी एक कहानी में अमरीका के व्यक्तियों का चित्रण किया है। इस कहानी में उन नगरों की चारित्रिक विशेषता का वर्णन है।^{११५} इसी तरह डिक्सेन्स वास्कर जोसा और बिक्टर ह्युगो आदि लेखकों ने पेरिस के विभिन्न स्थानों का अपनी कृतियों में विस्तार वर्णन किया है। हमारे यहां भी रबीन्द्र नरथ रतननाथ सरस्वत आदि ने कलकत्ता और लखनऊ का सजीव व्यक्तित्व संकल्पित किया है। लाहौर नगर के चरित्र-विकास का संकलन परक ने भी एक नये प्रकार की व्यक्तित्व-स्थापना या मानवीकरण का प्रयास किया है।^{११६}

प्रेमचन्द ने अपनी कृतियों में भारतीय जन-जीवन के विभिन्न वर्गों के प्रति निरि चरित्र हमारे सामने उपस्थित किये^{११७} किन्तु उनके पात्र निरुत्सुक मटकने वाले नहीं हैं। जीवन भर वे अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से जुड़े हैं। उनकी सफलता के वर्ण में भी समाज के इसारे छिपे रहते हैं।^{११८} निरामा भी अपने रोजावियों में किसी भी भीतिकवासी कलाकार से भाने बड़े ही सते हैं।^{११९} प्रेमचन्द के बाद उनकी परम्परा के कलाकार धरक और यशपाल जैसे इसाचन्द्र और उपन्यासकार वर्मा आदि ने यथार्थ का सहाय ही प्रयत्न लिया^{१२०} पर उनका यथार्थ प्रेमचन्द रबीन्द्र और नरथ के यथार्थ से भिन्न किस्म का है।^{१२१} उनकी रचनाओं में कृत्रिम बीडकता

१११ कहानी लेखिका और बेहसम के सात पुत्र, पृ० ११

११२ वही, पृ० २५

११३ वही, पृ० ३५

११४ ओ बारा

११५ आलोचना के मात पृ० १७०

११६ वही

११७ संस्कृति और साहित्य पृ० ६५

११८ उपन्यास के विचार, पृ० २५

११९ उपन्यास और लोक-जीवन, भूमिका

१२० उपन्यास के विचार, पृ० १३

१२१ उपन्यास और लोक-जीवन पृ० १५

या मनोबैज्ञानिकता का उपक्रम और कुत्रिम संघर्ष का रूपक भी रचा गया-सा हीचता है।^{२७२} इसीलिए वास्तविक जीवन का उनका चित्रण भी अचिन्तायुक्त विद्वृत एकांगी और घिसत बर्तों का होने के कारण विश्ववर्नीत नहीं हो पाया है। इस मन्मीर स्थिति में हमारे आलोचकों को किसी सपन्यास में यत्र-तत्र घाये सजीव एवं यथार्थ चित्रों से ही संतोष करना पड़ता है।^{२७३}

२७२ आशयन के विचार, पृ० १५

२७३ साहित्यानुशीलन, पृ० २५१

पाँचवाँ अध्याय नवीन चारित्रिक स्थापनाएँ

आज बहुत-से लोग इस बात से चिन्तित हैं कि मानव-तत्त्व का संशोधन हो गया है और मानव-व्यक्तित्व सामाजिक और व्यक्तिगत दो टुकड़ों में बँट गया है।^१ इसी कारण आज का उपन्यास सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाता। विश्व के पूरे समकालीन उपन्यास का स्वर पिछली महान कृतियों की तुलना में असंतोषजनक है। अमेरीका के 'बेस्ट सेलर' उपन्यासों और स्टाब्लिन-पुरस्कार-प्राप्त उपन्यासों का भी यही हाल है। हमें कि समाजवादी निर्माण में पायी सफलताओं के कारण सोवियत संघ की जनता यह प्रबन्ध समझती है कि बीचन उपन्यास की तरह है और उपन्यास बीचन की तरह है।^२ उनकी यह समझ समाजवादी व्यवस्था में विश्वास और उत्तरोत्तर मिली सफलताओं के कारण है। किन्तु इसके विपरीत अह्निष्ठ प्रतिष्ठिता की विन्मयी बिताने वाले पूँजीवादी जगत के लेखक यह सोचने को मजबूर हैं कि कल उनका एवं उनके पात्रों का क्या होगा। मुठ और वलुबम के द्वारा महाभारत के चतुरों के बीच यह अपने उपन्यास की बात क्यों सोचें? सोवियत क्रांति के ईशिया एहरमबर्ग ने अपनी पुस्तक 'द राइट टर एंड द्रिज काण्ट' में अपने यहाँ के बरतते समाज बदलती मार्गदर्श, प्रथम पंच-वर्षीय योजना काम के मुकाबले आज के युवा स्त्री-पुरुषों के विकसित प्रेम भादि के संबंध में बिस्व रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं,^३ किन्तु यही सारी बातें भारत पर भी लागू नहीं होतीं। मुठ के बाद का भारत आजाद और जनतांत्रिक भारत है। पुरो पीम मध्य या दिम्नबर्ग की भाँति हम में चारित्रिक अराजकता अनास्था या व्यक्तित्व का निखराव आ गया है, यह कहना सर्वथा सत्य है।^४ हमारी सांस्कृतिक जड़ें उखड़ी नहीं और भी गहरी बैठ रही हैं। उसके भीतर का जनवादी और लोक-परक तत्त्व लगे बातावरण में प्रबन्ध रूप से उठ रहा है। ऐसी स्थिति में समाजवादी साहित्य की

१ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २३१

२ वही पृ० ६

३ बी राइबर एंड द्रिज काण्ट पृ० ३६

४ वही पृ० ४

५ वही पृ० २

६ आलोचना (क) पृ० ८

७ प्रबन्ध अरमल, अरवरी ७, १९३६, पृ० ४३

सृष्टि का, चाहे उसमें कितना भी प्रसाधारण तरह या अभिन्न टैकनीक क्यों न हो कोई मोक्षित्य नहीं।' ऐसा साहित्य उच्च कोटि का भी नहीं माना जा सकता क्योंकि वह हमें वास्तविकता से संघर्ष करने और उसे अपने अनुकूल बनाने की प्रेरणा नहीं दे सकता।' ऐसा साहित्य समाज की ऐतिहासिक विकास-दिशाओं से हमें परिचित नहीं करा सकता और न एक कुशल डाक्टर या बघ की तरह समाज की नाड़ी के स्पाइन को चिभित ही कर सकता है।' भ्रष्ट साहित्य वा उद्देश्य वास्तविक जीवन का इस तरह चित्रण करता है जिससे हमारी चेतना उस एकमात्र दिशा की ओर बह निकले जो अपने गर्भ में समस्याओं का सही समाधान छिपाये है वैसे योदान में प्रेमबन्ध ने किया है।' उदाहरण के लिए आजादी का स्वप्न सीबिर। भारत ने आजादी के लिए क्यों संघर्ष किया? क्योंकि आजादी स्वयं सबसे बड़ा मूल्य है। उसके बिना मये भारत का निर्माण संभव नहीं था।' इसी तरह 'जनवाद' है। जनवाद के आचार पर ही आजाद भारतीय जनपथ की आशाओं-आकांक्षाओं को ठोस रूप दिया जा सकता है। तीसरी महत्त्वपूर्ण चीज है 'सति' जो हमारी आजादी और जनवाद की सुरक्षा की पारंती है। इस तरह आजादी जनवाद और सति—ये तीन मूल्य हैं जो हमारे देश की राजनीति की आचार-दिशा और हमारी सभी प्रगति-चेष्टाओं के मूल मंत्र हैं। गांधी के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त समाजवादियों-सम्यवाहियों के वर्गविहीन समाजव्यवस्था के सिद्धान्त एवं राष्ट्रों के सह-अस्तित्व के लिए पंचशील के सिद्धान्त भी उन्हीं बुनियादी मूल्यों की पुष्टि करते हैं। इन्हीं मूल्यों की स्वीकृति पर विश्व-जीवन का विकास निर्भर करता है", किन्तु बुभुक्षित्य हमारे राष्ट्रीय जीवन में इन मये मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा ही नहीं पायी जब कि दूसरी तरह मध्ययुगीन सामंती रीति कता हमारे काम की चीज नहीं रह गयी थी। बचने में मौजूद वा चारित्रिक धर्मम प्रथ्याचार शक्तिहीनता और बेईमानी। अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर महायुद्ध की कृष्ठा का विकार यूरोप आसंका भय और अनिश्चितता से प्रस्त था। उसमें हासोमुख बन्धु सियों का उमाङ्क वा" जिसका काशी प्रमाण भारतीय साहित्य पर भी पड़ा। यह प्रमाण दो रूपों में स्पष्ट है। लेखकों के एक वर्ग ने इस वर्क, कुंठ और निराशा को ही भारतीय जीवन का धारक प्रंग मान लिया। इन लेखकों ने व्यक्ति मन की गुरिपयों के प्रदर्शन-विरहीण में ही अपने को गढ़ कर दिया। बंसी कहानियों के अपने आपमें दूरे

क. मयी समीक्षा पृ० १६१

द. प्रगतिवाद पृ० १५०

१० बही

११ बही पृ० १५१

१२ संकेत पृ० २०४

१३ आसोचना (२४), पृ० २६३

१४ आसोचना (२५), पृ० २६६

सांभुतिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र विकास

धरणी एवनामस समयमाधों में रमै 'संकटग्रस्त' व्यक्ति या पात्र विभिन्न ठे मयते हैं।^{१८} दूसरी तरह के लेखकों ने इस हास और विनयन को नास्तिक जीवन मानते थे इन्कार कर एकापी व्यक्तिवादिता के खिलाफ मोर्चा उठाया। इन लेखकों की कहानियों में संघर्ष विरोध और धास्या—ये तीनों चीजें मिलती हैं। इनमें भी एक ऐसा तबका धामा जिसमें कलाकार-मुलम-संबेचना का प्रभाव है हालांकि कामांतर में इन्होंने धरणी प्रम्यवस्था को काफ़ी मुबार किया। एक तीसरे प्रकार के लेखक भी हैं जिन्होंने धरणी प्रम्यवस्था को उसके सही ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिप्रस्य में देखा इसे सफ़िक बताया एवं धरणी प्रमुनर्षों तथा संबेचनाओं के प्रामार पर मबार्श के विभिन्न स्तरों एवं दृष्टिकोणों से धरणी कहानियां लिखीं।^{१९} इस तरह इन लेखकों द्वारा हमारे कथा-साहित्य में नये चरित्र धाने हैं। ये चरित्र नव-निर्माण की प्रेरणा से प्रमुनर्षित विमुन प्राणी बर्न से पोषमोत जीवन छंद रखते जो बेबार है बीसते हैं।^{२०} यद्यपि यह 'बेदारी' है प्रबश्य किन्तु धरणी व्यक्तिव के नवीन संस्कार के लिए, नये विश्व के योग्य बनने के लिए, प्रेमचन्द प्रमुति लेखकों ने जो काम किया उसे हमें सफ़िक पहचानें में बाकर करना पड़ेगा। पुरातन-याधों से धरणी व्यक्तिव को मुक्त करने के लिए हमें मुस्वत' बेतना के क्षेत्र में नई जाति की तैयारी करनी पड़ेगी जिसके लिए परिस्थिति परिपक्व भी है।^{२१} बिहार के कुछ धोपम्पासिकों ने विशेष रूप से इस क्षेत्र में काम किया। जगमें की नायानूर्त बिरेश्वर वारायण मईब बनराजपुरी पीर लकीस्वरनाम 'रेणु' के नाम हस्तेक नीम हैं।^{२२} इसी परंपरा में नीरवप्रसाद कुण्ट रविच रावण प्रमुतसाल नायर सद्मी वारायण छत्र जयसंकर मष्ट, प्रमुतपाय, प्रमुज धारणी स्वामलकिणोर भ्र सिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय कयसेवक, बलमत्र ठाकुर, वैशेश्वरनाथी हर्षनाथ केवचप्रसाद सिंह ठाकुरप्रसाद सिंह, हिमांशु धीवास्तव यादवेश्वर धर्मा 'चम्र' शेखर बोधी धारिक कथा कारों का नाम लिया जा सकता है। संक्षेप में यह कि धाज का कथा-साहित्य प्रमुन्य के धाज और धास्तिक जीवन के उद्घाटन में संलग्न है। धाज रैन धार, इंजन एटम बम एवं समुद्र के धाप ही टैस्टट्रुव बेबीज" योग परिवर्तन धारिक की धारों भी कथा-साहित्य में बइसते थे प्रवेधकर हमारे धाज रापात्मक संबंध स्थापित कर रही हैं।^{२३} ऐसे कथाकारों में प्रमाकर धाजने रामकुमार राजेश्वर धावक कमल जोषी नक्षिण विसोचन धर्मा निर्मल धर्मा धर्मबीर मारती धयरकाठ मोहन राकेश धोमप्रकाश

१८. धालोचना (१०) पृ २८

१९. नई कहानी साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद १९२७ में हरिधंकर परसाई द्वारा पठित निबंध

२०. धालोचना (२४) पृ० ९२

२१. धालोचना (२२) पृ० २९८

२२. कथा के तत्त्व पृ० १८१

२३. इन्धुक्ती

२४. कथा के तत्त्व पृ० 'य'

श्रीवास्तव लक्ष्मीकांत वर्मा प्रेम कुमार, राजनी पत्रिकर आदि उल्लेखनीय हैं।

प्राचार्य नंदकुमारे बाबुपेयी ने प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य के बाह्य के कथा साहित्य की पृष्ठभूमि का सम्यक विश्लेषण करते हुए अंत में कहा है— कथा में ठट स्वता प्रावश्यक है और कथाकार को सबसे पहले मानवतावादी या 'ह्यूमनिस्ट' होना जरूरी है। उपन्यास के कथात्मक के लिए तो यह ठटस्म जीवन-दृष्टि और भी प्रावश्यक है। "मनुवाद के विचारों से रहित इस तरह की रचनाओं की बाह्य में सृष्टि भी हुई और अधिक बस्तुवादी एवं निर्विवाद होने के कारण उनका सर्वाधिक स्वागत भी हुआ।" प्राचीनक ने उनका नामकरण 'घृही एवं प्राचीन कथा के रूप में किया है। घृही कथाओं में अधिकतर मध्यवर्गीय चरित्रों का एवं प्राचीन कथाओं में प्रथम विषय के पात्रों का सूजन हुआ है।"

श्री राजेश्वर दास ने "इन दोनों प्रवृत्तियों का जोड़ा भिन्न नामकरण करते हुए कहा है कि साहित्य में छाये हुए छिछोरेपन और भूटे धनवाचे मूर्खों के बपले के कारण ही नवोदित कथाकारों की एक भारा प्राचीन जीवन एवं प्रांचलिक इकाइयों की और तथा दूसरी विदेशी साहित्य की ओर मुड़ी। 'पराधित पीढ़ी' के 'बर्दाश्तारी हठ योपियों ने 'दृष्टिहीनता' के बर्धन का बड़ा बलान किया था। किन्तु इनके दिनों में तो बेवबास और बाहरन बैठे थे। इन्होंने अपने साहित्य में 'बार' या घोषायटी में चहकने वाली सङ्कियों को सम्पत्ता का 'धिकार' बनाकर पेघ किया। इन सङ्कियों को बसा ही नायक मितता या जिसकी दोनों ओरों में पैसे भरे होते थे और वह उन्हें खुसकर गुठाना भी जानता था। इन मोटों को सूटने वाले कभी टैबसी वाले होते हैं कभी 'बार' की सङ्कियां कभी 'बैरे' आदि।" यही नायक धराब भरे गिंताओं को झुखा झुलाकर, चुस्कियां बैठा हुआ निहायत ही एक्तराना डंग से बिचारी नाचने बालियों की 'बिचपी का प्रभ्ययन' पूरु कर बैठा है। इनमें गरीबी भी प्रपंमा महत्त्वपूर्ण पाठे प्रया करती है और यह 'बिच' किस्म का नायक ठीक उनके बीबीबीच पहुच जाता है। यदि इससे भी अधिक मौलिक साहित्य की रचना करनी हो तो बाप-बेटी या नार्द-बहन का घरीर सर्वत्र दिखा दिया गया।"

प्रांचलिक कथा

प्राचीन या प्रांचलिक चित्र जैसे ही कहा जा सकता है जहाँ किसी एक स्थान

- २२ बई कहानी (मोहन राकेश) साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद में १९३७ में पठित विबंध
- २३ साप्ताहिक सिन्धुस्तान १९ जून १९६० पृ० १६
- २४ प्रांचलिकता (आम बिशेषांक) १९३८ पृ० १३
- २५ बिनोर (बिषेषांक) अगस्त १९६० पृ० १३७
- २६ नयी कहानियों में ऐसे पात्र राजकमल चौधरी, राजेश्वर दास निमत वर्मा प्रेमकुमार, रामकुमार, मोहन राकेश आदि ने रचे हैं।
- २७ बिनोर, पृ० १४१

का बातावरण उस पूरे हवाके या जलपर के बातावरण का प्रतिनिधित्व करता हो। इस धार्मिक चित्रण के भी दो रूप होते हैं—धार्मिक संस्पर्श और धार्मिक प्रवृत्ति। यह धार्मिक संस्पर्श हम वहाँ देखते हैं जहाँ लेखक का मुख्य उद्देश्य कुछ बूझा ही होता है और उसकी पूर्ति के लिए वह धार्मिक विधि-विधानों का चित्रण करता है। उस वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि पर लेखक वहाँ के सामाजिक जीवन का चित्रण स्वामीय किसानों, बुद्धिजीवियों तथा धर्म्य वर्गों के पात्रों द्वारा करता है।^{२८} ऐसे उपन्यासों में लेखक का प्रभाव उद्देश्य नवीन सामाजिक पृष्ठभूमि में उठते-उमरते हुए नये मानव, धार्मिक-सामाजिक संघर्ष एवं जीवन का चित्रण करता है। ऐसे उपन्यासों की सृष्टि का श्रेय मार्क्स और रेवु जैसे लेखकों को दिया जाना चाहिए।^{२९} किन्तु कठिपय सासोचक ऐसी कृतियों का प्रारंभ श्री धर्मपूजन सहाय के 'देहाती बुनिया' एवं बुद्धावनसात वर्गों के 'अमर बैल' आदि उपन्यासों से मानते हैं।^{३०} एक सीमित अर्थ में संवर्धक भट्ट एवं समुद्रनाथ नाथर को भी धार्मिक उपन्यासों का स्रष्टा कहा जा सकता है।^{३१}

इन कथाओं में हर संघर्ष कथाकार ने अपने धारण में पूर्ण और समुद्र चरित्र चित्रण किया है। विजय तावनी (परती परिकथा) बसवतमा (बनबनमा), सुखराम बट (कम तक पुकार ?) कजरी और प्यापी आदि के अमर-अमर व्यक्तित्व हर से ही हथारों की भीड़ में पहचाने जा सकते हैं। विविध चरित्रों पर आधारित कुछ कहानियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'बाबाभूमि' (शिवप्रसाद सिंह) 'एक्टर और प्रमुख धार्मिक' (राजेश्वर नाथ) तथा 'भीर' (कमलेश्वर) उल्लेखनीय हैं। इस तरह, कहा जा सकता है कि इन कहानियों के रूप-रंग में काफी परिवर्तन आ चुका है और 'एकनामक' पात्र की स्पष्टता पर प्रश्न चिह्न डाल चुका है।^{३२} जिस मोरया एनबर्ग ने यूरोप में १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में उपन्यास की इस नई धारा का प्रारंभ किया था। १९०० ईसवी में उनका इस तरह का उपन्यास 'कासल रेकर्ड' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें आयरलैंड के किसानों का जीवन स्वामीय जनता के रीति-रिवाज संस्कार आदि का सजीव चित्रण हुआ है।^{३३} १९वीं शती के उत्तरार्ध में वास्तविक बोला और हार्न जैसे सुप्रसिद्ध उपन्यासकारों ने भी मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्ति उसके प्राकृतिक परिवेश आदि का महत्त्व रंग अपनी कृतियों में उजाड़ा। अमेरिका के उपन्यासकार फ्रांसिस होव्लिंग्ग स्मिथ की कृतियों में भी स्वामीयता का

२८. धाम (साहित्य विद्योपीक १९२५), पृ० १३

२९. धामोचना (२४) पृ० ७

३०. नतिव विमोचन अर्थात् न कहा था।

३१. धाम (साहित्य विद्योपीक), पृ० १३

३२. धामोचना (२४) पृ० ७

३३. धाम (साहित्य विद्योपीक) (डा० बच्चनसिंह) १९११ पृ० १३

३४. श्री इंगलिश नाथल, पृ० १८

बहुत रंग मिलता है।" स्त्री शक्ति के महान चित्रकार माइकेल गोथोसोव की रचना 'चरित्र सायन अपटर्न' (१९२१) में यही रंग है। नाबेस पुरस्कार प्राप्त विनियम फाकर ने भी कई प्रसिद्ध धार्मिक उपन्यास लिखे हैं। १९११ में नाबेस पुरस्कार प्राप्त जुपोस्ताव सेबक इर्वा चारित्रिक भी धार्मिक सेबक हैं। तुर्की लेखकों में स्वाठ दरबेज द्वारा लिखित 'अंकाप का बंदी' भी धार्मिक उपन्यास है। अरत के बाद बंपला साहित्य में सैनबार्नद ताराचकर, सतीनाथ माडुकी, भासिक बन्धोपाध्याय एवं समरेस बसु प्रादि ने धार्मिक उपन्यासों की भरमार कर दी।" इन नये कथाकारों ने देहातों में जाकर वहाँ के जीवन में जो कुछ सिख और सुन्दर है, स्थायिक सुबंसताओं मान सिक कृताओं से" हीन है उठी का स्वल्प और सबस चित्रण किया है।

प्रेमचन्द की का कहना था कि किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित कहानी उत्तम कही जा सकती है।" अटनाएँ और पात्र उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्पष्ट करने के लिए साए जाते हैं।" इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने कहानी-समूह 'कफन' का इलाका दिया या बिसके पात्रों में बहुत-सी बिचित्रताएँ हैं जिसे धाबकल के कुछ अस्ताहो प्रासोचक समचार्य भी कह सकते हैं। जैसे धार्मिक कृतियों में घायी बहुत-सी बातों और चरित्रों को कहते हैं। किन्तु उन तमाम बिचित्रताओं के बाबजूद वे चरित्र 'रीयस' हैं। नये कहानीकार प्रेमचन्द की इसी परंपरा को धार्ये बढ़ा रहे हैं। उनपर लगाया जाने वाला यह आरोप सर्वथा गलत है कि वे सामंती धबसेवों वा मध्यवर्गीय जीवन के कुछ व्यक्तियों के चरित्रों के निर्माण में रस सेते हैं। चरित्र के निर्माण में स्त्रियों मर्यादाओं, मिय्यामिमान आर्यामिमान प्रादि पुरातन संस्कारों का भी धबस्य हाथ रहता है क्योंकि ये सभी चीजें मिलकर उस व्यक्ति को बह बनाती हैं जो कि बह शौकता है।" संक्षेप में यह कि कहानी-कला के विधान में धाब नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। उसके चरित्र कार्य रत न होकर चितन रत हैं। फमत कहानी में धाब न अटनाएँ अटती हैं न कार्य-आपार होते हैं—जो कुछ होता है बह चरित्र के मन में होता है। धाब के धबिकांध चरित्रों का मन कृताओं अ्रतियों धबिबबासों किभुंअतताओं से अस्त है और इसी मन की रेश-कास परिस्थिति में कहानी का भी निर्माण होता बबता है। इसी कारण धाब की कहानी-कला धाबुनिक बिबकसा के बहुत निकट आ गयी है।"

१५. समीक्षा आरत्र, पृ० १९७

१६. सारिता करवरी १२, (रेबु) पृ० ९२

१७. कहानी (बिजेपांक), १९२६, पृ० १०

१८. कुछ बिचार, पृ० १६

१९. बही, पृ० ४१

४०. सिधबबब सिहू द्वारा बठित 'नयी कहानी नये अरन' शोधक निबंध, साहित्य कार सम्मेलन इलाहाबाद १९२७

४१. धातीबना (७) पृ० १२

बस आलोचकजन प्रेमचन्द एवं प्रेमचन्द-परंपरा की मार्ग^{११} एक स्वर से कर रहे थे सभी नागार्जुन के रूप में आधिक्य और पर प्रेमचन्द की प्रतिभा से सम्पन्न कथाकार का हिन्दी साहित्य में उदय हुआ।^{१२} इसके पहले 'ममूर बेस' द्वारा की कृष्णवदनताम बर्मा एवं गिरामात्री की कृतियों में मनी चरित्रिक स्थापनाएं हो चुकी थीं जिसने भी आगे वाले परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार की।^{१३}

नागार्जुन

इसी पृष्ठभूमि में नागार्जुन के चरित्रों का अध्ययन किया जा सकता है। नागार्जुन ने अपनी कृतियों में मिथिशा का चरित्र-विकास उपस्थित किया है। उनके सभी चरित्र मिथिशा से सम्बन्ध हैं जो मिथिशा का व्यक्तिगत-विकास करते हैं। अतएव इनके चरित्रों का अध्ययन मिथिशा के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाना चाहिए।

उनकी कृति 'बाबा बटेसरनाथ' एक मनीन कथा-प्रबन्ध है। १४८ पृष्ठों के उपन्यास में पूरे १०१ पृष्ठों तक अकिमुन की स्वप्न-कथा चलती है। उसके बाद प्रथम कर अकिमुन और बीबनाथ कर्मप्रवृत्त होते हैं। यह मुख्यकथा सिर्फ ४८ पृष्ठों की है और इसकी समाप्ति स्वाधीनता क्षांति और प्रगति के मार्गों से होती है।^{१४} हिन्दी के एक प्रसिद्ध आलोचक ने उनके उपन्यास बलचनमा क प्रकाशन के एक वर्ष पूर्व लिखा था—“हिन्दी के साम्यवादी साहित्यिकगण किसान-मजदूर के लेखक के रूप में प्रेमचन्द की बीर-पूजा करते हैं। किन्तु, उनके बाद किसी भी उपन्यासकार ने किसान-मजदूर वर्ग से सम्बन्ध कोई उल्लेख्य उपन्यास नहीं लिखा है—साम्यवादी उपन्यासकारों ने भी नहीं।”^{१५} किन्तु, इस आलोचना के सात भर बाद ही साम्यवादी कवि-उपन्यासकार नागार्जुन का 'बलचनमा' प्रकाशित हुआ। आलोचकों ने विभिन्न रायें व्यक्त करने के बाद भी एक स्वर से इसे स्वीकार किया कि 'बलचनमा' में बलसाधारण का बर्ह और पीड़ा पूरी तरह मुखरित हुआ है।^{१६} इस तरह नागार्जुन ने प्रेमचन्द की परम्परा को बढ़ाया है। प्रेमचन्द के होरी और मोबर की तरह उनके चरित्र सामाजिक व्यवस्था के धिंकार होकर मर नहीं पाते बल्कि अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। 'बलचनमा' के रूप में नागार्जुन ने भारतीय जीवन के ऐसे पात्र को लिया है जो कभी भारतीय साहित्य में नायक नहीं बन सका था।^{१७} ऐसे पात्र को खोज निकालना ही जो ठेठ केस मजदूर है, होरी जैसे किसान से भी निम्नस्तर का—नागार्जुन की तीव्र दृष्टि का

४२. मनी समोसा पृ० २३७

४३. अध्ययन के विचार पृ० २०

४४. उपन्यास और रोजजीवन, पृ० ७

४५. आलोचना (१७), पृ० ३४

४६. आलोचना (इतिहास) पृ० ११८

४७. आनन्द माध १९३३, पृ० १४

४८. अध्ययन के विचार, पृ० २१

परिचायक है।" नागार्जुन के पात्रों में वे हम्बु भी नहीं जो प्रेमपत्र के पात्रों को घागे नहीं बढ़ने देते थे। यह उनकी राजनीतिक विचारधारा के कारण है।" इसीलिए उन्होंने आत्मविश्वासपूर्वक भूमिहीन किसानों द्वारा स्थापित सरकार को ही मानव कल्याणकारक बताया है।" 'बलचनमा' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें एक दृढ़ समाजवादी चरित्र का विकास दिखाया गया है।"

'नयी पीढ़' में मयिस समाज के जूनिअर परम्परागत कर्मों का परीक्षण हुआ है। 'बाबा बटेसरनाथ' में एक बड़ा बट-बुद्ध मायक की भूमिका भरा करता है। यह लोक-चरित्र को नवीन साहित्यिक संस्कार प्रदान करने का प्रयास है।" जिसमें बटबुद्ध का मानवीकरण किया गया है।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सर्वप्रथम नागार्जुन ने ही हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की रचना की और उनकी कृतियों के प्रकाशन के बाद ही प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यासों के सम्बन्ध में विवाद छठा।"

उनके पात्रों उपन्यास 'हरम के बेटे' में घाये चरित्र भी—भोला मयल, मधुरी, मोहन मांभी बनेंरह—बलचनमा और बाबा बटेसरनाथ की परम्परा के चरित्र हैं।" निम्न वर्ग के चरित्र की सृष्टि का चरित्र-विकास की दृष्टि से उन्होंने समस्त हिन्दी साहित्य के स्तर पर भील-स्तम्भ का काम किया।" 'बुद्धमोचन' उनकी सबसे नवीन कृति है। यह पात्र बंध में नवीन-निर्माण और आगरथ का प्रतीक है। किन्तु इस पात्र में लेखक ने बिलने सवृणों का आरोप किया है उसका बोझ वह संभाल नहीं पाता। वह एक व्यथित न होकर टाइप बन गया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि इस उपन्यास की रचना संभवतः भाज सरकार की धोर से ही रहे निर्माण सम्बन्धी प्रचार कार्यों के लिए की गयी है।'

फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास-लेखकों में नागार्जुन अग्रगण्य हैं। उनकी कृतियों में विविधा संस्कृति की भौगोलिक प्राकृतिक सामाजिक राजनीतिक स्थिति के अंतर्गत चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।"

४९. लाले पृ० ६०

५०. अम्पयन के विचार, पृ० २१

५१. वही पृ० २२

५२. हिन्दी उपन्यास और व्यपार्यवास, पृ० २१०

५३. कल्पना मार्च, ५४

५४. आनकल, मार्च १९५३, पृ० १३

५५. आलोचना (उपन्यास विशेषांक) पृ० २०६

५६. सरिता १९५५, जनवरी

५७. नया पत्र अगस्त १९५८, पृ० १६६

५८. हिन्दी उपन्यास, पृ० ३८७

भैरवप्रसाद गुप्त

भैरवप्रसाद गुप्त कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक नये उपन्यास-लेखक हैं। उनके उपन्यास 'मद्यान' में यद्यपि कहानी का एक बाँचा भयंकर खड़ा किया गया है, पर उसमें स्वाभाविकता और स्वातन्त्र्य का पूर्ण अभाव है। यह भी कहा जा सकता है कि बौद्धिक रूप से साम्यवादी होने के बावजूद उनके हृदय भाव और दृष्टि में वह सर्वत्र समरस नहीं हो पाया है।^१ फिर भी ग्रामीण चित्रण की परम्परा को उन्होंने अपनी कृतिमें द्वारा समृद्ध किया है। 'गंगा मैया' में बलिमा अंधक के किसानों के संघर्ष का चित्रण है। 'अंबीरों और मया मारमी' समर्थी बुराचारों की काली कहानी को सशक्त रूप में व्यक्त करता है।^२

'गंगा मैया' उनका लघु उपन्यास है। अत्यन्त उसके चरित्र बड़ी छोटी भूमिका धरा करते हैं। अथवा उसके प्रमुख पात्र मटक भी विकसित होकर कुछ अधिक विकसित बन सकता था। किन्तु, सम्भवतः कलाकार की बर्तमान-मनोवृत्ति उसे उपन्यास के स्तर तक जाने नहीं देती।^३ इसीलिए यह मटक 'परती परिकषा' का चित्रण नहीं बन सका और गुप्तजी 'रेवू' से भागे नहीं बड़ पाते। इसी तरह 'अंबीरों और मया मारमी' भी एक वैज्ञान-सी चीज बन गयी है। हालांकि उसके पात्र सामाजिक यथार्थवाद का सही और अंतिकापी रूप प्रस्तुत करते हैं। इसके बावजूद ये पात्र प्रेमचन्द के पात्रों से अधिक तेजस्वी भीत पड़ते हैं यद्यपि उनका निर्माण प्रेमचन्द की परम्परा के विकसित रूप का ही परिभाषक कहा जा सकता है।^४

उनकी नवीन कृति 'सती मैया का बीरा' में सामाजिक किसानों के जीवन एवं संघर्ष का चित्रण है—जो पूरे देश में चल रहे निर्माण के संघर्ष का ही एक अंग है।^५ इसमें भागे चरित्र—बड़े मिर्चा बाबू साहब, हीरा मगत रहमान और मुन्नी छोटे पैमाने पर महान पात्र हैं।^६

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी में ज्ञान-जीवन की पकड़ बड़ी गोरवार है और उन्होंने उसके अनेक पहलुओं को सजीव ढंग से चित्रित किया है।^७ पात्रों के महाजन और अदूर बैठकबाज हिन्दू और मुसलमान अमीरार और रैयत कांग्रेसी और कम्युनिस्ट—सबों का चित्रण लेखक ने भरपूर भावना से किया है और यह भी दिखाया है कि किस तरह भाव का सातक बर्त अनेक अर्थिक चरित्रों से धार का हलन

१. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २११

२. आन (साहित्य विशेषांक), १९५८

३. अमला अग्रेत १९५८, पृ० २२

४. अत्यन्त के विचार, पृ० ११२

५. आलोचना, अग्रत ६० ठाकुर प्रकाशित

६. अत्यन्त अग्रत उपन्यास, आन (साहित्य विशेषांक), १९६०

७. वही पृ० १२

कर पाव के कर्मठ जीवन में झूठा उत्पन्न कर रहा है। यही इनकी इतियों का विषय है।^{११} गुप्तजी ने काफ़ी भाषा में कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें उन्हें काफ़ी सफलता मिली है। पर अपनी राजनीतिक माय्यताओं के कारण यहाँ भी वे नवीन चरित्रों की कल्पना नहीं कर सके हैं।^{१२}

श्री उदयशंकर भट्ट

भट्टजी का उपन्यास 'सागर सहरेँ धीर मधुप्य' एक महान रचना है। यों तो यह बम्बई के मसुधों की कहानी है लेकिन वास्तव में यह मसुधा-व्यपत्ति विद्रुत धीर बंधी की कथा रत्ना की कहानी,^{१३} जो सम्य जीवन बिताने को बेठाव हैं क्योंकि वह पढ़ी-लिखी है। किन्तु, सम्य समाज में भी उसे नरपसु ही मिलते हैं—एक डाक्टर पांडुरंग को छोड़कर। वह सैबक की बड़ी सफलता है कि इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र सजीव बन पड़े हैं।^{१४} उनकी भाषा भी एक जात किन्त्य की बम्बईया भाषा है। विद्रुत, बंधी माणिक, यद्यंत सारिका दुर्गा श्रीकाला, पांडुरंग तथा छोटे-मोटे सम्य सभी चरित्र सैबक के कथारमक प्रकन से बड़े सजीव धीर स्वामाधिक बन पड़े हैं।^{१५} इतने पात्रों का मूर्त धीर सजीव चरित्र-निर्माण हिन्दी उपन्यासों के लिए एक अपूर्व घटना है।^{१६} रत्ना का चरित्र इतनी विशिष्टताओं से सम्पन्न है कि वह धामुनिक अतिरिक्त भारतीय मारी की प्रतिनिधि बन गयी है। वह हिन्दी-उपन्यासों में प्राये सब तक के सभी मारी-पात्रों से भिन्न धीर ढँकी भी है। प्रेमचन्द ने मारी को सबसे धीर उसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभाव देखा।^{१७} जैनेन्द्र की मारी में व्यक्तित्व तो है, किन्तु, सामाजिक बन्धनों को तोड़ने के लिए सुखदा की तरह वह धारमस्यानि से पीड़ित होती है।^{१८} लेकिन रत्ना को अपनी वासना-वृष्टि का साधन बनाने की कोशिश में कई लोग बंधों धीर जूठों की मार खाते हैं यद्यपि धातोचक डा० देवराज उपन्यास को यह बात पसन्द नहीं।^{१९} फिर भी रत्ना के विद्रोह में अधिक गहराई है धीर उसका लक्ष्य भी बड़ा है।^{२०}

परन्तु, इस उपन्यास की सबसे बड़ी चुटि यह है कि इसमें पात्रों को सिर्फ

-
- ६९ यही
 - ६७ श्रीपतराय (कहानी-विश्लेषक) १९३६
 - ६८. अनुपम, फरवरी '३७, पृ० १३
 - ६९. यही
 - ७०. यही
 - ७१. कथा के लक्ष्य, पृ० २०१
 - ७२. यही, पृ० २०१
 - ७३. यही
 - ७४. यही
 - ७५. धातोचक-भाष्य, पृ० १६०

किम्वारत स्थिति में धनुषिन्दरत स्थिति में नहीं विभित किया गया। वे सभी जल्दी में ही धीरे सगाटा है जैसे उन्हें छटपट अपना पार्ट धबा करके जमा जाना है।^{११} फिर भी इसमें दो तरह के पात्रों की सृष्टिकर सेलक ने अपने हृदय के दो पक्षों का प्रदर्शन किया है। हेमिन्गे के उपन्यास 'बी प्रोस्ट मेन एण्ड द सी' से भट्टजी ने अपने उपन्यास के लिए^{१२} धीरे धानव नामानु म ने^{१३} अपनी कठि 'बचन के बेटे के लिए प्रबन्ध ही प्रेरणा भी होगी। किन्तु, समुद्री मछुओं के जीवन पर हिन्दी में सम्भवतः भट्टजी की कृति ही सर्वप्रथम है।^{१४} सेलक ने इस उपन्यास में गांव तथा महानगरी के जीवन में विपमता सार्वथी धीरे पूंजीवादी सभ्यता में अन्तर एवं अपने हुए व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण किया है।^{१५}

भट्टजी ने अपनी पुस्तक साहित्य का स्वर में लिखा है—'नाटक धीरे उपन्यास के सभी पात्र में समाव से जुने हैं। 'एक गीड़ को पंछी' के सभी पात्र मेरे देखे, मुने धीरे पहचाने हैं। पर 'सामर सहरे धीरे मनुष्य' की रत्ना ने तो मुझे भारमसात कर लिया।^{१६} यह सेलक की 'प्राप्त-काम शक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपने पात्रों को प्रामसमान का प्रतिनिधि 'होरी' बना दे या प्रोस्टमेन एण्ड द सी का मकाम बना दे।^{१७}

श्री भमृतराय

श्री भमृतराय ने मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार अपने पात्रों का निर्माण किया है। उनकी सबसे ज्यादा उल्लेखनीय कृति 'बीज' है।^{१८} इसके प्रमुख पात्र मध्य वर्गीय हैं। इसका नायक सत्यवान धीरे उसकी पत्नी उषा नवे विश्व के निर्माण में विरवास करते हैं^{१९} सत्यवान उषा से कहता है—'इस भाग में हमारे नये जीवन के विराट प्रारम्भ का बीज छिपा है, हमारे नये सुख का बीज नये प्रमात का बीज। ऊनी इस स्वयंवर-वेसा में हम उस प्रमात को प्रथाम करें।'^{२०} मध्यवर्गीय चरित्रों में इस प्रकार के विकास का पहला जलन यही दिखाई पड़ता है—स्वयं भमृतराय की अन्य कृतियों में भी यथा 'नामजनी के देश में' 'हाथी के दांत' 'इतिहास' आदि में इस प्रकार के चरित्र का विकास नहीं दिखाई पड़ता। 'बीज' में साम्यवादी विचारों को पात्रों पर उस हद तक

७६ कथा के सार पृ० २०६

७७. वही

७८. साहित्य के स्वर (भट्ट) पृ० १२६

७९. अजन्ता, अग्रज १९६८, पृ० २१

८०. साहित्य के स्वर, पृ १५३

८१. हिन्दी उपन्यास, पृ० १३०

८२. साहित्य के स्वर, पृ० १२८

८३. वही, पृ १२६

८४. साहित्यधारा, पृ० १४७

८५. वही

नहीं आरोपित किया गया है बितना उनका विकास पात्रों के जीवन में दिखाया गया है।^{१९}

इस उपन्यास में अनेक लबीय चरित्र हैं जिनमें मानवजन्म दुर्बलताएँ तथा रसभावनाएँ हैं।^{२०}

रांगेय राघव

रंगिय राघव में दर्जनों उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचन्दोत्तर कथासाहित्य में मध्यवर्ग की जिन विशेषताओं के साधारण उपन्यास लिखे गए हैं, उसी परम्परा में इनके भी उपन्यास हैं।^{२१} उनके सब तक प्रकाशित उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण है 'कब तक पुकारूँ' और कहानियों में सबसे श्रेष्ठ है 'मदत'। 'यद्यपि प्रेमचन्द की बनिया की याद बिसाती है।^{२२} 'कब तक पुकारूँ' नटों के जीवन पर साधारण दृष्टि है जिसमें चरित्र विकास की विधा में काफ़ी प्रगति हुई है। इस उपन्यास के पूरे ऐसे चरित्रों की एक स्त्री श्यामलकिशोर म्हा के कहानी-संग्रह 'इन्सान की बिन्यानी' में बिसाती है। उनकी 'बचन के बनी' नाटक कहानी में इन बचनम-वेधा नटों के चरित्र में ती सदात तक को बहुकालित किया गया है। इसमें साधारण जनता के हृदय में छिपी हुई असाधारण मानवता की सच्ची तस्वीर है। लेखक श्यामलकिशोर म्हा की बचन-संज्ञी प्रभावशाली और चरित्र-बचन संशोध है।^{२३} 'कब तक पुकारूँ' के चरित्र मुन्तराम, व्यापी कन्धी, मुसल मारि की तरह 'बचन के बनी' के चरित्र रनिया बेठा ठेठर, सेठ धारि धारि स्मरणीय हैं। लम्बे अन्तराल के बाद उनकी दूसरी दृष्टि 'मंजर के बीच' उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुई है। उपन्यास की घटना घामीय संघर्ष में बटित हुई है पर यह प्राकृतिक उपन्यास नहीं है। इसकी समस्या राष्ट्रीय है और कथानक का सम्बन्ध भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन से है। उपन्यास की समस्त क्रियाशीलता के बावजूद चार मुकद हैं जो सहरसा के घामीय संघर्ष में तत्कालीन प्रोग्रेसी सरकार की असाह्य पकड़ने की उत्तेजना पैदा रहे हैं। ये चार मुकद हैं—सैमथ महेरा, बिन्नु और निरंजन। सभी चरित्र बड़े प्राकृतिक हैं।^{२४} उनका विकास काफ़ी सुवन्ना हुआ है।

कमलेश्वर

कमलेश्वर का जीवन-प्रमुख बहुत छोटा क्षेत्र बहुत सीमित, पर प्रतिष्ठय सबीब है। कल्पे के सर्वहाप के बड़े मामिक चित्र उम्हें उपस्थित किये हैं। उनकी

१९. हिन्दी उपन्यास (बचन), पृ० ३२६

२०. साहित्यमारा, पृ० १४७

२१. आलोचना (उपन्यास संक) पृ० २०४

२२. भाव, (साहित्य विशेषिक), प्रकाशकश्र गुप्त, १९३५, पृ० ११

२३. डा० राबिनाथ प्रसा—इन्सान की बिन्यानी

२४. नवराष्ट्र, २४-२ १५, प्रो० जयेश्वर प्र० टाकुर

कहानियों 'सबकुली नहरें' मुर्तों की बुनिया, राजा मिरजसिया एक छड़क सत्तावन पहिया धारि में उनकी रचना-कौशल की विशेषताओं के वर्णन होते हैं। किन्तु, यह धनका बोध है कि उनके सभी चरित्र एक ही छवि में बने हैं।^{११} 'राजा मिरजसिया' में एक सोककथा की पृष्ठभूमि में प्राच्य हिन्दू मध्य वर्गीय चरित्रों की कहानी कही गयी है। पर सोक-कथा का यह उपबोध सिर्फ कोरा चित्र नहीं है न इसके कहानीपत्र में ही बाधा होती है।^{१२} बल्कि यह मुख्य कथा को घोर भी मानिकता से भर देती है। चित्र के लिए प्रयोग की गयी यह घटीत की सोक कथा वर्तमान को प्रकाशित भी करती है और घटीत की लचील धर्म भी प्रदान करती है।^{१३} विद्या के इस नये प्रयोग में प्रत्येक धर्मों और व्याख्याओं की संभावना भी है और एक विवेक पटना के भीतर से मानवीय राज्य का उद्घाटन भी हुआ है।^{१४} इस चित्र का प्रयोग कई वर्ष पूर्व 'प्रतीक' में प्रकाशित श्री शिवप्रसादसिंह की कहानी 'बरबर का पेड़' में हुआ था। पर दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।^{१५}

नयी कहानी के बारे में जनवरी १५ की कल्पना में प्रकाशित एक लेख में मार्कण्डेय शिवप्रसादसिंह और केशवप्रसाद मिश्र की कहानियों को प्रेमचन्द की परम्परा को समूह करने वाला बताया गया है।^{१६}

शिवप्रसाद सिंह

'घार-घार की मासा' सैबक की सोसह कहानियों का संग्रह है। इसमें यहाँ एक कहानी 'बाही-मा' का चरित्र अत्यन्त मानिक बन गया है।^{१७} सभी कहानियों में प्राचीन जीवन के बेबस पात्रों के फिसे हैं जिनके प्रति मन में एक यद्पी संवेदना होती है, पर जिनके लिए हम कुछ कर नहीं सकते।^{१८} ऐसे ही 'बेबस' और बेचारे बेबक के 'हीरो और हीरोइन' हैं।^{१९} अन्तिम कहानी 'घार-घार की मासा' की नीक को लाख बूढ़ने पर भी कोई किनारा नहीं मिलता। बेबस प्रवाह, जल और महुरा पानी। उसके मन में किसीकी बगल में बैठकर पार जाने की इच्छा है पर कोई किनारा नहीं 'बेबस पार की मासा 'घार पार की मासा।'^{२०}

१२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २०१५, अंक १, पृ० २१२

१३ कहानी (विश्रवांक), १९५७, पृ० १२

१४ वही

१५ वही

१६ धारा (साहित्य-विश्रवांक) १९५८, पृ० १७

१७ कल्पना, जनवरी '५५

१८ प्रतीक नवम्बर '५१

१९ नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २०१५ अंक २, पृ० २११

१०० वही

१०१ वही

उनका दूसरा कहानी संग्रह 'कर्मनाशा की हार प्रांचलिक कदाओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें घाई कहानी 'घाला-भूम' विधिष्ट चरित्र पर प्रामाणिक है। इस तरह उनके अनेक पात्रों की मूलना सर्वथा प्रसन्न है।^{१०१} इसकी अंशों में भी मार्कण्डेय भी हैं जिनके 'नई-पुरानी लखीरों' के कई चरित्र अविस्मरणीय और उचित करने वाले हैं।^{१०२}

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

नये चारित्रिक मूर्तों की अपर्युक्त परम्परा में 'रेणु' भी के उपन्यास 'मैला प्रांचल', 'पत्थी परिकथा' एवं 'दुमरी' (कहानी-संग्रह) का विधिष्ट स्थान है। 'मैला प्रांचल' को स्वयं लेखक ने प्रांचलिक उपन्यास कहा है। लेकिन यह केवल प्रांचलिक उपन्यास ही नहीं है।^{१०३} 'मैला प्रांचल' 'पोदान' की परम्परा में भारतीय जापानों का दूसरा सन्नतिमूलक उपन्यास है हालांकि इसकी प्रथमी सीमाएँ हैं।^{१०४} प्रत्येक गरीब पनी, विधित, अविधित उच्च-शिक्षित स्त्री और पुरुष पात्रों से घरे हुए इस उपन्यास में विधित जीवन अविश्वसनीय नहीं लगता।^{१०५} यह एक अमार्गवादी जनवादी एवं कर्तारक होने के साथ ही प्रविध्य के जीवन की मूचना देने वाली रचना है।^{१०६} उपन्यासकार अरुण तो इसे 'पोदान' के बाद का मील-स्तम्भ मानते हैं।^{१०७} कर्तारक से पूरी मानवता और सहायकृति में सामाजिक जीवन के बिना जिसमें प्रमीर परीक, किसान मजदूर, राजनीतिक कार्यकर्ता बेरारी, मानवोचित योग-संर्भव—सभी की रेखाएँ उपस्थित की हैं। साथ ही इनके चरित्रों में राष्ट्रीय जागरण एवं नवनिर्माण स्वतन्त्रता के बाद की घाटा निराशा, कोसी पीकित किसानों के जीवन में कोसी-बाँध के निर्माण की भावना, विश्वयुद्ध के बदले और विश्वशांति के प्रयास को खुदबखुद की भारत-यात्रा से और भी बलवती हुई प्रादि भावनाएँ सुदृढ़ रूप से प्रस्तुतित हुई हैं।^{१०८} इसी पृष्ठभूमि में इनके चरित्र अन्दरे और निकरे हैं। इसमें ऊँचाई तक उठने वाले पात्र भी हैं साथ ही पवित्र भूत, कायर पीठ में छुरा भोंकने वाले लोभ भी मौजूद हैं।^{१०९} इसमें बाबनदास जैसे अन्धे बैससेवी बालदेव जैसे प्रचण्डवादी क्रिपेरी और बाजारिये, सोसलिस्ट, कम्युनिस्ट सभी उपस्थित हैं। बालदेव, बाबनदास और काली

१०२ साहित्यधारा, पृ० ११५

१०३ वही पृ० १२१

१०४ घालीचका (१५), पृ० १०७

१०५ वही

१०६ वही

१०७ आम, (साहित्य विवेचक), १९५८, पृ० १३

१०८ घालीचका (१५), पृ० ११०

१०९ धर्म्ययन के विचार, पृ० ३७

११० कथा के तत्व, पृ० १८३

चरण का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है। किन्तु, डा० प्रयाण्य जैसे डाक्टरों का चित्रण कुछ पहले के बंदना उपन्यासों में भी था चुका है।^{१११} यद्यपि डाक्टर नायक है, फिर भी उससे अधिक दूसरे पात्र सजीव बच पड़े हैं।

मेमिचन्द्र बने^{११२} का मत है कि 'मैला घाँस' का एक भी पात्र 'नैसाधिक' नहीं कहा जा सकता। शिवदानसिंह चौहान^{११३} ने इतनी अधिक संख्या में प्राये पात्रों के मूर्त और सजीव चित्रण की प्रशंसा करने के बाद उन पात्रों को ग्रामीण जीवन की सुखाधर्मों में बँधे होने से बीना' बताया है। डाक्टर का प्रादुर्भावशील चरित्र प्रेमचन्द्रजी के सुरदास चक्रवर्त समरकान्त और प्रेमसंकर से साम्य रखता है।^{११४} उनके मारी-पात्र शरत की मारी लीडी कूतों को प्राये बढ़ने के लिए प्रेरित करने वाली है। इसमें कोठी प्रंचल की कुछ बर्षों की समय जीवन-वृत्ति समरकर था गई है।^{११५} मौखिकता से सम्बन्धित ऐसे चरित्र बर्षों से हिन्दी साहित्य में चित्रित नहीं हुए थे। साथ ही उनकी विशेषता यह भी है कि एक प्रंचल के सीमित चरित्र होते हुए भी उनमें सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन की शक्ति पर्यन्त रूप में विद्यमान है।^{११६}

'रेगु' के दूसरे उपन्यास 'परती परिकथा' में १० से अधिक पात्र हैं—११ के समग्र पुरुष और शेष सभी स्त्रियाँ। इतनी संख्या में होने के बावजूद ग्रामीण जीवन के समग्र और पूर्ण चित्रण में पात्रों का समीचीन उपयोग एवं कुछ पात्रों का चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है। नायक बितेन्द्र, ताबननी मिम्मला-नामा एवं सुतो प्रादि का चरित्र-चित्रण अत्यधिक सजीव है। फिर भी 'मैला घाँस' के बावन्दाय जैसा एक भी अतिस्मरणीय चरित्र यहाँ प्राप्त नहीं।^{११७} बित्तन डाक्टर राम जीवरी, इरावती प्रादि में नवीन भारत की पुनर्निर्माण-आशना का धानदार चित्रण हो पाया है।^{११८}

'परती परिकथा' के पात्र इतने स्वाभाविक हैं कि वे हमें भारत के हर पात्र में मिल सकते हैं।^{११९} रेगु ने बड़े ही रोचक ढंग से नज़ारों को बढ़ा और गुनाया है। साथ ही अनेकानेक चरित्रों की श्रुति करते हुए उन्हें सारसर्दबबक ढंग से निभाया भी है।^{१२०} परानपुर के महोत्सव में सम्मिलित होने वाले वे अनेकानेक चरित्र अपनी व्यक्तित्व

१११ घालीबना (१५), पृ० १११

११२ कल्पना, फरवरी, १९५६

११३ घालीबना के मात, पृ० १३८

११४ हिन्दी उपन्यास (प्रबन्ध), पृ० ८५

११५ घालीबना (२४), पृ० २

११६ घालीबना (१६), पृ० १०७

११७. आनन्द, मार्च २८, पृ० ३१

११८. परती : परिकथा पृ० ४६८

११९. घात्र (साहित्य विरीचोक), १२ जनवरी '५८, पृ० १२

१२०. घालीबना (२५), पृ० ६६

विशेषताओं से पूरित हैं।^{१२१} सभी अपना जीवन जीते हैं और उनका ध्येय सबत रेखाओं के द्वारा है।^{१२२} उनका अपना व्यक्तित्व है बाहर और भीतर का स्पष्टीकरण है और सबों ने कथा की धारा में पूर्ण योगदान दिया है और उनकी अपनी विधि-विधान हैं। इन सभी चरित्रों का सफल ध्येय लेखक के मानव-अध्ययन और कलात्मक शक्ति के प्रमाण हैं।^{१२३} स्त्री-पार्श्वों में तात्रमनी मालती गीता मिश्र—सभी का चरित्रांकन आत्यधिक सबत है।^{१२४} सभी चरित्रों के निर्माण में लेखक ने तटस्थता से काम लिया है।^{१२५} उनके पार्श्वों में अपनी पृथक सत्ता है।^{१२६} मनुष्य के सर्वस्य स्त्रियों का प्रवर्णन रेणु टासुटाय और वेटे के अधिक समीप था गये हैं।^{१२७} इसलिए 'परती परिकथा' हिन्दी साहित्य को उनकी एक अमूल्य भेंट है।^{१२८}

प्रेमचन्द के पार्श्वों की तुलना में उनके पार्श्वों में मानसिक दृढ़ भी उभरकर आया है। उनके चरित्र अधिक सघन हैं।^{१२९} उनके पात्र लेखक के दृष्टि-विस्तार के सैकड़िक स्तम्भ हैं।^{१३०} मनेश और सुरपति गाँव के जीवन या रमणच पर फर्मिष साइट बनाने का काम करते हैं।^{१३१} रेणु ने अपने सभी चरित्रों के माध्यम से जीवन की एक सर्वाङ्गीण तस्वीर प्रस्तुत की है।^{१३२}

कुछ सोचों ने 'परती परिकथा' में 'चरित्र-विकास का प्रभाव' बताया है। कुछ ने पार्श्वों को 'निष्पाप निर्दोष' कहा है।^{१३३} किन्तु इन सबों के बावजूद इस परिकथा में हर व्यक्ति समाज का हर वर्ग हर राजनीतिक दल अपने वर्तमान आचरण और भूमिका का सही चित्र देस सकता है।^{१३४} इस कथा के पात्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व के नहीं हैं। वे सर्व-वर्ग-वर्ग के छोटे सोप अक्षर्य हैं। पर वे 'जीने' नहीं हैं उनके जोश और प्रेम

१२१ अज्ञानता, अक्टूबर-नवम्बर, १९३७, पृ० ८७

१२२ वही

१२३ आलोचना (२४), पृ० ६६

१२४ आन, (साहित्य विद्योपाङ्क), ३८, पृ० १२

१२५ वही

१२६ नया पय, अगस्त १९३८, पृ० १७१

१२७ आलोचना, (२४), पृ० ७०

१२८ वही पृ० ७३

१२९ नया पय अगस्त, '३८, पृ० १६६

१३० आलोचना (२४), पृ० ७३-७६

१३१ वही

१३२ आन, (साहित्य विद्योपाङ्क), १९३८, पृ० १२

१३३ कल्पना फरवरी १९३८ (जीपतराय)

१३४ आलोचना के मान विद्योपाङ्क चौहान द्वारा १९३० में साहित्यकार सम्मेलन इलाहाबाद में पत्रित निबन्ध

के आवेग जाहे 'हिरोइक' न भी हों पर तुच्छ भी नहीं।^{११५} परिकथा एक मोपना है कि प्रतिमावाग कलाकार प्रायः भी धन-व्यय के छोर नाप सकता है—मौनापन उसकी नियति नहीं है।^{११६}

रेणु ने सफल कहानियाँ भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी औपम्याधिक चरित्रों से भिन्न नहीं। इनका कहानी-संग्रह 'ठमरी' की कुछ कहानियाँ बहुत ही 'बिरिकल' हैं जैसे 'रसप्रिया' 'पंचनेट' 'तीसरी कसम या मारे परे पुसफाम' सफल कहानियाँ हैं। सभी चरित्र सफल अभिस्मरणीय और प्रेमचम्ब की परम्परा के हैं। 'तीसरी कसम' का हिरामन तो भुलाय नहीं भूलता। उसका मोनापन भारतीय जीवन और चरित्रों की सजाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमाशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'मोहे के पंख' में सन् १९२८ से २९ तक का कथाकाल लिखा है। इसके परिवर्तन की तुलना भी इमाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंखी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के आधार पर यह 'जहाज का पंखी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक मोंगक स्वयं अपनी धारमकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीने-सारे बंग से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

मोंगक बर्न का प्रतीक चरित्र है जो केवल वही काम करता है जो उसके पीछे लोभ क्रिया करते हैं।^{११७}

देवेन्द्र सरयार्थी

देवेन्द्र सरयार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-युग्मों के जीवन की कथा कही गई है। 'ब्रह्मपुत्र' से उनका जीवन उसी तरह जुड़ा है जैसे बरती से किसान का या माता-पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न धर्मस्थापनों के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कस्याब भगत नीलबनि राजाज काला भवदुल काधिर बर्मनदी देवकांत भतुल नीरद, मुकुल प्रभात प्रादि प्रमुख हैं।

उनकी दूसरी कृति 'ब्रह्मपुत्र' की परम्परा का ही प्राथमिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।^{११८} इसके प्रमुख पात्र प्रादिवासी संघात हैं। इसके प्रमुख पात्र गोविन्दम का चरित्र विकास सहज और स्वाभाविक है। स्वान-स्वान पर भोक्मीतों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

११५. वही

११६. वही

११७. युग भेदना धर्मल '५८

११८. ब्रह्मपुत्र पृ० १५

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

नबीन कृतियों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'बया का बोंसला घोर सौंप' की काफी चर्चा हुई है। यह कृति प्रेमचन्द की स्वयं परम्परा में पड़ती है। इसकी नायिका सुभागी हर स्थिति में अपनी असहाय्यता के बावजूद अपने सतीत्व की रक्षा में सफल होती है। किन्तु, इन सबसे प्रेमचन्द की परम्परा प्रागे नहीं बढ़ती। उनका दूसरा उपन्यास 'भरती की आँखें' प्रेमचन्द जी के सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में आता है। 'प्रिनामम' के विद्रोही बसराज का विकसित रूप गोविन्द के चरित्र में मिलता है।^{१११}

इनके उपन्यासों में निरिधत रूप से एक ऐसा चरित्र होता है जिसके जीवन की नायिका पाठकों को सबा छूती रहती है। 'बया का बोंसला घोर सौंप' में यह सुभागी है 'कासे भूक का पीरा' में मीता है और 'रुपाजीबा' में मधु ब्रूया है।^{११२} इस प्रकार उन्होंने तीन सघनत नारी चरित्रों का निर्माण किया है जो आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकल सकता है कि उन्होंने नारी के एक विशेष 'टाइप' की प्रतिष्ठा की है और उससे निम्न उन्हें नहीं देखना चाहते।^{११३} ऐसे आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने गाँव कस्बा या प्राकृतिक नगर किसी एक कोने को पृष्ठभूमि के रूप में लिया है जहाँ के पात्र सत्य प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास सफल कहे जा सकते हैं।^{११४}

अमृतलास नागर

नागर का प्रथम उपन्यास है 'महाकास' जो बंगाल के मीथम काल की घटकों के चित्रण से प्रारम्भ होता है—जब सर्वप्रथम भूक ने सती गृहणियों को बेरवा बनाया और माखों यमराज के करामत में समा गये।^{११५} इसमें तीन पात्रों का अंकन मुख्य रूप से हुआ है—मास्टर पाँचू मोपास, जमींदार दयास और बनिया मोलाई।

'महाकास'^{११६} के बाद नागर की दूसरी कृति 'सेठ बाकेमल' है। इसमें सेठ बाकेमल और चौबेजी को अधिमित्रियों की अनुभूतियों को प्रायण की प्राथमिक माया में अधिम्यक्ति की गई है।

उनकी तीसरी कृति 'बूढ़ और समुद्र स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उनकी एक असाधारण और अक्षिप्तशी रचना है। इसका अटनास्पस सखनऊ का चौक है और

११६. अमृतलास (ब), पृ० १११

११७. आन, (साहित्य विमर्शक), १९५६, पृ० १२

११८. अमृतलास (१७), पृ० १२३

११९. अमृतलास भाग '६१, पृ० ३३

१२०. संस्कृति और साहित्य, पृ० ५०

१२१. वही

के आवेग चाहे 'हिरोस्क' न भी हों पर तुच्छ भी नहीं।¹³⁷ परिकथा एक घोषणा है कि प्रतिभावान कलाकार प्राय भी भय-भय के डोर नाप सकता है—बीभापन उसकी नियति नहीं है।¹³⁸

रेबु ने ससक्त कहानियाँ भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी घीपग्यासिक चरित्रों से भिन्न नहीं। इनका कहानी-संग्रह 'डुमरी' की कुछ कहानियाँ बहुत ही 'तिरिक्त' हैं जैसे 'रसप्रिया' 'पंचसेट' 'ठीसरी कसम या मारे गये गुलफाम' सफल कहानियाँ हैं। सभी चरित्र सज्जन अविस्मरणीय और प्रेमचन्द की परम्परा के हैं। 'ठीसरी कसम' का हिरामन तो भुलाये नहीं भूलता। उसका भोसापन भारतीय जीवन और चरित्रों की सचाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमांशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'लोहे के पंख' में सन् १९२८ से '२२ तक का कथाकाल लिया है। इसके परिवर्तन की तुलना श्री इसायस बोसी के 'बहाज का पंखी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के साधार पर वह 'बहाज का पंखी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक मोंगू स्वयं अपनी धारमकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीधे-साधे रूप से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

मोंगू स्वयं का प्रतीक चरित्र है जो केवल वही काम करता है जो उसके पीछे लोच किया करते हैं।¹³⁹

देवेन्द्र सरयार्थी

देवेन्द्र सरयार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-पुत्रों के जीवन की कथा कही गई है। 'ब्रह्मपुत्र' से उनका जीवन उची तरह जुड़ा है जैसे बरती से किसान का या माता पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न प्रवृत्तियों के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कस्याय मयत नीलमणि राजारत काला प्रबहुत कादिर बर्मनदी देवकांत धनुज नीरद, मुकुल, प्रभात प्रादि प्रमुख हैं।

उनकी दूसरी कृति 'दूधबाछ' 'ब्रह्मपुत्र' की परम्परा का ही प्रांचदिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।¹⁴⁰ इसके प्रमुख पात्र प्रादिवासी संपाल हैं। इसके प्रमुख पात्र पोषिन्वम का चरित्र विकास सज्जन और स्वाभाविक है। स्वान-स्वान पर लोकगीतों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

१३५. वही

१३६. वही

१३७. मुव बेतना प्रथम '२८

१३८. दूधबाछ पृ० १५

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

नवीन कृतियों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'बया का पोंसना और चाँप की काफ़ी चर्चा हुई है। यह कृति प्रेमचन्द की स्वस्थ परम्परा में पढ़ती है। इसकी मायिका सुमाभी हर स्थिति में अपनी असहायता के बावजूद अपने सतीत्व की रक्षा में सफल होती है। किन्तु, इन सबसे प्रेमचन्द को परम्परा धामे नहीं बढ़ती। उनका ब्रह्मचर्य उपन्यास 'बप्टी की धाँसे' प्रेमचन्द की के सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में आता है। 'प्रेमाभय' के विद्रोही बसराज का विकसित रूप योदिन्द के चरित्र में मिलता है।^{१११}

इनके उपन्यासों में निरिचत रूप से एक ऐसा चरित्र होता है जिसके जीवन की मायिकता पाठकों को सदा सूती रहती है। बया का पोंसना और चाँप में वह सुमामी है, कासे फूस का पोंस में भीता है और 'क्याबीबा' में मधु ब्रूषा है।^{११२} इस प्रकार उन्होंने तीन सफल नारी-चरित्रों का निर्माण किया है जो आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकल सकता है कि उन्होंने नारी के एक विशेष 'टाइप' की प्रतिष्ठा की है और उससे भिन्न उन्हें नहीं देखना चाहते।^{११३} ऐसे आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने गाँव कस्बा या प्राथमिक तमर किसी एक कोने को पृष्ठभूमि के रूप में दिया है जहाँ वे पात्र सत्य प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास सफल नही जा सकते हैं।^{११४}

अमृतलाल नागर

नागर का प्रथम उपन्यास है 'महाकाल जो बंगाल के भीषण अकाल की अक्रियों के चित्रण से प्रारम्भ होता है—जब सर्वप्राणी भूख ने सती पुहणियों को बेरया बनाया और जानों यमराज के कराल ताल में समा गये।^{११५} इसमें तीन पात्रों का अंकन मुख्य रूप से हुआ है—मास्टर पाँचू मोपास जमींदार दयाल और बनिया मोनाई।

'महाकास'^{११६} के बाद नागर की दूसरी कृति 'छेठ बाकेमस' है। इसमें छेठ बाकेमस और चौबेजी दो अमित्र मित्रों की अनुभूतियों को आयरण की आधुनिक माया में अभिव्यक्ति दी गई है।

उनकी तीसरी कृति 'बूँद और समुद्र' स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उनकी एक महापारण और अस्तित्वात्मी रचना है। इसका मटनात्मक लक्षण का शोक है और

११६. आलोचना (८), पृ० १११

११७. आर्य, (साहित्य विशेषांक), १९३६, पृ० १२

११८. आलोचना (१७), पृ० १२३

११९. ज्योत्सना, मार्च १९, पृ० ३३

१२०. संस्कृति और साहित्य, पृ० ४०

१२१. वही

के धारण करते 'हिरोइक' न भी हों पर तुल्य भी नहीं।¹³ परिकथा एक बोधना है कि प्रतिभावान कथाकार प्रायः ही धन-धन के छोर नाप सकता है—बीनापन उसकी नियति नहीं है।¹⁴

रेणु ने ससक्त कहानियाँ भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी औपन्यासिक चरित्रों से भिन्न नहीं। इनका कहानी-संग्रह 'ठूसरी' की कुछ कहानियाँ बहुत ही चित्रिकत हैं जैसे 'रसप्रिया' 'पंचशेठ' 'ठीसरी कसम या मारे बरे दुमखम' ससक्त कहानियाँ हैं। सभी चरित्र ससक्त अतिस्मरणीय और प्रेमचन्द की परम्परा के हैं। 'ठीसरी कसम' का हिरामन तो भुसाये नहीं भूसता। उसका मोलापन भारतीय जीवन और चरित्रों की सच्चाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमांशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'बोहे के पंख' में सन् १९२८ से ३२ तक का कथाकाल लिया है। इसके परिवर्तन की तुलना भी इलाचन्द बोधो के 'बहाक का पंखी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के साधार पर यह 'बहाक का पंखी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक मँवरू स्वयं अपनी आत्मकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीधे-साधे बँब से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

मँवरू बर्ष का प्रतीक चरित्र है जो केवल बही काम करता है जो उसके जैसे लोग किया करते हैं।¹⁵

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी के 'बहापुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-पुत्रों के जीवन की कथा कही गई है। 'बहापुत्र' से इनका जीवन उसी तरह बड़ा है जैसे बरती से किसान का या माता-पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न धर्मस्थापों के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कस्याम भगत भीममणि राजाल कासा, धनबुस कादिर, चर्मनरी देवकांत, मलुन नीरव, मुकन, प्रभात भादि प्रमुख हैं।

उसकी दूसरी कृति 'दूधगाछ' 'बहापुत्र' की परम्परा का ही धार्मिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।¹⁶ इसके प्रमुख पात्र भादिबाही संबाध हैं। इसके प्रमुख पात्र नोविन्दम का चरित्र विकास सहज और स्वाभाविक है। स्वान-स्वान पर भोकपीठों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

१३२. वही

१३६. वही

१३७. युग वैतना, प्यल '२८

१३८. दूधगाछ, पृ० १२

सिर्फ शृंगार रस को छोड़कर ।^{१९९} डॉ० रामबिंसास धर्मा का मत है कि यदि यह पुस्तक 'सूनु की माँ' और 'बड़े मुनीर' के स्तर पर लिखी जाती तो वह हिन्दी-उपन्यास ही क्यों विषयसाहित्य में अद्वितीय रचना होती । 'बड़े मुनीर' की वाचना के साथ बापे का मरक कल्पनामात्र है ।^{२००}

हजारीप्रसाद द्विवेदी

आत्मकथात्मक उपन्यासों में द्विवेदीजी की कृति 'बागमट्ट' की आत्मकथा सर्वश्रेष्ठ है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता है 'हृदयचरित' के रचयिता बालभट्ट के युग के अनुकूल वातावरण की सृष्टि और सीख्यपूर्ण माया । द्विवेदीजी की घड़ी इतिहास के पृष्ठों को सजीवता प्रदान करती है जिसे 'प्रसाद' जी के समकाल कहा जा सकता है ।^{२०१}

उपन्यास में बापमट्ट पट्टिनी और निपुणिका के चरित्र बड़े ही सजीव और भावुक हैं जिनमें प्रेम का विकीर्ण बी है ।^{२०२} तीनों पात्रों के घायली प्रेम में पूजा की पवित्रता है—वासना का लक्ष भी नहीं ।^{२०३} यह द्विवेदीजी की मौलिकता है कि उन्होंने इस आत्मकथात्मक प्रकृति को एक ऐतिहासिक पात्र से सम्बद्ध कर उसे 'बागमट्ट' की आत्मकथा' कहा है ।^{२०४} चरित्र-विकास में उत्कामीय राष्ट्रीय एवं सुम चतना का स्वर भी योम देता है ।

शिष्यप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

'रुद्र' जी की कृति 'बहुती गंगा' एक महत्त्वपूर्ण कृति है । इसमें काशी नगरी के चरित्र को माहात्म्य प्रभाव की दृष्टि से चित्रित किया गया है ।^{२०५} इस कारण विभिन्न पात्रों के माध्यम से काशी के जीवन की अद्भुत मस्ती साहसिकता और स्वतंत्रताप्रियता को अभिव्यक्त किया है । सभी चरित्रों में काशी के अनुकूल मस्ती, शीरता तथा प्रेम है ।^{२०६} स्थानीय वातावरण के साथ पाठक की सहरी संबन्धना उत्पन्न करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है ।^{२०७}

इस उपन्यास में एक लम्बे काल को लिया गया है । इसीलिए पात्रों की संख्या भी काफी है । किन्तु, प्रधानता काशी नगरी को ही प्राप्त है और वही जैसे प्रधान

१९९. वही

२००. वही

२०१. हिन्दी उपन्यास (बबल), पृ० ३६

२०२. संस्कृति और साहित्य, पृ० १०४

२०३. उपन्यास के मूल तत्त्व, पृ० २६

२०४. कथा के तत्त्व, पृ० १०६

२०५. आत्र, (साहित्य विवेक), १९३८, पृ० १३

२०६. बहुती गंगा, पृ० ११

२०७. आत्र, (साहित्य विवेक) १९३८, पृ० १३

कास है २८ दिसम्बर, १९५१ से लेकर जून १९५२ तक यानी प्रथम माम बुनाव का युग^{१५५}। इसमें मध्यवर्गीय चरित्रों के एक पक्ष का चित्रण है जिनके प्रमुख पात्रों में सज्जन, महीपाल कन्या ताई मादि प्रमुख हैं। इनके अलावा भी सभी पात्र सजीव और स्वाभाविक हैं।

‘बूढ़ और समुद्र’ में इस पुरानी समाज-व्यवस्था के भीतर बनते-बिगड़ते बदलते भारतीय परिवारों का अन्धकार और धार्मिक स्वामादिक चित्रण है। इसलिए इसे ‘महाकाव्य’ भी कहा गया है।^{१५६} तो, इस परिवार की बुढ़ी है माटी और कितनी ही तरह की नारियों के चित्र उपस्थित हैं। इस कृति में—ताई, लम्बो घट्टत प्रेम से पीड़ित युवतियाँ कृषिवादी कन्याओं समर्पणीत बनकन्या एवं कितनी ही अन्य पृष्ठभूमियाँ हैं। इनके अलावा पंडित राजा डाक्टर सेखक चित्रकार, साजु गुप्ते और अन्य अनेकानेक चरित्र—जैसा प्रेमचन्द के बाबू हिन्दी के उपन्यासों में दुर्लभ है।^{१५७}

उपन्यास की धुरी है ताई^{१५८}—सज्जन के एक बड़े रईस की परित्यक्ता प्रथम पत्नी। उनकी हिंसा इतनी तीव्र है कि पति के अपराध के लिए वह बाजू द्वारा उसके माटी की जान देने पर तैयार है। पुरुष पात्रों में सज्जन और महीपाल चित्रकार एवं उपन्यासकार हैं। दोनों रईस बराने के हैं। पर अपनी सम्पत्ति खोकर महिपाल अब मध्यवर्ग का सदस्य बन चुका है।^{१५९} इनके अलावा कर्मल और रामबी साजु हैं। पात्रों की बड़ी संख्या उनकी विविधता भादि से ऐसे समुद्र चित्र सेखक ने अपनी कृति में उपस्थित किए हैं जिनकी तुलना बाबूक की रचनाओं से ही हो सकती है।^{१६०}

उनके उपन्यास ‘घटरंज के मोहरें’ का विस्तार छोटा है किन्तु पात्रों की संख्या की दृष्टि से व्यक्ति-बहुस चरित्र-बहुस। किन्तु इस उपन्यास में कोई महान पात्र नहीं है। महीनयता की एक अन्धक विविचय विह में मिली भी तो वह भी बादशाहत हरम की विनयनी में क्षुब्ध हो गई,^{१६१} जिसमें इम्तान जितना भी छका नहीं बहुत।

‘ये कोठेवालिमा’ बेदमा जीवन पर लिखा गया उनका उपन्यासनुमा संस्करण है। इसके अलावा उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं जो बहुत-सी पात्रिकाओं में छप चुकी थीं। उन्हें प्रसार गिरासा और अरुत जैसे साहित्यकारों का सम्पर्क और प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ था।^{१६२} किन्तु ‘कोठेवालिमा’ पढ़कर जो इस रस का आनन्द लेना चाहिये उन्हें गिराण ही होना पड़ेगा क्योंकि इस कृति में सभी रसों का बराबर परिपाक है

१५५. आनन्द, अक्टूबर, १९५०

१५६. समाप्तोक्त सितम्बर, '५२, पृ० १९

१५७. आलोचना (२०), पृ० ८१

१५८. वही पृ० ८३

१५९. प्रसारिका सितम्बर '५०, पृ० ८२

१६०. आलोचना (२०), पृ० ८३ (अर्थात्)

१६१. आन (साहित्य विरोधी), १९६०, पृ० ११

१६२. हिन्दी साहित्य ३१ मार्च '६२ (अर्थात्), पृ० २

सिर्फ गृणार उस को छोड़कर ।^{१०१} डॉ० रामबिंसास धर्मा का मत है कि यदि यह पुस्तक 'कुसु की माँ' और 'बड़े मुनीर' के स्तर पर लिखी जाती तो वह हिन्दी-उपन्यास ही क्यों बिरहसाहित्य में प्रद्वितीय रचना होती । 'बड़े मुनीर' की याचना के भाग्य दाम्प का मरक कल्पनामात्र है ।^{१०२}

हजारीप्रसाद द्विवेदी

भारतकपालक उपन्यासों में द्विवेदीजी की कृति 'बाणभट्ट की घातकथा' सर्व श्रेष्ठ है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता है 'हर्षचरित' के रचयिता बाणभट्ट के मुन के धनु कृष्ण बाणावरण की सृष्टि और सौम्यपूर्ण भाषा । द्विवेदीजी की सभी इतिहास के पृष्ठों को समीक्षा प्रदान करती है जिसे 'प्रसाद' भी के समकक्ष कहा जा सकता है ।^{१०३}

उपन्यास में बाणभट्ट भट्टिनी और मिपुषिका के चरित्र बड़े ही समीक्षणीय और मांसल हैं जिनमें प्रेम का त्रिकोण भी है ।^{१०४} तीनों पात्रों के घायली प्रेम में पूजा की पवित्रता है—वासना का लेश भी नहीं ।^{१०५} यह द्विवेदीजी की मोक्षिका है कि उन्होंने इस घातकपालक प्रकृति को एक ऐतिहासिक पात्र से सम्बद्ध कर उसे 'बाणभट्ट की घातकथा' कहा है ।^{१०६} चरित्र-विकास में तत्कालीन राष्ट्रीय एवं मुन चेतना का स्वर भी योग्य देठा है ।

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

'रुद्र' भी की कृति बहुरी गंगा एक महत्त्वपूर्ण कृति है । इसमें काशी नगरी के चरित्र को साक्षात्क प्रभाव की दृष्टि से चित्रित किया गया है ।^{१०७} इस कारण बिभिन्न पात्रों के माध्यम से काशी के जीवन की सम्भूत मस्ती साहसिकता और स्वर्तव्यताप्रियता को अभिव्यक्ति मिली है । सभी चरित्रों में काशी के अनुरूप मस्ती, मोठता तथा प्रेम है ।^{१०८} स्थानीय बाणावरण के साथ पाठक की गहुरी संवेदना उत्पन्न करने में लखक को पूरी सफलता मिली है ।^{१०९}

इस उपन्यास में एक सन्धे काल को लिया गया है । इसीलिए पात्रों की संख्या भी काफी है । किन्तु, प्रधानता काशी नगरी को ही प्राप्त है और बड़ी जैसे प्रधान

१२३ बही

१२४ बही

१२५ हिन्दी उपन्यास (संस्कृत), पृ० ३६

१२६ संस्कृति और साहित्य पृ० ३०४

१२७ उपन्यास के मूल तत्त्व, पृ० २६

१२८ कथा के तत्त्व, पृ० १०६

१२९ घाम, (साहित्य विवेचक), १९५८, पृ० १३

१३० बहुरी गंगा, पृ० ११

१३१ घाम, (साहित्य विवेचक), १९५८, पृ० १३

नाबिका है और सभी पात्र या बटमारों उसके जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं। पात्रों की परिस्थिति प्रवृत्ति एवं प्रकृति भिन्न होते हुए भी सबों में कुछ समान गुण हैं। उनके जीवन की अभिकांक्ष बटमारों इतिहासानुमोचित होते हुए भी प्रसौकिक होने के कारण कास्मनिक-सी बपती है।^{१११}

अमरकान्त

सेखक के कहानी-संग्रह 'बिन्दवी और बॉक' से पता चलता है कि सेखक हठ बेटना का पूबक नहीं। वे मध्यवर्ग के पारसी हैं जो प्रायः न बर का है, न बाट का। उसकी घोकात ठो घीसठ है, सेकिम होसमे घसीम है^{११२} फिर भी बस में बड़े पीठ की तरह जिसमें प्रसक्य क्षेत्र हैं। यह मध्यवर्ग उन्हें बूबता हुआ मबर घाता है हालांकि बापी बाटों की कहानियों में नहीं उतारी या सफती।^{११३} रबुषा का चरित्र बहुत प्रच्छा बन पड़ा है जो हर हासत में प्रसन्न रहना जानता है। सनता है बसि जीवन की उपबोनिता समझने की उसमें प्रबभूत घमित है।^{११४}

अमरकान्त के उपन्यास 'सूखा पत्ता' में कुछ नये किस्म के पात्र पाये हैं। इसके नायक का चरित्र-विकास बहुत ही स्वल्प और सबल बंध से विभित हो सका है यद्यपि प्रायः के समाज में तो ऐसे नबभुबकों को 'अस्ट्रेसन' का ही शिकार होना पड़ता है।^{११५}

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव एक अकिशानी सेखक हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों 'प्रेत बोलते हैं' और 'उलझे हुए सोम' का स्वान रक्षेक्ष्य है। उनकी 'कुलटा' माबर्न नापी का प्रतीक है। इनके चरित्र विकास का बड़ेस्य मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन का बिस्तेपन एवं विनय है।

उनकी प्रथम कृति 'प्रेत बोलते हैं' एक विचार-प्रधान उपन्यास है। किन्तु, इसके पात्र सजीव न होकर प्रतीकारत्मक हैं। उपन्यास के अन्त में प्रेतलोक से मध्य वर्गीय समाज के प्रेत बोलते हैं और नये जीवन^{११६} की माँग करते हैं क्योंकि 'सृजन' शिव है और मध्यवर्ग शिव का छापी 'प्रेत' है। इसीलिए इसमें आधिभिक स्पष्टता नहीं है। इसके पात्र व्यक्त न होकर प्रतिनिधि प्रतीक और टाइप हैं।^{११७}

उनकी दूसरी कृति 'उलझे हुए सोम' में युद्धोत्तरकाजीन स्त्री-गुरपों के बने

११२. घालोचना (८), पृ० ११०

११३. घालोचना (१२), पृ० ११३

११४. गुग घेतना, अग्रस २८, पृ० ६७

११५. वही

११६. घाव (साहित्य विघोषांक), १२६० पृ० १२

११७. घालोचना (१२), पृ० १००

११८. वही

बदलते विद्युत् सञ्चालकों का चित्रण है। उपन्यास के मायक-मायिका का चरित्र एवं वृष्टिकोम प्रगतिशील है।^{१०१} इसमें सूरज देशबन्धु तथा शरद प्रमुख पुरुष पात्र तथा कथा मायादेवी और पद्मा नारी-पात्राएँ हैं। इसमें भी देशबन्धु तथा सूरज का व्यक्तित्व सबसे प्रबल है। देशबन्धु जीवन में एक सफल व्यक्ति है और सूरज उतना ही असफल। पर जब मोतीदास के बाव सूरज का अपराजित व्यक्तित्व जयता है तो उपन्यास ही समाप्त हो जाता है और पाठक को भविष्य का सिर्फ एक संकेत भर पाकर संतोष करना पड़ता है।^{१०२} इस दृष्टि को चरित्र प्रमाण ही कहना चाहिए क्योंकि इसमें कथा तक का प्रयोग सिर्फ चरित्र-विकास के लिए किया गया है।^{१०३}

यादव को डा० रामविभास शर्मा ने प्रेमचन्द नागर और मायार्जुन की परंपरा का कथाकार माना है।^{१०४} उन्होंने अपनी रचनाओं में प्राच्यनिक बुद्धिजीवियों के सबसे प्रसंग एवं स्वतंत्र रास्ता अपनाने की दिशंकु-वृत्ति पर गहरा प्रहार किया है।^{१०५}

उनकी कथादृष्टियों में मार्क्सवादी चिंतन के प्राधार पर सामाजिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है। टाड़प होते हुए भी इनके अधिकांश पात्र अपनी व्यक्तिगत विधेयताएँ भी रखते हैं। लेखक ने हीन से हीन चरित्रों को भी अपनी चर्चिना दी है। उनकी परिस्थितियों और चरित्र-विकास की प्रक्रिया को जान लेने के बाव हमें उनके प्रति भी सहानुभूति हो पाती है।^{१०६}

द्विजेंद्रनाथ मिश्र नियुग, हंसराज रहबर, भीष्म साहनी, चन्द्रकिरण शीत देवरा आदि पुरानी परिपाटी के कथाकार हैं। भीष्म साहनी यथार्थ अनुभव के प्राधार पर^{१०७} अपने पात्रों को पढ़ते हैं। सोनरेस्ता कृष्णा सोबती^{१०८} और रजनी पनिकर आदि नारी-स्वभाव की सफल कथाकार हैं।

निमल वर्मा

निर्मल वर्मा के चरित्र अधिकांशतः उदास, निराश, मायूस और बसबों तथा रेस्तरां में भटकनेवाले हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय मुनक का प्रकल्पापन बेकारी और अपने प्रापके संघर्ष करने के चित्र मिलते हैं। स्वयं अपने जीवन में भटकने वाले चरित्रों का जीवन-रहस्य ही उनके पात्रों को एक विविष्टता प्रदान करता है।

१०१. हिन्दी उपन्यास (बबल), पृ० ३२३

१००. मातोचना (२१), पृ० १४

१०१. वही

१०२. उपन्यास और लोक जीवन, मुद्रिका

१०३. उखड़े हुए लोग, पृ० २११

१०४. हिन्दी उपन्यास (वीवास्तव), पृ० ४०१

१०५. लीक की दावत

१०६. कहानी (विद्यापीठ), १९५६, प० ३

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रसंशनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मकतूर जीवन के पित्र प्रकृत करने में सफल हैं। उनकी कहानी 'बस्ताब', 'बाबू जोशी का बटवार पारि' में मानव-स्वभाव की निर्मल भाँकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का प्रकृष्ट अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनकी कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'धंभेरे बन्धु क्रमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

'धंभेरे बंधु क्रमरे' के पात्र नीलिमा सुनता हर्जस सुरभीत सुपमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन यादि सभी विविध जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इसके साथ ही मैं प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक विविध में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक दुष्टों की प्रसिद्धि मिलती है।¹⁰⁰

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पत्र की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके बंधु होते पात्रों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण दुबले हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संवर्धनीय नायक यथावत् से टकराता हुआ तथा दृष्टिकोण अपनाते की ओर बढ़ता है।¹⁰¹ इस नायक के चरित्र का विकास साधना, सुधीया और आशापता के संसर्ग में होता है। ये तीनों नारियाँ उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल जाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।¹⁰²

इस उपन्यास के पात्रों में प्रचैय इलाक़ा बोधी और जैनेन्द्र के चरित्रों से मिल कर कोई विकास नहीं बीसता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए, कृत्रिम बुनियाद के वाली एवं व्यक्तित्वहीन बीसते हैं। इसी कारण प्रो० नरसिंह बिलोचन शर्मा¹⁰³ एवं शिवरामसिंह चौहान¹⁰⁴ की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अप्राम्य प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'पत्र की बापरी' में चरित्र-विकास की दिसा में एक नया

१०० नवनीत मई ६२, पृ० १२८

१०१ साहित्यानुसंधान, पृ० २३२

१०२ हिन्दी उपन्यास (पत्र), पृ० २३६

१०३ दृष्टिकोण

१०४ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकती है।^{१८१}

उसके एक दूसरे उपवास 'बाहर भीतर पर बेम्स स्थायस के मुक्तिधिस का प्रभाव है। उसका अन्तःकरण भी मुक्तिधिस के सम्बन्ध में बास्टर एसन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।^{१८२}

उसके एक और उपवास 'रोड़ और परपर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असमर्थियों और धर्मियों के अर्थ पर करारा व्यंग्य हुआ है।

डा० धमवीर भारती

लेखक के दो उपवास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा' में अन्तःमुख मध्यवर्गीय अर्थियों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का यह और व्यक्ति-वाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुभा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुभा भी अन्तःमुखी भावपूर्णता में विरक्त होती हुई अर्थ की सधि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।^{१८३} लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति किठनी विषम, अतिप्रसन्न एवं विकृत है।^{१८४}

'सूरज का सातवां घोड़ा' टेक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के अर्थियों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उसकी कहानी 'गुल की बगों' एक मार्मिक कहानी है। अर्थ-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके अर्थ निराशावादी एवं उदात्त प्रतीत होते हैं^{१८५} जिन्हें अन्तःमुखी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'बूढ़े मस्तूत' १९३४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपवास की नायिका रंजना कहती है, 'नारी पिशा है जब हम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस पिशा की क्या समझ सकते हो'^{१८६} यह फिर कहती है—'मेरे पास केवल एक प्रश्न है वेदा शरीर। सबसे इस प्रश्न के उत्तर दिये, अपने-अपने हय पर, पर कोई भी मुझे क्या

१८२ श्री डाइग्नल प्राक्त इच्छिया, पठारवरी, १९, १९६१, पृ० ४

१८३ श्री इ गलिय नाथेल पृ० ४३१

१८४ धामोचना (१३), पृ० १३८

१८५ हिन्दी उपवास (धमवीर), पृ० २३८

१८६ कहानी (विशेषांक), १९३६

१८७ बूढ़े मस्तूत पृ० २१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रसंगीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के पित्र प्रकृति करने में सफल हैं। उनकी कहानी 'उस्ताद', 'बाग्य', जोशी का बटवार प्रादि में मानव-स्वभाव की निर्मल मंकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'धंभेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएँ हैं।

'धंभेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा सुनधा हरबंस सुरभीत सुपमा ठकुराइन तथा सिधक मधुसूदन प्रादि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके द्वारा ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और दिव्यी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक सिद्धि में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक इन्द्रों की प्रसिद्धि मिली है।¹⁰⁰

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पक्ष की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके बट्ट होते प्रादरों का संग्रह मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के मायक कबीर जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण दूबटे हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संवर्धनीय नायक मधार्थ से टकराता हुआ गया दृष्टिकोण प्रपनाने की ओर बढ़ता है।¹⁰¹ इस नायक के चरित्र का विकास छावना सुजीला और धावनाता के संघर्ष में होता है। वे तीनों नारियाँ उसके मत की तीन प्रकृतियों से मिल जाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से सिद्धक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष परत की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।¹⁰²

इस उपन्यास के पात्रों में प्रजेय इनाबन्ध जोशी और बीनेन्द्र के चरित्रों से मिलन कोई विकास नहीं मिलता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यतिरिक्तहीन बीबते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन किन्नेनन धर्म¹⁰³ एवं सिधकानसिंह जोशी¹⁰⁴ की राम में इस उपन्यास का अध्ययन समय का प्रपन्थ्य प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'मजबूत की डायरी' में चरित्र-विकास की विधा में एक नया

१०७ नवनीत आई ६२, पृ० १२८

१०८ साहित्यानुवीक्षण, पृ २३२

१०९ हिन्दी उपन्यास (बचन), पृ० २३६

११० दृष्टिकोण

१११ धावनाता के मत पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।^{१८१}

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहुर भीतर पर जेम्स प्रामस के युक्तिविषय का प्रभाव है। उसका बच्चा नायक भी युक्तिविषय के सम्बन्ध में बास्टर एमन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।^{१८२}

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े घोर परपर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की प्रसवक्रियाओं घोर धमिकों के खरिब पर कटाव व्यंग्य हुआ है।

डा० धमबीर भारती

सैलक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का साठवां घोड़ा' में व्याधोन्मुख मध्यवर्गीय खरिबों का चित्रण है। इसके नायक खंडर का बहु घोर व्यक्तित्वाव स्वयं जैसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका साध प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अत्यावहारिक धार्षबाद में विश्वास करती हुई प्रशेय की शक्ति की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।^{१८३} सैलक ने अपनी कथा साध यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम कड़िप्रसूत एवं विडूत है।^{१८४}

'सूरज का साठवां घोड़ा' टेक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एक निम्नमध्य वर्ग के खरिबों की अनेक कोनों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'कुल की बर्गों' एक मानिक कहानी है। खरिब-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कृष्ण मिश्राकर यह कहा था सकता है कि उनके खरिब निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं^{१८५} किन्तु खेडरवादी परम्परा का विदूत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'दुबते मस्तूभ' १९३४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी घोर उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है "नारी शिवा है जब इन स्वयं को नहीं समझ पाती तब तुम उस शिवा को क्या समझ सकते" यह फिर कहती है—"मेरे पास केवल एक प्रपन है येरा शरीर। उसने इस प्रपन के उत्तर दिये अपने-अपने ङंग पर, पर कोई भी मुझे क्या

१८२ बी टाइम्स प्राठ इण्डिया, फरवरी, १९, १९६१, पृ० ४

१८३ बी इंडियन लाइव, पृ० ४३१

१८४ घालोचना (११), पृ० १३८

१८५ हिन्दी उपन्यास (धन), पृ० २३८

१८६ कहानी (विद्योबाक), १९३६

१८७ दुबते मस्तूभ, पृ० २१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रसंगीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र प्रकट करने में सफल हैं। उनकी कहानी रचनावली 'कोसी का बटवार' आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल भांकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पाठों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन से किये गये हैं। उनकी कहानी संग्रह 'जातवर और जातवर' एवं 'अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएँ हैं।

'अंधेरे बन्द कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हर्षसुरजीत सुपमा ठकुराइन तथा सैलक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाथ ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और जिरगी' के पाठों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक चित्र में काम करती हुई विभिन्न चरित्रों का चित्रण एवं उनके मानसिक दुर्घटों की प्रतियोगिता मिली है।^{१००}

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पय की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके लक्ष्य होते आदर्शों का संघर्ष मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के मायक तबीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण प्रदान करने की ओर बढ़ता है।^{१०१} इस नायक के चरित्र का विकास राजना सुधीला और आशासता के संघर्ष में होता है। ये तीनों नारियाँ उसके मत की तीन प्रतियोगियों से भेंट खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से सैलक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।^{१०२}

इस उपन्यास के पाठों में अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी और बनेन्द्र के चरित्रों से मिल कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण श्री नरतिन बिलोचन समी^{१०३} एवं सिधदान्तसिंह चौहान^{१०४} की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अप्रत्यय प्रतीत हुआ।

उनकी कुछी दृष्टि 'अज्ञेय की शायरी' में चरित्र-विकास की विधा में एक नया

१००. लक्ष्मी नई '६२ पृ० १२८

१०१. साहित्यानुसूचित, पृ० २३२

१०२. हिन्दी उपन्यास (बचन), पृ० २३६

१०३. दृष्टिकोण

१०४. आलोचना काल पृ० ११

पन मिसता है। इसमें मन के अभेदन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिस सकी है।^{१८२}

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहुर भीतर' पर जेम्स जबायस के युक्तिवित्त का प्रभाव है। उसका बच्चा नामक नी युक्तिवित्त के सम्बन्ध में वास्टर एसन द्वारा व्यक्त विचारोंके अनुसार ही है।^{१८३}

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े घोर परवर' में मकान की समस्या की पुष्टसूचि में मध्यवर्गीय जीवन की प्रसंगवित्तों और अभिवक्तों के चरित्र पर करारा व्यक्त हुआ है।

डा० धमवीर भारती

सैकड़ के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवठा' एवं 'सूरज का सातवां बोझ' में धर्मगोष्ठीय मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके मायक चरित्र का अर्ध घोर व्यक्ति-वाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका साध प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर बसता जाता है। सुधा भी प्रभावहारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई प्रज्ञेय की शक्ति की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।^{१८४} लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति किठनी विषम, कठिणस्त एवं विह्वल है।^{१८५}

'सूरज का सातवां बोझ' टैक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोषों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुन की बन्नी' एक मानसिक कहानी है। चरित्र-विश्लेष ही इस कहानी की विशेषता है।

कृष्ण मिसाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं^{१८६} जिन्हें देखकरवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तुन' १९३४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समाप्ता है—'नारी घोर उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की मायिका रचना कहती है, "नारी शिवा है जब हम स्वयं को नहीं समझ पाती तब तुम उस शिवा को क्या समझ सकोगे" यह फिर कहती है—'मेरे पास केवल एक प्रश्न है वेदा शरीर। सबसे इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर, पर कोई भी मुझे क्या

१८२ बी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १९, १९५१, पृ० ४

१८३ बी इंगलिश नाबेल पृ० ४३१

१८४ आलोचना (१३), पृ० १३८

१८५ हिन्दो उपन्यास (पत्र) पृ० २५८

१८६ कहानी (विशेषांक) १९३६

१८७ डूबते मस्तुन पृ० २१०

देवराज जी

नये कथाकारों में देवराज जी के चरित्र भी प्रगल्भगीय एवं सफल होते हैं। वे पहली कथा मन्सूर जीवन के बिना प्रकट करने में सफल हैं। उनकी कहानी जस्ताक पाण्डू कोठी का दरबार आदि में मानव-स्वभाव की निपल भाँकी मिलती है।

मोहन राव

मोहन राव ने नारों का प्रथम अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से बंधे दते हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'घंटेरे बरद कमेंरे' (अपत्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

'घंटेरे बरद कमेंरे' के पात्र नीतिया मुख्या हरबंस सुखीठ सुयमा ठकुराहन तथा लेशक मन्सूरहन आदि सभी विविध जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाथ ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और विस्मय' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक सितिक में काम करती हुई विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण एवं उनके मानसिक दृष्टियों की प्रतिबिम्बित मिलती है।¹⁰⁰

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पप की सोच' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके बच्ये होते आर्यों का संघटन मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के बचक नवीन जीवन-दृष्टियों के सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण दृष्टते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ बचा दृष्टिकोण मनमाने की ओर बढ़ता है।¹⁰¹ इस नायक के चरित्र का विकास सामना सुखीठा और आत्मासता के संघर्ष में होता है। ये तीनों नायिका उनके मठ की तीन प्रकृतियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।¹⁰²

इस उपन्यास के पात्रों में प्रजेर, इलाक़ात्र जीजी और बनेर के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीघता। वे सामाजिक जीवन से बचे हुए इतिम दुनिया के बासी एवं आतिथ्यहीन होखते हैं। इसी कारण श्री० नरिन चितोचन एम¹⁰³ एवं प्रियदाससिंह चौहान¹⁰⁴ की राय में इस उपन्यास का अध्ययन सबसे का प्रथम्य प्रतीत हुआ।

उनको इसी प्रति प्रजेर की मायरी में चरित्र-विकास की विद्या में एक नया

- १०० बरमोड मई ६२, पृ० १२०
 १०१ साहित्यानुसंधान, पृ० २२२
 १०२ दिव्यो उपन्यास (बचन), पृ० २२६
 १०३ दृष्टिकोण
 १०४ आतोषका के मान पृ० ११

रचनाएं करनेवासा सबसे अधिक 'एकाग्र' साहित्यकार माना है।^{१३३} प्रेमचन्द के ऐसे ही पात्रों से बननी तुलना करते हुए उन्होंने प्ररक के चरित्रों की यथार्थता की प्रशंसा की है।^{१३४} एवं उन्हें प्रेमचन्द के चरित्रों से अधिक विकसित माना है। किन्तु मध्यमर्ग की ऐतिहासिक दृष्टमूल बकीमी के कारण, यह भी एक सत्य है कि प्ररक के पात्र कोई निर्माण नहीं कर पाते; बल्कि कहना तो यही चाहिए कि उनमें स्वतंत्र निर्माण की क्षमता का पूर्ण अभाव है।^{१३५}

प्ररक की कहानियों में चरित्र-विकास

प्ररक के कथा चरित्र अवश्य सीमित हैं, परन्तु उनमें विविधता है। वे हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके चरित्र सामान्य और प्रतिनिधि—बो भेदियों में बंटे जा सकते हैं। सामान्य, सर्वसुलभ परिचित और व्यापक चरित्रों का रहस्योद्घाटनकर प्ररक पाठकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।^{१३६} 'कामे साहब का रिश्ता नासा, बहूने का दुस्ते 'बाबी का बाकर 'ठीग सी चौबीस' का हैवर और 'उबास' का चंदन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इनका चरित्र-विवरणकर प्ररक ने हमारा चरित्र चित्रण किया है।

उनके प्रतिनिधि चरित्र विद्युत् यथार्थवादी परम्परा में बने हैं। कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लक्षणों और भावों के आधार पर इनकी सृष्टि होने के कारण उनका अस्तित्व स्वतंत्र न होकर प्रतिनिधि या टाइप हो गया है।^{१३७} इन चरित्रों में मन-स्थितिगत विशेषता की मुख्यता है और वे निरपेक्ष से अधिक सापेक्षिक हैं।^{१३८} 'पिजरा' की छाति 'पत्नीघत के लाला साहब, 'मकुर' की सेंकरी, 'उबास' का चंदन 'भासूर' का सुरभीत और 'इस्वर, 'बंगन का पीबा' का कुठठा घादि हमारे जीवन रंग के प्रतिनिधि अधिक और चरित्र कम हैं। इनके चरित्र विभाग का सबसे बड़ा कौशल चरित्रों का रहस्योद्घाटन एवं उनकी सीमाओं—कूटियों पर कट्टर ध्यान करना ही है।^{१३९} उनकी कहानियों में चरित्र-विकास काफ़ी स्वस्थ और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। प्ररक की एक कहानी 'पत्नीघत' इसका एक उदाहरण है।^{१४०} प्ररक ने अपने पाठकों एवं चरित्रों की इस बात के लिए धिक्कारती है कि वे उनकी कहानियों को समझ

सेखर जोशी

नये कथाकारों में सेखर जोशी के चरित्र भी प्रयत्नशील एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र प्रकट करने में सफल हैं। उनकी कहानी 'उस्ताद, बाबू, जोशी का बटवार घास में मानव-स्वभाव की निर्मल भाँजी मिसठी है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अष्टाध्याय किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'आनवर और आनवर' एवं 'अंधेरे बंद कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र गीतिया सुनता हरबंस सुरभीत सुपमा ठकुराइन तथा सेखर मधुसूदन घास सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाथ ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और तिमिरी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की प्रथम्यक्ति मिली है।^{१००}

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके लट्ट होते घावों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नामक कबीर जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का सर्ववर्गीय नायक मधुबं के टकराता हुआ तथा दृष्टिकोण घपनाने की और बढ़ता है।^{१०१} इस नायक के चरित्र का विकास सावना सुधीला और घाघालता के संघर्ष में होता है। ये तीनों नारियाँ उसके मठ की तीन प्रभुत्वों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से सेखर ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।^{१०२}

इस उपन्यास के पात्रों में अश्वेत इसाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से मिलन कोई विकास नहीं बीकता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कश्मि बुनिया के बासी एवं व्यतिरिक्तहीन वीरते हैं। इसी कारण प्रो० नमिन बिलोचन घर्मा^{१०३} एवं चित्रबागसिंह चौहान^{१०४} की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अप्राम्य्य प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

१०० नवनीत पई ६२, पृ० १२८

१०१. साहिरपानुदीनन, पृ० २२२

१०२. हिन्दी उपन्यास (अवत), पृ० २२६

१०३. बुद्धिकोम

१०४. घानोचना के मान पृ० ११

पत्र मिलता है। इसमें जन के अनेक पत्रों को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।^{१५१}

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स जेम्स के युक्तिविद् का प्रभाव है। उसका अच्छा नायक भी युक्तिविद् के सम्बन्ध में वास्टर एसन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।^{१५२}

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े और पावर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और अतिक्रमों के अरि पर करारा व्यंग्य हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

केरक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां बोझ' में आधुनिक मध्यवर्गीय अरिओं का चित्रण है। इसके नायक अंधार का घई और व्यक्तिवाद स्वयं अंधे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अध्यात्महारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई अज्ञेय की प्रति की लक्ष्य अपने प्रेमों के निर्माण में टूट जाती है।^{१५३} केरक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति किन्तनी विषम, अतिप्रसन्न एवं विकृत है।^{१५४}

'सूरज का सातवां बोझ' टैक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के अरिओं को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुन की बानों' एक यादिक कहानी है। अरि-विकास ही रथ कहानी की विशेषता है।

कूल निमाकर यह कहा जा सकता है कि उनके अरि निराशासारी एवं उदास प्रतीत होते हैं^{१५५} जिन्हें देखरकारी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'बूढ़े मस्तूम' १९३४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'भारी और उसका सूँवर घरी'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, 'भारी यिवा है जब हम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस निवा को क्या समझ सकोगे'^{१५६} यह फिर कहती है—'मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा अरि'। इसने इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर पर कोई भी मुझे क्या

१५२. डी टाइम्स प्राक इण्डिया, अरबरी, १९, १९११, पृ० ४

१५३. डी इण्डिया नावल पृ० ४३१

१५४. आनोचना (१३) पृ० १३८

१५५. हिंदी उपन्यास (बनर), पृ० २३८

१५६. कहानी (विद्योती), १९३६

१५७. अनेक मस्तूम, पृ० २१०

नये कथाकारों में सेखर जोशी के चरित्र भी प्रसंगिक एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के पित्र प्रकृत करने में सफल हैं। उनकी कहानी 'उठाने' 'बागू', जोशी का बटवार घाटि में मानव-स्वभाव की निर्मल भाँकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का बख्शा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से मिले गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'धँपेरे बन्ध कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उन्मुख रचनाएँ हैं।

उनके बंद नमरे' के पात्र भीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुपमा ठकुरान तथा लैपक मधुसूदन आदि सनी विविष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाथ ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और बिम्बयी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक लितिक में काम करती हुई विभिन्न चरित्रों का चित्रण एवं उनके मानसिक दुःखों की समीक्षा मिलती है।^{१००}

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पत्र की बीज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके बट होते घाटों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक कभी जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संवर्धनीय नायक मन्मथ से टकराता हुआ मना दृष्टिकोण प्रदान करने की ओर बढ़ता है।^{१०१} इस नायक के चरित्र का विकास साक्षात् सुधीला और घापातता के संघर्ष में होता है। वे तीनों गारियाँ उनके मत की तीव्र प्रभुतियों से मैन जाती है। इस तरह इस नायक के साम्प्रम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पत्र की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।^{१०२}

इस उपन्यास के पात्रों में अनेक इलाक़त जोशी और वीरेश के चरित्रों से निम्न कोई विकास नहीं बीजता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृषि दुनिया के बासी एवं व्यष्टिरहीन बीजते हैं। इसी कारण प्रो० ललित बिसोचन घाना^{१०३} एवं चित्रदानसिंह चौहान^{१०४} की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का प्राम्थ्य प्रतीत हुआ। उनका दृष्टि इति 'भजन की डायरी' में चरित्र-विकास की विधा में एक नया

^{१००} ललित नई ६२, पृ० १२५

^{१०१} साहित्यमण्डलन पृ० २२२

^{१०२} हिन्दी उपन्यास (बचन), पृ० २२६

^{१०३} दृष्टिकोण

^{१०४} मानसिकता के पात्र पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के प्रवेतन पक्ष को वैदिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकती है।^{१५१}

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहुर भीतर' पर जेम्स जामस के सूक्तित्व का प्रभाव है। उसका सत्ता मायक भी युक्तिविषय के सम्बन्ध में बास्टर एसन द्वारा व्यक्त विचारों के समुदाय ही है।^{१५२}

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े घोर परपर' में मकाम की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की प्रवर्गठियों और भविकों के अरिष पर कटाप व्यंग्य हुआ है।

डा० धमवीर भारती

सेकक के दो उपन्यास 'गुताहों का देवता' एवं 'सूरज का साठवां बोझ' में अग्रशोभुस मध्यवर्गीय अरिषों का चित्रण है। इसके मायक अंदर का अर्ह घोर व्यक्तिवाद स्वयं उठे गुताह पर गुताह करते जाने के लिए मजबूर करता है। गुता के प्रति उसका साप प्रेम-भ्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। गुता भी अभावहारिक धारणाबाह में विश्वास करती हुई अज्ञेय की घण्टि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।^{१५३} सेकक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति किन्तनी विषम अद्विप्रसू एवं विद्वत है।^{१५४}

'सूरज का साठवां बोझ' टेकनीक की दृष्टि से एक गया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के अरिषों को अनेक कोर्णों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बर्णों' एक मानिक कहानी है। अरिष-विकास ही इस कहानी की विशेषता है। कुल निमाकर यह कहा जा सकता है कि उनके अरिष निराशावादी एवं उदास प्रतीय होते हैं।^{१५५} अिन्हें रोखरवादी परम्परा का विद्वत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मतलूस' १९५५ की एक महत्वपूर्ण इति है। इसमें समस्या है—नारी घोर उसका सुबर घटीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, "नारी घिबा है जब हम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब गुन उस निबा को क्या समझ सकते हैं"^{१५६} वह फिर कहती है—"मेरे पास केवल एक प्रस्न है मेरा घटीर। सबने इस प्रस्न के उत्तर दिने अपने-अपने ढग पर पर कोई भी मुझे क्या

१५२ बी डाइम्स आक इण्डिया, करवरी, १९, १९५१, पृ० ५

१५३ बी इयलिस नाबैल पृ० ५३१

१५४ आलोचना (१३) पृ० १३८

१५५ हिंदी उपन्यास (अकत), पृ० २३८

१५६ कहानी (विद्योवांक) १९५६

१५७ डूबते मतलूस पृ० २१०

प्रमत्तधीबा कर सका है।^{१००}। और प्रमत्त में संतार को सब कूट देकर धी विनिष्ठ रहनेवाली गारी रखना भारतवर्षीय कर सेठी है,^{१०१} यह जानते हुए भी कि उसका कहीं कोई दोष नहीं है। इस तरह इस उपन्यास में गारी के सिर्फ एकात्मिक और अतिरिक्त रूप को ही देखा गया है।^{१०२}

विष्णु प्रभाकर

लेखक का उपन्यास 'निश्चित' संक्रांतिकामीन समाज एवं उसके विरुद्ध संपर्कित व्यक्तिवादी चेतना को प्रकट करता है। यदि लेखक पात्रों को अपना जीवन जीने के लिए थोड़ा स्वतंत्र छोड़ता तो उपन्यास का रूप ही दूसरा होता।^{१०३} लेखक ने उन पात्रों को अपने भीतर अन्तर्गत बंदोबंद एवं परिच्छेद पर विचार पाठे दिखाया क्योंकि इसी तरह कुछ भेदकर उनके व्यक्तिगत का विकास होता है।^{१०४}

रामकुमार

रामकुमार के चरित्र पठने-दुबसे बीमार, विवर्ध होने पर भी निरसह्य और निरस्तहित नहीं बीबते। अर्थात् 'अस्तिस्वराज' से एक हृद तक प्रभावित होकर अपने चरित्रों को सृष्टि की है। 'परिध की एक घाम' नामक उनकी कहानी इसका उदाहरण है।^{१०५} उनकी नवी दृष्टि का लोठ सार्ज का नही दर्शन है।^{१०६}

गिरधर गोपाल

अपनी कृति 'चरित्रों के खंडहर' में लेखक ने एक नवीन प्रयोग किया है जिसमें मध्यवर्ग के बड़े वर्गमें जीवन की भूटन का विषय है।^{१०७} अक्षय से जित्त जमला और स्नेह के संस्कारों में यह पालित है। अर्थात् प्रेरणा बहमकर यह जिम्मेगी के धोरे के सामना करता है।^{१०८} इस उपन्यास के चरित्र और नायक सभी नवीन हैं। इसाचन्द्र पोधी ने इस कृति के नायक को 'जटिल प्रकृति का' नामते हुए लेखक को 'दोसे रहस्वमय चरित्र' के विषय के लिए बचाई दी है।^{१०९} इसका नायक बलंत अशुभ

१००. वही पृ० २०२

१०१. वही पृ० २१०

१०२. कल्पना मार्च १९२६

१०३. कथा के तरंग, पृ० २१०

१०४. हिन्दी उपन्यास (पत्र), पृ० १६३

१०५. कल्पना, अक्तूबर, १९२६

१०६. हुला बीबी और अन्य कहानियाँ

१०७. आलोचना (१६) पृ० १२०

१०८. आलोचना (१४), पृ० ११२

१०९. चरित्रों के खंडहर, भूमिका, पृ० ४२

की उपज है। वह उस भारतीय युग की भी उपज है जब भारत विचार-संतुलन की दृष्टि को पुनः प्राप्त करने की धोरत बढ़ रहा था।^{१९९} वह एक सहज स्वयं-समन्वय की धारणा रखने वाला व्यक्ति है।

डॉ० प्रभाकर माचवे

माचवे ने अपने प्रयोगात्मक उपन्यास 'परम्पु' में मध्यवर्गीय जीवन की ही धपना विषय बनाया है। इसके सभी पात्र कुलीन शिक्षित और संभ्रांत हैं जिनके चेतना-प्रवाह का वैकल्य ने सफल प्रकन किया है।^{२००}

सर्वेस्वरदयाल सक्सेना

'सोया हुआ जस' की रचना मनोवैज्ञानिक पद्धति पर की गयी है। यह एक प्रायोगिक सन्तु-उपन्यास है। इसका आधार मध्यवर्गीय तृष्णा और 'फस्ट्रेटन' है। इसके सहचित्र एक पात्र विधेय की मानसिक प्रतिक्रिया एवं स्वयं-दर्शन के आधार पर सूनबद्ध किये गये हैं। धारि से संत तक मध्यवर्ग की मुख्य प्रतृप्ति को विषय के रूप में ही चित्रित किया गया है।^{२०१}

जैनकुमार जैन

नवीन उपन्यासकारों में श्री जैन सक्सेनधीय हैं। उनकी कृति 'उद्भ्रांत' में चरित्र-विकास की दिसा में कुछ नये प्रश्न उपस्थित किये गये हैं जिसे 'साहित्य-संवेद्य' के विद्वान संपादक ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक 'नया मोड़' माना है। 'उद्भ्रांत' धपराध एवं धपराधियों के वातावरण में भी जीवन के उदात्त तत्वों से प्रोत् प्रोत् है। इसमें प्राधुनिक मनोविज्ञान को चुनीटी देते हुए यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्य जन्म से ही धच्छा या बुरा नहीं होता उसे सामाजिक-भौतिक साधन ही ऐसा करने को बाध्य करते हैं।^{२०२} उद्भ्रांत के दो प्रमुख पात्र ठिबारी और निरंजन समाज के उप-सूक्त वातावरण से ही पीड़ित हैं। निरंजन 'धुपचाप' भूसा मरना नहीं चाहता। इसलिये वह धपराध-वृत्ति को धपनाता है और ठिबारी के मना करने पर भी नहीं मानता।^{२०३}

यह कृति इसपर भी प्रकाश डालती है कि धाज की रंगी राजनीति और निकम्मे धासन की बरोलत ही निरंजन और ठिबारी जैसे बेकार एवं विचारवान युवकों

१९९ हिन्दी उपन्यास, पृ० २८०

१९९. साहित्य संवेद्य जूनार्ह-धपस्त ३६

२०० धासोचना (१७), पृ० १३४

२०१ साहित्य संवेद्य धरवरी १९३६

२०२. धम्ययन के विचार, पृ० ४०

२०३ उद्भ्रांत

की तरह उसमें स्वार्थपरता और सोम धारण है।^१ पर इसी कारण अपने सुख के लिए वह किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता। होरी में सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न दुर्बल है। पर उन दुर्बलों के बावजूद वह महान है।^२ उसके जीवन की असफलताएँ उसके सुख की ही असफलताएँ हैं। वह मरचोग्मुख युव का प्रतिनिधि है। धान का किसान उसकी तरह नहीं वह 'बसन्तमा' और 'बोबर' की तरह है।^३ वह अनीसारी बाठाबरण में उत्कृष्ट समाज में जीने वाला और प्राचीनता का समर्पक है। फिर भी उसकी परिस्थितियों में विद्रोह के परमाणु धारण हैं जिसमें बीकर बोबर एक विद्रोही मनुष्य बनता है।^४

पारिवारिक जीवन में भी वह टाढ़प और द्विबिबुधन दोनों है—स्त्री को पीटने और प्यार करने वाला। लेकिन अनिया और वह दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। वह आदर्श पिता है, "माईं उठका कुप बैठे पर वह बनों उठका कुप बैठे।" इसमें पारिवारिक स्नेह पूर्णरूप में है। "जीवन के संघर्ष में उसकी व्यवस्था हार हुई। पर उसने कभी हिम्मत न हारी।"^५ इसलिए उसके महान जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को लेकर ही प्रेमचन्द ने एक महान अरिज की सृष्टि की।^६ वह सामाज्य होकर भी एक महान आत्मा है और उसके जीवन की असफलता ही उसकी महानता है।^७ वह अचबर ही एक सामाज्य पात्र रहा। पर उसके मुँह से निकले "ऐसे मोटेपन में क्या सुख सुख तक है जब सभी मोटे हों" प्रायः वाक्य उसकी प्रकाश व्यक्तता के प्रमाण हैं।^८ होरी के जीवन के अन्धे और बुरे दोनों पहलू विभित हुए हैं जो उसे भारतीय किसान के जीवन का पूर्णरूप प्रतिनिधि बनाते हैं। सूरदास में असाधारणता है। पर सामाज्य होने के बावजूद होरी सूरदास के निकट है।^९

कुछ घटोत्कचों ने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या होरी कल्पोदास भावक है।^{१०} पर उसके जीवन में वह उदात्त तत्व नहीं है जो उन्हें विस्मय भय आर्तक कल्पना

७ वही

८ वही

९. उपन्यास के विचार, पृ० २१

१०. आलोचना (इतिहास अंक), पृ० २४४

११. मोदान, पृ० ५१८

१२. प्रेमचंद : उपन्यास और गल्प, पृ० १८६

१३. "होरी को सामाज्यीकृत करने की प्रयत्ना नहीं, सामाज्य होरी का विद्योवीकरण ही आचारजीकरण का स्वल्प हो गया।"—आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १४७

१४. मोदान, पृ० ५१२

१५. प्रेमचंद : (बीजित), पृ० १७५

१६. सीत-निकलन, पृ० ५०

तथा पौरव की भावना से भर दे।^{१०} उसमें रजस की प्रकृत्यता भी नहीं है। संधि भावना अधिक है। वह सभी चीजों को बर्दाश्त करता जलता है। होरी स्वयं यों है घोर मौ की सालसा रखाता है। होरी में एक मरीच की कष्ट-सहिष्णुता है। बन्ध की कठोरता नहीं।^{११} वह उस प्रकृत्यता से प्रबल्य सचर्प करता है, जिसने उसे वीर और प्रसहाय बनाया है पर बिरोह नहीं करता।^{१२} सामान्य विज्ञान होने के कारण उसमें विज्ञानों की कुर्तता भी है। पर सम्मान की सामसा से वह कभी व्यावहारिक नहीं बन पाता और बनिया तथा मोबर उसका बिरोध करते हैं।^{१३} वह प्रकृत्ये ही अपनी परिस्थितियों से सङ्गता है। सभी विज्ञानों का सपठनकर कम्युनिस्ट भीडर नहीं बनता क्योंकि वह बरती के रागात्मक संबन्ध से बँधा है।^{१४}

होरी के स्वयंहार में स्वप्राक्रमण प्रेरणावैय—प्राबुनिक मनोविज्ञान का एक सिद्धांत—प्रबन्ध पाया जाता है।^{१५} इसका प्रवर्तन उसके चरित्र में एकाधिक बार देखा जा सकता है।^{१६} 'गोदान' के बीसवें अध्याय में उसकी इस प्रवृत्ति का प्रकटा उदाहरण मिलता है। छाप ही 'गोदान' के अन्तिम पृष्ठ भी उसकी स्वप्राक्रमण वृत्ति के सबूत हैं। वहाँ मासिक की सगती बातों के उत्तर में जोरों से काम करते हुए वह अपने प्राण भी रँबा डालता है।^{१७} यहाँ उसकी प्रांतरिक प्रेरणा एक तरह से आत्महत्या का ही रूप से लती है जिसके मनोबैज्ञानिक पदभू पर फायड तथा अन्य विज्ञानों ने बहुत-सी बातें लिखी हैं।^{१८} यदि वह भीबित रहता तो उसे पीड़ा में डालकर उसके पीड़क मानस्य पावे। मरकर उसने उनसे बचसा लिया।^{१९} होरी के चरित्र क प्रबन्धन से इन मनो वैज्ञानिक तथ्यों का स्पष्टीकरण हो सकता है।^{२०}

सिखदानसिंह चौहान^{२१} ने होरी के चरित्र की विषय व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्हींमे उसे धर्मत भीबन-सहित से प्रोत्प्रोत और प्रसाय भीबट का माना है जो ठोकरें ला-लाकर बार-बार गिरता है और फिर उठकर जमता रहता है। उसक भीबन के सारे पून भारतीय विज्ञान बर्ष से जुड़े हैं। वहाँ से उसे यह धरमनीय प्रकृत्य प्राण रस प्राप्त

१० वही

११ वही

१२ वही

१३ आत्मोचना (उपम्यास ग्रंथ) पृ० १४६

१४ वही

१५ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १०१

१६ वही

१७ वही

१८ वही

१९ वही

२० वही

२१ साहित्यानुशीलन, पृ० २२६

होता है।" यह इसलिए विद्यता और बीठा जाता है क्योंकि उसकी तरह के साधनों-करीबों किस्मत रही तरह विद्यते और बीते जमे जाते हैं। इसी जन-जीवन की संघर्ष उसके प्राणों की समृद्ध है। हालांकि ध्यान यह परिस्थिति बरत चुकी है। ध्यान किशानों की चेतना शोषणकारी शक्तियों के शासन के विरुद्ध अपने जीवन-स्रोतों की रक्षा की ओर भी संकेत और संवृद्धि हो रही है। पर इस मूलतत्त्व को हिन्दी के किन्तुने रूप-स्वाकार समझकर समिन्धित दे पा रहे हैं? सन् १९२० के बाद सर्वप्रथम नायार्जुन के 'जलजलया' में ही इस मूलतत्त्व के दर्शन प्राप्त हो सके हैं।"

ब्रह्मचर्य के हुरीरी और योर्की के प्रख्यात उपन्यास 'म' के पात्रों में बड़ा साम्य है। किंतु पात्रों के हृदय में विद्रोह की चिन्तारिवां मुसय रही हैं बीठी हुरीरी की पत्नी पनिया में भी कसूती है— 'बिहम जाने ते सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा बरम से न्याय है।'" पात्रों भी सराज पीठा है, बन्धी गार्किया बक्या है धड़िल, धर्मिजानी और ईर्ष्यांशु है। हारो भी बाँसों के सीदे में बैईमानी और अपने सेकर अपनी कम्पा का विवाह एक बूढ़ से करता है—सब कुछ अपनी बखिरता और निस्वहायता के कारण। मृत्यु के समय उसके घर में मोरान के लिए 'ब वसि हूँ, न गाय न बलिमा'। पात्रों की मृत्यु के समय भी उसके लिए रोने वाला कोई नहीं। लोग जब उसकी लाश को बघनाकर जले जाते हैं तो बघका एकमात्र कुत्ता उसकी समाधि पर चुपचाप बैठकर अपनी बूक समझना प्रकट करता है।"

सुनीता अनेन्द्र

संभवतः बोधान के प्रकाशन के समय ही सन '२२ में सुनीता की रचना होली है। 'होपी' और 'सुनीता' की नायिका 'सुनीता' चरित्र-विकास के क्षेत्र में धार्मिक प्रयोग के रूप में पाये।

अनेन्द्र ने सुनीता को अपनी कल्पना की रंभीत प्रकृति से निर्मित किया है। इसीलिए उसका चरित्र धार्मिक है जो कि हुरीरी का नहीं। एक ही बुध का होने के बावजूद दोनों चरित्रों में अमीन-वासमान का अंतर है। दोनों लेखकों के चरित्र एक दूसरे के ठीक विपरीत हैं। ब्रह्मचर्य ने प्रत्येक पात्र के पीछे एवं एक-एक घटना पर टीका-टिप्पणी की है।" वर अनेन्द्र ने देता नहीं किता है।"

२६. वही

३०. प्रपतिवाद

३१. धार्मिकता (१३), पृ० १४७

३२. साहित्य दर्शन, पृ० १०२

३३. वही

३४. 'सुनीता' का प्रथम संस्करण

३५. दृष्टिकोण, पृ० १०

३६. धार्मिकता (१३), पृ० ११०

सुनीता के चरित्र का केन्द्र बिन्दु हरिप्रसन्न है। वह जो कुछ भी बनी है हरि प्रसन्न के कारण ही। सुनीता का हीम उसके अपने त्रिया-कलाप के द्वारा ही उभरा है। सुनीता को हरिप्रसन्न का व्यक्तिगत रहस्यमय और विचित्र सपना है। उसी तरह सुनीता की प्रकृति भी अदृश और रहस्यमय है। हरिप्रसन्न ने उसे बहुत अधिक प्रभावित किया है। हरिप्रसन्न द्वारा उसके हृदय में उत्पन्न स्वन्दन को अस्वीकार करने के लिए वह अपने पतिपुत्र से भी भागती है। पति के प्रति उसका निरलस प्रेम उसके चरित्र का उदात्त पक्ष है। किन्तु उसका यह चरित्र विकास कृत्रिम और घाघरी से बोधित सपना है। सम्भवतः यह गाँधीजी के घाघरी का साहित्य के क्षेत्र में प्रति पान्न है। इसीलिए अपने मन की अहिंसा-वृत्ति द्वारा हरिप्रसन्न की कामुकता को दूरकर उसके अन्तर के ईश्वरता को जगाकर वह कहती है—“कहो कि मैं अपने को नहीं माँक्या।” “धर्म चाहना अपने को मारना ही है।” इन्हीं कारणों से आत्मोचक शिवनाथ ने सुनीता को ‘नारी और केबल मारी’ माना है।

जो भी हो हिन्दी साहित्य में सुनीता एक महत्वपूर्ण चरित्र है और अपनी कोटि में अकेली भी। उसका चरित्र-विकास पिठरपाक सम्मत् है यानी बिना पत्नी से प्रारम्भ किए हुए प्रेम की नारी और अंत में पति द्वारा पत्नीत्व की मावना से मुक्ति पाते ही एकान्त में अपने प्रेमी को मग्न समपण। वह बर्बाद या की प्राबेटक नारी भी है जो ‘पुरुषों को सामने मवाती है’ ताकि वह उससे ‘पार नहीं जा सके।’ प्रेमचन्द की तुलना में अनेक ने अपने पार्श्वों को इस तरह सभारा और बनाया है कि पीबन के अरूप उद्गमों तक हमारी वृष्टि जा सके। सुनीता का चरित्र वेस्टास्ट नारी मनोविज्ञान पर निर्मित है और असाधारण है। उन्होंने हिन्दी साहित्य में अरतचन्द्र के अभाव की पूर्ति की है। वेस्टास्टवाद की तरह उनके चरित्रों के अक्षय

३७ वही

३८ विस्लेषण, पृ० ८३

३९. अनेक और उनके उपन्यास, पृ० ६०

४० वही

४१ सुनीता, पृ० १६६

४२ आत्मोचना (११), पृ० ११३

४३ आत्मोचना (उपन्यास अंक), पृ० ११३

४४ सुनीता पृ० १३

४५ हीम-निरूपण पृ० २७

४६ हीम-निरूपण पृ० ३१

४७ वही, पृ० ४९

४८ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १४०

४९ आत्मोचना (इतिहास अंक), पृ० २२६

घानुतिक हिन्दी कथा-साहित्य की रचना-विकास
 विद्यते हैं, फिर भी उनमें विमुख की सम्पूर्णता है। इसीलिए कथारस की उपसम्भवि कीर
 पात्रों को पहचानने के लिए एवं सुनीता की लम्बा का रहस्य समझने के लिए
 पाठकों को स्वयं अपनी धीर से भी कुछ समाना धारण्यक है। "हरि तो प्रजीव है ही।
 लेकिन सुनीता का पति यह शीकाट कैसा है जो उसके प्रीक्षण को टोक करने के लिए
 अपनी पत्नी को भी बाँध पर लया देता है और यह सुनीता भी कैसी प्रसीकिक कीर
 रहस्यमयी है कि आखिर वह हरि के प्रीक्षण को टोक ही डालती है।" श्री भोपालकृष्ण
 कीर ने इसीलिए सुनीता के मुँह से कहसनाया है—“यह एक प्रयोग हो सकता है जो
 बनेश्वरी ने मुझ परबार्थ मिट्टी को अपने विचारों से सजाकर किया यदि आपकी
 कला के लिए मुझे अपने मूलरूप का क्षाय करना पड़ा तो यह भी भारतीय नारी के
 लिए हीमाय की बात है।”

शेखर प्रमेय

शेखर प्रसिद्ध उपन्यासकार डा० प्रमेय के 'शेखर एक जीवनी' का सम्पूर्ण
 नायक है। शेखर के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संवितिक संघर्षों कीर विचारों का विनय
 ही इस उपन्यास का विषय है। इसीलिए प्रवृत्तिवादी धालोकक^१ शेखर को संवितिक
 करिभ मानते हैं। बँसे वह रसमय कीर राष्ट्रवादी भी है। पर उसे व्यक्तिगत पर्य
 की भावना बड़ी तीव्र है। इसीलिए डा० नयेश्वरी ने उसे 'सर्वकर' इसाचर जोड़ी ने
 'भोर' एवं प्रजाकर माचने से उसे 'उद्धत' घाँववादी माना है।^२ किन्तु धालोकक
 विश्वम्भर मानव ने शेखर को 'एक जन्मजात विद्रोही' मानते हुए उसके यह की
 भावना को धालोककनायक में परिणत होता हुआ बताया है जिसके बिना मनुष्य राव
 के प्रतिरिक्त कीर कुछ नहीं रहता।^३ फिर भी शेखर जीवन की सभी विघामों में
 धाराधारक है और उसके विद्रोही स्वभाव ने उसकी धाराधारकता को कमजाने में
 धारस्य धोषदायक किया है।^४ शेखर की जिज्ञासा धारस्य है। अपनी इस जिज्ञासा को धार
 करने के लिए वह कमी-कमार ऐसे काम भी कर डालता है जो धामाज के नियमों के
 विरुद्ध हैं।^५ उसके सभी धाम्य नियम विरोधी कार्य और धटनाएँ एवं विद्रोही
 स्वभाव धारणन में ही उसके ना-बाप धारा की गई उपेक्षा के कारण ही होते हैं जिसे

१०. डा० हि० क० सा० कीर मनो० पृ० १४०
११. वही
१२. वही, पृ० १४१
१३. धाकाधवाची विरमी ३४ २०
१४. धिबदायकितहूँ धीहान प्रकासधर गुप्त डा० धामविताय धाम
१५. धालोककना (उपन्यास धरक), पृ० ६२
१६. वही पृ० १००
१७. धापुनिक साहित्य पृ० १७२
१८. वही

सायबबाची मनोविज्ञान हाथ समझ जा सकता है।^{११} उसके परिवार में उसकी बास सुमन सहज बुद्धि का प्रारम्भ से ही निराहार हुआ था जिस कारण ही उसका घर्ह और बिग्रोह पतला और बाद में चलकर बड़ा बुरा बन गया।^{१२} ऐसा जान पड़ता है कि जिसविश्लेषणवादी बालमनोविज्ञान के आधार पर ही शेखर का निर्माण हुआ है।^{१३}

शेखर को डा० वैद्यराज उपाय्याय ने 'कोठरी की बात' के नायक सुदीप्त का ही विकसित रूप माना है।^{१४} अन्तर यही है कि उपन्यास की सारी भटनाएँ सिर्फ शेखर के इरियर्ष उसके भाव-केन्द्र के अतुलिक भूमती रहती हैं और वह स्वयं सार उपन्यास का आत्माकार है। एक सीमित दृष्टिकोण की रोशनी में उपन्यास का संकीर्ण चित्र उपस्थित करना इस कृति की टेक्निकस सफलता अक्षर्य है।^{१५}

शेखर एक विकासशील चरित्र है। उसकी बिग्रोह बृत्ति उसमें मानवता की भावना का पोषण करती है और मानवता की भावना अपनी पूर्ति के लिए उसे समाज और राजनीति में घसीट लेती है। उसमें बुराई चल्कट भावना है प्रेम की जिसकी पूर्ति जीवन भर भटकने के बाद शक्ति के प्यार में होती है। तीसरी भावना है शेरक बनने की जिसके लिए भी वह अनेक कष्ट उठाता और साधना करता है। पर इतना स्पष्ट है कि उसकी सर्वोपरि भावना बिग्रोह ही है, प्रेम जिसकी प्रेरणा है और साहित्य-सृष्टि है इतिहास।^{१६} इस तरह, शेखर, आत्मसमीक्षा प्रधान चरित्र है^{१७} और इसी कारण उसकी चेतना में दुनिया भरके विषय घामिल हैं तथा उसमें हम केवल जसते मापे पर हाथ भर खूँते हैं।^{१८} ललक का उद्देश्य कथा कहना नहीं बल्कि चरित्रांकन है।^{१९} और एकमात्र यही महत्त्वपूर्ण भी है।

शेखर के चरित्र में बहुत-सारी अस्वभाविकता है जिसके कुछेक कारण यों हैं।^{२०} उसकी प्रसंग प्रथा एक सम्य एव चिन्तित स्नातक की है। कई आलोचक उसे 'युग की बीज नहीं' मानते और उसे 'युग पर पहिलम की बीज बनाने की कोशिक' कहते हैं।^{२१} उनका यह भी कहना है कि ललक ने निसिन्ध भाव से शेखर का चित्रण नहीं किया

११. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १२६

१२. वही, पृ० १६६

१३. वही, पृ० १६७

१४. वही, पृ० १७२

१५. वही, पृ० १४६

१६. आलोचना (उपन्यास संक), पृ० १७५

१७. विश्लेषण (बोधी), पृ० ८७

१८. टील-निष्पन्न, पृ० ३

१९. वही, पृ० २

२०. वही पृ० ३

२१. वही पृ० ७

है और न उसमें सारेस के पात्रों की स्पष्टचरित्रता ही है।” इसीलिए ऐसे पात्रोपकों को ‘सेखर कमी-कमी की पीछे का सात चरमा’ बंधा भी बीजता है।” (क) सेखर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की ऐश-विदेश के साहित्य में इतनी धाबुलि हो चुकी है कि वह ‘टाइप’ से बहकर ‘स्टीरियोटाइप’ बन गया है। कुल मिलाकर देखा जाय तो उसका व्यक्तित्व ‘खंडित’ है। मिला-भिला कृत्व खंडों में बँटकर छोटे बर्तनघीस की धारध प्रतिभा भी नहीं बनाते।” हाँ, यहाँ वह मनोविज्ञान और बिरोहों के नमेषों से प्रभाव होकर अपने हृदय के बासोचित धारह की शक्ति प्रस्तुत करता है यहाँ वह स्नेह का पात्र बन जाता है।” ऐस के जीवन में भी उसकी प्रेम-भावना बीर-पुत्रा धारधीवता अन्धकारिता एवं विज्ञाता के स्वरूप के बर्तन होते हैं। उसके लिए राष्ट्रीयता और धारधकार की ऐसी सबध प्रेरणा बाहर से संभव भी न थी। उसे यह भी भ्रम है कि वह मुग प्रवर्तक व्यक्तित्व विधि है। किन्तु, धीव विरुध की दृष्टि से वह केवल एक मानव है, धारध प्रभव मीनिक एवं धारधन मानव। मगर ऐसा मानव अन्ध नहीं एक प्रभव है।” इसीलिए वह भारतीय जीवन और संस्कार का चरित्र नहीं। हिन्दी-उपन्यासों की परम्परा में वह एक ऐसा कुदृष्ट है जो समय बीतने के साथ ही दमनीय होता जायगा।”

सैलक प्रभेय ने ‘धारधनेपथ’ नामक अपनी पुस्तक में उसकी विस्तृत व्याख्या की है। सेखर ने अपने परिचय में यहाँ कहा है—“मिथ हर पाठक हृत्कार मुके बनाता है। मैं टटवासी हूँ मैं सेपुवासी हूँ।”

सेखर के सम्बन्ध में भी बनारसीवास जगुर्बदी द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में प्रभेय ने कहा है—“मिथ ठरह ‘ज्मा किस्तोक’ में रोम्मा रोसा एक धारधान्धेवी के धीके-धीके चले हैं, जसी ठरह में धी बसा हूँ। फिर भी सेखर एक धीवनी ‘ज्मा किस्तोक’ बीही छठि नहीं धारि।

धिवधानरिह जोहान के ‘सेखर’ को ‘बिरोही’ यही एतादृश भाव का बिरोधी बढाया है क्योंकि उसके धारध सुपर ईयो से प्राप्य मानवीय विवेक नहीं—उसका धारध एक धनुषाध, इटाप, स्वार्थी मूर्खत और परधीक व्यक्त का है।” चरित्र-विरुधता धारि धपना सब कुछ उसे धमर्तन करके भी उसके उपेसा और बीजा ही

७० यही,

७० (क) धारधोचना (इतिहास धक), पृ० ११८

७१ धिसेधध, पृ० ८८

७२ यही

७३ शीत-निधनध, पृ० १६

७४ यही, पृ० १६

७५ यही, पृ० ६८ ६९

७६ धारधनेपथ, पृ० ६४

७७ सेखर, पृ० २६

पाठी है। श्री जोहान ने 'नबी के द्वीप' के मुबन को भी खेखर का प्रतिरूप माना है जिसे सिर्फ 'बाहिप', बचने में 'बेना' उसे मान्य नहीं। वह भी पहले रेखा को अपनी वाचना वृत्ति का साधन बनाता है। फिर उसे त्यागकर गीरा के प्रति समर्पित होता है। इन कारनामों के लिए बसकी अंतरात्मा उसे कभी धिक्कारती भी नहीं क्योंकि उसमें भी अंतरात्मा का तो विकास ही नहीं हुआ है। इस तरह अज्ञेय ने चरित्रों की रचना में एक खास सौचे का प्रयोग किया है और वहाँ सौचों का प्रयोग हो वहाँ सामाजिक या मनोवैज्ञानिक सत्य उसे प्रवेश पा सकते हैं।^{७८}

खेखर ने खेखर को असाधारणता प्रदान करने का हर कलात्मक प्रयत्न किया है। लेकिन इसके बावजूद वह एक असाधारणिक और विकसित व्यक्ति है जो विदित सम्पत्तियों में पसा है किन्तु, इस वर्ग की परम्पराओं से छुटकारा पाने के लिए छुटपटा रहा है,^{७९} फिर भी वह शक्ति के प्रति चिंतना ही उत्साह दिखाता है, सतता ही वह समझौते के मार्ग पर झुकता बना जाता है।^{८०}

खेखर के विषय में अज्ञेय के शब्दों में डा० मनेन्द्र की राय है कि 'खेखर का विरलेपथ लेखक के अपने ही व्यक्ति-विकास का विरलेपथात्मक सिंहासबोधन है।'^{८१} डा० मनेन्द्र ने उसे "एक व्यक्तिपूर्ण व्यक्ति का अपने जीवन का प्रत्यासोक्तन"^{८२} बताया है।

खेखर अपने जीवन विकास के स्वनिर्मित पथ का अनुसरण करता हुआ ज्ञान के अनेक युद्धों का हमें किम्वर्धन करने में सफल होता है। हाँ, खेखर ने उसके जीवन के सत्रों को पढ़-समझकर, उनका निष्कण विकासकर पाठकों के समक्ष प्रबन्ध सभ्य बद्ध किया है।^{८३}

डा० रामविभास शर्मा ने^{८४} कहा है कि 'खेखर का विद्रोह एवं आत्मपीड़ा— दोनों ही उसके निकम्मे व्यक्तित्व के दो पहलु हैं। वह विद्रोही है, अस्तित्कारी नहीं। वह भावस्वी का अनुयायी और स्ताभिन का आसोचक है। अपनी बीमता का रोना रोकर, अपने चिर विद्रोहवाद की दुहाई देकर वह विद्रोहों की कब्रना जपाने में एक ही है।'^{८५} आचार्य नन्दबुसारे बाबुपेयी ने उसकी विद्रोह भावना को "व्यक्तिगत और काव्यनिक" माना है जिसका 'सामाजिक यथार्थ' से कतई मेल नहीं।^{८६} इलाचन्द्र

७८, साहित्यानुशीलन, पृ० ३८

७९ हिन्दी उपन्यास, पृ० २४०

८० साहित्यानुशीलन, पृ० २३९

८१ विचार और अनुभूति पृ० ३२

८२ वही पृ० १४३

८३ आधुनिक कथा-साहित्य, पृ० १७९

८४ प्रपत्तिशील साहित्य की समस्यार्ण, पृ० १०९

८५ वही, पृ० १०६

८६ आधुनिक साहित्य पृ० १७६

बोधी 'सिद्धार के विकास को मूलतः मनोवैज्ञानिक' मानते हैं।^{१०} किन्तु, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उसके चरित्र विकास के मूल में सिर्फ एक ही धारा है—यह है उसका तीव्र बहुत सर्वव्यापी और सर्वशायी माहौल।

इलाखन्त्र बोधी के उपन्यास 'प्रेत और छाया' के नायक से भी उसकी तुलना की गयी है। किन्तु, दोनों के चरित्रांकन में दृष्टिकोण का भन्तर स्पष्ट है। हालांकि चरित्रिक विकृति और नैतिक पतन में दोनों एक दूसरे से होड़ करते-से लगते हैं। फिर भी, अपनी विकृतियों के बावजूद 'प्रेत' की विकास की पूरी सहायसृष्टि प्राप्त होने के कारण वह एक परिमात्रित अधि एवं उच्च जीवन-व्यंजन से सम्बन्धित नायक के रूप में पाठकों के सामने आया है। पर 'प्रेत और छाया' का चित्रण बर्बादकारी होकर उसके नायक का सुरपट और पतित रूप बिना किन्हीं मोड़क रंगों के, पाठक के समक्ष आ जाता है।^{११}

नन्दकिशोर इलाखन्त्र बोधी

नन्दकिशोर इलाखन्त्र बोधी के उपन्यास 'संग्राही' का नायक है। श्री बोधी के पत्रिकाय कथा-नायक दुर्बल स्वभाव के हैं।^{१२} उनकी धारणा है कि मध्यवर्गीय संस्कृति के स्यासोग्रहण काल में बर्बाद के धारण पर सबसे नायकों की सृष्टि नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए 'माधव बाबेरी' का नायक बाबूबाबू के नायकत्व तथा रवीन्द्र और धरत के नायकत्व सभी दुर्बल स्वभाव के व्यक्ति हैं।^{१३} इसी लिए उन्होंने ज्ञान-भूम्बर दुर्बल नायकों की ही सृष्टि की है। उनका विचार है कि सुधारकारी नायक वास्तविक जीवन में नहीं मिलते।^{१४} मनाधिरलेपन के ज्ञान ने ही मानवीय स्वभाव को विस्तृत कर दिया है। मनुष्य जो शीकता है, वह वह नहीं है। वह मनुष्य के विप्लवम रूढ़ियों से परिभाषित होने वाला व्यक्ति है। इसीलिए धार के मुख में सबसे नायकों की उपासना की पुच्छभूमि पर नहीं उतारा जा सकता।^{१५} किन्तु बोधीजी प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के उपन्यासकारों की मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थिति को नजर पकान करते हैं जिसके कारण धारव्यवहारी नायकों की सृष्टि संभव थी।^{१६} किन्तु धार का मानव रोमचस्त है, इसीलिए उपन्यासों के नायक भी दुर्बल हैं। संग्राही का नन्दकिशोर भी ऐसा ही एक पात्र है—बाहर से सबल, किन्तु, भीतर से दुर्बल।^{१७} बोधीजी का

८७. विश्लेषण पृ० ८७

८८. वही, पृ० १६८

८९. विश्लेषण पृ० १६३

९०. साहित्य-चिन्तन पृ० ९२

९१. वही, पृ० ९३

९२. वही २०६

९३. हिन्दी उपन्यास (पद्य), पृ० २०६

९४. साहित्य-चिन्तन पृ० ९४

कहना है कि उन्होंने अपने नायकों की "अत्यन्त हीन्य मनोबैधानिक धारणाँ द्वारा भीर फाड़ करके" उनके "महान दुर्बलताओं" से पूर्ण चरित्र का पर्दा फाड़ दिया है क्योंकि वह जानबूझकर पाठकों को बोधे में नहीं आसना चाहते।" उन्होंने गन्दकिशोर की तुलना अरुण के देवदास से करते हुए कहा है कि "मैंने गन्दकिशोर की मानसिकता के विश्लेषण में भावुकता का सहारा न लेकर उसके अर्थात् रूप को उपस्थित किया है। पर देवदास की दुर्बलताओं का सारा बोध समाज के सिर पर मढ़कर अरुण ने उसे पाठकों की सहानुभूति और भ्रष्टा का पात्र बना आसा है। उनका यह भी कहना है कि इस तरह अर्थात् रेषाओं द्वारा प्रकृत उसके चित्रण से जीवन की वास्तविकताओं को समझने में अधिक सहायता मिलती है।"

गन्दकिशोर फायद के 'रमित काम-आसना' से पीड़ित युवक है। वह इसे स्वयं भी स्वीकार करता है कि पायरे में जयन्ती के दर्शन से भी उसकी रमित काम आसना उसी तरह मड़क उठी थी जैसी बंगारस में शांति एवं कमला को देखकर" शांति के घर। शांति के घर पहुँचने पर 'नव बभू की तरह उसका सस्सज और संनस्त भाव' देखकर वह 'पुसकित' हो उठता है।" कामुक व्यक्ति भीव भी होते हैं। इसीलिए शांति के मुँह की ओर देखने पर उसका अन्तर्मन उसे 'भीव' और 'कापुश्य' कहकर भी धिक्कारता था।" इसीलिए शांति से वह बस की भील मांगता है कि 'समस्त बग्नन छोड़कर' उससे मिल सके।" किन्तु, शांति को मपाकर इसाहाबाद से जाने के बाद ही मानुष प्रेमी के बल्ले उसका 'महंकारी' और 'शकानु' रूप स्पष्ट होने लगता है। वह शांति से कहता है—"तुम बराबर अपने मन की अर्थात् बातों को मुझसे छिपायी घाई हो और मुझसे कपट रक्तती हो।" उसकी धंका और ईर्ष्या ने शांति पर बलदेव से प्रेम करने का कर्त्तक भी लगा आसा। उसके भीतर एक प्रलयकर हंइ मज गया—"शांति क्या बसदेव से भी उसी तरह प्रेम करती है जैसे अब तक मुझसे करती आयी है।" और बड़ा विश्लेषणवासी बनकर वह कहता है—'बसदेव की शांति को आहने बागी है, यह' दोनों के भीतर कुछ अज्ञात संस्कार किसी रहस्यमय नियम की प्रेरणा' के कारण है।" और निष्कर्ष रूप में वह शांति को लाञ्छित करते हुए उसपर बलदेव से प्रेम करने का जुना प्रमियोय सगा आसता है। इस तरह पाठकों के समक्ष

६३. विश्लेषण पृ० १६३

६६. विश्लेषण, पृ १६६

६७. संग्यासी, पृ० ६४

६८. वही, पृ० ११०

६९. वही

१००. वही पृ० ६२

१०१. वही, पृ० १३३

१०२. वही पृ० २०४

१०३. वही पृ० २३१

प्राथमिक हिंदी कथा-साहित्य और चरित्र विकास

नन्दकिशोर का स्वामी बहूबाबी धारमसीन, संदेहधीन रूप प्रसरकर था जाता है। उसके मन की छाती कूटाघों को छांति और बरती समझती है। इसीलिए बयली कहती है—“घापकी प्रमाकृतिक प्राकाशा की तृप्ति कभी संभव नहीं। घापके मन की प्रसांति और घसंतोप सदा बने रहने और जित जित के सम्पर्क में घाप रहने उसके जीवन में नी घाप केरनी के बीच बोते बसे जाये।”^{१००} लेखक ने इन वक्तियों में नन्दकिशोर के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर गयी है। और नन्द किशोर स्वयं भी अपने प्रसाधारण व्यक्तित्व से परिचित है। किन्तु वह यह भी मानता है कि “हो सकता है कुछ विशेष बातों में मेरे मन और मस्तिष्क ठंके जठे हुए हों पर बहुत-सी बातों में मैं साधारण मनुष्य से भी बहुत नीचे—एकदम नीचे बिरा हुआ”^{१०१} उसके हृदय की यही प्रसाधारण स्थिति ‘धारमनाची प्रतिपत्ता’ घट में उसके जीवन को नष्ट कर देती है।^{१०२} और वह संन्यासी बन जाता है। बोधीजी ने उसके चरित्र-चित्रण द्वारा यही स्पष्ट किया है कि ‘एक मर्यकर प्रसमाधिक प्राणी’ को एक सर्वघापी ईश्वर’ बनकर निकला या समाज द्वारा अपने ही घई में प्रथम होने के लिए प्रेरणा छोड़ दिया गया।’

डा० देवराज कृपाध्याय ने नन्दकिशोर के मन की ‘बटिततापूर्ण सतमयों’ को और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि घंठ में जब वह बयली से विवाह करने की तैयारी की होता है तो बयली के मन के ‘दुर्बलनीय पर्व’ को ‘चुर-चुर करने की प्रतिहिंसापूर्ण भावना’ उसमें निचमान है।^{१०३} ऐसा व्यक्ति अपने वैवाहिक जीवन में किस तरह चुकी रह सकता है ? ‘पर्व चुर करने’ एवं ‘प्रतिहिंसा के लिए’ विवाह करने की बात एक नवीन दृष्टिकोण की परिचायक है। इसके यही सिद्ध होता है कि धाव के मानव में महान परिवर्तन था गया है, पाठक और कथाकार भी बहज गया है तथा कथाकार की प्रीपण्यातिक प्रतिबन्धित भी विस्तृत बतल गयी है।^{१०४}

डाक्टर क्षमा यशपाल

डा० क्षमा यशपाल के प्रसिद्ध उपन्यास ‘देवदोही’ का मायक है जो सन् ‘४२ के भारत का चित्रण है। यशपाल के कम्प्यूटिस्ट मैताघों का घटत बहूपा हृदयप्रायक होता है। ‘बादा कामरेड’ का मायक यहीच होता है ‘मनुष्य के रूप’ में यूपन बरकत की करीबी से बायन होकर मरता है और डाक्टर क्षमा मजदूरों के बीच धायत होकर

१०४ वही, पृ० ३८१

१०५ वही पृ० ३५१

१०६ साहित्य-समीक्षा, पृ० ८२

१०७ इसाचार जोशी के उपन्यास पृ० ६५

१०८ संन्यासी पृ० ३५२

१०९ घा० दि० क० घा० और नवी०, पृ० २४५

गिरते हैं।^{११०} यशपाल के ये मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मजदूर-जाति से बौद्धिक सहायुत्पत्ति को प्रबन्ध रख सकते हैं पर उस जाति का नेता बनने की उनमें सामर्थ्य नहीं है।^{१११}

जन्मा घसीम साहस और बीबट का व्यक्ति है और हर तरह की बाधाओं के बावजूद संघर्ष में जुटा रहता है। परन्तु नृमाप्रसादजी ने उसे निकम्मा निर्लज्ज और प्रायुत्तरवाचित्त्वपूर्ण कहा है।^{११२} ये घातेप पूर्वतया सत्य न होकर भी धार्मिक तौर पर सत्य हैं। कुछ घालोचकों ने उसमें पौरव की कमी भी देखी है^{११३} किन्तु अतन्तो-पत्वा यह भी सही है कि वह परिस्थितियों का निर्माता न होकर परिस्थिति के हाथों में कठपुतली की तरह खिलता है। डा० रामबिलास धर्म ने उसे 'भारतमीड़ा का धिकार' बताया है जिसका उद्देश्य 'गापी की कब्रपा की बचाना' है।^{११४}

किन्तु, हर दृष्टि से सोचने से उसे प्रसन्न चरित्र नहीं कहा जा सकता। उपन्यास के अन्त तक पशुवै-पशुवै मूल्य की कारुणिक स्थिति में वह 'योदान' के होरी की भाँति हमारी सहायुत्पत्ति का अधिकारी हो जाता है। यशपाल के चरित्र भी 'योदान' की परम्परा पर प्रायुनिक भारत के नये चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।^{११५}

धिरबानसिंह शौहान^{११६} का मत है कि 'बेराश्री' में मजदूर आशोसन की तरह प्राकृत होने वाले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का चित्र है जो 'व्यक्ति से समाज की ओर' जाने को प्रायुत हैं संघर्षशील हैं। किन्तु यह संघर्ष जनता के अधिकार भाग को उपन्यास के बाहर रखकर चलता है जो इस दृष्टि का मुस्म बोध है।^{११७} लेखक जहाँ जन्मा के हृदय में पैठकर उसके निगूढ़तम रहस्यों को टटोलता है, वहीं वह मजदूर-वर्ग की धार्मिक और सामाजिक समस्याओं को देखकर सूकर संतोष कर लेता है। इसीलिए जन्मा को राजनीतिक चरित्र नहीं बल्कि भीकांत की कोटि का एक सामाजिक चरित्र कहना ही उचित प्रतीत होता है।^{११८} भीकांत की तरह स्थियों के साथ आकर्यप प्रत्याकर्यप का खेल छोड़कर वह धीर क्या करता है? राज्य के पाशों की तरह वह अपनी प्रेमिका की गोद में घिर छिपाकर सुख से बैठना चाहता है।^{११९} ले-लेकर लेखक ने उसके चरित्र को भी 'शिस्तोदरवासी' बना दिया है, जहाँ धिरन व्यापक और उबर

११०. आलोचना (२१), पृ० ८४

१११. धार्मिक हिन्दी-साहित्य एक दृष्टि, पृ० १४०

११२. प्रायुनिक कथा-साहित्य, पृ० १९६

११३. हिन्दी-उपन्यासकार, पृ० २०७

११४. प्रपत्तिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० ११६

११५. आलोचना (२१) पृ० ८३

११६. आलोचना के माग

११७. प्रपत्तिशील साहित्य की समस्याएँ

११८. संस्कृति और साहित्य पृ० १०२

११९. वही

धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास
 प्राप्त करने की मांगसे से हर समय पीड़ित है।^{११०}

चेतन उपेन्द्रनाथ 'भद्रक'

सेसक घरक ने 'पिरती बिबारे' में निम्न मध्यवर्ग के जीवन का विस्तृत रूप से विवक्षित किया है। यह कृति निम्न मध्यवर्ग के सुबक 'चेतन' की जीवनी है जो जीने के लिए निरपीठ परिवर्तियों से संघर्ष करता है। इसी संघर्षक्रम में उसकी प्रतिभा उत्तरोत्तर अधिक मानवीय सामाजिक और व्यापक बनती है।^{१११} यह धार्मी इच्छा के विरुद्ध एवं मां बाप की आज्ञा का पावन करने के लिए चंदा से घारी करता है। सुखराम में ही वह चंदा की छोटी बहन नीला के प्रति माकपित हो जाता है और एक बार बीमारी की स्थिति में नीला का निकट साहचर्य उसकी दमित भावनाओं को पूर्णमयी रूप से उभार देता है।^{११२} बाद में वह नीला के पिता को अपनी कुछ बचाकर चंदा के साथ वहाँ से जाता है। फिर वह बीच-बीच में रामदास के चंगुल में पड़कर बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा पर पुस्तक लिखता है—'सिर्फ तीन मास में और २० रुपये महीने पर।'^{११३} यह पुस्तक पूर्व बीच के नाम से ही निकलती है। बाद में वह नीला के विवाह की योजना पाकर किसी तरह उससे भाग छुड़ाकर भागता है।^{११४} नीला को घायी एक मुख्य और प्रबोधक व्यक्ति से होती है और राठ की निरस्तम्भता में जब वह सोचने लगता है तो पाता है कि इस देश के प्रयत्नियों के प्रायः दीवारों के संघर्ष ही हैं। मही बीबारे सबों के व्यस्तित्व की परतें हैं जो उन्हें बेरे रखती हैं।^{११५} और इन्हीं दीवारों की नींव की बाढ़ पाने और यह जानने कि वे कैसे पिरिमी चेतन समस्त हो उठता है। घोषक और धार्मिक वैषम्य के इस युग में पीड़ित व्यक्ति चेतन की तरह यह प्रथम चाहता है कि वह ऐसा फुलकार मारे कि इस व्यवस्था के पुनः पुनर्नूतन में उसका हिस्सा है जिसकी सहायता में हम परिवर्तन नहीं कर सकते।^{११६}

नतिनविमोचन घमाँ का कहना है कि यह कृति एक उपेक्षित किण्वोट, धार्मिक सुबक और एक प्रयत्नक सहकारी संपादक के कृतिष्ठ व्यक्तित्व का बननीय

११० धा० हि० क० सा० और मनो० पृ० २७७

१११ वही

११२ प्रतीक (६) पृ० ११८

११३ वही

११४ विरती बीबारे पृ० ७११

११५ प्रतीक (६) पृ० ११३

११६ हिन्दी-उपग्यात पृ० १२३

११७ प्रतीक (६), पृ० १२३

चरित्र-विकासपथ

इतिहास है।^{११८} बेतन के नायकत्व के सम्बन्ध में भी रामचंद्र बहादुर सिंह^{११९} ने कई प्रश्न उठाये हैं। प्रश्न में बेतन गिरती बिबारों का 'हीरो' नहीं—बल्कि 'हीरो' तो है घोषण और पीढ़ी की कड़ियों का बहुसंख्यक सिलसिला बिनके बगैर बेतन हुआ में हाव पांव मारने वाली एक छाया की तरह रह जाता।^{१२०} बेतन सिर्फ स्टेज पर अभिनेता बह जन्मा पर्व है।^{१२१} असपर 'गिरती बिबारों' की पूरी फिल्म चलती है।^{१२२}

बेतन का तो सब तक बल बुके होंगे या अपने समाज की नई शक्ति बनकर समाज को उठा रहे होंगे, नहीं तो वे उन गिरती बिबारों के बीच जिंदा नहीं रह सकतें जिनमें से कुछ तो सन '४८ तक घायल ही गिर चुकी होंगी।^{१२३}

डा० रामबिंसास शर्मा ने बेतन को मुनीठा-घोबरबाड़ी परंपरा का प्रतीक माना है। वे कहते हैं—“कहीं डा० रामचंद्र मारती ने कथा-साहित्य के नपुंसक नायकों पर सेब लिखा था। परन्तु जैसे कसाकार उनकी संख्या तेजी से बढ़ा रहे हैं।^{१२४} प्रपतिबाड़ी मातोबाक प्रमोदराय ने बेतन के चरित्र विकास का विश्लेषण तर्कालोक के आधार पर करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि बेतन अपनी मनवाही लड़की से बिबाह न कर पाने के कारण अपना सबनाश करता है। मातमहनन करता है। उसके जीवन की यही घसकसता बेतन के चरित्र का बहु 'ट्रेजिक पीताब' है जो कहानी के संत को पहले से ही निश्चित कर देती है।^{१२५} बेतन जीवन भर पीता को पाने की साधन या न पाने की साधन तिये माघ-माघा फिरता है। प्रश्न में एक प्रयोग्य बर से उसकी घाटी हो जाने के बाद ही उसका प्रपण-प्रसंग समाप्त होता है और बहु सिद्ध अपना घरीर सेकर अपनी पत्नी के पास सोट जाता है। बेतन की यही बया देखकर डा० रामबिंसास शर्मा^{१२६} ने कहा है कि घोबरबाड़ी का सबसे बड़ा सहाय है बीमारी जो उनकी प्रपण-भावना को बढ़ा देती है—माघे की करुणा को बसाकर। मतीबा यह होता है कि बेतन को तपता है कि ससार के सभी पुंसों के बीच अनभिन्न बीबारों लड़ी है और इन बीबारों का कोई संत नहीं।

वक्तव्यना नागार्जुन

वक्तव्यना एक बेतन-मजदूर का लड़का है। लड़कने उसके मुँह से ही उसके

१२८. वही, पृ० १२८

१२९. वही, पृ० १२९

१३०. वही, पृ० १३०

१३१. वही, पृ० १३२

१३२. वही, पृ० १३२

१३३. वही

१३४. प्रपतिघोल साहित्य की समस्यार्थ, पृ० १२८

१३५. नयी समीक्षा, पृ० १९२

१३६. प्रपतिघोल साहित्य की समस्यार्थ, पृ० १२९

बीबन की कथा कहलवाई है। जमींदार के घर चैत चराने से उसका बीबन प्रारंभ होता है। फिर वह जमींदार के रिस्तेदार फूल बाबू के साथ पटना में उनका बौकर बन कर आता है। फूल बाबू खुद सरयाग्रह धारोन्नत में बेल जाने के बाद पूरे कांघेरी बन जाते हैं। वह फिर सरयाग्रह धारम के संवासक पाने बाबू की चाकरी करता है। बाद में विवाहकर घर-गृहस्त्री बनाने लगता है। इसी बीबन किसानों की जमींदारों से जमीन की लड़ाई करती है। वह भी संघर्ष के संघटन में लगता है। धीरे धीरे में एक दिन रात को सोते में ही जमींदार के धायपी ऊपर सांघातिक धारमन कर बैठे हैं।^{११८}

धायोचकों का कहना है कि संघ में उसके चरित्र में जो त्वरा धा जाती है, जमीन के संघर्ष में वह जिस तरह नेतृत्व ग्रहण करता है और बुनियादी बातों की पकड़ उसमें जो दिखाई पड़ती है, उसकी दृष्टि के लिए धीरे धीरे उपयुक्त पृष्ठ-भूमि का निर्माण धारमनक या ठाकि उसके चरित्र का वह विकास स्वाभाविक बीबन पड़े।^{११९} धायोचकों का कहना है कि "इस उपन्यास में सम्पूर्णता नहीं है" और "कथा की दृष्टि से भी उसमें अभाव" है। किन्तु, वह साथी बलरामजी इसलिए बँदा होती है कि जैसे धायोचक 'बलरामना' का धारमन नहीं पृष्ठभूमि पर—जैजमीन किसानों की समस्या की पृष्ठभूमि पर नहीं करते। तामार्जुन के चरित्रों के माध्यम से वह केवल बिहार, बस्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के चरित्र बोक रहे हैं।^{१२०} बलरामना के चरित्र की यह सम्पूर्णता 'धायोचकों' के बाद के किसी भी चरित्र में नहीं है। हालाँकि उसकी धायिक पूर्ति 'पर्यटनी परिकथा' में एक हक तक धारमन हुई है। धायोचकों ने उसके चरित्र की सुवमता को नहीं धारमन पाने के कारण ही ऐसी धायोचनाएँ की हैं।^{१२१} बलरामना के चरित्र की सभी विशेषताओं को एक छोटे से उपन्यास में उधारना संभव भी न था। उसके माध्यम से लेखक ने सन् १९३५ तक की बिहारी राजनीति को देखा है।^{१२२} अतः वह स्वल्प है कि 'बलरामना' का दूसरा भाग^{१२३} बड़ा समाप्त होना जब वह धायनी जमीन को स्वयं धायने टैंक्टर पर चढ़कर बोतेया और बोतेया। धाय के बयाने को देखते हुए लेखक की इस कल्पना को धायिर्बिध भी नहीं कहा जा सकता।

उपन्यासों की परंपरागत टैकनीक में विश्वास रखने वालों को बलरामना में 'सर्जनाधारित का धायन बीबता है।^{१२४} कल्पनिक बीबन-धाय के धारमन धायिकियों को देता लवना भी धारमनायिक नहीं। पर धायिर्बिध यह है कि धाय का धायनी

१३७ धायोचका (१४), पृ० ४०

१३८ धायोचका (उपन्यास अंत), पृ० २१०

१३९ धायोचक, धाय १९३३

१४० धायोचका (१४) पृ० ४०

१४१ हिन्दी उपन्यास पृ० ३०४

१४२ बलरामना—लेखक की टिप्पणी

१४३ धाय तक धारमनायित

१४४ धायोचक, धाय १९३३, पृ० १३

जैसा अस्तम्यस्त और संघर्षरत है बलचनमा का चरित्र भी उसी तरह चित्रित है। वह सिद्धे उपन्यासकार की कल्पना की उपमा नहीं है। वह इस बड़े वेस के विद्याल सुख का 'टाइप' चरित्र है।

डा० नरोत्तर का कहना है कि बलचनमा के बलिष्ठ व्यक्तित्व' की शैलक संभावना नहीं सका है। "मादों और विचारों की गर्मी से उसका अकाल प्रसव हो गया है।" ^{१०६} यदि उनका अर्थ बलचनमा के अरीर की बलिष्ठता है तो ठीक ही है। यदि ऐसा न होता तो गर्मीदार की मार खाकर उसका बचन संभव न था। यदि उसके बलिष्ठ चरित्र से उनका आत्यर्थ है तो यह भी सही है। क्या संन्यासी ^{१०७} ने इसकी पुष्टि में कहा है कि बलचनमा की 'ईमानदारी आर्थिक बुद्धता और समाजोपयोगी सार्थक परिश्रम को कड़ा-से-कड़ा आवाचार भी नहीं मिटा सकता।" अमीन के संघर्ष के समय यह कहता है—“किष्कान और मौत का आभवा सामना तो सदा ही होता रहता है।' इसीलिए बड़े कठरे के समय भी वह अपने में 'एक अगूठी राजनी' महसूस करता और उसका 'धीमा ठन जाता' है। बलचनमा के बलिष्ठ किन्तु सरल व्यक्तित्व का इससे बड़ा परिचय और क्या हो सकता है।" ^{१०८}

कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि "बलचनमा हिन्दी कथा-साहित्य को एक नूतन विधा देता है।" निस्तम्भेह, चरित्र विकास की दिशा में 'बलचनमा' 'एक नई दिशा' का संकेत करता है। बलचनमा प्रेमचन्द के गोबर का विकसित रूप है। ^{१०९} डॉ० प्रभाकर माधवे ने इसकी पुष्टि में कहा है कि 'बलचनमा में जनसाधारण की पीड़ा-दर्द और 'अनबुद्धि' के अदृश्य दर्शन होते हैं। नायानु ने अपनी इस कृति के द्वारा प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाया है। बलचनमा टूट सकता है, पर भुंक नहीं सकता। उसके चरित्र की यही विशेषता पीरण और मानवता हिन्दी कथा-चरित्रों को नई दिशा देती है। इस चरित्र की सृष्टि कर नागार्जुन ने हरिश्चन्द्रों को छोड़कर उसके डेठ-मजहूर रूप की कहानी प्रस्तुत की है। वह यह भी विचारने में सफल हुए हैं कि बलचनमा जैसा अस्तम्य और अल्पक मनुष्य भी उच्च मानवीय गुणों से विभूषित है।" ^{११०} अन्तर्ग्रन्थ विचारसंसार ने इसी बात के समर्थन में लिखा है कि 'बलचनमा' का अंत एक महान चरित्र के अंत जैसा प्रतीत होता है।" ^{१११} इस उद्धरण से यह भी ज्ञान पड़ता है कि बलचनमा की मृत्यु हो गई है। पर ऐसी बात नहीं, वह मार खाकर बेहोस हो गया है।

किन्तु, रचना-कीर्णता की दृष्टि से यह बात सही है कि बलचनमा कोई नया

१०६. वही

१०७. नया पत्र अस्त २३

१०८. अस्तम्य के विचार पृ० २१

१०९. वही

११०. साहित्यधारा पृ० १६९

१११. अस्तम्य १२२३

प्रयोग नहीं है।^{१११} तथापि प्रेमचन्द की परंपरा का जो सामाजिक यथार्थ है उसका उल्लास निर्वाह बसवतमा में प्रथम हुआ है।^{११२} डॉ० नरेन्द्र की यह भी राय है कि 'माया और सम्बावली के स्वामीय प्रयोग' की दृष्टि से यह हिन्दी का पहला सप्टम उपन्यास है। इस उपन्यास की माया भी चरित्र-विकास में सहायक हुई है। इसमें पारोक्षिक माया के प्रयोग और मिथिला के परिवेक्ष्य में भी चरित्र-विकास हुआ है।

डॉ० रामब्रह्मसदन पांडेय^{११३} ने होरी और बसवतमा के चरित्र विकास का वैज्ञानिक विप्लेपक करते हुए लिखा है, "सामाजिक व्यक्तित्व की स्थापित का जो रूप होरी में मिलता है, उसके बूरे पहलू के बर्धन मागार्नुन के बसवतमा में होते हैं। राजनीतिक चेतना और सामाजिक संघटन के स्पष्ट प्रभाव के कारण ही यह रूप अधिक स्पष्ट हो सका है।" ये दोनों निम्नतम बर्धन चेतना के दो विभिन्न स्तरों के प्रतिनिधि और प्रतीक हैं। दोनों ही प्राचीन वातावरण तथा उसकी सामाजिक संघटन प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं। बसवतमा मध्यवर्गीय चेतना की निम्नस्तरिय स्फूर्ति है।^{११४} किन्तु, इतना धन्य है कि 'समाज का प्रवर्धता' होने के कारण वह पाठक की संवेदना नहीं बना पाता जबकि होरी वैयक्तिक समस्याओं के सामाजिक परिवेष्टन के कारण वह सहानुभूति पाने में सफल होता है।

जितेन्द्र रेणु

जितेन्द्र 'पत्नी परिक्रमा' का 'हीरो' है। उसका चरित्र-वर्धन पर्याप्त सुंदर और सफल हुआ है।^{११५} पाँचों के बहिष्कार एवं धर्मोपनि-स्वार्थ के बीच में वह कमजोर बैसा भवता है। रेणु ने उसका चित्रण किसी पूर्वग्रह से ग्रस्त होकर नहीं बल्कि तटस्थ होकर किया है।^{११६} जितेन्द्र के चरित्र में बड़ी उदारता सहाय्यता चित्रप्रता सरलता एवं शोकप्रत्याग की भावना है। वह अपने कारिन्दे बसवतीमास के चुस्मों से पाँच की रक्षा भी करता है।

डॉ० रामब्रह्मसदन पांडेय^{११७} ने जितेन्द्र के चरित्र की तुलना इलियट के 'वेस्टमैड' के मधुमा राजा से की है। श्री शर्मा उसे फायदा चिकित्सात्मक का 'माउट डोर पेसेंट' मानते हैं जिसे इलियट की 'काकटेल पार्टी' की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हैं और जिसके नाम में "एक नयी जाति का नायक भी उग आया है।" राजा कामरूप नारायण उसे

१११ वही

११२ धारकन, मार्च, १९३३

११३ धालोचना (उपन्यास शंक), पृ० १४५

११४ वही

११५ हिन्दी उपन्यास, पृ० ३२८

११६ हिन्दी उपन्यास (बीबास्तव), पृ० ४०१

११७ समालोचक, अगस्त '३९, पृ० ७

‘हिन्दू’ कहते हैं। ‘परती बाहर ही नहीं जितन के भीतर भी है।’^{११५} जितन स्वयं भी कहता है— प्राय नहीं अनुमति नहीं अब मनुष्य को संभलता रहा है।^{११६} इसीलिए “इस समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनाना ही मुक्ति का एकमात्र पथ है।”^{११७} अतः मैं बड़े सचपों के बाद उसके ‘मन की परती’ टूटती है।^{११८} मात्र मात्र की सभी रातें कटती हैं और प्राचीनों के मन में ‘पवित्र प्राण’ फूटता है।^{११९} जितन को देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि वह दोसरवादी परंपरा से बहुत कुछ निराला-जुलता चरित्र है।^{१२०} होरी की अपेक्षा दोसर और प्रमत्त की तुलना में प्रजेय उन्हें अधिक प्रिय हैं। फिर भी जितन के व्यक्तित्व में भविष्य के औपन्यासिक भावक की सारी संभावनाएं वर्तमान हैं हास्य कि उतका विकास ‘परती परिक्रमा’ में नहीं हुआ है।

इस परिक्रमा में परती को ही हीरो मानना चाहिए यद्यपि देखने में जितन और राजमनी भावक-भाविका का यह व्यवहार प्रहस्य करते हैं।^{१२१} इसका कारण यह है कि इस कृति में कथामय और चरित्र की योजना स्वतंत्र नहीं है—बड़े सम्पूर्ण जीवन चित्र का संभव बनकर आई है। इसे भी लेखक का ‘विकासमान सफल चरित्र’ कहा जा सकता है। अकेले जितन में अरण्य के सम्बन्धों रबीन्द्र के गौरमोहन और प्रेमचंद के सुरदास का प्रथम साहस और व्यक्तित्व है यद्यपि वह इन सबकी अपेक्षा अधिक मिठमापी पाठ और भीर-स्वभाव का है।^{१२२} समाजमुखी और उदारमना राजमनी उसी के उपयुक्त हैं और उसके चरित्र को विकास देती हैं। रिपयूजी लड़की इरावती ने भी उसे कभी नोके नहीं मिलाया। वह भी जितन के लिए धारणा का प्रतीक प्रेरणा का स्रोत है।^{१२३} भीरत ने जितन के चरित्र-विकास पर आक्षेप किये हैं। उनका कहना है कि धाम की धनायुक्त दुनिया में ऐसे ‘बंदू’ संभव नहीं। उन्होंने उसे ‘हाइनास का स्वयं कीस प्राची नहीं बल्कि कठपुतली’ माना है।^{१२४} जितन को ‘अति अतिरिक्त’ अति उत्सुक किन्तु अर्थार्थ में ‘बीना’ और ‘कठपुतली’ कहकर भी आलोचना की गयी है।^{१२५} यह भी बड़ा पथ है कि उसके चरित्र को ‘अस्पष्टता बड़े दुबारी ठमकार है जो किसीका भी भला नहीं कर सकता’।^{१२६} उपन्यास एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक सतिसत्

१२८ वही

१२९ वही

१३० परती परिक्रमा

१३१ लेखक को हैनु का कथन

१३२ धाम (साहित्य विरोधांक २८) पृ० १२

१३३ वही

१३४ अज्ञता अज्ञत २७ पृ० ८

१३५ अज्ञता, करवती १९२८ पृ० ६१

१३६ वही

१३७ वही

व्यक्तित्व, एक जीवन-द्रष्टा और एक भविष्य-द्रष्टा की मांग करता है।¹⁴ इसीलिए लेखक की यह कहकर भी आलोचना की गयी है कि उसी चार्चर की पुष्टि के लिए जितन जैसे एक पुराने धामंठी मूयों के पीयक बिनाधी ग्रहंवादी आचारहीन आस्पान-हीन और जनबिरोधी व्यक्ति को 'गुनों की खान' बनाकर पेश किया गया जिसका आचार लेखक की आंश आरणाएं और जीवन की कच्ची समझ ही है। इसके विपरीत प्रो० गोपीकृष्णप्रसाद जितन को 'पूर्ण' और 'सुवर्णित' चरित्र मानते हैं जिसका चित्रण 'श्रेष्ठ' और 'वास्तविक' है।¹⁵ शोषणरूप को भी बुनियादी मूस यह है कि उन्होंने 'परती परिकथा' के मूस स्वल्प की अवहेलना करके जितन के चरित्र की समीक्षा परंपरागत उपन्यासों के मानक के आचार पर की है जिसे आलोचना-विद्वानों का मतत प्रयोग ही कहा जा सकता है।¹⁶ जितन का चरित्र पात्र के मूयपूर्ण बर्मीरारों के रईस बेटों की तरह अवश्य सतता है जो लीकिया ड्रैक्टर बनाते हैं, कोपी के किनारे किनारे पीसी परती पर प्रपनी बहूकों से 'बाह्य' शिक्षा का धिकार करते हैं, बरबाबे पर बंदा मांयने के लिए प्राये राजनीतिक कार्यकर्ताओं से राजनीति पर बहुत ठानते हैं और बाप की बघाई नट्टियों में से किसी एक को प्यार भी करते हैं।

जितन रेनु के 'मैसा आंचल' के डाक्टर प्रघांत का विकसित रूप है। जितन का रिश्तें भी डाक्टर प्रघांत की तरह पुरा हो गया है—एकदम कम्पसीट। यह इस परती चरती में मुलाव उपबाणा, गुलाव की शैली करेपा।

कुछ प्रतिमिधि अविकसित चरित्र

जालपा प्रेमचन्द

जालपा के बच में प्रेमचन्दजी ने एक भारतीय नारी को व्यक्तित्व प्रदान करने की शैष्टा की है। एक भारतीय नारी उसमें बाहे जो कुछ भी अवगुन हों अपने कारण अपने पतिदेव को कष्ट नहीं देना चाहती है। किन्तु जालपा को एक ऐसी नारी के रूप में लेखक प्रस्तुत करता है, जिसके कारण उसके पति को मटवना और भागना पड़ा। लेखक ने जिस बर में उसे बरग दिया उसका बाठाबरग देसा बनाया कि उसे केवल आनूपकों से ही प्रेम है। क्या मल्ला और क्या शारी सभी आनूपकों की ही बातें करें कच्चे बिस्मोरी अग्रहार की पसन्द का एक किन्तु उन्होंने इतना बड़ा महल रचकर बड़ा कर दिया जिसकी मूस-बुलीया से उसके पतिदेव का निकमना कटिन हो गया। जालपा की बाल-बधि की ही लेखक ने इतना महत्व दिया कि वह उसके जीवन का ध्येय बन गया। लेखक ने नारी की आनूपकप्रियता को सीमा से बड़ा दिया। एक अग्रहार के प्रभाव में जालपा के बिबाह के प्रारंभिक दिनों को

१६८ वही

१६९. आलोचना (२४), पृ० ७७

१७० वही

मीरस ही नहीं कष्टमय भी बना दिया। वह इन गहनों के लिए अपनी जगम बेने वाली माँ से ईर्ष्या करने लगी, उसके प्रति भ्रष्टोप की भावना को जगम दिया। अपने पति से यह कहते हुए भी कि मेरे लिये कर्ज मत लो मैं नेव्या नहीं। घर के प्राणियों को संकट में डालकर गहने पहनने वाली मैं नहीं चाहिं। प्राणि फिर भी वह कर्ज पर धामूपण सेने को प्रिय पति से छहमत हो जाती है। कंगन भी उधार ही खरीदे जाते हैं। एक के ऊपर एक कर्ज से धामूपण सेने के सिमे ध्रष्टसर होती जाती है और हासबिहास के जीवन में वन का प्रपञ्च्य करती है। यों तो वह बड़ी धान वाली बनती है किन्तु इन धामूपणों के लिए पति द्वारा किये जाने वाले प्रपञ्च्य और भ्रष्टचार की धोर से धाँसो मूँदे रही। वह धामूपणों के लिए धंधी दिखसाई गई कि वह अपने पति की धार्मिक स्थिति इतने समय तक उनके साथ रखकर भी न जान सची। इतना धोछा उसे उसके लप्टा सेलक ने बनाया? यह सब है कि उसके पतिदेव उससे बड़ा-बड़ाकर बैभव की बाँसो करते थे पर क्या वह इतनी बुझु थी कि वह अपनी धाँसो से इतने काल तक पर का समस्त हान नास देखकर भी बास्तबिक स्थिति नहीं जान सकती थी? सेलक ने जान-बूझकर उसको बीबने नहीं दिया।

पति को कितनी बार उसने चिन्टाग्रस्त देखा करबट बरसते देखा किन्तु कभी भी जासपा उनकी धससी दया जानने के लिए ध्यप्र न हो सकी। क्या सबमुच वह धामूपणों और बिहास को इतना प्रेम करती थी कि प्रिय की बिकलता भी उसे स्पर्श नहीं कर सकती थी? यह बिलकुल भूठ है। उसके बिबाता ने उसे इतना हीन नहीं सरबा प्रपञ्च्य वह धागे जा महान कार्य करते करती जिसे उसने किया। उस इतनी समझवारी थी गई कि वह यह धनुमान लगा सकती कि उसके पति की कितनी धायु होगी और वह कितना बैनिक ध्यय करे। धामूपणों का प्रेम तो हो सकता था। बचपन से ही क्राँच के हार से धाकपिठ होकर संभवतः वह जीवन में हार का वरण करने वाली बनी। पर इतनी बिहास-प्रियता और किञ्चनलर्षी कहीं सीखी उसने? क्या यह सब धामूपण-प्रियता के परिणामस्वरूप था।

सेलक यह मानता है कि जासपा को अपने पति से प्रेम है और सच्चा प्रेम है। उसी की रसायन से तो वह अपने पति को फिर पा सकी। पर धारंभिक जीवन में ऐसे इत्य कैंसे कर सची जिनसे वह अपने पति की दृष्टि में और स्वयं अपनी दृष्टि में ही गिरी हुई रही।

यदि सेलक को उसमें इतना ही क्षुद्र प्रेम दिखलाना था तो माँ के भेजे हुए धामूपणों को ही उसे से सेने दिया जाता कम-से-कम उसके पति तो जाने वाले संकट स बच जाते।

माँ की वस्तु तो बेटी से सकती थी और सकोच रहित हो सकती थी और इससे उसके मापके के बहूपन की बाक भी जग जाती। पर बहूँ उसे धान में और सकोच में डाल दिया और इस प्रकार पति पर संकट लाने का कारण उसे ही बना दिया गया।

सेलक उसके पति को संकट में डालकर ही उपम्यास का ताना-बाना बुनना

जाहते थे क्योंकि उनके विश्वास का संसार उसी पर ढका हो रहा था। पर ये संकट थे जो और मायमों से भी आते जा सकते थे। उसी के द्वार सारा पाप सिद्धक में क्यों आता। उसे ही अपयस की पिटारी क्यों बनाया। जबकि आत्मपाने सर्वत्र अपनी ही धीर उत्तर बुद्धि का परिचय दिया है। साब ही उसने अपनी वास्तविक त्यागबुद्धि को भी सोने नहीं दिया। माँ का भेजा हुआ हार उसने लीटा दिया परन्तु है बचाने के लिए उसने अपने तुरन्त वैचरित्ये पति के आने जाने पर उसने विरासत की सारी वस्तुएं संवाची में बहा दीं। विवाह के धार्मिक दिनों में उसे इतना धार्मिक प्रेमी दिखाया गया कि धाम्पणों के प्रभाव में पति के प्रेम की प्रबुद्धताकर मातृ-पुत्र बाने को संवार हो गई और पति के आने जाने पर एक साब इतना परिवर्तन था पता कि पिता के सिवाने जाने पर भी उनके साथ म गई। पति के पाप का प्रावर्धित करने के लिए अपने समस्त सुखों को लात मारकर शिरोधर प्रपराधी के कर देना की। उसकी यह धर्मबुद्धि पति से बिलग होने से पूर्व क्या कहीं भी प्रकट नहीं होती? उस पूर्व के चरित्र और उत्तरकालीन चरित्रों में इतना अंतर? सिद्धक में उसके धीस में भी कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ दिखाने के लिए भोज दिए हैं।

धाम्पण के मुख्य धर्म करने के लिए वहाँ माँ और पति संकोच करते हैं वहाँ वह उस वसात के पास पहुँचा ही जाती है और उससे ही बतें करने लगती है। एतन को जो वह कर्म देवती है बना खेबाक उसे पहले ही नहीं दिखना सकता था। इन बातों से स्पष्ट विहित है कि सिद्धक ने उसके धार्मिक चरित्र को कठिन बनाया है और धनुषित रूप से उसे धाम्पण-विरोधी उपदेशात्मक प्रवृत्ति की बोधना देने के लिए बलि का बकरा बना दिया गया है।

कसकते में उसे ले जाकर उससे जो पुरुषार्थ के कार्य कराये गये हैं वे तो उसके मन को आने आते लगते हैं पर पति के साथ उसे वहाँ भी धनुषित धर्मपर पर मान करने वाली विहित करके समपर बड़ा धावात किया गया है। उदका पति उससे मिलने वहाँ आया और यह जानते हुए भी कि वह बिगड़ता में संसा हुआ था उसे सहानुभूति की धारणकता थी वह उससे धर्मकी के भाव से मिस लकी संकटकाल में ऐसा मान गया उचित था। उसे फिर सिद्धक ने उसके पति के आने जाने पर बताया है और उसे उसका चरित्र उसके धर्मों में रों दिया गया—

“विभाषिनी रूप में वह केवल प्रेम के धारणक के दर्शन कर लकी थी। धात्र त्यागिनी बनकर उसने उसका पतनी रूप देखा। किटना मनोहर, किटना बिगुल किटना विद्या किटना तेजोमय। विभाषिनी ने प्रेमोत्थान की बीमारों को देखा था वह जमी में शुभ थी। त्यागिनी बनकर वह उस उद्योग के भीतर पहुँच गई थी, किटना रम्य रूप का किटना सुगन्ध किटना अविष्य किटना विकास इसकी सुगन्ध में इनकी सम्पत्ता में देवत्व भरा हुआ था। प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँचकर देवत्व से मिस जाता है। यह कोई संका नहीं है इत प्रेम को पाकर वह अगम-अग्यान्तरो तक भीभाववती बनी रहेगी। इसी प्रेम ने उसे विधोष परिस्थिति और मृत्यु के मुख से मुक्त कर दिया। उसे धर्मय दान कर दिया। इस प्रेम के सामने यह सारा संसार और उसका

पसक वीमल तुच्छ है।”

सेखक अपनी प्रारम्भिक कृतियों में सुभारवाची विचारों में विरवास करता हुआ देखा गया है। अतएव वह धामम खुलवाता है। सेखक की यह प्रवृत्ति आसपा के साथ भी पायी जाती है। यद्यपि नाम उन्होंने धामम का नहीं दिया फिर भी अन्त में उसके सास-ससुर बेबीबीन रतन, बोहरा सबको एक स्थान पर बैठ-बयार में सयाकर धामम का ही रूप दिया गया है। क्या वह अपने पति के साथ परिमाजित की हुई ऊँची नैतिक भूमि पर प्रेममय आठावरण में नौकरी के नापरिक क्षेत्र में ही नहीं रह सकती थी। पर क्या किया जाय सेखक को अपने आदर्श से प्रेम या भीर उसके सिये उसने आसपा को उस धामम में डकेस दिया, जहाँ उस धामम को भी सेखक ने पूरा नहीं बनाया।

फिर बोहरा को डवाने में भी क्या सेखक ने आसपा की क्षुद्रता का ही उदाहरण लिया था। वह तो सबसे प्रेम करने लगी थी पर उसकी क्षुद्रता को उसके सेखक ने अपनी क्षुद्रता क्यों बना लिया? उसे निर्दुग्ध करने के लिए ही प्रौपम्यासिक म्याय का उदाहरण लिया गया है। सेखक ने इस प्रकार अपने साथ भी प्रम्याय किया है। लेकिन यह सब है कि सेखक ने आसपा के चरित्र की संभावनाओं को प्रकाश में आसकर भारतीय नारी का मौरव बढ़ाया और स्त्री जाति को यह धनसर दिया कि वह अपनी अन्तःपरा के प्रकाश को दीख सके।

कुमारगिरि भगवतीचरण वर्मा

‘चित्रलता’ उपम्यास में कुमारगिरि और बीजगुप्त को क्या केवल ‘पाप और पुण्य’ की व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत की गई है। कुमारगिरि एवं बीजगुप्त को योगी और मोपी से प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में खड़ा करके दोनों के आचरणों के सबर्भ में पाप और पुण्य की परिमाया प्रस्तुत की गई है या महाप्रभु रत्नाम्बर के अर्थों में परिमाया को असम्भव बताया गया है।

रक्षिता ने प्रसन्न या परोक्ष चित्तों उदात्तभूति भोगी बीज गुप्त को दी है अतनी उसने योगी को नहीं दी है। इसके बावजूद बड़ी अतुराई से महाप्रभु रत्नाम्बर के वेरा में स्वयं रक्षिता ने देताक और विद्यादेव बीजगुप्त और कुमारगिरि इन दोनों के बीच या इन दोनों के परे सत्य रूप में स्थित होना चाहा है।

कहने को तो यह क्या बी आदर्शों को तोलने का प्रयास है दो दृष्टियों का अन्त है—दो पार्श्वों या दो व्यक्तियों का नहीं। यदि बीजगुप्त को आदर्श भोगी के रूप में प्रस्तुत किया गया तो कुमारगिरि को आदर्श भोगी के रूप में किया जाना चाहिए था। फिर पाठकों पर छोड़ दिया जाता कि वह तय करें कि कौन ‘पापी’ है, कौन ‘पुण्यारया’। लेकिन रक्षिता के पूर्वाग्रह ने ऐसा नहीं होने दिया है। वह कहता तो अपने को तटस्थ है परन्तु बीच-बीच में अनायास ही कुमारगिरि भोगी के स्थान पर कुमारगिरि पाषण्डी की मंकी देता जाता है। जैसे योग मात्र का मार्ग-अवसम्भन करना पाषण्डी दम्नी और अहंकारी होना है। यह छिपा हुआ पूर्वाग्रह आरम्भ से ही काम करता है। महाप्रभु रत्नाम्बर जब इसका परिचय देते हैं तो विद्यादेव से कहते हैं—“कुमारगिरि

योमी है—उसका दावा है कि उसमें संसार की समस्त बासनाओं पर विजय पा सी है। इस 'दावा' शब्द पर ध्यान कीजिए। इससे स्पष्ट निकलती है कि योमी कुमारगिरि में नहीं केवल रहने है, पालक्य है शरय नहीं। उसका सारा शोध केवल दिखाने के लिए है।

प्रश्न यह है कि क्या योमी कुमारगिरि ऐसा ही है? और अगर वह ऐसा है भी तो इसमें यौव और शोध-मार्ग का क्या शोध? यदि एक योमी इन्मी या भ्रष्ट है तो इससे शोध-मार्ग कैसे भ्रष्ट समझना चाहिए? इसी कारण ऐसा लगता है कि लेखक ने कुमारगिरि पर बानबूमकर पालक्य के छोटे दावे हैं। इसी तरह अन्तिम निर्णायक महाप्रभु रत्नाम्बर जैसे व्यक्ति को रखा गया है जिसके सिद्धान्त बीजगुप्त से तो मेल खाते हैं और कुमारगिरि के विरुद्ध पड़ते हैं। सब पूछा जाय तो बीजगुप्त तो रत्नाम्बर का शिष्य ही है। परिणामतः साधारण पाठक को अपना तात्पर्य महाप्रभु रत्नाम्बर से स्थापित करता है, अन्त्यास ही बीजगुप्त के अर्थिक निकट हो जाता है और कुमारगिरि से दूर। सारे नृत्पाठ में बीजगुप्त के मन में बैठकर कथाकार उसे तो भीतर से देखता है जबकि कुमारगिरि को केवल बाहर से। सारी कथा में ऐसा लगता है कि रचयिता कुमारगिरि के आन्तरिक हृदय से अपरिचित है—केवल उसकी मुख मुद्राएँ देखता है। विकास और बासना के दो शक्तों की तुलना की जाय। आरम्भ में बीजगुप्त का विकास है जो महिरा के छसकटे प्यासों के बीच क्लिप्तता क्षीण, क्लिप्तता शारीरिक और सहज रंसा गया है।

प्रत्येक मनुष्य की कमबोरी की तरह कुमारगिरि के जीवन में भी शूल बासना या पाप का एक शक्य भाग है। वह यौवभ्रष्ट हो जाता है। लेकिन उसका यह स्वतन्त्र संभवतः धारण भोगी बीजगुप्त की तुलना में शायद कम है। लेकिन यौव भ्रष्ट कुमारगिरि को उक्त शक्य रचयिता ने केवल बाहर से देखा—यागज की तरह बकते हुए, विद्वत् मुद्राएँ बनाते हुए बासना-शुद्ध बना। योमी की मर्यादा का जो लक्षित प्रताप उमड़-उमड़कर उसकी पसलियों से टकरा रहा था उसके ऊपर कथाकार ने पूर्ण शक्य दिया। कुमारगिरि मनुष्य का और क्लिप्त अन्तिम से लपकर वह लंबा बढ़ा उसी शक्य में वह शक्य शक्य दिलायायी पड़ता है। यदि वह उस शक्य में नहीं क्लिप्त तो उसका चरित्र शक्य शक्य और हाथ-मांस-हीन कठपुतली का हो जाता और बीजगुप्त जो केवल साक्षात् बासना उगार और मारकता, इनके अतिरिक्त शक्य कोई शक्य की नहीं सोलता अपने शक्य के शक्य में बढ़ा शक्य महात्मा दिखलाई पड़ता है। यह बात झुंझती है कि उसके जीवन का अन्तिम शक्य बढ़ा ही पवित्र और महात्मा दिलायाया गया है, जो स्वामिक भी हो सकता है।

कुमारगिरि के आन्तरिक विकास में लेखक ने स्वामिक पति से कार्य नहीं लिया है यह शक्य है। वह शक्य था यदि उसे उसी शक्य में रहने दिया जाता तो संभवतः उसका चरित्र शक्य शक्य बन जाता। उसकी कहानी बहुत सरल और सीधी है। वह योमी या ईश्वर में रहने जाता। संसार के शक्य-शक्यों से अन्तिम शक्य का शक्य। संयोजन से वह यौवभ्रष्ट हुआ। किन्तु इस अवस्था के बाद उसकी शक्य झुंझती है। वह

पुनः अपनी उपस्था और साधना से अपने को जो बालता है। स्वल्प होते ही अपने पाप को निर्माजित वे भी। सेरक का मत है कि पाप-पुण्य संबंधो बीजगुण की वृष्टि ही विहृत है और बीजगुण के समान्तर हैं। कुमारगिरि अपने शिष्य विद्यासरेष को धारम में कहता है—“बाधना पाप है जीवन की कमुपित बनाने का एक मात्र साधन है।” बीजगुण के अनुसार धरर यह परिभाषा गद्यत है तब तो जीवन के उरी एक मात्र धरम में उसके पुण्य क्रिया। अगर यह परिभाषा सही हो तो उसके वृष्टि कहाँ विहृत है ? धर्याय यह है कि उसने पतन का सम्पूर्ण कथा में बर्षन क्रिया गया है लेकिन उसके मानसिक संताप और दुःख का उत्पान करने के लिए उसके पीडामय प्रयास का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

चित्रलेखा से अपमानित और लांछित होने के बाद जब उसके भीतर की उरग्वल तेजस्विता सहा फूटकर निकल पड़ी थी और उसने पूरी शक्ति पूरे धारमविरवाध के धाय कहा था—“बाधो गर्तकी बाधो।” इन शब्दों में केवल अपमान का प्रतिशोध नहीं था इनमें था ज्ञान का फूटता हुआ प्रकाश भविष्य में स्थिर और सत्य मार्ग पर चलने का बुद्ध संकल्प बाधनों को काटकर निकसते हुए मूर्ध को मन्मुत तेजस्विता। यह उसके विद्याल हृदय की उधारता की कहानी है।

परन्तु उस कथा को कहने की आवश्यकता नहीं समझी गई। केवल उपन्यास के धंत में एक नय भाव विद्यासरेष के मुख से सुचना दिसा की गई है कि योपी कुमारगिरि प्रथित है, उन्हीं ममत्व को गधीमूठ कर दिया है वह संसार से बहुत ऊपर उठ चुके हैं। परन्तु प्रथित होने का, ममत्व को गधीमूठ करने का संसार से ऊपर उठने का क्या धर्म होता है इसकी धनुमूठि पाठक को नहीं होती है। और महाप्रमु रत्नाम्बर के लिए तो जैसे वे सब कुछ मात्र धरद-आप्त हैं, जिनका कोई उालय नहीं। कुमारगिरी की कथा के धावरपक धर्मों को घटाकर और पतन की एक बटना का विधाद गणन करके उसके विकास को प्रकट किया गया है। यह भी तब जब उसने बाधना को वाप मानकर उसकी बर्षना-सी की है, बीजगुण की तरह धरपर सिद्धांत और धारर्ष का धावरण बड़ाकर धरका धरर्षम करने की कोशिश नहीं की है।

पार्श्व की मात्रा बीजगुण के जीवन-दर्शन में व्याप्य है। कुमारगिरि की परिभाषा में नहीं। इसीलिए साध बाहने पर भी बीजगुण बाधना का कुला धरर्षन नहीं कर पाता। कुमारगिरि से प्रभावित होकर, बाधना से प्रेरित चित्रलेखा जब उसके पास घाटी है तब बीजगुण विचलित हा उठता है और उड़पकर चित्रलेखा से कहता है—“जो तुम कहती हो वह ठीक ही सक्ता है। मैं उसका विरोध नहीं करता। यह तो धरना विरवाध है, पर इतना नहीं पर कह देना धनुचित न होगा कि उम्मा और ज्ञान में जो नेर है गधी बाधना और प्रम में है। उम्मा धरबापी होता है और ज्ञान स्मापी। कुछ धरर्षों के लिए ज्ञान लोप हो सक्ता है पर वह मिठता नहीं। जब पामनन का प्रहार होता है, ज्ञान लोप हुमा विरित होता है पर उम्माय बीठ जाने के बाद ही ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। यदि ज्ञान धरर नहीं है तो प्रेम भी धरर नहीं है। पर धरै मत में ज्ञान धरर है—ररर का एक धंध और धाय ही प्रेम भी।”

ग्यायपूबक विचार किया था सकता है कि क्या वे शब्द बीजगुप्त के मुख से सोना पाने योग्य हैं ? उस बोधी बीजगुप्त के मुख से जिसका परिचय महाप्रभु एतान्तर यों देते हैं कि उसके हृदय में संसार की समस्त बाधनाओं का निवास है, ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं सायब करने कमी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं रत्नजटित मरिया पार्श्वों में ही उसका सारा सुख है ? किन्तु बचुराई से यह बीजगुप्त वासना और प्रेम में साम्बिक भेद करके अपनी वासना को धमर और चित्रलेखा की वासना को उन्मत्त एवं शक्ति सिद्ध करता है । कुछ मित्राकर बीजगुप्त का सिद्धांत इतना ही निकलता है वासना प्रगटपने में हो तो पुण्य है दूसरे में हो तो पाप है, और यही बीजगुप्त के योग संबंधी वाक्यांश का मोत है ।

कुमारविधि के चरित्र के सार को सम्याय हुआ उसका एकमात्र कारण यही है कि कथाकार ने उसे एक कसौटी पर कहा है ; धीरे बीजगुप्त को दूसरी पर । यही सिद्धांत धीरे मर्यादाएं जब कुमारविधि रखता है तो उसे बोधी बलीन धीरे ठरुं-सचित कहा जाता है, यही बातें जब बीजगुप्त कहता है तो सममें ऐसा स्वर भर दिया जाता है जैसे निरुद्ध आकाश में आकाशवाणी हो रही है । जब वह ऐश्वर्य धीरे वैभव को त्याग करके कठिन तपस्या के मार्ग का अवलम्बन करता है तब कहा जाता है कि बचप्य धीरे संग्यास वृत्ति बीजगुप्त के नियमों के प्रतिकूल चलना है अपने सुख के लिए संसार की बाधाओं से मुक्त मोड़ लेना है लेकिन बीजगुप्त धीरे ऐश्वर्य को छोड़कर, मित्रादी बचकर चित्रलेखा के घरों में घनाह संसार में केवल प्रेम की नौका पर बैठकर निकल चलता है तब बीजगुप्त की अवहेलना नहीं होती । तब तो यह सारा हठबाल बीजगुप्त को देवता धीरे स्वायमूर्ति बना देता है । उसके हृदय की विधामता सिद्ध करता है । बीजगुप्त तो कुमारविधि के प्रावर्ध मार्ग पर ही पैर से घाने वाला पबिक माना जा सकता है, किन्तु उसके ही दृष्टिकोण से यही कुमारविधि केवल पलायन का प्रपणभी नहीं टहणया जा सकता है ।

कुमारविधि के योग-मार्ग का केवल वैयक्तिक सुख से प्रेरित बतलाया गया है । जिस क्षीन शक्ति की साधना योगियों का लक्ष्य है उसे जीव के सुख के समानान्तर रखना ज्ञापक पूर्वाग्रह है । सायब रही पूर्वाग्रह के कारण कथाकार उसके मानस में बैठ नहीं पाता धीरे हर स्वत पर उसे सत्य की ओर में हारता हुआ दिखलाता है । परन्तु यह सचकी हार नहीं है माप ही धबुरा है जबकि वह उसकी कथा कहकर सिद्ध इतना सिद्ध कर पाता है कि योग धबुरा है । धीरे जितना ही वह पब को धबुरा सिद्ध करने में विफल होता है उतना ही भ्रष्टाकर उसके चरित्र की तोड़ना-मरीड़ता है बिचरे उसके स्वानाधिक स्निग्ध विकास में बाधा होती है ।

जयन्ती जोधी

'संग्यासी' उपन्यास की 'जयन्ती' का अंत आरम्भरथा से होता है । उसने सरीर पर मिट्टी का सेल छिड़ककर धाग बनाकर आरम्भरथा कर ली । सिरक ने अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए सचकी आरम्भरथा करवा ली । लेखक ने उसे यह स्वतंत्रता ही नहीं

ही कि वह स्वतंत्र जीवन भी सके। उसने तो उसे अपने मन के भीतर धनेकों बचकपों के बीच लसभ्य रखा था। उपन्यास का समस्त कथानक कहता है कि भारतभृत्या इस लिए नहीं कि उसके पतिदेवता नन्दकिशोर बाबपेयीजी उसपर अनिदबास करत थे अपनवा यह कि वह स्वयं किसी भी रूप में कौलाद्य से साय-सयाज रखती थी। वह एक सहज मारी है और अपनी मारी सुलभ-प्रकृति के अनुसार वह नन्दकिशोर के भ्रम को तो दूर कर ही सकती थी उनकी हर मजाकत बर्बाद कर सकती थी किन्तु वह मजबूर थी क्योंकि उसके निर्माता सेलक ने उसे उसकी निजी स्वामाधिक गति पर न छोड़कर अपने पूर्व निश्चित धारण में बांध रखा था। उसकी मृत्यु धकाम मृत्यु-सी हुई है। और उसकी काया बरबरस्ती बसा ही गई है।

यदि उसके चरित्र का अध्ययन निकट से किया जाय और संन्यासी उपन्यास में उसे जिस प्रकार का रूप दिया गया है उसपर ध्यान दिया जाय तो सपता है कि वह एक सजीव नेतन व्यक्ति माननी न होकर एक मनोवैज्ञानिक टाहप के रूप में चित्रित की गई है। सेलक ने दान्ति जैसे पात्र को जहाँ संतों की श्रेणी में रखने का प्रयास बरबरस्ती किया है वहाँ उसे और रामबारी को जान-बूझकर दो विभिन्न मनोवैज्ञानिक टाहप के रूप में बहूपूर्वक बालने की चेष्टा की है। पिस्टी कामरॉस धर्मात् प्रपराध ग्नामि की मूर्ति-सी उसे जिस परिधि में रखकर सेलक ने विशेष कर लिया है वह 'निस्ती कामरॉस' उसमें बाध भी नहीं है। उसके विपरीत उसके पतिदेव की नन्दकिशोर बाबपेयी में स्वभावतः निम्नस्तर की मन-प्रविर्वा हैं। वह ऐसा व्यक्ति है, जिसमें न तो रीढ़ की हड्डी है न धातमसंयम। न तो विवेक है और न जीने और मोगने की उप नम्बि से संतुष्ट अपनवा यतिहीन होने की दान्ति। यदि देखा जाय तो नन्दकिशोर में न तो एक धन्ये प्रमी होने के तरब है और न पति होने के न तो विवेक का ही गुण है और न मादक होने का। वह एक ऐसे व्यक्ति है जिन्हें न तो समाज में पाया जा सकता है और न किसी इतिहास में क्योंकि उनमें प्रत्येक क्षम नहीं कृतायें बामती रहती हैं और ऐसी जग्मती हैं जैसे पिछले का संस्कार उनपर पड़ता ही नहीं है। यदि वह नबन उपन्यास में ही विरचित और विरहित नायिका न होकर समाज की होती और उसके जीवन-तरवों को लेकर सेलक ने उसकी धसमियत पहचानी होती तो जिस नन्दकिशोर के प्रति उसे उपन्यास में धाकपित होता दिखलाया गया है, धायद उसकी धोर वह पूटी धाँधों भी नहीं देखती। इसका पहसा कारण तो यह है कि नन्दकिशोर समाज का जीवनत तरब नहीं है। वह सेलक का यड़ा हुमा व्यक्ति है। उसे न तो बह्या ने बनाया है और न समाज ने। वह ऐसा कागजी धारमी है जिसके लिए दान्ति भी उठनी ही रहस्यमयी मायाविनी धोर सुभाषनी है अितनी कि वह धधवा कोई धोर स्त्री। ऐसा व्यक्ति धाज या धाज से बस-बीस बप पूर्व किसी भी स्त्री का प्रिय पात्र नहीं हो सकता था। स्त्री पुरुष के पुरुषत्व धोर उसके साहस यध धोर विवेक से प्रभावित होती है। उसकी सरमता-गुणमता के प्रति धाकपित होती है। नन्दकिशोर में इन दोनों में से कोई भी मुष नहीं है। न तो वह जीवन से प्रेरणा लेकर अपने पुरुषत्व पर भी सकता है और न उसमें वह सरलता और सुधमता ही है जो सहसा

किसी भी गरीब को मोहित कर सके। वह एक घमरबेल के समान है जिसकी अपनी बड़ें नहीं हैं पर जो दूसरों पर देरासाईट बलकर भीने में इतना दख है कि भैया, माभी और बयन्ती धाम्ति सबसे केबल अपनी रबि के अनुसार निकर उम्हें त्यागने में दख है। कायर इतना है कि भैया के बिये हुए रुपये के बल पर वह धाम्ति को मया साटा है और भैया की डांट-फटकार के सामने उसे मुला भी सकता है। दूसरी धाबी रबा सकता है और फिर भी धार्मिकबाद पर बड़िया से बड़िया ब्याख्याम दे सकता है।

सेखक ने बयन्ती के साथ एक घोर धम्याय किया है। वह उसके संकोचशील स्वभाव की पृष्ठभूमि में उसकी स्वाभाविकता को धोक सकते में पुणठया घसफम रहा है। उसकी सहुक प्रकृतिपठ हईती और नय्या को रबि और प्रेम के स्तर पर धोककर धर्म के धर्मों में बाब सेखक ने मन के लद्बु खाने की बट्टा की है। यह वह रहस्य मयी पृष्ठ से नम्बकिघोर की बेबती भी है तो वह बात भी स्वभाव की बिबधता की न कि किसी प्रगाढ़ प्रेम की। सेकिन सेखक ने तो एक ठरपर बात की है। नम्बकिघोर जिसके प्रति उसका दुक बिबवास है कि वह मान धबठरबाही मित्र रहित और ध्यबहार हीन है उसे एकांगी प्रेम का यह बिब बिबलताया है कि बेबारे की ठबीयठ हुरी हो गई है। सारे उपग्यास में नम्बकिघोर का मैं ऐसा प्रजाप है कि उसे कभी भी 'हम' की खबा मिल ही नहीं सकती। बयन्ती भी अपनी प्रकृति के अनुसार उसके दस रहस्य को जानती थी सेकिन सेखक ने सारे उपग्यास को अपने मन्तव्यों के अनुसार इतना बकड़ रबा है कि उसे बोलने का कभी कोई अवसर ही नहीं मिला। वहीं एक घोर नम्बकिघोर इतना ब्याबा बातूनी और बकबाही ध्यक्ति है वहीं उसे सेखक ने बेबल मोम की पुडिया बनाया बेबधान। यदि सेखक ने बिबाह के पूर्व कभी भी उसे नम्बकिघोर से बाठबीठ करने का अवसर प्रदान किया होता तो वह उनके समस्त रबित बिबान को एक-एक करके ध्यस्त कर देती। सेखक ने बीबन की साधारण से साधारण बात का बिबाठ बकड़ का पूव बबस्थित किया है। सहुक मानबीय खैरला और अनुसृति पर बिबबाठ न करके केबल धबधिमिठ और बनेधभीय पठनाधों एवं स्थितियों को ही महान माना है। यह सबका सब तो उस समय पठा बनता है, जब उसकी हुर्या कर चुकने के बाद सेखक मनमाने इय से महाराय नम्बकिघोर को संभ्याती बनवा देते हैं। और फिर उस संभ्याती को क्लिप्तान नेता के रूप में स्वामी भावानम्ब बनाकर बेबल ध्येतिधुम्न के धाधार पर बबसे बकबास कराते हैं। ऐसे बिबठ परिबर्तन के लिए उप-युक्त पठना देने के लिए सेखक स्वयं धसधर्म रहे हैं।

रामेश्वरी की फिट से मुत्तु होना बयन्ती को फिट का बीठ धाना रामेश्वरी का धाय लबाकर बल मरना बयन्ती का धाय लगाकर बल मरना मास्टरजी की स्त्री का धाय लबाकर बल मरना धपबा नम्बकिघोर का वह स्वप्न जिसमें वह उसे धान लयाकर बलते हुए देखता है ऐसा नपठा है कि सेखक ने धारमहुर्या को ही समस्त धमस्याधों का बिबान मान लिया है। इससे भी बड़कर बिबधनता तो उस पत्र में है जिसे सेखक ने उसे कमरे में बंद करके धारमहुर्या करम के धूर्ध निखबाया है। उसे यह पत्र बिबिध्य होकर नहीं तो धार्मिकिठ होकर धबधय सिखना पड़ा है। बयन्ती के भीतर

कोई भावना दबी हुई नहीं थी, कौसाघ के प्रति उसकी सहज विद्योरावस्था की मोह भावना ही थी। वह जब कौसाघ से उतनी ही दूर थी जितनी कि नन्दकिशोर से। इसलिए उसे किसी भी भावना को दबाने की चेष्टा ही नहीं करनी पड़ी थी लेकिन लेखक ने उससे वह भी लिखवाया जो बिलकुल सत्य नहीं था। उस पत्र में सत्य केवल यह हो सकता था कि विवाह के बाद कठोर संभर्गों ने उसे बाँध दिया था। काश कि वह इस कठोर बन्धन की ब्याख्या कर पाती और नन्दकिशोर को बता पाती कि वह किठना निरर्थक व्यक्तित्व है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि इस सारे उपन्यास में नन्दकिशोर का कोई भी मित्र नहीं बना पाया और जिसका कोई मित्र न हो वह और सब कुछ कर सकता है। धान्य प्रेम का सीवाही उससे नहीं हो सकता।

लेखक ने जयन्ती के परिवेष्ट को भारतीय जीवन और भारतीय पृष्ठभूमि के परिवेष्ट में रखकर नहीं देखा। एक संपन्न परिवार कंसे रहता है उसकी पूर्णता किससे है उसकी अंतिम अभिवार्य उपलब्धि कहाँ होती है, धान्य इसकी कोई परवाह लेखक ने नहीं की। चाहे वह प्रोफेसर मित्र का घर हो या स्वयं उनके माई साहब का चाहे वह उनकी निज की पृष्ठभूमि चाहे वह इलाहाबाद का घर हो या सज्जनऊ जिसे का एक गांव का घर। असंशयत यह है कि घर की रचना और भारता को वह पकड़ ही नहीं पाये हैं। यदि लेखक ने इस परिवेष्ट में जयन्ती के विकास को देखा होता तो न तो जयन्ती धारमहत्या करती और न रामेश्वरी। न तो धान्य उनसे बचकर भाग जाती न नन्दकिशोर इतनी सरलता से अपने बेटे मस्तान को उसकी मनमानी मौसी के पास छोड़कर संघासी हो जाता।

चन्द्रमाधव अज्ञेय

'चन्द्रमाधव' अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' का यौग पात्र है। उसके पूर्ण व्यक्तित्व के अभिवार्य उपादानों को उपन्यास के नायक भुवण ने धारमसात कर लिया है इसमें कोई संदेह नहीं। कला की निस्संयता के लक्ष्यों को तिलांजलि देकर उसका चरित्र-विकास किया गया है। लेखक ने मनमाने ढंग से पात्रों को ठोड़ा-मरोड़ा भी है। फिस्म जयन्ती की प्रसिद्ध छारिका जगदलैसा से उसका विवाह होता है। लेखक का मत है कि चन्द्रमाधव उससे ऊँचा हुआ था लेकिन बात ऐसी नहीं थी। लेखक ने उसे पत्रकार के रूप में चित्रित किया है जो हर पहलू पर विचार करता है, टिप्पणियाँ देता है। बिना किसी क-रियायत के सत्य को विज्ञापित करना पत्रकारों का काम है। और सत्य की अपेक्षा में धाकर कौन हताहत होता है इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। सत्य का उद्घाटन करने के लिए उन्हें व्यक्ति की पश्ची और पेटे का सिद्धांत छोड़कर मुकताचीनी करनी पड़ती है।

चन्द्रमाधव के चरित्र की वास्तविकता को बड़े-बड़े चरित्रों के ज्ञान में छिपाया गया है और उसके चरित्र को नीच और धुंधिल दिखाया गया है, किन्तु लेखक चन्द्रमाधव को नीच न बना सका। पाठकों की धाम धारणा लेखक की मनोवृत्ति न बिस्तृत विपरीत है। चन्द्रमाधव की यही विशेषता है कि वह एक अर्थाय चरित्र है देखा मुफ्त प्रादि

की भयला बहु क्याया भारतविक प्रतीत होता है। यह बात सत्य प्रतीत होती है कि लेखक ने अपने राजनीतिक धारणाओं को अग्रमात्र के माध्यम से स्पष्ट करना चाहा है, लेकिन लेखक की राजनीतिक भावनाओं के आधार पर बहुबुरा नहीं हो सका।

धर्म के प्रति प्रतिक्रिया या प्रतिकार इन सभी दार्मिक और राजनीतिक और मानव जीवन के प्रतिक्रिया में इन विचार सुझावों की ऐतिहासिक अर्थवत्ता से स्वाभाविक विद् है जिसके कारण सामाजिक विकास की सभी ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विचारधाराओं को त्यागकर उन्होंने अज्ञान को अपना जीवनदर्शन बनाया है। अतः ही रीयस है, यह मानकर उन्होंने मानव जीवन और संस्कृति के अतीत और भविष्य की जैसे फूँक से उड़ाकर सबकी अवह पर चिर वर्तमान को स्थापित करना चाहा है। चूंकि वह प्रतिक्रिया या प्रतिकारी विचारों का अर्नलिस्ट है तो क्या इस कारण ही उसके प्रति उनका धारणा इतना अनियंत्रित रूप में बढ़कर उठा कि वे अपने धारणाओं को अज्ञान और अज्ञान के माध्यमों को भूलकर अर्नलिस्टों पर ही विश्वास पड़े। इस प्रकार लेखक अग्रमात्र को पत्रकार बनाकर उसके चरित्र का मूर्खान्त हीन रीति से करता है। अग्रमात्र के चरित्र को बनाने के लिए लेखक ने अग्रमात्र के मध्य पात्रों की यथा मुबन, रेखा और गीरा को भी अविश्वसनीय चरित्र बना दिया। रेखा और गीरा मुबन की वैज्ञानिक प्रतिष्ठाभियाँ हैं। अग्रमात्र का दोनों से बहुत परिचय था। रेखा से वह प्रेम भी करता था। दोनों नारियाँ धार्मिकियाँ हैं। दोनों पढ़ी-लिखी संभ्रांत सुसंस्कृत नारियाँ थीं। दोनों इस देश के दक्षिणावृत्ती समाज में अपने लिए नया प्रतिक्रिया रास्ता बनाने के लिए संघर्ष कर रही थीं। रेखा और गीरा में अज्ञान और अज्ञानिता की कमी नहीं थी। लेकिन लेखक ने उसके जीवन को सीमित कर दिया क्योंकि यदि उसके समुचित विकास होता है तो अग्रमात्र फल-फूल जाता। जैसे मानी उनकी अज्ञानता का साथ जीवन इस निष्कर्षकर लेखक ने सिर्फ उनकी सौख्यी कामा ही अग्रमात्र में पैदा की हो।

अतः ही उनका जीवन में सिर्फ एक ही समस्या है कि वह लिखकर और स्वतंत्र चिन्तन से उनके अन्दर जिस व्यक्तिगत का विकास हो गया है उसके मुक्ति पाने के लिए वे किसी रहस्यमय अज्ञान रास्ते के प्रति अन्वी से अन्वी जैसे समर्पित हो जाएँ, जैसे उनकी बन जाएँ। यह धार्मिक नारी की जीवन-समस्या की वैरोधी तो है ही रेखा और गीरा की भी वैरोधी है। अज्ञानता की बात यह है कि पुराने समाज में स्त्री अज्ञान धार्मिक सर्वधर्मों के कारण अज्ञान से अज्ञान की अज्ञान थी तो 'नदी के द्वीप में धार्मिक नारी को अज्ञानपूर्वक पुरुष की अज्ञान-सुखि का अज्ञान अज्ञान मान बनते हुए लिखाया है। नारी चरित्रों की अज्ञान ने निरीह बना दिया है। हालांकि अग्रमात्र निरीह नहीं है। हालांकि लेखक उसे निरीह और अज्ञान बनाने की कोशिश करता है। इसके पीछे लेखक की चारणा रही है कि वह मुबन को अज्ञान बनाया जाहता या और मुबन धर्म का प्रतिकार बनकर धारणा है। किन्तु लेखक अपनी धारणा और अपने धारणा व्यक्तिगत का प्रतिकार भी जैसे नहीं बना अज्ञान किन्तु सब कुछ धारणा या और बहुत ही अज्ञान और बहुत अज्ञान धारणा है और वह अग्रमात्र का अज्ञान एवं अज्ञान की अज्ञान है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मुबन की तुलना में चन्द्रमाधव को निहायत चरित्र सिद्ध करने के लिए लेखक ने उसके विचारों की बगह-बगह कटु प्रामोचना की है स्वयं उसके संबंध में टिप्पणियाँ भी हैं। मुबन, रेखा और गौर के चरित्रों और कहीं-कहीं स्वयं सामने आकर 'जबो के हीप' में उसका मजाक उड़ाया है। उसे शीघ्र और वृद्धित साबित किया है। रेखा से मुबन का परिचय चन्द्रमाधव के माध्यम से होता है और सचमुच चन्द्रमाधव रेखा से प्रेम करता है—सच्चे दिल से प्रेम करता है और रेखा भी स्नेह करती है।

किन्तु वह ईर्ष्यासु नहीं है। उसे रेखा और मुबन के स्नेह-सम्बन्धों से चिन्नायत नहीं है। अथवा ऐसा होता तो वह उन दोनों को इलाहाबाद की गाड़ी पर क्यों चढ़ा पाता। इलाहाबाद से लौटकर रेखा की भाँखें बचल गईं। रेखा पर मुबन ने मोहिनी बाल भी की। इसके बाद विचित्र बटनाएँ हुईं। रेखा के साथ मुबन मैनीटाल गया और मुबन के पहुँचने से पहले रेखा श्रीनगर पहुँच गई। तुलसीदास मीन पर जाकर रेखा ने मुबन के प्राये समर्पण किया लेकिन इतना सब हो जाने पर भी मुबन ने एक बार भी रेखा से नहीं कहा कि वह प्यार करता है कि वह भी उसके प्रति समर्पित होना चाहता है। दरअसल वह उससे प्रेम करता ही नहीं था क्योंकि साथ-साथ ही गौर को भी अपने सम्बन्ध में फँसाता जा रहा था। फिर भी वही हुआ जो होना था यानी रेखा को जब विश्वास हो गया कि मुबन उससे प्रेम नहीं करता केवल औपचारिक बन से उसकी सामाजिक स्थिति बनाने के लिए उसने विवाह का प्रस्ताव किया है। उसने आकर अपने प्रसंगों सिद्ध की हूया करवा दी है। फिर भी मुबन ने जोर देकर नहीं कहा कि वह उसे प्यार करता है, उसके बिना अपने जीवन को कल्पना नहीं कर सकता। करता भी कैसे? प्रसंग में उसकी निमाह तो गौरा पर भी और जब तक गौरा पढ़ लिखकर इंग्लैण्ड नहीं हो जाती तब तक रेखा के साथ ईश्वर्यक अफेयर ही वह चलाना चाहता था। मायजर्म है कि लेखक ने बुनियाद मर की अयेजी, बंयसा हिन्दी कविताओं के कोटेचमर देकर मुबन के इस नीच कार्य पर औचित्य का मुलम्मा चढ़ाया है, मुबन को देवता और महामानव और न जाने क्या-क्या बनाया है। साथ ही रेखा और गौर दोनों से चन्द्रमाधव के प्रेम का मजाक उड़ाया गया। बाद में चन्द्रसेला से उसका विवाह हुआ। अभी तक उसका प्रेम असुल्ल है। उतना ही ताजा चितना कभी था। यह इस बात का सबूत है कि अथवा रेखा उससे प्रेम करती हो तो कम से कम उसे वह अपमान न भेजना पड़ता जो मुबन से प्रेम करके उसे भेजना पड़ा था। पाठक भी इस बात को महसूस करते हैं फिर भी मजे की बात यह है कि रेखा के मन में मुबन के विश्वासघात के प्रति जैसे भी क्रोध उमड़ा लेखक ने उसे तुरन्त गते मुँह ही पोंट दिया और रेखा से मुबन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करवा दी। रेखा डाक्टर रमेश से विवाह करने के बाद भी मुबन को पत्र लिखती रही कि वह सही की है। इतर गौरा को जब एक बातों का पता चला तो मुबन के प्रति उसके मन में ग्लानि नहीं करवा पड़ा हुई। यदव गोरख-बन्धा है। मुबन किसीको कुछ नहीं देता लेकिन दोनों स्थित उसपर अपने-प्राय समर्पित होती जाती हैं यहाँ तक कि उन दोनों में भी एक-दूसरे के प्रति

ईश्वर नहीं देता होती। दोनों स्त्रियों मुक्त की यहकार-दृष्टि का साधनमात्र सिद्धीना उसकी प्रतिध्वनि बनने में ही जीवन की सार्थकता समझती है। मुक्त देसा के प्रति और बफादार नहीं रहा गौरा से घापी करके उसके प्रति भी बफादार नहीं रहा गौरा से घापी करके रह सकेया इसमें भी राक है। क्योंकि विवाहित जीवन में प्रेम की वियाव सात सात से अधिक नहीं होती किन्ती अमित कामशास्त्र का यह सूत्र लेखक ने कई बार मुक्त के मूह से कहलबाया है। अन्तमात्र को यदि अपनी पत्नी अन्तसेवा का सबाहरण सामने न होता जो इन दोनों स्त्रियों से ज्यादा सुन्दर बड़ी कसाकार, अधिक धार्मिक और संभ्रान्त मारी है तो वह भी वास्तविक के अर्थों में कहता है कि धीरों सिर्फ मक्कारों, होंमियों, और बहुस्त्रियों को ही पराम्ब करती है।

इस अमाने में मुक्तों का चाहे जितना विषय हो गया हो स्त्रियों में चाहे जितनी विरायत या गई हो लेकिन एक महान लेखक ने मुक्त जैसे स्वार्थी और व्यक्तिवहीन धारमी को जो बोनी बीडिकता और बीडानिकता के क्षेत्र में पड़ी-तिली स्त्रियों का जीवन भ्रष्ट करता फिरता है अपनी धारमा का सारा धासन उडिसकर अपनी पूरी राचारमक सहानुभूति देकर देवत्व से मंडित करना चाहा है।

अध्याय सात

उपसंहार

चरित्र विकास उपलब्धि, अभाव और सम्भावनाएँ

हिन्दी साहित्य का प्रागुक्तिक काल बहुमुखी विकास और प्रतिभा का युग है। इस काल में प्रत्येक विभाग और क्षेत्र में इतनी हीनता से परिवर्तन हुए हैं कि इसे साहित्यिक जाति का युग कहा जा सकता है।^१

प्रागुक्तिक युग का आरम्भ उत्पारन यातायात और वितरण के नये साधनों से होता है। अपनी घोषण-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए धर्मों ने जिस रेश तार, बाक तथा यातायात के धर्म साधनों का विकास किया वे भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के विकास के साधन भी बने। अपने विद्वान छात्राध्य को जमाने के लिए उन्होंने जिस संवेधी शिक्षा का प्रारम्भ किया वह सुदर्शनचक्र की भाँति बसटकर उन्हीं के मर्मस्थान पर गया।^२

इण्डियन मेसनस कांफ्रेस की स्थापना ने हिन्दी साहित्य के तीव्र विकास में और भी सहायता की। मनीष राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप साहित्य, समाज धर्म और रक्षण प्रादि सभी क्षेत्रों में भारतीय मोरच के पुनरुत्थान का प्रयास होने लगा।^३ उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर २०वीं सदी तक धाते-धाते पद्य-साहित्य का प्रचुर विकास हुआ एवं 'अन्नकास्ता' से प्रारम्भ होकर 'कमला' साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

हिन्दी-साहित्य के चरित्रों का विकास सर्वप्रथम मोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से होता है।^४ यों तो चरित्रों का वास्तविक विकास कथा साहित्य में प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है पर इसके लक्षण भारतीय युग में स्पष्ट हो चुके थे।^५ मनुष्य के वास्तविक जीवन का विचित्र आरम्भ हुआ—दरिद्र जन-साधारण और महादक्षिणायनी नर

१ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२

२ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२

३ प्रागुक्तिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २६

४ " " " " , पृ० १०

५ त्रिवेणी पृ० १३२

६ काव्य, कला और काव्य निर्बंध, पृ० १३६

ईर्ष्या नहीं पैदा होती। दोनों स्त्रियाँ भुवन की घटकार-सृष्टि का साधनमान जिनकी वासना प्रविष्टि बनने में ही जीवन की सार्थकता समझती हैं। भुवन रक्षा के प्रति घोर बफ़ादार नहीं रहा। गीत से घाबी करके उसके प्रति भी बफ़ादार नहीं रहा। गीत से घादी करके वह सकेगा इसमें भी शक है। क्योंकि विवाहित जीवन में प्रेम की मियाज सात साल से अधिक नहीं होती, किसी अनिष्ट कामसाधन का वह सूत्र सेतक से कई बार भुवन के मूँह से कहलबाया है। अन्नमाधव की पति अपनी पत्नी अन्नमैत्रा का उदाहरण सामने न होता जो इन दोनों स्त्रियों से ज्यादा सुन्दर बड़ी कसाकार धार्मिक धार्मिक और संभ्राम्य गारी है जो वह भी बालक के सपनों में कहता है कि घोरतें सिर्फ मककारों बोंगियों और बहुकपियों को ही पलम्ब करती है।

इस जमाने में मूर्खों का जाहे जितना विचरन हो गया हो स्त्रियों में जाहे जितनी गिरावट या गई हो लेकिन एक महान संकटक ने भुवन बड़े स्वार्थी और व्यक्तित्वहीन धारमी को जो बोधी बीडकता और बीडकता के क्षेत्र में पड़ी-मिठी स्त्रियों का जीवन-भ्रष्ट करवा फिटवा है अपनी धारमा का साप धारम उड़ितकर अपनी पूरी रागात्मक सहायुक्ति देकर देवत्व से भंडित करना चाहा है।

ग्रन्थाय सात

उपसंहार

चरित्र विकास उपलब्धि, अभाव और सम्भावनाएँ

हिन्दी साहित्य का प्राबुलिक काल बहुमुखी विकास और प्रतिभा का युग है। इस काल में प्रत्येक विभाग और क्षेत्र में इतनी तीव्रता से परिवर्तन हुए हैं कि इसे साहित्यिक क्रांति का युग कहा जा सकता है।^१

प्राबुलिक युग का आरम्भ उत्पन्न मातायात और वितरण के नये साधनों से होता है। अपनी सोपान-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अंग्रेजों ने जिस रेल तार बाक तथा मातायात के अन्य साधनों का विकास किया वे भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के विकास के साधन भी बने। अपने विद्यालय साम्राज्य को बनाने के लिए उन्होंने जिस अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ किया वह सुदर्शनपत्र की भांति उलटकर उन्हीं के मर्मस्थान पर लगा।^२

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना ने हिन्दी साहित्य के तीव्र विकास में और भी सहायता की। नवीन राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप साहित्य समाज धर्म और दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास होने लगा।^३ उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ होकर २०वीं शती तक आते-आते गद्य-साहित्य का प्रचुर विकास हुआ एवं 'अन्धकारता' से आरम्भ होकर क्रमशः साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

हिन्दी-साहित्य के चरित्रों का विकास सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से होता है।^४ यों तो चरित्रों का वास्तविक विकास कथा साहित्य में प्रेमचन्द से आरम्भ होता है पर इसके सफल भारतीय युग में स्पष्ट हो चुके थे।^५ मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण आरम्भ हुआ—दरिद्र जन-साधारण और महासक्तिशाली नर

१ आलोचना (इतिहास अंक), पृ० ७२

२ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२

३ प्राबुलिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० २६

४ " " " " , पृ० १०

५ निवेदी पृ० १५२

६ काव्य, कला और धर्म विचार, पृ० १३६

पति दोनों के माध्यम से।^७

हिन्दी के आदि भौतिक उपन्यास 'परीसा-गुब' के चरित्र अपनी मानवीयता के कारण धार्मिक बनकर पाठकों के सामने आये। रैबकीनन्दन जयी किशोरीलाल भोस्वामी, गोपासराम गहमरी आदि के कास्वनिष्ठ चित्तम आगुस और ऐम्पारों ने पाठकों को धार्मिकचरित्र कर दिया। फिर भी उन कृतियों में मानव-जीवन के व्यापक आर्थिक मुद्दों की बड़ी पर्चा नहीं हुई जैसी आज होती गजर पाती है।^८ फिर भी 'मूठ नाव' जैसे दो प्रकृतियों के इगड से समन्वित एक अद्भुत चरित्र की सृष्टि कर डालना चन्द्रकान्ता के सद्यक की सफलता ही कही जायगी। यह इहियों का डांवा' भूतनाय किन विशेष परिस्थितियों का किस-किस रूप में विचार है इसे चारों ओर से सोचने का उसके नये निर्माताओं को समय भी नहीं था। उन्होंने केवल उसके बिरोह के आनेवों को पकड़ा तथा इसी सिलसिले में 'रक्तमंडल', 'साल यंत्रा' आदि की सृष्टि हुई।^९

आलोचकों ने धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य की सीमा रानी केतकी की बहानी' 'परीसा-गुब' 'चन्द्रकान्ता सम्वति' आदि तक निश्चित की है। पर चरित्र विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द के पूर्व की ये कथा-कृतियां काशी कमकोर सतही और छिछरी हैं। इसका कारण यह है कि उस समय का कथा-साहित्य चरित्र-वचन नहीं पटना प्रमाण था।^{१०} प्रेमचन्द के पूर्व तक चरित्र विकास के क्षेत्र में इसी बाह्य पार्थिकता "तड़कतड़क और निर्बीजता का राज्य था। इस युग का वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं था।^{११} प्रेम-प्रधान उपन्यासों में भी यह चरित्र विषय केवल नाम का रहा है।^{१२} प्रेमचन्द ही पहले उपन्यासकार थे जिन्होंने स्वयं चरित्र-वचन उपन्यास लिखे हुए लोगों को भी उस ओर प्रेरित किया^{१३} और इस तरह उपन्यासों की चारों ओर सही-सुलझे की ओर मोड़ा। उन्होंने उपन्यासों को परियों के रेश एवं रात के विकास-गुहों से निकालकर केतों और बाजारों में लाकर बड़ा कर दिया। उन्होंने भारतीय किसानों के लिए बड़ी काम किया जो कभी किसानों के लिए टास्वटाय ने।^{१४} प्रेमचन्द ने ही हिन्दी उपन्यासों में पहले से जैसे आठे आदसंबाद को बुद्धिवाद से पुष्ट किया गुबारबारी दृष्टिकोण को सुदृढ और कसालमक बनाया तथा उसे यथार्थ की ओर प्रेरित किया^{१५}

७ वही

८ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ६१

९ आलोचना (१४), पृ० ३१

१० आलोचना (उपन्यास संक), पृ० १५३

११ धार्मिक हिन्दी साहित्य पृ १८०

१२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ७२

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४१८

१४ प्रेमचन्द : एक विवेचन, पृ० ४४

१५ कवि, पृ० ४४

१६ आलोचना (१३), पृ० ८१

इसीलिए उनका 'भारतीयों-मुसलमानों' द्वारा सेसकों के लिए अनुकरणीय भी बन सका।" इस तरह इन दो दफ्तों के उपन्यास-साहित्य में अरिजों के अनेकानेक बहने हुए रूप निम्ते हैं तथा हिन्दी-उपन्यासकारों के गम्भीर सामाजिक चिन्तन एवं सूक्ष्म पदबोध-उपलब्ध का पता चलता है।

इस काल के उपन्यासों में नारी-अरिजों की महत्वपूर्ण समस्याओं का विचार चित्रण हुआ। बूढ़-विवाह अगम्य विवाह बास विवाह बहूज वैधवा-श्रमा हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदाय के वैदिकस्य आदि समस्याओं के आधार पर कथा साहित्य के महत्वपूर्ण अरिजों की सृष्टि हुई।^{१०} प्रमत्त ने समाज के भीतर के अनेक बगों—बमोदार, किसान, सुबखोर महाजन और उनके निर्धन कर्मचार, महाजनी संस्कृति के रक्षकताई पड़े पुरोहित आदि तथा भूमिहीन बेतुहुर बगों तथा निजारी-अरिजों का भी विचार चित्रण किया।^{११} उनके द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलकर कई अन्य सखकों ने भी इन्हीं बगों और समस्याओं के आधार पर अपनी सुप्रसिद्ध रचनाएं उपस्थित कीं।

पोदान' मिस्त्रने से पहले प्रेमचन्द ने अपने एक पत्र में लिखा था—'घाई एम एन आयरियमिस्ट बिह ए टच थाफ रिमिज्म'^{१२} पर उन्होंने बहूज ययार्य चित्रण की अपनाया बहूज कलाकारों का एक बगं धरत की करणा और भाबुकता को आधार बना कर अरिज-सृष्टि में भी संलग्न हुआ। तपोभूमि, परल और जेनेश के परवर्ती उपन्यासों में धरत की इन्हीं भाबुकता के वर्णन होते हैं। साथ प्रकृतिबारी लेखकों का भी एक बस पाया जिन्होंने नयन चित्रण, सुगुप्ता और योन आकर्षण को ही विद्येय महत्त्व दिया। उग्र चतुरसेन शास्त्री अयनचरण जैन आदि के अरिज इसी कोटि में आते हैं।^{१३} कुस मिमाकर आलोच्य युग का उपन्यास मध्यवर्तीय अरिजों के चित्रण का श्रेष्ठ प्रतिबिम्ब है जो जति का दावा करके भी सुधार पर घटक आता है।

१९१०-१२ के राष्ट्रीय आंदोलन ने नारी के जीवन को कुल प्रांगण में र बड़ा कर दिया और बहूज पय की दावेदार बनकर सामने आई। घर और बाहुर समस्या सामने आई तथा पारिवारिक शांति और वैधसेवा का संकष उभरा। इस तरह 'सुनीता' जैसी नई नारी का भी उदय हुआ, जो अपने साथ ही नई समस्याएं भी लाई। इस तरह इस समस्त युग के कथा-साहित्य में नारी के नये और पुनन आदसों का दण्ड भी उपस्थित हुआ यद्यपि उपन्यासकार ने उसकी उन्मुक्ति को संरैहू की दृष्टि से बैसा और उसके समल धूह-लक्ष्मी का आदर्श अवश्य उपस्थित किया।

पुस्य अरिजों की सामाजिक समस्या भी नारी-समस्या में ही बहुत कुछ समाहित है। अर्धव प्रेम और स्वजाति-रति जैसी समस्याएं हमारे उपन्यासकारों ने नहीं

१०. नया पत्र (१९२८), पृ० ९९

१८. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० १६८

१९. वही पृ० ९९

२०. धरत-संसार मुस—'पत्थर घल पत्थर' की भूमिका ले

२१. आनीबना (११), पृ० ८२

सठाई है। संवेत के 'वेतनास' और 'गृहबाह' में उपस्थित किर्कर्तव्य स्थिति धारणपाती चरित्रों की वेतना का चित्रण भी हमारे कथा-साहित्य में नहीं हुआ है।^{१०} किन्तु राज नीतिक नेताओं से धागे बढ़कर और घड़ौतीदार की सतही समस्याओं से भी महुरे में बाकर प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में जनारों के एक गाँव के धार्मिक-साहित्य सुधार क प्रश्न को सठाकर एक बायकक माय-श्रष्टा की वेतना का परिचय दिया।^{११}

मध्यवर्गीय चरित्रों की सबसे व्यापक भूमिका प्रेमचन्द के 'यवन' में ग्रहण की गई है।^{१२} 'यवन' का रमानाय एक टिपिकल मध्यवर्गीय चरित्र है जिसमें कुल-भर्यादा और झूठी धारणप्रतिष्ठा का मच्छा चित्रण हुआ है। 'सेवासदन' में मध्यवर्गीय की पूर्ण परिधि—निम्न मध्य और उच्च—का चित्रण हुआ है। परमसिंह मनीष और पुतले विचारों एवं संस्कारों के बंधन में चलने व्यक्ति हैं जिनके धारणों और व्यवहारों में गहरी धर्ममति है। फिर भी कुल मिमाकर उनके विचार उस समय के लिए सर्वथा प्रपत्तिहीन ही कहे जायेंगे।^{१३} 'सेवासदन' में प्रेमचन्द ने १९२४ तक के विकसित मध्य वर्गीय चरित्रों को संकलित किया है। 'प्रेमाश्रम' 'रंभूमि' और 'योदान' में सामाजिक संघात का रूप स्पष्ट हुआ है। अपनी अंतिम कृति 'योदान' में उन्होंने समझोते और मध्यवर्गीय का विरोध किया। फलतः मोहर जैसे विद्रोही चरित्र की सृष्टि हुई।

प्रेमचन्दोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। इस समय तक मध्यवर्गीय की ऐतिहासिक भूमिका समाप्त हो चुकी थी।^{१४} इसीलिए संभवतः यह वर्ग कथा-साहित्य पर छाया रहा। साथ ही इन परवर्ती उपन्यासकारों ने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और दुर्बलियों को समझने और चित्रित करने का भी प्रयास किया।^{१५} वे उपन्यासकार कथानक को पीछे छोड़कर केवल चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के पीछे शीघ्र पड़े।^{१६} इन्होंने मानव-चरित्र में अनेक सूक्ष्म अनुभूतियों और बाह्यक्रियाओं के वर्णन किये तथा उनका चित्रण किया।^{१७} धारण्य रामचन्द्र गुप्त ने कथाकृतियों के लिए चरित्र-विकास की महत्त्वपूर्ण माना था जिसे इन लेखकों ने अपने नये-नये चरित्रों में स्पष्ट किया।^{१८} अज्ञेय ने भी चरित्र-विकास की सफलता को उपन्यास की सफलता की कसौटी माना है।^{१९} अब पात्रों का धारणावेष ही

२२ आलोचना (उपन्यास संक), पृ० ८३

२३ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० १४३

२४ प्रेमचन्द एक विवेचन, पृ० ४७

२५ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन पृ० ३१

२६ आलोचना (उपन्यास संक), पृ० १२३

२७ कल्पना, अगस्त १९३३, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

२८ आलोचना (७), पृ० ३४

२९ कल्पना अगस्त १९३३ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

३० धारण्य रामचन्द्र गुप्त और हिन्दी आलोचना, भूमिका, पृ० ६०

३१ आलोचना, मार्च, १९३६, पृ० १२

उपन्यासों की उच्चता का प्रतिमान बन गया है। यह आत्मान्বেषण बढ़ते-बढ़ते आत्म-चरित्रात्मक हो चुका है।^{१२} प्रेमचन्द की धबूरी और अंतिम कृति 'मयलसूत्र' में भी इसी आत्मचरित्रात्मक शैली को अपनाया गया है।^{१३} धार्मिक उपन्यासों की यह शैली युग की देन है। हालांकि भाव के कलाकारों के समक्ष यह बड़ी कठिनाई है कि वे बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का दावा नहीं कर सकते।^{१४} भाव के सभी उपन्यासों में भी यही आत्मचरित्रात्मक शैली प्रचलित है।^{१५} चरित्र-विकास ही अब उपन्यासों के लिए प्रधान विषय बन चुका है।^{१६} उपन्यासकला का मेरुबन्द चरित्र बन चुका है।^{१७} और यह चरित्र वैश्वी-कृत आत्मकथा का रूप लेता जा रहा है।^{१८}

इन उपन्यासों और कहानियों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यदि इनमें से प्रमुख चरित्र को हटा लिया जाय तो रचना बारासायी होकर टूट जायगी। उदाहरण के लिए अगवतीचरण बर्मा की 'विभवेता' और अज्ञेय के 'छिन्नः एक जीवनी को से सकते हैं।^{१९} धीरुपन्यासिक महाकाव्यात्मक व्यक्तित्व के अभाव में इन कलाकारों ने अहित व्यक्तित्व का चित्रण किया है। यद्यपि पृष्ठों की तुलना में 'योदान' से अधिक पृष्ठ वाले उपन्यास जैसे 'छिन्नः' 'पय की खोज' 'बूढ़ और समुद्र' 'इगुमती' या 'चतुरसेनशास्त्री'^{२०} की कतिबा अक्षय प्रकाशित हुई हैं। पर वे उपन्यास नहीं इतिहास-पुराणों के अनुबाह हैं। उनमें योदान का-सा व्यापक परिवेष्ट नहीं है। इसीलिए श्री मन्दुनारे बाबपेयी ने ऐसी कथियों को 'बर्षेकर माता है।^{२१}

विरवचिन्पात से एक आर्ज हैमिगे के उपन्यास ही मोस्ट येन एण्ड र सो' से प्रेरणा ग्रहणकर उद्यम्यकर मट्ट एर्ब नामार्जुन ने^{२२} मछुयों के जीवन पर आचारित उपन्यासों की सृष्टि की। किन्तु, दोनों उपन्यास असफल सिद्ध हुए। एक की चरम परिचय रला^{२३} के रोमांस में और दूसरे की सुकृता में हुई।

प्रेमचन्द के बाद इसी महीन मोज के आचार पर चरित्र-विकास के क्षेत्र में

१२ कथा के लक्ष, पृ० ३७

१३ वही

१४ कुछ विचार, पृ० ३६

१५ यीरोपीय उपन्यास, पृ० १४

१६ भाव (साहित्य विशेषांक १९६१), पृ० १८

१७ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १३८

१८. उपन्यास का रूप-विज्ञान साहित्यकार सम्मेलन में पत्रित निबन्ध, १९५७ ई०

१९. धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ० १७९

२०. अर्धरत्नाम, सोमनाथ शैलाती की नगरबन्धु

२१. धार्मिक साहित्य

२२. सागर लहरे और मनुष्य बदन के देहे

२३. सागर, लहरे और मनुष्य

नवीन उपसम्पिका होती रही है।" इस घर्से में हिन्दी कथा-साहित्य में व्यापार और चरित्रों का जो विकास हुआ है।" दोनों महापुरुषों के बीच का कथा-साहित्य वास्तव में व्यक्ति के धर्म-मध्यम व्यक्तित्व के निर्माण और बचन के द्वारा और विकास की कहानी है। इन कथाओं में नास्तिकारियों के नाप पर उपस्थित किये गये सभी नामक निष्कमता और अस्त्रुचन के ही प्रतिनिधि बनकर घाये हैं।" इसाचन्द्र जोशी से चरित्र जैनेन्द्र और अज्ञेय के वेस्टास्टवादी—आवटवादी पात्रों से जिस और अधिक संतुलित है। इन सभी उपन्यासकारों ने और कहना चाहिए कि नये प्राकृतिक साहित्य ने मनोविरलेपन और आत्मचरित्र को ही प्रदानता दी है।" किन्तु, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि मानव के साम लोका की संवेदना की दृष्टि से प्रेमबन्ध अपने परवर्ती उपन्यासकारों से घाये हैं। इस बात को अज्ञेय ने भी माना है कि परवर्ती उपन्यासकार सिर्फ ठेकथेक की दृष्टि से प्रेमबन्ध से घाये कहे जा सकते हैं।" राष्ट्रीय नवनिर्माण की पुस्तक में कथा-साहित्य में नये मानव का निर्माण प्रारम्भ हो रहा है।" पर अभी भी कथा-साहित्य में व्यक्ति की ही प्रमुखता प्राप्त है। समूह के चरित्र-विरलेपन की दृष्टि से कमीशरनाम 'रेणु' की कृतिवाँ अस्तेजनीय है। सैठ मोहनदास की 'इन्दुमती' में एक मारवाड़ी सैठ रामलक्ष्मण का बड़ा ही घटक विभव हुआ है जिसकी प्रेरणा उन्हें अपने पितामह से मिली है।" किन्तु, घाज की समस्पाओं को लेकर नापाबु'न ने अपने 'बलचनमा' में जो चरित्रांकन किया है, 'इन्दुमती' में उसका पूर्ण प्रभाव है।

'परती परिक्रमा' के पूर्व और 'गोरान' के बाद का कथा-साहित्य मूलतः व्यक्ति-चरित्र-प्रधान है। यद्यपि अनेक अमृतलय अणवतीचरित्र वर्णन धारि के अधिकार चरित्र भी प्रेमबन्ध अथवा अनीय से घाये नहीं जा पाये हैं। देवराज और अर्धवीर माण्टी के पात्रों पर तो अज्ञेय और जैनेन्द्र का प्रभाव स्पष्ट ही है।" इसी तरह जैनेन्द्र और अज्ञेय न अपने पात्रों की अपनी अनेक कृतिओं में पुनरावृत्ति ही की है।" इस तरह यह निश्चय है कि प्रेमबन्ध ही वह पहलै कथाकार ने जिसकी कृतिपी क

४४ आलोचना (इतिहास विद्येयक), पृ० १११

४५ आलोचना (उपन्यास धर्म) पृ० १५५

४६ आलोचना (१४) पृ० १११

४७ आ० हि० अ० स० और मनो०, पृ० २६

४८ साहित्यानुशीलन पृ० ३५

४९. इतिहास, अमरवी, १९४९, पृ० ५१

५० कथा के तत्व

५१ आनन्द, मार्च १९५१ पृ० ११

५२ आलोचना (१४), पृ० ४२

५३ हिन्दी-साहित्य की जनवादी चरम्परा, पृ० १५५

हाथ ही चरित्र-विकास की परम्परा प्रारम्भ हुई।^१ फिर भी यह युग होरी या गोबर का नहीं है। धात्र का कलाकार यदि योद्धर जैसे नायक को खोजता ही चाहेगा तो उसे कई उपन्यासों से कई योद्धरों को निकालकर उसकी मूर्ति पढ़नी होगी।^२ इन सबके बावजूद यह भी निश्चिन्त है कि गोदान के रचयिता प्रेमचन्द ही हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक हैं।^३ अब तक भी 'गोदान' पर ही हिन्दी के सर्व-स्रष्ट उपन्यास का सेहरा है।^४ प्रेमचन्द की सर्वनायकता का धात्र भी कोई मुकाबला नहीं हालांकि 'रेणु' को भी उस विधा में प्रवास करते देखा जा सकता है।^५ रेणु ने प्रारम्भ से ही व्यापक सूक्ष्म को चित्रित करने का प्रवास किया है। उन्हेनि नायार्जुन की तरह केवल टाइप चरित्रों का निर्माण न कर 'कमेन्ट्री' चरित्र की स्थापना की है।^६ नायार्जुन इस क्षेत्र में असफल सिद्ध हुए हैं और अपनी धीरग्यासिक 'शक्ति परिवर्तन'^७ के दम्यन सिर्फ निर्भीक और बेजान पात्रों को सा पाये हैं। कहीं तो उनके वर्णन में इतनी नीरसता था यही है कि उपन्यास को समाप्त करना कठिन हो जाता है।^८ अनवृष्टि से वे योर्की ईसिया एहरेनबुर्न टास्टराय धात्रि सेक्सकों के धमी भी निकट हैं किन्तु धीरग्यासिक यथापवाद मानवतावाद और मनोरंजन धात्रि की वृष्टि से रेणु डेक्सपीयर, टास्टराय^९ और हार्डी की कठार में आ जाते हैं। नायार्जुन का 'बलचनमा' यदि चरित्र प्रधान महाकाव्य है तो रेणु की परती 'परिकथा' व्यापक बरती का महाकाव्य है जो रंगमा रीमा^{१०} और कोधी रीमा^{११} की गाया है जिसकी बर्मीन को^{१२} मटक और जितन^{१३} बोलते हैं—बुधार और बनेर उपबाते हैं। गोदान की तरह बीसवीं सदी के उत्तरार्ध का व्यापक जन-समूह उसका पात्र और विषय-वस्तु है।^{१४}

१४ प्रेमचन्द एक विवेचन, पृ० ४४

१५ फत्तर धन पत्पर, भूमिका पृ० ३

१६ धात्रोचना (इतिहास विज्ञेयिक), पृ० ११२

१७ धात्रकल अग्रस्त १९६१, अन्तगुप्त विद्यार्त्कार

१८ धात्रोचना, पृ० ८

१९ मीरबप्रसार गुप्त के उपन्यास 'रंगमा रीमा' में इस डैकनीक का सफल प्रयोग हुआ है।

२० यह कथन नायार्जुन का ही है।

२१ इस संज्ञित के लेखक को उपन्यासकार धात्र ने ऐसा ही कहा था।

२२ 'पुत्र और शक्ति' के डास्टराय

२३ मीरबप्रसार गुप्त

२४ रेणु

२५ रंगमा रीमा का पात्र

२६ 'भरती परिकथा' का पात्र

२७ धात्रोचना के नाम, पृ० १४

इसलिए ऐसा माना जा सकता है कि प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन और रेणु ने महत्त्वपूर्ण चरित्रों के निर्माण किये हैं और 'रेणु' ने तो चरित्र-विकास के नये प्रतिमान भी स्थापित किये हैं। किन्तु डॉ० रामविद्याय चर्मन ने 'रेणु' की इन उपलब्धियों को धत्वीकार किया है।^{६५} उनके पात्रों को उन्होंने पुष्पलव-विहीन माना है।^{६६} पर यह धातोचना पूर्वाग्रह से प्रसूत शकती है। रेणु ने आज की हठात्म्युत्पी परम्परा से एक हठ तक अपने को मुक्तकर परिस्थितियों के माध्यम से मनुष्य का चित्रण किया है।^{६७} आज का मानव अपनी विषम परिस्थितियों के कारण भारतभर और भारत केन्द्रित बन चुका है^{६८} जिससे कि समाज से उसका सम्बन्ध कटु और विभक्त पड़ गया है। पर आज के कलाकार को इस परिस्थिति का मुकाबला करना होता और अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे इस युग के प्रतिनिधि नायक की सृष्टि करनी होगी जिससे वह 'मानवार्थता का अभिव्यक्ता' बनकर अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके।^{६९} नवीन मानव की खोजना आज समय की एक नयी बुनिया बनाने के प्रयास की ओर धारण हो रही है। मानव-मुक्ति का एक नया युग आरम्भ हो रहा है^{७०} और आज ऐसे उपन्यासों की सृष्टि के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो रही है जिसका नायक विश्व-मानवत्व का प्रतीक एवं विश्वजनीन मनुष्य का प्रतिनिधि होगा।^{७१} बँसा नायक कृष्ण निराशा नृणा और उबकाई से दूर रहकर महा-भास्वा की वाणी को उची तय्य प्रसारित करेगा जिस तरह बसंत में किसने बासे फूल अपने परिमल को सहज रूप में और सारी प्रकृति में बिखेरते जमते हैं।

६५ समालोचक अग्रस्त १९, पृ० १

६६ उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० ८२

६७ धातोचना के मात पृ० २२

६८ हिन्दी उपन्यास, पृ० २ १

६९ उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० ९७

७० यही

७१ धातोचना (११), पृ० २६

घपने बक्षस्य में कहा था—वर्तमान (राजनीतिक) व्यवस्था के प्रभाव से भारतीय जाति का विकास घबराहट हो रहा है। हमें घपने बीचन भर एक हीनता के वातावरण में रहना पड़ता है। इस अनुभव से प्रत्येक बिचारशील व्यक्ति के हृदय में बेचना जाग्रत हुई, ऐसे व्यक्ति देश और जाति की रक्षा करने लगे और उनकी उन्नति के लिए साहित्य और समाज धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास करने लगे।^१

साहित्य के जन-साधारण की वस्तु होने से गद्य-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले-पहले गद्य की परम्परा बतार्ई और गद्य-शैली को जन्म दिया परन्तु गद्य-साहित्य की प्रधानता उपन्यास और उपयोगी साहित्य के कारण हुई जिनका वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। मध्यकाल में जब विद्याध्ययन और शिक्षा केवल कुछ श्री-मानों तक ही सीमित थी साधारण जनता मौखिक कथा वातां तथा उपदेशों से ही तृप्त हो कर भेरी थी परन्तु जब घिसा का प्रचार बढ़ने लगा तब पान की दुकान पर बंटे हुए दूकानदारों रेलगाड़ी में घाये उँबते हुए यात्रियों तथा काम-काज से छुट्टी पाए हुए विदित नर-नारियों को समय काटने के लिए कथा-कहानियों की माग्यकता हुई। इस प्रकार उपन्यासों की रचना होने लगी और 'चन्द्रकांठा' से प्रारम्भ होकर अन्ध-साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

प्रारम्भिक युग

हिन्दी-साहित्य में 'चरित्रों' का सर्वप्रथम विकास गीतामी तुलसीदास की रचनाओं से प्रारम्भ होता है।^२ कथा-साहित्य में उसका वास्तविक विकास प्रेमचन्द्र से प्रारम्भ होता है, परन्तु उसके बहुत कुछ सख्त हमें माछेनुकाल की रचनाओं से शिक्षा-साधी पढ़ने लग गये थे।^३ अन्धबस्ता वाले युग में देवदास से मानवीय मान्यताओं के विचित्र की को परम्परा की उसके स्वाम पर सीधे साधे मनुष्य के अभावों और उसकी परिस्थितियों का विचित्र भी हिन्दी-साहित्य में उसी समय प्रारम्भ हो गया। परिणाम स्वल्प विद्वाने काम के सुचारक रूप्य तथा राजा और रामचन्द्र का विचित्र वर्तमान युग के अनुकूल होने लगा। फलतः प्रारम्भिक साहित्यपूर्व और विचित्रता से मछि धारणा विकासों के स्वाम पर जिनकी बटनार्यें राबक्रुमारों से ही सम्बन्ध होती थीं—मनुष्य के वास्तविक जीवन का विचित्र प्रारम्भ होता है। भारत के लिए उस समय लोगों ही वास्तविक थे—यहू के चरित्र जनसाधारण और महापुत्रिधामी नरपति।^४

हिन्दी के प्राथमिक उपयोग 'परीक्षा कुब' के चरित्र भी घपनी वैयक्तिक

१. प्राथमिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २६

४. प्राथमिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०

३. डिबेरी, पृ० १३२

६. काव्यकला और अन्ध निबन्ध, पृ० १३६

७. काव्यकला और अन्ध निबन्ध, पृ० १३६

विशेषताओं के कारण नहीं, बल्कि मानवीयता के कारण हमें साहचर्य करते हैं। उनके प्रति चरित्रों का क्रमिक-विकास नहीं होता पर मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं से मुक्त होने के कारण हमारे जाने-पहचाने बीते-जायते मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास के द्वारा तत्कालीन, मध्यवर्गीय समाज का विस्तृत परिचय मिल जाता है। नायक 'मदन मोहन' नव-सिद्धि यध्यवर्ग की कमबोरियों का मूर्तमान रूप है। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सामाजिक एवं नैतिक चरित्रों को रचने के प्रयोग हुए। देवकीनन्दन खत्री गोपालराम गहमरी किशोरीलाल पोस्वामी ने काव्यमय विमल आसूष और ऐयारों के ऐसे अमलकार बिलखाये कि पाठकों की आँखें चौंकायी गयीं। मानव जीवन के व्यापक चारित्रिक मूर्तों की खोज जैसी की ग्राह्य हो रही है इनमें मिलना असम्भव है।^१ इस युग के प्रबुद्ध कथाकारों ने बंगला एवं अंग्रेजी के 'खरीर और मन' वाले चरित्रों की भी हिन्दी का मिबास पहचाने की चेष्टा की। 'अमरकाण्ड' के लेखक की सफलता यह थी कि उसने बहुत काशी कूड़ा-करकट जामकर एक ऐसे पात्र को खोज निकाला या जो समाज-व्यवस्थाओं की सन्धि से अंकुर प्रयत्नपूर्वक अपना सिर उठा रहा था और अपने बानी समस्याओं को अपने में समोकर साक्षात् प्रलम्बि बनना समाज-द्रष्टा उपन्यासकार के सामने आ सका हुआ था।

मध्यवर्ग का प्रतीक भूतनाथ तो प्रवृत्तियों का इन्द्र है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों के बिना विद्रोह की भाव उसे एक सुस्त आसक्त धम्मर के रूप में बनाये रख रही है। 'विद्रोह' उस युग के जीवन की आबाज की और यह विद्रोह व्यक्तिगत ही यह उसकी सीमा। किन्तु विशेष परिस्थितियों का किस-किस रूप में हठियों का बाँधा' यह भूतनाथ सिकार है इसे चारों ओर से सोचने का उसके मये निर्माताओं को समय नहीं था। उन्होंने उसके केवल विद्रोह के भावों को पकड़ा और 'रक्त मंडल' मात पंजा' इत्यादि धाये। 'दुर्गाप्रसाद खत्री ने अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'भास पंजा' 'प्रतिगोब' 'रक्तमंडल' और 'सफेद घाँसान' मुख्य हैं। ये चारों उपन्यास जैसे एक ही शृंखला की कड़ियाँ हैं और इनके मुख्य पात्रों को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में अपने क्रमिक रूप का विस्तार करते हुए देख सकते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों को मोटे रूप में दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक ओर भूते हैं बसबाई हैं विद्रोही और जातिधारी हैं तथा भारत को और आगे चलकर समूचे एशिया को बिदेसी व्यापारियों और साम्राज्यवाद के नागपाण से मुक्त कराने के लिए अपनी जान होम देने वाले भोव हैं। दूसरी ओर अंधारी हनुमत् हैं योरे अफसर और भारतीय आसूष हैं रजबाई रायबहादुर तथा खान बहादुर हैं।

यन् संसारीय के बाद, मागो बाँध टोड़कर आसूषी उपन्यासों की बारा बाड़ बनकर बह खत्री अपने साथ बहुत-सा कूड़ा-करकट समेटे हुए। १९३१ ई० में आसूषी उपन्यासों के एक नया मोड़ किया और कुछ ऐसे उपन्यास प्रकाशित हुए जो आजादी

१. हिन्दी उपन्यास और पचासबाद, पृ० ११

२. आलोचना (१४) पृ० ३१

अपने बचपन में कहा था—वर्तमान (राजनीतिक) व्यवस्था के प्रभाव से भारतीय जाति का विकास संभव हो रहा है। हमें अपने जीवन-मर एक हीनता के आतावरण में रहना पड़ता है। इस अनुभव से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के हृदय में बेतना आघात हुई, ऐसे व्यक्ति बस हीर जाति की चिन्ता करने लगे और उनकी उन्नति के लिए साहित्य और समाज धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रों में भारतीय और के पुनरुत्थान का प्रयास करने लगे।^१

साहित्य के जन-साधारण की वस्तु होने से गद्य-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में पहले-पहले गद्य की परम्परा बसाई और गद्य-शैली को जन्म दिया परन्तु गद्य साहित्य की प्रगतिता उपन्यास और अल्पवयी साहित्य के कारण हुई जिनका वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। मध्यकाल में जब विद्याभ्ययन और शिक्षा केवल कुछ श्रो-भागों तक ही सीमित थी साधारण जनता मौखिक कथा-वार्ता तथा उपदेशों से ही संतोष कर लेती थी परन्तु जब विद्या का प्रचार बढ़ने लगा तब पान की दुकान पर बैठे हुए बूकालखारों रसवाही में घाये छंदों हुए यात्रियों तथा काम-काज से छुट्टी पाए हुए विद्वान्तर-नारियों को समय काटने के लिए कथा-कहानियों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार उपन्यासों की रचना होने लगी और 'चन्द्रकांठा' से प्रारम्भ होकर अनेक साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

प्रारम्भिक युग

हिन्दी-साहित्य में 'चरित्रों' का सर्वप्रथम विकास मोस्वामी तुमसीदास की रचनाओं से प्रारम्भ होता है।^१ कथा-साहित्य में उसका वास्तविक विकास प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है परन्तु उसके बहुत कुछ सखन हैं भारतीयकाल की रचनाओं से बिना लानी पड़ने लगे थे।^२ धर्मव्यवस्था वाले युग में देवभाव से मानवीय भावनाओं के चित्रण की भी परम्परा थी उसके स्थान पर सीधे सादे मनुष्य के अभावों और उसकी परिस्थितियों का चित्रण भी हिन्दी-साहित्य में उसी समय प्रारम्भ हो गया। परिणाम स्वरूप पिछले काल के सुभारक कृष्ण तथा रामा और रामचन्द्र का चित्रण वर्तमान युग के अनुकूल होने लगा। फलतः प्रारम्भिक साहित्यपूर्ण और विचित्रता से भरी प्राक्या विकासों के स्थान पर जिनकी अन्तर्गत रामकुमारों से ही सम्बन्ध होती थी—मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण प्रारम्भ होता है। भारत के लिए उस समय दोनों ही वास्तविक थे—यहाँ के इतिहास जनसाधारण और महासक्तिवादी नरपति।

हिन्दी के प्राचीन साहित्यिक उपन्यास 'परीक्षा ग्रन्थ' के चरित्र भी अपनी वैयक्तिक

१. धार्मिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २६

४. धार्मिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०

२. हिन्दू, पृ० १२२

६. काम्यकला और धर्म निबन्ध, पृ० १३६

७. काम्यकला और धर्म निबन्ध, पृ० १३६

विद्येपताओं के कारण नहीं, बल्कि मानवीयता के कारण हमें घाहूट करते हैं। उनके प्रति चरित्रों का क्रमिक-विकास नहीं होता, पर मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं से मुक्त होने के कारण हमारे जाने-पहचाने जीते-जागत मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास के द्वारा तत्कालीन, मध्यवर्गीय समाज का विस्तृत परिचय मिल जाता है। नायक 'मदन मोहन' मज-सिद्धि मध्यवर्गी की कमजोरियों का मूर्तमान का है। उन्नीसवीं शताब्दी में धनेक सामाजिक एवं नैतिक चरित्रों को रचने के प्रयोग हुए। देवकीनन्दन खत्री मोपासुराम गहमरी किशोरीलाल गोस्वामी ने कास्परिक विमल आसुर और ऐमारों के ऐसे चमत्कार दिखलाये कि पाठकों की धारें चौंकायी गयीं। मानव जीवन के व्यापक चारित्रिक मूर्त्यों की चर्चा जैसी की आज हो रही है इनमें किसना असम्भव है। 'इस युग के अधिकांश कथाकारों ने बंगला एवं अंग्रेजों के 'घरि और मन' वाले चरित्रों को भी हिन्दी का सिबास पहनाने की चेष्टा की। 'ब्रह्मकांठा' के लेखक की सफलता यह थी कि उसने बहुत काफ़ी कूड़ा-करकट छानकर एक ऐसे पात्र को खोज निकाला था जो समाज-व्यवस्थाओं की सन्धि से अंककट प्रयत्नपूर्वक धपना सिर उठा रहा था और जाने वाली समस्याओं को धपने में समोकर साम्राज्य प्रबल चिह्न बना समाज-उत्था उपन्यासकार के सामने आ खड़ा हुआ था।

मध्यवर्गीय का प्रतीक भूतनाथ ठो प्रवृत्तियों का इन्द्र है। किन्हीं विद्येय परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह की भाव उसे एक युक्त-आत्मक प्रयत्न के रूप में चसाय रख रही है। विद्रोह उस युग के जीवन की भाषाच की और यह विद्रोह स्थितिगत हो, यह उसकी सीमा। किन्तु विद्येय परिस्थितियों का किस-किस रूप में 'हृदयों का डाँचा' यह भूतनाथ धिकार है इसे चारों ओर से सोचने का उसके लिये निर्माताओं को समय नहीं था। उन्नीसवें शताब्दी के चारों ओर से पकड़ा और 'रक्तमंडल', 'नाम पंजा' इत्यादि धामे।^१ दुर्भाग्यवश सभी ने धनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'नाम पंजा' 'प्रतिघोष', 'रक्तमंडल' और 'सपटेर घाताम' मुख्य हैं। ये चारों उपन्यास जैसे एक ही शृंखला की कड़ियाँ हैं और इनके मुख्य पात्रों को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में धपने कायलेश का विस्तार करते हुए देख सकते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों को, मोटे रूप में दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक ओर सुटेरे हैं, बलबाई हैं, विद्रोही और नाटिकाारी हैं तथा मारुत की ओर धामे चक्रकर समूचे एशिया की किन्हीं व्या परिवर्तों और साम्राज्यवाद के नागपाश से मुक्त कराने के लिए धपनी जान होम देने वाले लोग हैं। दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत है, गौरे घण्टर और भारतीय आसुर हैं, रजबाई राधकहापुर तथा खान बहादुर हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के बाद मानो बाँध टोड़कर, आसुरी उपन्यासों की बारा बाड़ बनकर यह सभी धपने धाम बहुत-सा कूड़ा-करकट धनेटे हुए। १९२१ ई० में आसुरी उपन्यासों ने एक नया मोड़ लिया और कुछ ऐसे उपन्यास प्रकाशित हुए जो धावाओ

१. हिन्दी उपन्यास और धवाधवाद पृ० ६१

२. धालीधना (१४) पृ० ३१

दिग्गजों के बाद ही लिखे जा सकते थे उदसे पहले नहीं। इन उपन्यासों के लेखक हैं धीमप्रकाश शर्मा। धीमप्रकाश शर्मा के उपन्यास और उनसे उपन्यासों के भले बुरे पात्र धर्म्य वैधी विवेकी यामूसी उपन्यासों से भिन्न हैं।

धार्मिकों द्वारा धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य की सीमा को 'उनी बैठकी की कहानी', परीक्षा पुस्तक 'बग्ननाता संतति' आदि तक ले जाया गया है। बरतुत चरित्र विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द के पूर्व की ये कथाकथियां काफी कमजोर, सतही और छिछली हैं क्योंकि उस समय तक का कथा-साहित्य घटना-प्रधान का चरित्र-प्रधान नहीं। पर कथाकारों की इस प्रकार की प्रवृत्ति के पीछे साहित्य की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया कार्य कर रही थी। चरित्र विकास के क्षेत्र में 'परीक्षा पुस्तक' से लेकर प्रेमचन्द तक तक इसी बाह्य परिणामता "तक-तक और निर्भीकता का साम्राज्य था। इस युग का वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था।" बीड़े के मानवीय स्वयं के साथ कमलकार और प्रेम की सृष्टि करने के लिए सब तत्वों का सम्बन्ध कर दिया गया है। ऐसे प्रेमप्रधान उपन्यासों में चरित्र-विकास केवल नाम का रहा है। उनमें तो घटना और कथा-वस्तु की ही प्रधानता रहती है। प्रेमचन्द ने ऐसे उपन्यासों का विरोध किया। उन्होंने बताया कि उपन्यास का मध्य लोगों का मनोरंजन ही नहीं है बल्कि उनका सुधार करना भी है। वह पहले उपन्यासकार थे, जिन्होंने स्वयं चरित्र प्रधान उपन्यास लिखे और दूसरों को भी वैसे उपन्यास लिखने के लिए कहा। प्रेमचन्द के साहित्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि एक युग गया और दूसरा युग आया एक बर्ग मर गया और दूसरा बर्ग उभर गया। जीवन परिणों के दैहिक रात के विनाश-गुहों से निकलकर शीतों और बाजारों में आ गया। कवी किरानों के लिए भी काम टास्टाय ने किया है, भारतीय किसानों के लिए बही काम प्रेमचन्द ने किया है।"

प्रेमचन्दयुग (१९१६-१९३६) के कथा-साहित्य में हमें इन दो बरतुतों के रात नीतिक और सामाजिक जीवन के चरित्रों का सम्पूर्ण धाकधन दिखाई देता है। प्रमचन्द से पहले हिन्दी उपन्यास की मूमि कल्पना और रोमांच की मूमि थी फिर उसे जाड़े सामयिक जीवन का आधार देकर उपस्थित किया गया हो या ऐतिहासिक कथा धरवा चरित्रों पर उसकी नींव रखी गई हो। इसमें सन्देह नहीं कि एक प्रकार का धार्मिकवाद धरवा धार्मिकवादी चरित्रों की धरतारणा भी हिन्दी-उपन्यास में पहले-से बुझ गई थी और हिन्दी के पहले उपन्यास 'परीक्षा पुस्तक' (१९०२ ई०) में ही एक पक्षघट नव

१० धार्मिकता (उपन्यास श्रृंखला), पृ० १२६—'हिन्दी उपन्यास विषय का विकास' निबन्ध से।

११ धार्मिक हिन्दी साहित्य, पृ० १००

१२ धार्मिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४२५

१४ प्रेमचन्द एक विवेचन—डॉ० इन्द्रनाथ सदान,

१५ काँडे, पृ० ८४

युद्ध के सुधार की आदर्शत्मक भाषा उपस्थित की गई थी। परन्तु इस सुधारवाद में बसा का योग नहीं और आदर्शवादी पट इतना मोटा था कि अरिज विकास में यथा-बरोबर उत्पन्न हो गया था। प्रेमचन्द के युग में इस सुधारवादी दृष्टिकोण को सूक्ष्म और आत्मक बना लिया गया और उसमें कोरा आदर्शवाद नहीं रह गया। इस आदर्शवाद को एक और दृष्टिवाद से पुष्ट किया गया और दूसरी ओर उसे यथार्थगुण बनाया गया।^{१६}

प्रेमचन्द युग

कला की दृष्टि और महत्व इस बात में है कि वह साधारण स्त्री-पुरुष के अरिज के उदात्त धारितक गुणों और प्रतिनिधिक सकारात्मक विरोधताओं को खोज सकती है तथा उन्हें प्रकाश में लाती है और उनके साधारण स्त्री-पुरुष के ऐसे सजीवन कलात्मक रूप-चित्र उपस्थित करने में समर्थ होती है जो दूसरों के लिए धनकरण की मिलास बन सकते हैं।^{१७} प्रेमचन्द ने अपने प्रौढ्यासिक दृष्टिकोण को 'आदर्शगुण यथार्थ' कहा है। आदर्श और यथार्थ अरिजों का यह गुण सम्बन्ध प्रेमचन्द के उपन्यासों में दृढ़ निभा यद्यपि प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास 'मोक्षान' में यथार्थ की विषय है और आदर्श नहीं और कट्टु वस्तुस्थितियों की ओर से उकराकर बकनापूर हो गया (जैसे होरी के आदर्श का स्वप्न भग) जो हो इन दो दृष्टियों के उपन्यास-साहित्य में हमें अरिजों के अनेकानेक बरकत हुए रूप मिलते हैं और उनके अध्ययन से हमें हिन्दी के उपन्यासकारों की पभीर सामाजिक चिन्ता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का पता चलता है।

हिन्दी का उपन्यास गारी-अरिजों की महत्वपूर्ण समस्याओं को लेकर ही क्षेत्र में पाया। विभिन्न यथार्थवादी सामाजिक अरिजों का चित्रण समाज-सुधार की भावना से हुआ। बूढ़-विवाह बाल-विवाह बहेज बेरिया-गमन और हिन्दू-मुस्लिम-बैतनस्य आरम्भ से ही हिन्दी उपन्यासकारों के विषय बन गए। प्रेमचन्द का पहला महत्वपूर्ण उपन्यास 'सेवासदन' प्रकारान्तर से 'परीक्षा पुत्र' और 'सो अज्ञान एक सुदान' की समस्या—बेरिया-अरिज को ही उपस्थित करता है। प्रेमचन्द के एक सम-सामयिक विरहम्भारदाय 'कौटिक' ने माँ (१९२६) लिखकर एक बहुत उपन्यास के रूप में 'सेवासदन' के अरिजों को ही नये ढंग से प्रस्तुत किया यद्यपि माँ के द्विविध रूपों और पारिवारिक स्थितियों का भी उसमें चित्रण है। बेरिया-अरिज सम्बन्धी प्रीव-यासिक दृष्टिकोण का अमस विस्तार हमें मदनमठ (राजेश्वरप्रसाद १९२८) पाप और पुष्प (प्रफुल्लचन्द्र घोष 'मुक्त' १९३६) पतिता की सावना (मगबतीप्रसाद बाजपेयी, १९२६) चप्परा (निधमा, १९३६) और बेरिया का हृदय (बगीराम प्रेम १९३३) में बिलसार्थ देता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में अन्तमैस विवाह के प्रसंग में कई महत्वपूर्ण अरिजों का

१६. आलोचना (१३), पृ० ८१

१७. मया पप (१९३८) अर्थात् मासेन्कोव, पृ० ६६

चित्रण होता है और 'निमसा' (१९३३) उपन्यास में तो 'निर्मला' के चरित्र का केन्द्र बिन्दु ही धारणा विवाह और दहेज की समस्या है। इस समस्या से प्रेमचन्द व्यक्तिगत रूप से परिचित थे। इस विषय पर ध्यान रखना पड़े है, 'समा' (धीमात्र विह्व, १९२६) भीटी कुटकी (भगवतीप्रसाद बाजपेयी १९३८) और तलाक (प्रफुल्लचन्द्र घोष 'मुक्त' १९३२)।^{१८}

हिन्दू-मुस्लिम समस्या से सम्बन्धित पात्र भी उनके कई उपन्यासों में पाये हैं। प्रेमाश्रम (१९२२) 'रम्यूमि' (१९२४) और कायाकल्प (१९२८) में प्रेमचन्द इस समस्या के कई पहलुओं को उपलब्ध करते हैं। समाज के भीतर के अनेक बर्गों की भी प्रेमचन्द ने व्यापक रूप से देखा है और बर्गीकरण-क्रियात्मक सूक्ष्म और महान् और निर्धन कर्जदार धमिक पहलुओं की संस्कृति के पाद-बीठ पण्डे-पुरोहित और स्थितिहीन बर्गों में मुस्लिमों के विह्व और भिखारी बर्ग भी सामने आते हैं।^{१९}

ग्रामीण जीवन-सम्बन्धी अन्य दृष्टिकोण एवं चित्रण निम्नलिखित उपन्यासों में मिलेंगे 'रामनाथ' (मंगल विह्व १९२१) 'बैहाती बुनिया' (विश्वपूजन सहाय १९२६) 'वितती' (प्रसाद १९३४) और 'मोदान' (प्रमचन्द, १९३६)।

व्यवसायिक प्रसाद के 'कंकाल' में समाज से बहिष्कृत कंजर-दूजर धारि बर्गों का विषय चित्रण है और 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द अमरकांत को ऐसे गाँव में ले जाते हैं जहाँ दारों का बमड़ा उठारने वाले बमार रहते हैं। धार्मिक दम्भ और व्यापार की नीत के लिए तंदाप्रसाद भीवास्तव की रचना स्वामी चौपटानंद (१९३६) और कर्मभूमि (प्रेमचन्द १९३२) एवं वितती (प्रसाद १९३४) के कुछ दृश्य महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचन्द ने मजदूरों का विषय मोदान में किया है। समाज की भिन्न में इच्छात्मकता की समस्या को लेकर उन्होंने मजदूरों का पद्य लिया है। वास्तव में बर्ग-चरित्रों का विषय स्पष्ट १९२८ के बाद ही सामने आता है और १९३६ तक मजदूर-बर्ग एवं पूँजीपति-बर्ग का धार्मिक स्पष्ट नहीं हुआ था। प्रेमचन्द ने 'मजदूर' विषय पर और अपने धर्मिष्ठ उपन्यास संवससूत्र में इन चरित्रों को नये क्षेत्रों में देखने का प्रयास किया था। निम्न मध्यवर्ग के चरित्रों का चित्रण प्रेमचन्द का भी अपना विशेष क्षेत्र रहा है किन्तु उनमें इस बर्ग का मातृभावी दृष्टिकोण ही से देखने का विशेष ध्यान परिलक्षित होता है। उनका ध्यान सदा इस बर्ग के पात्रों की सम्बन्धता पर ही लगा रहा। मोटे तौर पर कहें तो एक क्षण में हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द मानव की (चाहे वह किसी भी बर्ग का बर्ग न हो) सम्बन्धता के कथाकार हैं। यह तो उनकी कला का पारस है जिसके स्पर्श से उनके मातृभावाय भी इतने विरहसन्वीय और मधार्थ की हृदय कूते से लगते हैं और हम पर अपनी धमिष्ठ छाप छोड़ जाते हैं।

'मोदान' लिखने से पहले प्रेमचन्द ने अपने एक पत्र में लिखा था— 'माई एम

१८. समस्वामूलक उपन्यासकार प्रमचन्द, पृ० १६८

१९. समस्वामूलक उपन्यासकार प्रमचन्द, पृ० ८९

एन ग्राहिवेभिस्ट विप ए टच ग्राफ रिमसिपम ।”

इस युग की कथाओं में नारी चरित्र की विपमताओं और उसके विभिन्न प्रतिबन्धों एवं समस्याओं को उठाया गया। नारी के त्यागमय जीवन की गाथा 'राममयी' (मयवतीप्रसाद वाचपेयी १९३२), नारी हृदय (शिवरानी बेबी, १९३२) मन्वारी (गोविन्द बल्लभ पंत १९३६) और बचन का मोम (उपादेवी मिश्रा १९३६) में प्रबलोकनीय हैं।

विधवा, बहूज बेवफा, बाम-विवाह बृद्ध-विवाह ये कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं जिनसे हिन्दी के धोपन्यासिक चरित्रों का पोषण हुआ। श्रीनिवास दास बालकृष्ण मट्ट और रामकृष्ण दास पहले भी इन समस्याओं से उपलब्ध चरित्रों को अपनी कृतियों का विषय बना चुके थे परन्तु प्रेमचन्द के द्वारा इन चरित्रों को विस्तृति और गंभीरता मिली और उनका चित्रण रोमांस मूलक न होकर बस्तुनिष्ठ और प्रवेष्टाकृत ब्यापक था। विधवा की समस्या अनेक अन्य उपन्यासों का भी विषय है जैसे 'हृदय का काँटा' (तेजवती दीक्षित, १९२८) प्रतिष्ठा (प्रेमचंद १९२८) विधवा के पत्र (अश्व मेहरा घास्त्री १९३३) चतुरसेन घास्त्री के तीन उपन्यास 'अमर अशिलापा' (१९३३) 'मातंगदाह' (१९३६) और 'नीसमाटी' (१९४०) एवं जनेश्वर का प्रसिद्ध उपन्यास 'परब' (१९२०)। इन सभी विषयों से संबंधित चरित्रों पर प्रेमचंद और उनके समसामयिक उपन्यासकारों ने ब्यापक दृष्टि से विचार किया है। किन्तु प्रेमचंद ने यहाँ यथार्थ चित्रण को अपनाया और धरत की भावुकता को बचाया वहाँ कलाकारों का एक बर्ग धरतचक्र के चरित्रों को आदर्श बनाकर बसा और उनमें यथार्थता गंभीरता एवं काठिन्य के स्वांग पर कल्पना और भावुकता का प्राभाय्य रहा। तपोभूमि, परब और जनेश्वर के परबर्ती उपन्यासों में यही धरतचक्रीय भावुकता मिलती है। एक प्रकृतवादी वह भी इस युग में विकसित हुआ जो नग्न चित्रण बुद्धिपूर्वक एवं यौन आकर्षणमूलक आत्मभाठी प्रवचन को विरोध प्रभव देता था। चतुरसेन घास्त्री अयमचरम बन और छप के नारी जीवन विषयक चरित्र इसी कोटि में आते हैं। कपाकार उन चर्चित चरित्रों के चित्रण में जैसे रस मिला हो ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में इन कृतियों की बौद्धिक मूमि सिद्ध है।” इस युग के चरित्रों की प्रेम समस्या या रोमांस भी विचारणीय है। यह प्रश्न जाति-वर्ण-व्यवस्था पर धीमा प्रहार करता था। कथाकारों ने इस प्रश्न को उठाया पर अपने चरित्रों को बिहोड़ी बनाये थे वे सर्वत्र बचते रहे। 'रंगभूमि में प्रेमचंद इसीलिए सोफिया का बलिदान कर देते हैं। और 'कर्मभूमि' में लकीला के धाकस्मिक परिवर्तन से उसके चरित्र को गिरा देते हैं। 'गङ्गा कुम्हार' की सारी संशय भूमि ही इस समस्या को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभारती है और उसका बुलाव इस युग के चरित्रों की दुर्बल मज-स्तिष्ठि का सूचक है, जो जाति के पत्र पर बढ़ने से बार-बार हिचकती है। धार्मिक युग का उपन्यास

२० श्री भरतप्रसाद गुप्ता—'परब' के उपन्यास 'पत्थर धल पत्थर' की भूमिका से
२१ दाबोचना (१३), पृ० ८४ ८२

दिखाई पड़ता है। 'शेवासरत' के पात्र धामी तक साहसपूर्वक निर्भयतात्मक कदम नहीं उठा सकते थे। शिक्षांत रूप से सामाजिक बुराइयों को दूर करने का विचार रखते हुए भी सामाजिक अग्रतिष्ठा के डर से वे दम्भतात्मक स्थिति में दिखाई पड़ते हैं। 'शेवासरत' में मुख्य बनें तो क्रियाशील परिलक्षित होता है किन्तु स्थितियों में अपने आप परदे से बाहर निकलकर काम करने की सक्ति नहीं है। 'मदन' की कामयाबी और रतन अपनी वास्तविक स्थिति पहचानकर धारम-प्रतिष्ठा और सम्पूर्ण धामीत्व का सब खोवा उतार उठती है। 'शेवासरत' में पारिवारिक एकता बनाए रखने के लिए पद्म सिंह मदन और रतन पुनः एक सूत्र में पिरो दिए जाते हैं, किन्तु 'मदन' में यह धारणा चूर-चूर हो जाती है। 'मदन' की रतन बंकि की ओट से कटती है—'बहुनो किन्ही सम्मिलित परिवार में बिबाह मत करना और धनर करना तो अब तक अपना धर न बना तो, नैन की नींद मत सोना। बहु मत समझे कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा नाम के साथ पासम होना। 'परिवार तुम्हारे लिए फूलों की छत्र नहीं काँटों की घग्गा है, तुम्हारी पार लवाने वाली नौका नहीं तुम्हें भिगत जाने वाला बंदु है।

मध्यवर्ग की पूरी पारंपरिक विद्ये निम्नमध्यवर्ग मध्यवर्ग और उच्चवर्ग तीनों का सम्मिश्रण देखा जाता है, 'शेवासरत' में अक्षिप्त की गई है। मध्यवर्ग की नैतिकता और मर्यादा भीतर-भीतर जाड़े बिठनी बढ़ गई हो उसकी चिन्ता किन्हीको नहीं रहती। हाँ, छठे बाहर नहीं प्रकट होना चाहिए। 'रतन' इसका प्रतिनिधि उदाहरण है। सुमन ने मध्यवर्ग की इस प्रवृत्ति का पर्यायवाचक करते हुए 'रतन' को खूब धाँधे हाँसों किया है— और सुमने उसके साथ बहु धरयाचार केवल इतना ही किया कि मैं उसकी बहन हूँ। जिसके वीरों पर सुमने बर्षों तक रगड़ी है। उस समय भी तो सुमन बही उच्चवर्ग के बाह्यतन से या भीर की है। तब तुम्हारे बुद्धियों से ज्ञानदान की माँग न कटती थी। बँबरे में बूटा जाने घर तैयार, पर लबासे में निमग्न भी स्वीकार नहीं। "

पद्मसिंह मध्यवर्ग के इन व्यक्तियों के प्रतिनिधि हैं जो पुराने संस्कारों और नवीन विचारों के झूठ में डूबे हुए हैं। उनके नवीन विचार पुराने संस्कारों के साथ बराबर पराबिभ्र होठे जाते हैं। इसके फलस्वरूप उसके धारवर्ग और व्यवहार में गहरी असंगति दिखाई पड़ती है। फिर भी सब भिन्नाकर उस समय के लिए उसके कार्य धरंवा प्रयत्नशील हैं।"

'निर्मलता' में निर्मलता और तोटाघम के चरित्र मध्यवर्ग की केवल स्वरूप धर स्थाएँ—बहज-मया और धनसेल बिबाह की भ्रंकी प्रस्तुत करते हैं।

१९१४ तक के विकसित मध्यवर्गीय चरित्रों की प्रेमबंधन 'शेवासरत' में अक्षिप्त किया है।

कौटुम्बिक भूमि से उपजे हुए पात्र हमें प्रेमबंधन के सभी उपग्यातों में मिलते

है। प्रेमभ्रम में आगिरकारी प्रथा के टूटने के पक्षस्वरूप और नई शिक्षा के कारण सम्मिलित बृटुम्ब पर मूरी खोट पड़ती है और बाब मोहान में होरी असे पार्श्वों के द्वारा अथवा प्रयाग करने पर भी परिवार बिकर जाता है। इसके अतिरिक्त सौतेली माँ सास बहू देवराती बिठानी आदि भी अनेक उपन्यासों की केन्द्र हैं और फिर सम्मिलित परिवार की प्रथा के टूटने में पार्श्वों के मनोबैज्ञानिक अस्तुभन का भी बहुत बड़ा हाथ है।

सामाजिक अरिषों का एक व्यापक रूप भी है जो विभिन्न जातियों और वर्गों के सहयोग पर आधारित है। अथवा उनके अविश्व का निर्माण इसी पृष्ठभूमि में होता है। 'रंगभूमि' में हमें हिन्दू ईसाई और मुसलमान पात्र-पात्रियों का अत्यंत सहानुभूतिपूर्वक चित्रण मिलता है। 'कायाकल्प' में भी हिन्दू-मुसलमान वर्गों की विषय पृष्ठभूमि सामने आती है। एक दूसरा आर्थिक प्रश्न नगर और गाँव के उन अनेक वर्गों से संबन्ध रखता है जो सीधे सामाजिक प्रक्रिया की उपज न होकर आर्थिक विकास की ऐतिहासिक उपज हैं। नगरों का मध्यमवर्गीय पृथगपति और कर्मकर मजदूर, समाज तथा गाँव का भूमिपति (बर्गीभार) एवं किसान इस प्रकार के वर्ग हैं। इस युग में हम वर्ग-अथवा की भावना का स्पष्ट विकास नहीं पाते हैं परन्तु उपन्यासकार समाज के इन विभिन्न स्तरों के स्वार्थों को अन्धी तरह समझ गया है और इन वर्गों के अंतर्निर्बाह और अंतर्विरोध को उसने अनेकानेक पार्श्वों और घटना-प्रसंगों के रूप में बांधी वी है। प्रेमभ्रम रंगभूमि और मोहान में सामाजिक संघात का यह रूप सामने आता है। उत्तर रचनाओं में पार्श्वोचित अर्थदृष्टि अर्थिक अस्तुभन हो गई है और १९२० १९२१ तक उपन्यासकार स्वयं के अर्थदृष्टि वर्गों की सली वेने समते हैं। प्रेमभ्रम के अतिरिक्त इस भूमि पर आने वाले उपन्यासकार कम ही हैं। जो हैं भी उनका अरिष-विश्लेषण कलाकारिता और बैचारिक दृष्टि से उतना ठंडा नहीं उठ पाया है। हिन्दी के इस युग के अरिषों की राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता अप्रतिम है और अन्तर्निर्बाह अरिषों की नई-नई भूमियों का आकलन किया है। स्वयं प्रेमभ्रम के अरिषों में सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया का महान अवन हुआ है। परन्तु यह स्पष्ट है कि प्रेमभ्रम की प्रति इस युग के कलाकार जाति नहीं चाहते थे विकास के पक्षपाती हैं। यह स्पष्ट है इस लिए कि वे सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं मध्यवर्गीय अर्थ के वास्तविक रूप को अभी पहचान नहीं पाये हैं। प्रेमभ्रम भी पार्श्वों के अरिषों की अनेकानेक अरिष-विश्लेषण में अर्थिक अस्तुभन और जातिकारी है। केवल अपनी अंतिम कृति 'मोहान' में वह समझौते और मध्यम मार्ग के प्रति मुर्तस हो उठते हैं। यही कारण है कि प्रेमभ्रम ने मोहान में पूर्व की परंपरा को छोड़ा और गोबर बसे बिटोही अरिष का अस्तुभन किया। अतिया एवं मेहता में भी वह परंपरागत मोह नहीं रह गया।

मध्यवर्गीय का विकास

प्रेमभ्रमोत्तर कथा-अरिषों का अर्थिक अस्तुभन मध्यवर्गीय अस्तुभन के विकास का ही अस्तुभन है। आने हमने देखा प्रेमभ्रम के अरिषों पर भी इसका व्यापक अभाव पड़ा

क्योंकि भारतीय सामाजिक संदर्भों की स्थापना ने कथा-साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अतएव प्रेमचंदोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। जैनेन्द्र प्रज्ञेय बोधी भगवतीभरम बर्मा प्रभृति प्रतिष्ठित कथाकारों ने इसी वर्ग को अपना विषय बनाया। यह भी एक उत्प्रेक्षणीय बात है कि मध्यवर्ग का विषय इतना बढ़ा कि कथाकारों का ध्यान अल्प वर्गों की ओर से हटकर केवल मध्यवर्ग पर ही केंद्रित हो गया जिसमें कि साहित्यिक सुखों को उत्पन्न करने में बाधा पड़त्य पहुँची। इसके लिए सम्पूर्ण रूप से कथाकारों को बोधी नहीं ठहराना जा सकता क्योंकि मध्यवर्ग की ऐतिहासिक भूमिका हीनार हो चुकी थी।¹¹

किन्तु प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकारों ने जीवन के नये संघ छुए पकर। उन्होंने मध्यवर्ग के वृहस्प जीवन के चित्र चर्चित किये। उन्होंने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और गुणधर्मों को समझने और चित्रित करने का प्रयास किया।¹²

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद-युग की व्यापकता का सीप हो गया। प्रेमचंद के पात्र पारिचितिक करेक्टर चरित्र हुए साधु पात्र कम। "भाव का कहानीकार कथानक को पीछे छोड़ता हुआ केवल चरित्र-विरसेपन और अध्ययन के लिए खीड़ रहा है।"¹³ जैसा कि प्राये विचार किया जा चुका है, प्रेमचंदोत्तर चरित्रों के निम्नलिखित विषयजन किए जा सकते हैं। इस प्रकार का विभाजन प्रेमचंद के जीवन काल में ही स्पष्ट हो गया था—सूनीता उपन्यास पर अपनी राय प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने इस ओर संकेत भी किया था— (१) पयार्थोगुप्त घाबरस चरित्र—जैनेन्द्रकुमार, (२) मनोविरसेपनभारमक या व्यक्ति-निष्ठ कथाकारों की चरित्र—इलाचंद्र बोधी—प्रज्ञेय (३) साम्यवादी या समाजवादी चरित्र—मधुपाम (४) और लट्ठन या वैज्ञानिक कथा—इरिकाप्रसाद।

प्राबुनिक कथाकारों की गतिविधियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्राबुनिक कथाकार मानव-चरित्र को उसकी सम्पूर्णता और व्यापकता में देखता है। "बहु धनेक सूक्ष्म अनुभूतियों और बाधिका मनुष्य के चरित्र में बर्साता है।"¹⁴ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कथाकारों के लिए चरित्र-विकास को महत्वपूर्ण र्थ माना था।¹⁵ इसका उल्लेख करते हुए डा० रामबिलास धर्म ने 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में लिखा है—शुक्लजी ने उपन्यासों के बारे में कुछ टिप्पणी सुझाव दिए हैं, बहुत से पात्र और घटनाओं को इच्छा करने के

२६. सातोचना, उपन्यास संक, पृ० १२३

२७. प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त १९३३

२८. डा० लक्ष्मीनारायण जाल—सातोचना, पृ० ३४

२९. प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त, ३३

३०. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी साहित्य (भूमिका) डा० रामबिलास धर्म, पृ० ६

बस्ते पात्रों के मरे-पूरे चित्रण और इसके चरित्र विकास पर जोर दिया है। उन्होंने प्रेमचंद का आदर्श रखते हुए जनसाधारण के जीवन पर उपन्यास लिखना आवश्यक बताया है। शुक्लजी ने अपने इतिहास में लिखा है, 'वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसका विभिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, भावप्रकटा सुधार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।'

शुक्लजी ने उपन्यासों के मुकाबले में कहानियों के विकास को और भी विद्युत् और विस्तृत' बतसाया है। इस विकास में 'कवियों का भी पूरा योग रहा है। यह विशेषता बतसाई है।

प्रसिद्ध कथाकार अज्ञेय भी कहते हैं कि चरित्र विकास की सफ़लता ही उपन्यास की सफ़लता की कसौटी है।' धार्मिक युग के कथाकारों ने चरित्र की विशेषता को समझ और प्रेमचंद प्रभृति कथाकारों ने चरित्र-विकास पर ही विशेष बल दिया। इस चरित्र चित्रण को इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि धार्मिक उपन्यासों में पात्रों का आत्मान्वेष ही उसकी उत्पत्ता का प्रतिमान बन गया। यह आत्मान्वेष बढ़ने-बढ़ते मात्र आत्मचरित्रात्मक के छोर का सर्त कर रहा है। यथा धात्र ना उपन्यास आत्मचरित्र हो गया है।" नामार्जुन का बलचनमा कुलमोचन आदि पर इसका प्रभाव है। "प्रेमचंद के पदचार् चितने भी उपन्यासों की सृष्टि हुई है उनमें अधिकतर ने यही आत्मचरित्रात्मक शैली अपनायी है। जैनेन्द्र का त्यागपत्र इसी शैली में है। उनके घर के चितने उपन्यास हैं सुखदा विवर्त अतीत सबकी शैली यही है। बाणपट्ट की आत्मकथा, पूर्व की रानी उरुका मरुप्रदीप सेसर एक बीबनी आदि में यह शैली वृष्टियोजर होती है। इतना ही नहीं स्वयं प्रेमचंद अपने अन्तिम दिनों में इसी शैली को और प्रवृत्त हुए थे। कौन नहीं जानता कि उनकी प्रसूरी, पर अंतिम कृति 'मगसचूर्ण' में इसी शैली को अपनाया गया है।"^{११}

आत्म चरित्रात्मक चरित्रों का विकास

इतना ही नहीं प्रेमचंद ने इस संक्षेप में स्पष्ट घोषणा की—“अविद्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होता है। हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होना। चाहे किसी बड़े धारणी या छोटे धारणी का। उसकी धुलाई बर्खाई का कैसा उन कठिनाइयों से किया जायगा कि जिनपर उसने विजय पायी है। हाँ वह जीवन-चरित्र इस ढंग से लिखा जायगा कि उपन्यास मान्य होगा। अभी हमें मूल आधार दिखाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी बेचमस्त ना या किसी बड़े धारणी का पर उसका

११ आत्रकल अज्ञेय, पृ० १२ मार्च, १९२३

१२ कथा के तत्त्व पृ० २०

१३ कथा के तत्त्व—डा० वैकराय उपन्यास, पृ० २०

क्योंकि भारतीय सामाजिक संघर्षों की स्थापना में कथा-साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अतएव प्रेमचंदोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। जैनेन्द्र धर्मेय जीधी मगबतीचरण बर्मा प्रभृति प्रतिष्ठित कथाकारों ने इसी बग को धारणा विषय बनाया। यह भी एक अस्नेहनीय बात है कि मध्यवर्ग का चित्रण इतना बढ़ा कि कथाकारों का ध्यान अल्प वर्गों की ओर से छिगटकर केवल मध्यवर्ग पर ही केन्द्रित हो गया जिसमें कि साहित्यिक गुरुत्व को उत्पन्न करने में बाधा प्रदत्त पहुँची। इसके लिए सम्पूर्ण रूप से कथाकारों को बोपी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि मध्यवर्ग की ऐतिहासिक भूमिका ठीका ही चुकी थी।^{११}

किंतु प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकारों ने जीवन के नये संघ छुए जकर। उन्होंने मध्यवर्ग के गृहस्थ जीवन के विश्व संकित किये। उन्होंने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और दुर्लभियों को समझने और चित्रित करने का प्रयास किया।^{१२}

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद-युग की व्यापकता का लोप हो गया। प्रेमचंद के पात्र पारिचित करेष्टर अधिक हुए साधु पात्र कम। "पात्र का बहानीकार कथानक को पीछे छोड़ना हुआ केवल चरित्र-विस्लेषण और अध्ययन के लिए सीढ़ रखा है।"^{१३} जैसा कि घाने विचार किया जा चुका है, प्रेमचंदोत्तर चरित्रों के निम्नलिखित विभाजन किए जा सकते हैं। इस प्रकार का विभाजन प्रेमचंद के जीवन काल में ही स्पष्ट हो गया था—सुनीता उपन्यास पर अपनी राय प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने इस ओर संकेत भी किया था—
(१) यथार्थोन्मुख आदर्श चरित्र—जैनेन्द्रकुमार, (२) मनोविरसेपचारमक या ध्वनित-निष्ठ यथार्थवादी चरित्र—इसाचंद्र बोधी—धर्मेय (३) साम्यवादी या समाजवादी चरित्र—ब्रह्मपाल (४) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ—हारिकामराज।

साधुनिक कथाकारों की सतिविधियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि साधुनिक कथाकार मानव-चरित्र को उलकी सम्पूर्णता और व्यापकता में देखता है। "यह घनेक सूक्ष्म अनुभूतियाँ और बाधकियाँ मनुष्य के चरित्र में बर्शाता है।"^{१४} आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कथाकारों के लिए चरित्र विकास को महत्वपूर्ण ध्य माना था।^{१५} इसका अस्नेक करते हुए डॉ० रामबिभास शर्मा ने 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' नामक पुस्तक में लिखा है—शुक्लजी ने उपन्यासों के बारे में कुछ उम्हा सुझाव दिए हैं, बहुत से पात्र और पटनाओं को हकट्टा करने के

११ आलोचना, उपन्यास संक, पृ० १२३

१२ प्रकाशचंद्र शुक्ल—कल्पना, अगस्त १९३३

१३ डॉ० लक्ष्मीनारायण शाल—आलोचना, पृ० ३४

१४ प्रकाशचंद्र शुक्ल—कल्पना, अगस्त, ३३

१५ आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (भूमिका) डॉ० रामबिभास शर्मा, पृ० ६

बरसे पात्रों के भरे-पूरे विभ्रम और उन्के चरित्र विकास पर खोर दिया है। उन्होंने प्रेमचंद का भावार्थ रखते हुए जनसाधारण के जीवन पर उपन्यास लिखना आवश्यक बताया है। सुकनमी ने अपने इतिहास में लिखा है, "वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज को रूप पकड़ रहा है उसके विभिन्न बंधों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते भावव्यक्तता सुझार उनके ठीक विन्यास, सुझार प्रकटा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"

सुकनमी ने उपन्यासों के मुकाबसे में कहानियों के विकास को 'धीर भी विद्युत् धीर विस्तृत' बतलाया है इस विकास में कवियों का भी पूरा योग रहा है, यह विशेषता बतसाई है।

प्रसिद्ध कथाकार प्रज्ञेय भी कहते हैं कि चरित्र विकास की सफलता ही उपन्यास की सफलता की कसौटी है।" प्राच्युतिक युग के कथाकारों ने चरित्र की विशेषता को समझ और प्रेमचंद प्रभृति कथाकारों ने चरित्र-विकास पर ही यथेष्ट बत दिया। इस चरित्र विभ्रम को इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि प्राच्युतिक उपन्यासों में पात्रों का आत्मान्वेषण ही उसकी उत्कृष्टता का प्रतिमान बन गया। यह आत्मा श्लेषक बढ़ते-बढ़ते मात्र आत्मचरित्रात्मक के छोर का स्पर्श कर रहा है। यथा प्रायः का उपन्यास आत्मचरित्र हो गया है।" नायार्जुन का बसवतमा दुर्लभमोक्ष आदि पर इसका प्रभाव है। "प्रेमचंद के पश्चात् जितने भी उपन्यासों की सृष्टि हुई है उनमें अधिकतर ने यही आत्मचरित्रात्मक धमनी अपनायी है। जैनेन्द्र का त्यागपत्र इसी धमनी में है। उनके स्वर के जितने उपन्यास हैं सुकन्या, विवर्त व्यतीत सबकी धमनी यही है। बापमट्ट की आत्मकथा परों की रानी उसका महप्रदीप दोसर एक जीवनी आदि में यह धमनी सृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं स्वयं प्रेमचंद अपने अन्तिम दिनों में इसी धमनी की ओर प्रवृत्त हुए थे। कौन नहीं जानता कि उनकी प्रभुरी पर अन्तिम इति 'मंससूत्र' में इसी धमनी को अपनाया गया है।"

आत्म-चरित्रात्मक चरित्रों का विकास

इतना ही नहीं प्रेमचंद ने इस संबंध में स्पष्ट घोषणा की— "अविद्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होगा हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा। चाहे किसी बड़े आदमी या छोटे आदमी का। उसकी छुगई नुगई का कैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा कि जिनपर उसने विजय पायी है। हाँ यह जीवन-चरित्र इस ढंग से लिखा जायगा कि उपन्यास मासूम होया। अभी हमें मूस आचार-दिलाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी वैद्यकस्त का या किसी बड़े आदमी का, पर उसका

११ आत्मकथा पत्र पृ० १२ मार्च १९२३

१२ कथा के तत्त्व, पृ० २०

१३ कथा के तत्त्व—३० देवराज उपन्यास, पृ० १०

आचार यथार्थ पर होगा। तब यह नाम उसके कठिन होया जितना धन है, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का पौरव प्राप्त हो।" धाज के बड़ी उपन्यासों को पढ़ने पर ठीक यही मामूम पड़ता है कि जैसे हम किसी की धारमरूपा पढ़ रहे हैं।" पेस्टरनक का उपन्यास 'डाक्टर जिवागो जिक्लोसाई मोखनेवस्की का उपन्यास 'मनिटीक' प्रादि इसका सुन्दर उदाहरण है। 'मनिटीक' दरघसत मुकु से प्रातिर तक सेखक की धारमरूपा है। इस मुप के उपन्यास के लिए चरित्र विकास ही प्रधान हो गया। धाज की हिन्दी कहानियों में भी यही प्रवृत्ति पायी जाती है।" धाज के उपन्यास दिव्य का मेरुबंड है चरित्र।" श्री श्रीपतराम का मत है कि धाज का उपन्यास बहिर्निवृत्त धारमरूपा का रूप सेता जा रहा है।"

इन उपन्यासों एवं कहानियों को सबसे बड़ी सीमा यह है कि यदि इन रचनाओं से प्रमुख चरित्र को हटा लिया जाय तो वह परासामी होकर टूट जावगी। धनका उसका कोई प्रभाव ही प्रह्वन नहीं क्रिया जा सकेवा। उदाहरण के लिये मगवतीचरण बर्मा की 'बिजसेबा' को ले सकते हैं—बिजसेबा समस्वा-प्रधान है—घौर वह समस्वा है पाप घौर पुष्य की। कुछ चरित्रों के माम्यम से कथाकार उसे मुलम्भना चाहता है। दिव्य उपन्यासों में चरित्र ही प्रमुख हो जाते हैं। "धजेय के देखर में देखर चटान की तरह खड़ा है। जो कुछ हो रहा है वह देखर को ही लेकर है बीच में एक-दो पाप धा भी गये हैं तो देखर के व्यक्तित्व को स्पष्टता देने के लिये ही है।" हिन्दी की धग्याय्य कृतियों जैसे—देखर, सुनीता कस्याची नरी के शीप खानपथ प्रादि में यही प्रवृत्ति वर्तमान है। किन्तु विश्व की भ्रष्ट कृतियों में इतना संकोच नहीं है। उदाहरण के लिये 'मोबान' ऐसी महाकाव्यात्मक कृतियों को लें—यदि मोबान में प्रधान चरित्र होरी को उपन्यास से हटा लें तो भी बनिया मोबर, तथा मोबान का विषय मोबान को मोबान बनाये रखता है घौर उसकी मर्यादा की रसा भी हो जाती है। विश्व कथा साहित्य की धम्यतम कृति 'मबर' का उदाहरण भी स्पेक्षित होगा—मोर्षों के 'मबर' से यदि मां या

३४ कुछ बिचार—प्रमबंध पृ० २६

३३. योरोपीय उपन्यास पृ० १४७

३६ "बटना को बाहों से फूरकर हिन्दी कहानी 'चरित्र' के ही प्रातिगत में धा बंधे यह हिन्दी कथा-सृष्टि के लिए शुभ-संयोग है। चरित्र ऐसे जिनके प्राण का परिभाषक रूपका के धारास से न होकर कथाकार की धारभानुभूति के धरस्तम से हो, ऐसी योजना नहीं लेकनी द्वारा ही संयोजित हुई।" — नये कवियों की पद्य की दिशा लेखक जमरीध नारायण श्रीवास्तव 'भाज' साहित्य विद्योपीठ १९६१ पृ० १८

३७ सामोचना (उपन्यास विद्योपीठ)—धरमीनारायण लाल पृ० १२८

३८ उपन्यास का रूप-विधान, साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद में पंडित निबंध १९३७ ई०

३९. प्राचिनिक हिन्दी कथा साहित्य घौर मनोविज्ञान, पृ० १०२

पापैत का चरित्र हटा दिया जाय तो उपन्यास में वर्णित बिजोह स्व के मजबूतों का जीवन-समर्थ अपनी बेप भूपा (मेसबर पोसबर) के द्वारा भी उपन्यास के प्रभाव को जीवित रखते हैं। समकालीन बिस्म-बिस्मात कथाकारों की कृतियों में यही गुण अभी भी वर्तमान है। इमिया इहरेमबुर्ग की धंधी धनिटीक, हेमिम्बे के उपन्यासों विशेष रूप से सागर धीर बूढ़ा घादमी (बी धोस्डमैन एड बी सी) ऐसे लघु उपन्यासों से भी यदि प्रमुख चरित्र को सें तो उपन्यास का प्रभाव सुरक्षित रह जाता है, जो मानव के भ्रम-समर्थ प्रकृति सागर धीर योक्ष का परिचायक है, रस-परिपाक में इससे कोई बाधा नहीं होती पाठक साधारणीकृत हो जाता है। जहाँ तक पात्रों की प्रमुखता एवं प्रभाव की सबलता की बात है यदि बूढ़ा घादमी को निकाल लिया जाय तो उपन्यास का उपनायक छोटा लड़का भी सागर धीर पीर्य का प्रतीक बन जाता है। मोरान की परंपरा को विकसित करते हुए युग की समकालीन परिस्थितियों को लेकर प्रेमचंद एवं अन्य समष्टिवादी कथाकारों की-सी संवेचना का ऐसा ही परिपय 'परती' परिकथा में प्रकाशनायक 'रेणु' ने दिया। सम्पूर्ण परती बरती को कथा जितन, जूतो ताजमनी सुवराय घादि के द्वारा सामने आती है प्रकृति यदि रौचपीयर से विचार प्रचार लिया जाय तो कहा जा सकता है कि 'परती' एक रंगमंच है धीर उपन्यास के विभिन्न पात्र उसपर अभिनय करने वाले अभिनेता हैं। इसीलिए 'परती' परिकथा के पात्र व्यक्ति-चरित्र नहीं हैं क्योंकि उनको कथा प्रमुख नहीं है बल्कि वे समष्टि चरित्र या कलात्मक पात्र हैं, मात्र जाति (टाइप) चरित्र से भी अधिक।

धौपन्थासिक—महाकाव्यात्मक व्यक्तित्व के भ्रमण में प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों ने अस्थिर व्यक्तित्व का चित्रण किया। फलतः अधिकांश कथा-साहित्य चरित्रों के रिपोर्टिंग होकर रह गये। हालांकि हिन्दी घासोचकों का यह बाधा रहा कि घाज के जीवन को विभिन्न अस्थिर आयामों एवं इकाइयों में ही देखा जा सकता है। 'कायसिस' के इस युग में सम्भव नहीं कि 'गोदान' ऐसी महाकाव्यात्मक रचना का सूत्रन हो यद्यपि पृष्ठों की तुलना में मोरान से अधिक पृष्ठ वाले उपन्यास भी प्रकाशित हुए, (यद्यपि ऐसा प्रयास भी सफल हो सकता था, पर ऐसी पक्षियाँ हिन्दी में नहीं आती) पर उनमें 'गोदान' का-सा व्यापक परिवेश नहीं है—उदाहरण के लिए ऐसर, पत्र की खोज बूँद धीर समुद्र इन्धुमती प्रकृति अनुराग घादमी के उपन्यासों की रक्षा जा सकता है जो उपन्यास नहीं इतिहास-पुराणों के अनुबाह हैं। यद्यपि में कथा-साहित्य पर धोष करने वाले विद्वानों को इन पक्षियों को अपवाद रख कर ही कथा-साहित्य पर धोष करना होगा। साधारणतः साहित्यिक कथा-कीर्तन का प्रभाव होने पर ही कथाकार इतिहास पुराण की धोर जाता है। इसीलिए 'नन्दकुमारे बाबुदेवी' ऐसे घासोचक भी ऐसी साहित्यिक रचना को बर्धकर कृति मानते हैं।

४०. सर्व प्रथम—सोमनाथ, बँशाली की नगर बधु,

४१. धातुनिक साहित्य

प्रतिबिम्बित करने वाले कथा चित्रात्मक का ही उपात्तर मान है। इसलिये स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को उपायित करने का प्रयत्न ही न रहे तो लेखक धर्मिचार्यता रूप और ऐकनिक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-कृत को लेकर मनोविश्लेषण में प्रवृत्त होये और अपने अनुकूल पात्रों के प्रति मोहग्रस्त होकर उनके अहंकारी, दायित्वहीन धर्मेच्छक और स्नेहछाहारी धारण को उनकी अभिव्यक्त धात्मा का परिचय सिद्ध करके उन्हें प्रतिरिक्त महिमा से मञ्जित करेंगे। हिन्दी के मये प्रास्मान-साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण है, वहाँ यह प्रवृत्ति भी है और धारमपरिभात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।^{१८} प्रेमचन्द के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। मञ्जय का देखर साधारणतया जीवनी मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति-चित्र है। जेनेरलकुमार का रयापत्र भी अंततः व्यक्ति-चित्र है, और सुनीता के पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं रचना-संबन्धित मात्र हैं, जिनके द्वारा लेखक एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। मनवतीचरम-बर्मा के 'ठेड़े मेड़े रास्ते' ('मूले बिसरे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक धार्मिकता के तीन रास्तों—प्राचीनवादी कम्युनिस्ट और धार्मिकवादी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्स में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन पंचियों में कोई भी मयार्थ और सामाजिक मानव का चित्र नहीं है। इलाचन्द जोड़ी का 'निर्वासित' भी अन्ततः बतला व्यक्ति चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और यह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व अनेकों मानसिक यौग बर्जनाओं से कृच्छित और विचलित हो गया है उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सद्गानुभूति से विचली है, लेकिन पाठक की सद्गानुभूति इसलिये नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्थिरता के साथ पाठक नहीं चल सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता बरकर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आदिष्कार की महत्ता और उसकी बुर-भ्यापी सम्भावनाओं पर खोर विचार गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के बटनाक्रम में यह आदिष्कार एक घुटी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नामक पहले ही जिस संपूर्ण पटाचय और कृच्छिताबस्था तक पहुँच चुका है उसी को पाठक पर अभिव्यक्त कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अवर मानव की उन्नति पर चरित्र-नायक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होता (वास्तव में अहंकारी नामक का मानव में विश्वास कभी रहा ही नहीं और बटनाचक्र से जो कृच्छित हुआ वह केवल उसका धारमविश्वास है) तो एटमबम की बटना उसे तोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें घाब भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब मूर्ख हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्स के साथ उसके अन्वयार्थ को न देखना व्यक्ति को ऐसी आकाश बेस मानना है जो कि अपने धारण की मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी कल्पना का परिचय संघर्ष, पटाचय और निघसबाह ही हो

सकता है। जहाँ तक मानवीय सहानुभूति का सेवक मानव की बिरब मानव के साथ एकता का प्रश्न है, प्रेमचन्द इस बात में भागे थे। उनकी दृष्टि अधिक उदार थी इतर मानवों के साथ उनकी समवेदना का पुत्र अधिक सजीव और स्वयंमयीस था। डी० एच० कार्ले ने नहीं कहा था कि प्राकृतिक सफ़र-सैनेटेशन की जड़ में यह बात है कि मानव को मानव की बुझसह्य हो गयी है। बहूधा मानव जाति की उन्नति और सुधार की प्रवेष्टा में भी मानव के प्रेम नहीं मानव के प्रति प्रवेष्टेजना या पुण्य की मानना काम करती है। बुद्धिवादी के लिए यह जतरा सदा बना रहता है कि उसकी मानवीय संवेदना का झोठ नहीं सुख न जाय, मानव के लिए उसका दर एक कभी अनुकंपा का ही रूप न से से। प्रेमचन्द की और हमारी दृष्टि में ऐसा झंटर घाटा था रहा है। प्रवेष्टे मानते हैं कि परवर्ती उपन्यासकारों (प्रवेष्टे जैनेन्द्र इसाचन्द्र बोधी) ने प्राक्यात साहित्य को प्रेमचन्द से घाये बढ़ाया है लेकिन केवल टैकनीक की दिशा में।

मास्वीय विचार-जाप के प्रभाव के कारण यद्यपि के मारी और पुस्त्य पात्र एक नये मोड़ का सुजन करते हैं। जब कभी यद्यपि ने अपनी दृष्टि इतिहास की घोर भी केंकी है, इनका चरित्र-चित्रण चरित्र-विकास की एक नयी लैसी का सुत्रपाठ करता है। यद्यपि का नवीन उपन्यास 'घमिठा' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। बावा कामरेड, मनुष्य के रूप पाटी कामरेड घादि उपन्यासों में जितने सारे चरित्रों का निर्माण यद्यपि ने किया है ऐसे चरित्र यद्यपि के उपन्यासों के पूर्व के उपन्यासों में नहीं घाये थे।

घरक को चरित्र-विकास के मोड़ के रूप में स्वीकार करना संदिग्ध होगा, क्योंकि घरक पर प्रेमचन्द का अत्यधिक प्रभाव है। मध्यमिज जीवन के चित्रण में भी प्रेमचन्द के चरित्र-विकास की पद्धति का परिचय घरक ने दिया है। घरक और यद्यपि तक घाटे-घाटे कथा-साहित्य पुत्र बहिर्मुखी जीवन-चित्रण की घोर घाये बढ़ जाटा है। घरक ने इस अर्थ में मध्यमवर्गीय बाह्य जीवन का घोर नामार्जुन ने ठेठ पाँव के क्रिसान-मनसुरों का चित्रण किया प्रेमचन्द ने जहाँ तक चरित्र का निर्माण कर छोड़ दिया था वहीं से घाये नामार्जुन बढ़ते हैं। नवीन सामयिक जन-दृष्टि और राजनीतिक जन-वेदना के मूर्तम्य उनके पात्र हैं जिसका नितास्त प्रभाव प्रेमचन्द के पात्रों में था। क्योंकि प्रेमचन्द के पात्रों का सुय-सरय बही था और ऐसा कहा जा सकता है कि नामार्जुन का बलचनमा योवर का विकसित रूप है। मनोव्याप्तिक कपालोक क क्षेत्र में प्रहय एक बोधी प्रमृति लेखकों के द्वारा जो कुच्छित निराशाजनक प्रयोग हुए व जवने घाघावादी मोड़ लिया और इन कथाकारों की नयी कृतियों ने चरित्र-दृष्टि के द्वारा नवीन विकास की परम्परा को घाये बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कथा-साहित्य में रस तार ईजम एटमबम राकेट की बाठों को भी संरक्षण मिलने लगा। साथ ही समुद्र क्षत्रीय विधेपठाए टेस्ट ट्यूब बैलाज योन परिवर्तन

प्रतिबिम्बित करने वाले ब्रह्मा-सिद्धान्त का ही रूपान्तर मान है। इसलिये स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को रूपान्वित करने का प्रयत्न ही न रहे तो सैलक 'धर्मवार्धक' रूप और टैकनीक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-मूल को लेकर मनोविश्लेषण में प्रवृत्त होगे और अपने प्रमुख पात्रों के प्रति मोहसन्न होकर उनके चर्चकारी, दायित्व हीन प्रतीतिक और स्वेच्छाचारी आचरण को उनकी धर्मव्यक्त आत्मा का परिणाम सिद्ध करके उन्हें प्रतिरिक्त महिमा से संबोधित करेंगे। हिन्दी के नये धार्मिक-साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण है वहाँ यह प्रवृत्ति भी है और धारमचरित्रात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।^{१०} प्रेमचन्द के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। प्रभेय का पैरार आचारणतया जीवनो मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति चित्र है। जैनेन्द्रकुमार का त्यागपत्र भी अंततः व्यक्ति-चित्र है, और सुनीता के पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं, रचना-संघटित पात्र है, जिनके द्वारा केवल एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। मनवतीचरित्र-वर्मा के 'देड़े देड़े रास्ते' ('मूले बिहारे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक धार्मिकता के तीन रास्तों—मार्क्सवादी कम्युनिस्ट और धार्मिकवादी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन परिधियों में कोई भी अर्थार्थ और सामाजिक मानव का चित्र नहीं है। इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित' भी अन्ततः अन्ततः व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व अनेकों मानसिक यौग वर्जनाओं से कृत्रिम और बिभट्टि हो गया है उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सद्गानुभूति से मिली है लेकिन पाठक को सद्गानुभूति इसलिये नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्विकृता के साथ पाठक नहीं बन सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता बकर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आविष्कार की महत्ता और उसकी दूर-व्यापी सम्भावनाओं पर और दिया गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के अन्ततः अन्ततः में यह आविष्कार एक बुरी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नामक पहले ही जिस अंश पर राजव्य और कृत्रिमताका एक पट्टी चका है उसी को पाठक पर अभिभव्य कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अन्ततः मानव की अन्ततः पर चरित्र-नामक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होता (वास्तव में चर्चकारी नामक का मानव में विश्वास अभी रहा ही नहीं और अन्ततः अन्ततः से जो कृत्रिम हुआ वह केवल उसका धारमविश्वास है) तो एटमबम की अन्ततः अन्ततः छोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें आज भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब पूर्ण हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्श्व के साथ उसके अन्ततः अन्ततः को न देना व्यक्ति को ऐसी आकाश बन मानना है जो कि अपने आचार को मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी अन्ततः का परिणाम संघर्ष पराजय और निरासवार ही हो

सकता है। वहाँ तक मानवीय सहामुभूति का, लेखक मानव को बिना मानव के साथ एकता का प्रश्न है, प्रेमचन्द इस बात में धाये थे। उनकी दृष्टि अधिक उबार पी हार मानवों के साथ उनकी समवेदना का सूत्र अधिक सजीव और सम्यग्धीन था। डॉ० एच० सार्वे ने नहीं कहा था कि प्राथमिक सफाई-सैनेटेजम की जड़ में यह बात है कि मानव को मानव की नू घसड़ा हो गयी है। बहुधा मानव जाति की उन्नति और सुभार की प्रवेष्टा में भी मानव से प्रेम नहीं मानव के प्रति प्रबुद्धता या गुणा की भावना काम करती है। बुद्धिवादी के लिए यह कतरा घटा बना रहता है कि उसकी मानवीय संवेदना का स्रोत कहीं सूख न जाय मानव के लिए उसका हर्ष एक क्ली घनुर्बपा का ही रूप न से ले। प्रेमचन्द की और हमारी दृष्टि में ऐसा अन्तर घाता था रहा है। अज्ञेय मानते हैं कि परवर्ती उपन्यासकारों (अज्ञेय जैनेन्द्र इलाचण्ड बोधी) ने प्राक्यान साहित्य को प्रेमचन्द से घाय बड़ाया है लेकिन केवल टेकनीक की बिधा में।”

मानसमि विचार धारा के प्रभाव के कारण यद्यपाम के गारी और पुटय पात्र एक नये मोड़ का सूजन करते हैं। जब कभी यद्यपाम ने अपनी दृष्टि इतिहास की धोर भी फेंकी है इनका चरित्र-चित्रण चरित्र-विकास की एक नयी शैली का सूत्रपाठ करता है। यद्यपाम का नवीन उपन्यास 'अमिता' इसका फलसंगत उदाहरण है। बाबा कामरेड मनुष्य के रूप, पार्टी कामरेड प्रादि उपन्यासों में जितने सारे चरित्रों का निर्माण यद्यपाम ने किया है, ऐसे चरित्र यद्यपाम के उपन्यासों के पुत्र के उपन्यासों में नहीं धाये थे।

अरक को चरित्र-विकास के मोड़ के रूप में स्वीकार करना सदिरक होगा क्योंकि अरक पर प्रेमचन्द का अत्यधिक प्रभाव है। मध्यवित्त जीवन के चित्रण में भी प्रेमचन्द के चरित्र-विकास की पद्धति का परिचय अरक ने दिया है। अरक और यद्यपाम एक घाते-घाते कथा-साहित्य पुत्र बहिर्मुखी जीवन-चित्रण की धोर धामे बड़ खाता है। अरक ने इस अक्षरि में मध्यमवर्गीय बाह्य जीवन का धोर मामार्जुन ने ठेठ गांव के किसान-मजदूरों का चित्रण किया प्रेमचन्द ने वहाँ तक चरित्र का निर्माण कर छोड़ दिया था वहाँ से धामे मागार्जुन बढ़ते हैं। नवीन सामयिक जन-दृष्टि और राजनीतिक जन-वेदना के भूर्तरूप उनके पात्र हैं जिसका निताम्य अभाव प्रेमचन्द के पात्रों में था। क्योंकि प्रेमचन्द के पात्रों का युग-सत्य वही था धोर ऐसा कहा जा सकता है कि मागार्जुन का जनचतमा पोवर का विकसित रूप है। मनोवैज्ञानिक कथासौष्ट के क्षेत्र में अज्ञेय एवं बोधी प्रभृति लेखकों के द्वारा जो कुच्छिन्न निराशाजनक प्रयोग हुए व उन्हें घातावादी मोड़ लिया धोर इन कथाकारों की नयी कृतियों ने चरित्र-दृष्टि के द्वारा नवीन विकास की परम्परा को धामे बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की सभ्रति के कारण कथा-साहित्य में रैल ठार, इंजन एटमबम राकेट की बातों को भी संरसाय मिलने सपा। साज हो सपुत्र क्षेत्रीय विरोधवाएँ, टेस्ट दूधूब बेबीज योन परिवर्तन

प्रतिबिंबित करने वाले कला-सिद्धांत का ही स्वरूप मात्र है। इसलिए स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को स्थापित करने का प्रयत्न ही न रहे तो लेखक अनिर्धारित रूप और टेकनीक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-भूत को लेकर मनोविस्तेषण में प्रवृत्त होंगे और अपने प्रत्यक्ष पात्रों के प्रति मोहासक्त होकर उनसे घर्षकापी, बाधित हीन घर्षिक और स्नेहकापी भावरस को उनकी प्रसिद्ध आत्मा का परिचय प्रिष्ठ करके उन्हें प्रतिरिक्त महिमा से मंडित करेंगे। हिन्दी के नये धार्मिक-साहित्य में यही मनोविस्तेषण है, यही यह प्रवृत्ति भी है और आत्मपरिभात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।^{१०} प्रेमचंद के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। प्रज्ञेय का देवर साधारणतया जीवनी मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति चित्र है। जनेश्वरकुमार का स्वामीपत्र भी संत-व्यक्ति-चित्र है, और सुनीता क पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं रचना-संप्रतिष्ठ मात्र है जिसके द्वारा लेखक एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। जयवतीचरक-बर्मा के 'देड़े देड़े रास्ते' ('दूले बिहारे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक आन्दोलन के तीन रास्तों—बाँधीबाँधी कम्युनिस्ट और घातकबाँधी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन पंथियों में कोई भी पक्षार्थ और सामाजिक मानक का चित्र नहीं है। इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित' भी अन्तर्दीप्तता व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व घनेको मानसिक यौग वर्जनाओं से कूटित और बिघटित हो गया है, उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सद्गानुसृति तो मिली है लेकिन पाठक की सद्गानुसृति इसलिए नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्थिरता के साथ पाठक नहीं बच सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता बकर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आधिष्कार की महत्ता और उसकी दूर-भ्यापी सम्भावनाओं पर जोर दिया गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के अन्तर्गत में यह आधिष्कार एक बुरी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नामक पहले ही बिंदु संपूर्ण पराजय और कुटिलताबन्धना तक पहुँच चुका है उसी को पाठक पर अतिव्यक्त कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अमर मानव की अज्ञति पर चरित्र-नायक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होना (वास्तव में घर्षकापी नायक का मानव में विश्वास कभी रहा ही नहीं और अन्तर्गत से जो कुटिल हुआ वह केवल उतका आत्मविश्वास है) तो एटमबम की अज्ञता उसे छोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें प्रायः भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब मूर्ख हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्श्व के साथ उसके अन्तोऽन्तर्गत को न देखना व्यक्ति को ऐसी आकाश बैल मानना है जो कि अपने आचार को मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी कल्पना का परिणाम संघर्ष, पराजय और निरासकार ही हो

रत्नादि की बातें भी कथा-साहित्य में प्रवेश करने लगी हैं। राष्ट्रीय नव निर्माण एवं कर्मों, दृग्दर्शों और बुद्धिबोधों की नई गड़गड़ाहट ने बीच से नया मानव निर्मित होकर कथा-साहित्य में स्थान पाते सगा है।^{१०} इतना होते हुए भी नामापूर्ण एक कथा-साहित्य में व्यक्ति को ही प्रमुखता मिलती रही है—गोदान ऐसी महाकाव्यात्मक सदैवना एक भी कृति में नहीं आई, जिसमें व्यक्ति के माध्यम से कथा विकसित नहीं होती बल्कि सामाजिक समूह अथवा समाज उसका नायक है और इस समूह का प्रतिनिधि होती है। और समूह के इस चरित्र-विकास की व्यापकता को लेकर भी पत्नीस्वर नाय 'रेणु' ने अपने उपन्यासों की सृष्टि की है। प्रकृति का एक अंड हुआरी ठाय की भूत मरी-परती-बरती तथा मिथिला का 'संसा धावन' उसकी कथा का विषय है। उपन्यास का नायकत्व किसी एक व्यक्ति को प्रदान नहीं किया गया है। क्योंकि केवल व्यक्ति का महत्त्व नहीं है। कथा व्यक्ति के पीछे नहीं चलती। भाव के उपन्यासों में प्राचीन काल के बीरोदात्त धर्म का शैवबोधमय नामों का उभय प्रभाव हो गया है और उनके स्थान पर साधारण मजदूर किसानों की बात छोड़िए, असाधारण अधिकृत मानव तथा अपराधी मनोवृत्ति वाले और पुष्पाबाज और अस्सनी मनुष्यों का साधिकार प्रवेश होने लगा है। अभी हाल के बीस वर्षों के अन्दर औपन्यासिकों का ऐसा बल पतना है, जो उपन्यासों में सिधु और सिधु-मानस को प्रतिष्ठा देने का धाड़ही है। उनका कथन है कि मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के जीवन की कपरेला जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही निश्चित हो जाती है। मनुष्य को जिस ऊँचाई तक उठना है अथवा जिस गहराई तक पतित होना है इसका निर्णय इन्हीं प्रारम्भिक वर्षों के हाल में है। हिन्दी के अधिकतर कथाकारों का ध्यान सिधुओं की ओर नहीं गया। प्रेमचन्द की रचनाओं में अज्ञेय के क्षेत्र में छेठ बोधिवृत्त की दृग्गुमती में तथा पत्नी परिकथा में बौद्ध सिधु-मानस का आचार अन्वय लिया गया है पर अब औरों का भी ध्यान हलक गया है। छेठनी के 'दृग्गुमती' में एक मारवाड़ी छेठ रामस्वरूप की बड़ी ही सफल तस्वीर उतारी गई है। स० ही० वात्स्यायन का मत है कि ऐसे सफल चित्र हिन्दी में तो और नहीं मिलेंगे। मारवाड़ी छेठ की मनोवृत्ति के यह सन्ने और सही चित्र हैं। वास्तव में इस प्रकार के पात्र पहली दृष्टि उतकी कृति में नहीं पाये। उनके एक नाटक में भी एक बूढ़ मारवाड़ी पात्र है। वह उनके सभी नाटकों में सबसे सफल चरित्र है। उन्होंने सड़कों नाटकीय पात्रों की सृष्टि की होयी। इन सबसे सफल पात्र यह बूढ़ मारवाड़ी है। यह जो छेठ रामस्वरूप है, वह भी उनी की प्रतिमूर्ति है और यह प्रतिमूर्ति छेठनी ने नहीं नहीं वह उनके संस्कार में रची हुई है। छेठनी का कथन है कि उसकी प्रेरणा उन्हें अपने पितामह से मिली है।^{११} किन्तु यह जो पात्र का चित्रण है वह एक पीढ़ी पहले का चित्रण है। अब के युग को और भाव की समस्वाधों को लेकर जैसे पात्र का चित्र नायार्जुन ने अपने 'बलचनमा' में दिया है, उसका अभाव

१०. कथा के तत्त्व

११. भावकल्प, — डा० नवीन्द्र, मार्च, १९२३, पृ० १३

हमें 'इन्द्रपती' में मिलता है। इस कारण से 'बलचनमा' ऋषिक सफल मान पड़ता है। प्रेमचन्द की परम्परा के दायर्ष का सन्धा निर्वाह इस बलचनमा में मिलता है। मोरान का होरी इस दृष्टि से भारतीय कथा-साहित्य में बेजोड़ है और पात्र के चरित्रों में तो इस तरह का एक ही प्रबल ध्यान में था रहा है जिसे इतने अधिक संबंधों और सम्पर्कों में रखने की कोशिश की गई—यह है बलचनमा।

होपी के उत्तराधिकारियों में तामाजुन का बलचनमा और समुद्रसास नामर का 'सिंह बकिमस' उल्लेख्य है। ये चरित्र अपने व्यक्तित्व में सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को इस तरह आत्मसात् करके साकार हो उठे हैं और इतने अधिक 'अपने व्यक्तित्व' के सोम बन गये हैं कि वहाँ हम उनमें एक युग को अपनी सारी विशेषताओं के साथ देखते हैं, वहाँ ये बहुत ही साधारण लेकिन बेजोड़ घादमी भी हैं। यदि शाबुतबाद की समाप्ति के साथ होरी की कहानी समाप्त होती है तो 'बकिमस' और 'बलचनमा' अपने पुराने संस्कारों के साथ नई सम्मता का ऐसा रचना-युग्मी समन्वय होते हैं कि वो व्यक्तित्व अपने भाते हैं। बकिमस तो सचमुच ही पश्चिमी चरित्र है जो हँसते-हँसते अपने युग की प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील दोनों मारामों का दिग्दर्शन करता है। रतिनाथ और बलचनमा के रूप में ऐसा लगता है कि मायाजुन ने प्रेमचन्द की विस्मृत कथा-परंपरा और होरी की बंदाबनी सर्वात् मोबर को विनित किया है। लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक सत्तों को समोकर वह भी इतना सफल पात्र नहीं बने उनके जो बकिमस है। इसलिए बकिमस अपने धापमें उपन्यास का समूह ही पात्र है जिस तरह होरी का डीना-बाला प्रशान्त चरित्र बिना धनिया की ठेकी और क्यूक के नहीं निकल सकता वा उसी तरह बकिमस तो केवल जीवनी के चरित्र का पूरक है।

'परती परिकथा' के पूर्व और 'मोरान' के बाद के कथा-साहित्य की प्रगति मूलतः व्यक्ति-चरित्र प्रधान साहित्य रचना का उदाहरण है। यह परंपरा 'बलचनमा' तक बढ़ती रही और आज भी हिन्दी में अस्सी प्रतिशत रचनाएँ व्यक्ति चरित्र मूलक ही प्रकाशित होती हैं। (इसलिए 'बलचनमा' में व्यक्ति का सामाजीकरण किया गया है) धाप ही अधिकारी चरित्रों के आर्थिक विस्तार में हिन्दी के पूर्ववर्ती एवं बंधन के कथा-चरित्रों से तुलना करने पर कोई विशेष मालिङ्गता दिखाई नहीं पड़ती। जैनेन्द्र जैसे इलाक़ जैसी प्रगति भेदकों के अधिकारी चरित्र प्रेमचन्द एवं दारत के एवं विरई ही बीड़ते रहे। दारत के पात्रों की धनीय कक्षा, विद्या रूप से नारी पात्रों की हिन्दी कथाकारों पर धन भी हावी है। 'परती परिकथा' के नारी पात्रों में भी जैसे ताजमनी और इलाबती में वही कदवा की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यद्यपि धन, समुद्रसास और मनबती-चरित्र जहाँ ऐसे प्रगतिशील कथाकार के अधिकारी चरित्र भी प्रेमचन्द, दारत और रवीन्द्र से अधिक धामे नहीं था पाये। जैनेन्द्र की सुनीता जैनेन्द्र को प्रेमचन्द की मासती, और प्रजेय की धधि सुनीता का प्रतिरूप बनकर धाती है। इलाक़ और धर्मवीर भारती के पात्रों पर जैनेन्द्र-प्रजेय का स्पष्ट प्रभाव तो देखा ही

का सङ्घा है।" 'बलभनमा' को पढ़ते हुए हठात् गोबर की पार या ही जाती है। कुछ धालोचकों ने यह भी आरोप किया है कि धावकस घनेक प्रतिष्ठित उपन्यासकार केवल एक पात्र का निर्माण करना चाहते हैं जो वे स्वयं हैं और उद्यकी फिर-फिर पुनरावृत्ति करते हैं। मुबन (नदी के द्वीप) सेसर का ही दूसरा रूप है गर्मराज का नायक 'बेतन' का प्रतिरूप है और सुसरा एवं बिबर्त, सुमीता की ही दूसरी और तीसरी धावृत्ति है।"

समकालीन नयी हिन्दी कहानियों की धार्मिक कहानियों ने चरित्रांकन के नये प्रतिमान प्रथम उपस्थित किए हैं किन्तु उद्यका रूप धामी इतना व्यवस्थित नहीं हुआ है कि प्रेमचंद की तुलना में उद्यकी नवीनता को हम स्वीकार कर लें। यों कि धार्मिकता के कारण धार से कहानी बची रहने के कारण चरित्रांकन स्पष्ट नहीं हो पाता है। यह बात दूसरी है कि कुछ कृतियों में नये धीर सबसे चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं। उदाहरण के लिए धिवप्रसाद सिंह कमलेश्वर और मार्कण्डेय धारिक के कथावी-संग्रहों को लिया जा सकता है। किन्तु धर कहानी-निर्माण का समुदाय धीर एक मात्र चरित्र हो गया है।

मारी चरित्रों के बिस्लेषण में भी प्रेमचंद की तुलना में कोई उल्लेखनीय नवीनताओं की उपस्थिति नहीं हुई—हिन्दी के धार्मिक उपन्यासों एवं कहानियों में मारी का रूप भी एक ही प्रकार का रहा है धायक सम्पूर्ण धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य में। हिन्दी की धावक की कथाकृतियों की उपस्थितियों को देखने पर भी यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रेमचंद की कथाकृतियों में ही धावक के विकसित विभिन्न कथा चरित्रों के रखा चरित्र विकसित करने से धीर प्रेमचंद ही पहले कथाकार थे जिनकी कृतियों के द्वारा ही चरित्र विकास की परंपरा प्रारंभ हुई।" किन्तु धावक का मुन 'होरी' ऐसे नायक का नहीं है। सामंती तथा पूर्वोक्त व्यवस्था के ह्रास के साथ ही बड़े नायक का ह्रास हो रहा हो। अतएव धन-धन उपन्यासों में उसे मोचर और उसके विकसित रूप को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रेमचंद की परंपरा का विकास उसे इतो लोक में दिखायी दे सकता है। वहाँ फिर यदि मोचर को बहु नायक के रूप में बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो मोचा जायेगा। यदि उसे नायक का इतना ही मोह है तो उसे कई उपन्यासों के कई मोचरों को मिलाकर एक मूर्ति गढ़नी होगी।" फिर भी 'मोचर' के रचयिता प्रेमचंद ही हिन्दी के वर्तमान धीर चरित्र के निर्देशक हैं। प्रेमचंद उद्य धिवर के समान हैं जिसके दोनों धीर पर्वत के दो भागों के उदार-विकास हैं। हमें पर्वत के दोनों भागों धीर धिवर को दूर से धीर

१२ धालोचना (१४) पृ० ४२

१३ हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा प्रकाशनालय मुम्बई, पृ० १८८

१४ प्रेमचंद: एक विवेचना पृ० ४४

१५. भरत प्रसाद मुम्बई—'परवर धन परवर' की भूमिका से पृ० २३

परिचिष्ट-१

धनीय से, बसबोधन का प्रयास करना है।^{१०} हिन्दी के सबसे उग्र उपन्यास का सेहरा अब भी 'मोक्ष' पर ही है।^{११} प्रेमचंद के परभाव उसी राष्ट्रीय वीराने का, उसी सशक्त सर्वनाशक का दुःख लेखक हिन्दी उपन्यास सब में घायल कोई नहीं था। अब हमारी दृष्टि रेणु की ओर जा सकती है।^{१२}

बस्तुतः प्रेमचंद के बाद व्यक्ति चरित्र प्रधान-उपन्यासों एवं कहानियों की सृष्टि ही हमारे साहित्य में प्रथम महत्त्व रखती है। सुनीता से बसबोधन-मुद्रमोक्षण तक की बिक्रान्त-यात्रा इसी की परिचायक है। बसबोधन के प्रथम चरण के बाद हमने घाटा प्रकट की की कि सीधे प्रेमचंद की परंपरा में नय हस्तांतर हो गि और संभवतः इसका नेतृत्व बिहार करेगा। बस्तुतः ऐसा हमारा भी पर नागार्जुन बसबोधन के बाद पुनः बसबोधन की उँचाई तक भी नहीं पहुँच सके मयबा बसबोधन की सृष्टि के बाद उन्होंने जिस महाकाव्यात्मक नाटक के प्रथम चरण का प्रदर्शन किया था, वह केवल संभावना बनकर रह गया जिसे कुछ दिनों तक हिन्दी के बहुत सारे पाठोपक रहस्य समझते रहे। किन्तु मैला घाँस घोर पत्थी परिकषा के प्रकाशन के बाद हमारा यह रहस्य समाप्त हो जाता है और हम स्वीकार कर लेते हैं कि बसबोधन का विकसित विसृत रूप पत्थी परिकषा है। नागार्जुन, प्रेमचंद की अपेक्षा सेट्ट-बेठन संपत्तीय कर्मचरित्र निर्मित करते हुए भी व्यक्ति तक ही सीमित रह जाते हैं, जिसकी सृष्टि उनके प्रति बाँध उपन्यासों के नामों से भी हो जाती है जैसे बसबोधन रतिनाथ की बाँधी दुःख मोक्षण। केवल दो-एक कृतियों जैसे बाबा बटेसरलाय नई घोष बरण के बेटे घाँस में व्यक्ति की वैयक्तिकता से निकसकर वे व्यापक मूलक की नायक बनाने का प्रयास करते हैं, किन्तु नागार्जुन का मुद्रम उस घोर नहीं है, उन्हें व्यक्ति चरित्र के निर्माण में ही सफलता मिलती रही है। परंतु रेणु का प्रयास प्रारंभ से ही व्यापक मूलक की विविक्षित करने का रहा है। इसीलिए उन्होंने नागार्जुन की तरह केवल टाइट चरित्र का ही निर्माण नहीं किया बरिष्ठ 'कमेकटिब' चरित्र की स्थापना की।^{१३} बहुत दूर तक इस दृष्टि का प्रभाव प्रेमचंद में भी था। विरबबिख्यात उपन्यासकारों में इस दृष्टि को विकसित किया है। इसलिए रेणु विरबबिख्यात उपन्यासकारों में सेट्ट स्थापन के प्रति कारी हैं। मुद्रमोक्षण बरण के बेटे घाँस का मुद्रमकर नागार्जुन विरब उपन्यास कारों की कठार में बड़े होने तक के अधिकारी नहीं हैं किन्तु उन्होंने बसबोधन लिख कर नीर मुद्रम लिखा होता तो विरब उपन्यासकारों की पंक्ति में घाँस जाते। पर

१०. आलोचना (इतिहास विद्योपांक) अक्टूबर १९३२, पृ० ११२
 ११. नलिनबिशीषन नामी

१२. आर्यभट्ट अग्रस्त, १९५१, अग्रमुक्त विद्यालय, पुस्तक समालोचना के अग्रस्त यद्यपि के उपन्यास 'भूतल' के संबंध में व्यक्त विचारों से
 १३. आलोचना—अंधारकीय आचार्य महदुलारे आर्येयी, पृ० ८
 १४. अंधारप्रकार मुक्त के उपन्यास अंगा मैया में इस डेकनिक का सफल प्रयोग हुआ है।

ऐस की बात है कि अपने धीपग्यासिक 'रुचि परिवर्तन'^{१०} के दौरान में नामार्जुन ने अग्यास्य उपग्यासकारों की तुलना में एन-एन-एन निर्बाह बेजान पात्रों की सृष्टि की है। और कहीं-कहीं तथा तथा बचन में इतनी नीरसता या गयी है कि उपग्यास को समाप्त करना कठिन हो जाता है।^{११} यद्यपि उनकी उपयोगी बन सृष्टि मात्र भी व्यापक है और मोर्दा इतिया इहरेन मुग एनेवसी टासस्टाय ऐसे कथाकारों के निकट नामार्जुन पहुँच जाते हैं। किन्तु रैमु धीपग्यासिक मध्यावसाह मानवतावाह उपयोपितावाह एवं मनोरंजकता का निर्बाह करते हुए रोचकपीपट, टासस्टाय^{१२} और हार्डी के निकट पहुँच जाते हैं और कहीं-कहीं उनसे भी महत्त्वपूर्ण रहे जाते हैं।

हमने नामार्जुन के उपग्यास बसचनमा को हिन्दी का महाकाव्य कहा है। किन्तु बसचनमा यदि चरित्र प्रधान महाकाव्य है तो परती परिकथा व्यापक घण्टी का महाकाव्य है जिसे शिवदान सिंह बीहान ऐसे मनोबक इस युग का महाकाव्य मानते हैं 'ताव ही यह' 'यया मैया'^{१३} और 'को' 'मैया'^{१४} की याथा है, जिसकी बनीत को^{१५} मटक और जितन^{१६} बोलता चाहते हैं जोतते हैं—रूपार और बनेर उपजाते हैं।

'कुदरत को घाईना' रिखाते हुए प्रेमचंद ने बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के बराबर समूह को मादान का पात्र और विषय बनाया या उसी प्रकार परती परिकथा में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के व्यापक बन-समूह को पात्र और विषय बनाया गया है। इसलिये हर व्यक्ति, समाज का हर वर्ग राजनीति का हर बल उसमें अपने भावरण और अपनी वर्तमान भूमिका का सही चित्र रेख सकता है।^{१७}

यत मात्र हमें ऐसा मान लेने में संकोच नहीं करना चाहिये कि प्रेमचंद के बाव नामार्जुन, और रैमु द्वारा महत्त्वपूर्ण चरित्रों के निर्माण हुए हैं और रैमु ने चरित्र विकास के नये प्रतिमान स्थापित किए हैं। हालांकि जानटर रामबितास घर्मा^{१८} इस ठव्य को स्वीकार नहीं करते। रैमु की परती परिकथा की तुलना के इतिपट के 'बैस्ट लीड' से करते हैं और उसके चरित्रों को बैस्टलैड के मञ्जुना राबा की तरह पुरस्त्वहीन समझते हैं। साथ ही वे परती परिकथा की जनता को प्रेमचंद की जनता से बिलकुल भिन्न मानते हैं।

प्रागुनिक हासोत्पुख पूर्वोबासी युग के पाठ्याय उपग्यासकारों की

१० यह कवन नामार्जुन का ही है।

११ इस पत्रिक के लेखक को उपग्यासकार अटक ने ऐसा ही कहा था।

१२ श्रुत और धाति के टासस्टाय

१३ अरबप्रसाद पृष्ठ

१४ रैमु

१५ यया मैया का पात्र

१६ परती परिकथा का पात्र

१७ शिवदानसिंह बीहान—प्रामोबना के मान पृ० १४

१८ समालोचक, अगस्त २२, पृ० १

कठियों में हीरो की मृत्यु^{११} हो चुकी है—अर्थात् पारम्पर्य उपन्यासकार मनुष्य को विषय न बनाकर परिस्थितियों और बाह्य या घातकिक घटनाओं को उपन्यास का विषय बनाते हैं। रेणु इस ह्लासोन्मुख परंपरा से धरने को सर्वथा मुक्त हो मूर्खी कर पाये, लेकिन एक अन्तिकारी उपन्यासकार की तरह उन्होंने परिस्थितियों के माध्यम से मनुष्य—विद्यत ताबमनी मसारी भाषि को पुनः कसा के केन्द्र में स्थापित करने की चेष्टा की है।^{१२} इस संबंध में डा० सुपमा बनन का मत है कि वास्तव में उनका प्रतिस्पर्धी होना मुन-वेतना के अनुकूल है। प्राकृतिक गसनशील संस्कृति महाकाव्य के नायक को जन्म नहीं दे सकती जिसमें बृह निरवयव हो अनराजेय साहस हो असीम धारणबाह हो और समाज को बदलने की शक्ति हो। प्राय मानव स्वयं को ऐसी परिस्थिति में जकड़ा हुआ पाता है जो उसे धारम-केन्द्रित तथा धारमरुत बना देती है जिसके कारण उसका सर्वत्र समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या विचित्र पड़ जाता है।^{१३} अरिज के बारे में यही बह दृष्टिकोण है जो कि उपन्यासों से सर्वथा मुक्त हो चुका है जिसे क्रांतिकारी उपन्यासकार को फिर से स्थापित करना होगा। उसे वास्तविकता से डरना नहीं है पूर्व मानव का पित्रज करने से कतराना नहीं है। उसे अब उठी काम को सटाना है जिससे बुर्जुआ वर्ग के उपन्यासकार मुँह मोड़ चुक हैं। यह काम है अमनी कल्पनात्मक शक्ति से प्रतिनिधि मानव की हमारे युग के नायक की, रचना करना और इस प्रकार, असाकि स्तानिन ने कहा था 'मानवार्था का अमियंता' बनकर अपने को सार्थक सिद्ध करना।^{१४}

अपन्यासिक नायको का अविष्य

वाल्टर एसन की तरह फाक्स का स्पष्ट मत था कि उपन्यास को मुख्यतः अरिज के सुबन पर ध्यान देना चाहिए। अतएव उपन्यासकार का केन्द्रीय काम यह है कि मानव को उपन्यास में बह फिर उसके अपने स्थापन पर स्थापित करे, मानव का पूर्व जिन प्रस्तुत कर सामयिक मानव के अ्यक्तित्व की दूर अडस्था को समझे तथा उसे कल्पनात्मक रूप में मूर्त करे। मानव की अेतना का विस्तार हो गया है। पूँजीवादी समाज द्वारा समझे गये अंबनों-आधारों को तोड़कर अमुक्त होने के लिए यह अ्यय है प्राकृतिक समाज की उन तमाम अर्ध-मुक्त सुविधाओं का प्रयोग करने के लिए बह अंबन है जो स्वयं और बायु द्वारा दूर अंबार के विकास ने अिनेमा अेतार के तार और ऐसीविज्ञान के विकास ने, कुत्सित और धारमा को पिरामे वाले अम से मुक्त परों में रखने की अमाबना ने प्रदान की हैं। वे सब चीजें अमी अडकी पहुँच से बाहर हैं। केवल कुछ अिने-अुने लोम पूँजीवादी दुनिया के आसिक प्राकृतिक जीवन के इन अर्ध-मुक्त

११. उपन्यास और लोक-जीवन, राफु फ्रैंस, पृ० ८२

१२. आलोचना के मान, पृ० २२

१३. हिम्पी उपन्यास पृ० २०५

१४. उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० १०

अभिप्रायों का उपयोग कर सकते हैं, और ये लोग उनका उपयोग करते हैं—मानव की धात्मा की और विकसित करने के लिए नहीं, बल्कि उसका पूर्ण विनाश करने के लिए। फिर भी करीब-करीब हर पुरुष और स्त्री में—चाहे वह भारतीय हो या चीनी अंग्रेज हो या फ्रांसीसी—यह चेतना बतमात्र है कि जीवन के सुख की धमी भी गहरा और विस्तृत बनाया जा सकता है। यह चेतना समय की एक नई बुनियाद बनाने के प्रयास का, रूप धारण कर रही है। मानव-भुक्ति का एक नया युग धारण हो रहा है।^{७३} उपर्युक्त माध्यमों का समर्पण करते हुए प्रसिद्ध उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी^{७४} का मत है कि भविष्य में उपर्युक्त पृष्ठभूमि में एक ऐसा उपन्यास लिखा जायगा जिसका चरित्र-नायिका या पात्र-नायिका किसी विशेष देश या विशेष समाज की विशिष्टता से संबंधित न होकर रबीन्द्रनाथ के 'धौरा' की तरह विश्व मानवत्व के प्रतीक होंगे। और इस प्रकार के उपन्यासकार के उपन्यास के लिए उपयुक्त जमीन आज हमारे देश में तैयार है क्योंकि इस प्रकार की विश्व-जमीन अनुभूति अंतःपरायण सांस्कृतिक प्रेरणा केवल इसी देश को प्राप्त है और युग की विपमता और विरोधामाह के सारे प्रतीक भी आज इसी देश में छिपते जल जा रहे हैं बिना रूप से हिन्दी प्रदेश में। संक्षेप में उस महा-उपन्यास का नायक कृष्ण निराधर, कुमा और जबकाई से बहुत दूर, जीवन के धार्मिक काल से निकल आज तक के सहज-स्वस्थ बाह्य और अंतरीय विकास-पथ पर स्थित रहेगा और आज के युग के समस्त इन्होंने और प्रतिइन्होंने से परे, प्रकृति की मूलभूत से सम्बद्ध जीवन के धार्मिक की अनुभूति से दूरी हुई महान धात्मा की बाणी को अपूर्व कला के माध्यम से सही तरह प्रसारित करेगा जिस प्रकार बसंत में बिलनेबासि फूल सारी प्रकृति में सहज रूप, चारों ओर के भाता धरम में परिमल बिखेरते हैं।

७३ उपन्यास और भौक-जीवन पृ० २०

७४ मालोचना (११), पृ० -६

७५ स्व० प्रेमचंद द्वारा श्री इन्द्रनाथ मदान को २६ दिसम्बर १९३४, एवं ७-१२-३३ को लिखे गये पत्र। डा० इन्द्रनाथ मदान की पुस्तक 'प्रेमचंद : एक विवेचना' में संकलित, पृ० १७२ से १७८ के बीच।

परिशिष्ट-२

प्रेमघम्वोस्तर नारी-चरित्र और औपन्यासिक प्रेरणा

हिन्दी के अधिकांश तयारकथित मनोविश्लेषक उपन्यासों में नारी का रूप 'भ्रष्टाचार'-सा है। सभी बगल सब तरफ, सबमें घायल सम्पूर्ण प्रेमचरित्र हिन्दी कथा साहित्य में। यह भ्रष्टाचार बना ही जाती है जिसके सिरे यह स्वयं बोधी है। प्रतीता सुनीता मोहनी साधना सच्चि सुधा पति की है पर जससे कम या अधिक प्रेमी की भी है। एक प्रतिस्पर्धा तो है जो घायल घातक में बसती है। बाहर में ठीक-ठीक दिखायी नहीं पड़ती (यदि दिखाई पड़ती तो समस्या नहीं रहती) वह मर्म है केवल बाहर। सब सब कुछ जानते हैं पर कोई कुछ नहीं जानता—एक व्यापार जुता है। जैन ने अपने उपन्यास विवर्तन में लिखा है— 'गरुड का प्रब स्वभाव है। मोहनी को पहले दिन से उन्होंने स्वीकार किया। कभी पूछताछ नहीं। बाईस बरस की युवती के पास अपना इतिहास भी हो सकता है। सब वर्तमान के पीछे काफी कुछ घटीत भी हो सकता है। बस्कि मरुत का मत है कि होना चाहिये। पर इस सबमें विवाह के कारण पति नाम के व्यक्ति के लिए भी—जलम्ल भीर उत्सुकता हो उसे यह वह धर्मिचार्य नहीं मानते, बस्कि जचित भी नहीं मानते।'

नारी निकाल भी जाती है—जैन ने 'रत्यापत्र' में निकाला— भ्रष्टाचार ने 'सचि' को 'सेखर' में निकाला और डा० देवराज ने 'पत्र की खोज' में। नारी निकाल भी जाती है लेकिन क्यों? मरुतकार्य के साथ कोई कारण भी तो होना ही चाहिये। निरसदेह वह कारण इतना महान् हो कि टामा नहीं जा सके। मनुष्य नहीं टामने से ही टाम देता है, लेकिन यह क्या? किसी पूर्व जपेक्षित प्रेमी का कोई माबुक्ता पुर्न पत्र (साधारण क्षेम प्रेम से भरा) पत्नी को धाता है और पति उसे छोड़ने को तैयार—छोड़ ही देता है। उसकी धर्म्यजना नहीं सुनी नहीं जाती है, स्यात् वह धर्म्यजना करती हुई केवल बस देती है, बनी ही जाती है। लेकिन वह कुछ कहने को ठहरती नहीं जैसे लगता है उसके पास कहने को कुछ हो भी नहीं और वह बनी ही जाती है, वेदया बीसा बीजन बिताने— निर्दम्य कनुपित भीर कठोर बीजन बिताने। अपने प्रिय मित्र के पास जिसे वह मूम बुधी होती है धर्मका एक मित्र के रूप में रहकर वासना कृष्ट करने। इससे अधिक कुछ भी नहीं जबकि उसके लिए—धर्म्य मार्ग भी हो सकता है वह साधना का माय भी हो सकता है वह दूसरे पति को ग्रहणकर इहस्य बीजन बिताने की वस्त्रना भी हो सकती है पर ऐसा कुछ नहीं होता। वह एक जाल से झूटकर दूसरे जाल में बनी जाती है—

मछली की तरह जैसे वह जल के सिधे ही बनी हो। नदी में वह है जब तक है तब तक है। वह जाती है मात्र इसलिए कि भ्रमणकार एवं वादना की सृष्टि कर सके। और फिर वह मनोविचार बनता बनता है जैसे वह मनोविचार बिय हो, जो पले तो ईसता जाये और मनुष्य का शरीर विपाक कर दे। प्रगतिवादी आलोचकों का कथन है 'भाव के साहित्यकार जीवन की प्रेरणा मनोविकारों में खोजते हैं। और मनोविकार बाह्य से अन्तर की ओर ही तो जाता है। पर अन्तर की कोई मति भी होती है उसका क्या कोई सम्यक समाधान बाह्य जीवन या अन्तर में हा पाता है? जीवन व्यवस्था को बदलेगा कैसे? क्यूंकि वह जीवन अपनेमा जो है। फिर अन्तर को कुरेदा क्यों जाय? कथाकार उसे कुरेदकर से तो बनता है पर दुर्भाग्यवश पहुँचता है धंकी गली में—प्रकाश में नहीं। और अन्तर का क्या उदासी से कम सहसा महत्त्व रखता है? पर उदास मनुष्य इतना कैसे रहे वह केवल उदास रहने को तो नहीं आया—उसकी प्राकृतिक प्रक्रिया तो यही बताती है। उदास ही रहता रहे तो वह सूरज क्यों निकले सूरज के लिए सुबह का यह जागरण-गान क्यों हो—कुछ है बकर जो सूरज से भायते प्रकाश है पर ये कुछ ही तो है। उदासी तो सब नहीं चाहते। बंधु-वियोग होने पर भी कुछ ही क्षण भोग उदास रहना चाहते हैं रहते हैं वह उदासी सब दिन की अपनी तो नहीं होती। होनी तो मनुष्य कीयेवा भी क्या? उसमें कष्ट भी होता है व्यायाम भी पर व्यायाम भी तो कुछ ही क्षण किया जा सकता है, सब दिन को नहीं हो वह धारण साहित्य का मापदंड कैसे?

'सधि' भी विकास की जाती है। वह अन्न खेती के पास है, उदास है मायूस है और बोरबहीन। पर वह है, क्योंकि उसे हीमा है। और उदासी भी उसे आ जाती है। लेखक ने उसे ला जाने दिया मानो वह कोई पाप तो नहीं था पर उसे बना दिया क्या लेखक ही ने बनाया क्योंकि उसके मन का 'बोर' बोस उठा—“और न उदासा बोर कह उठे मन में प्रकृतबाब है स्वतन्त्र क्योंकि युग अन्यायी है।” (अन्वेष)

अन्वेष को उसके सामने है वह पाठक के सामने भी अन्वेष हो जाता है।

'पप की खोज' की खोजना निर्वासित भूमती फिरी (सीता हीमा उसका उद्विग्न है) जबकि उसका लेखक स्वयं कहता है, “भाव हमें बदली हुई मनोवृत्तियों और चारित्रिक सम्भावनाओं के संदर्भ में ही नये नैतिक मानक की खोज और प्रतिष्ठा करनी है।” अन्वेष में क्या वह सब कुछ हो सकता है जो होता है जो प्रकृत है जो लेखक की मूल समस्या है, पर जो समाधान खोजने के लिये यहाँ लायी गई है। 'मरेन्द्र 'मदन' और 'बन्धुनाथ' भी तो अपने अन्वकार में मटकते ही रह जाते हैं।

'भ्यतीत' की 'अनीता' ऐसा लगता है कि अर्थात् से बनी हो। (हालांकि लेखक ने इसका निर्बंध नहीं किया) वह उसके बिना भी नहीं सकती इसलिए वह बार-बार अर्थात् को सूची देसना चाहती है, उसे सामने देसना चाहती है, वह उसकी सीमाओं के धार-धार देसना चाहती है, उसके लिये उसके पति मिस्टर 'पुटी' पति है इसलिये है, पर अर्थात् ही सब है दाखल है। वह कुछ है जो अपने आपमें बनन रखता है, 'अनीता' उसके लिये कहती है—“पर बाँधकर बैठते तुम अर्थात् तो मेरा भी पर बैठा रहता। नहीं तो क्यालामुखी पर बैठी कब सब बात जायका कह नहीं सकती।” । मेरा पर

बना रहा तो तुम होये, सबकुद गया तो भी तुम होये।" अर्थात् कितनी बनीम घेर देता है ?

अनीता जानती है—अर्थात् मुझसे प्यार करता है, केवल वासना से नहीं प्यार है कुछ जो वह करता है। स्यात् इसलिए वह कर्त्तव्य के क्षणों में पायी गई 'अग्नी' को भी प्यार नहीं कर पाता ऊपर तो प्यार करने को चाहता है। जब अनीता यह सब जानती है तो मर्यादा ही कदाह उठती है—“मैं ब्याहता हूँ फिर क्या चाहते हो- घाबरी बनो अर्थात् नहीं तो घाबा घर में रा बल गया है, क्या बाकी भी तुम नहीं बचने दोये ?”

धीर धर्म में ब्यथा का कठिन भार बोटा हुआ अर्थात् संन्यासी हो जाता है विरक्त। मनोविकार धीर मनोविरसेपथ का भार अनुप्य को क्या से क्या बना देता है। 'रमापन्न' का 'प्रमोद' भी 'अग्नी' छोड़ देता है विरक्त बन जाता है। मानस उसको ऐसा कहता है धीर वह विरक्त हो ही जाता है।

धीर धर्मवीर भारतीय के 'गुनाहों का देवता' में सुभा का क्या होता है—अग्नि के विमगाव को वह मही सह पाती ब्यथा का भार बोटे-डोटे उसमें अज्ञान के सिधे स्थान नहीं रह गया वा फलतः वह बलती धीर मसती ही रही तनाव बढ़ा धीर धर्म में सुभा अग्नि के सिधे बल बली पर वह विवाहिता थी। विवाह के बाद अग्नि को एक सड़की मित्र ने सिखा, “कंठेचुभेसंस एव पीटी धम धोर रोमाटिक डेव।”

'मृत्यु' का यह कामा आवरण सब पर पड़ता गया अनेक से लेकर भारतीय तक। पर मृत्यु के विरुद्ध किसीने विरोह नहीं किया। सम्भवतः विरोह होता—तो मनोविरसेपथ नहीं रह जाता यह केवल एक व्यक्ति विरक्त रह जाता है। दुःखी का प्रतीक—सब कुछ छोड़कर मात्र एक व्यक्ति को व्यक्ति का गौरव धीर व्यक्तिव प्रसारित करने में भी मात्र समझता है। वह रहता चाहता है कि वह नहीं है, उसके खूने को क्या यह है तो वह होना भी नहीं पसन्द करता।

पर विरक्त क्या मानव होता है ? हो पाया है कभी ? क्याकार की इस घाटा से निराशा टपकती है। क्या जीवन को अरम परिणति में पलायन है ? अर्थात् प्रमोद इसीविधे समष्टि के व्यक्ति नहीं हैं, व्यक्ति को समष्टि भी घायल हों। इसलिए वह पापी का अरिह है अर्थात् का नहीं।

परिशिष्ट-३

हिन्दी के कथाकारों एवं घालोचकों के विचारों को जानने के लिए प्रबोधित प्रश्नों के उत्तर देने का मासिक कथाकारों एवं घालोचकों से किया गया था। हिन्दी के कतिपय कथकों ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट किया है जिसे हम यहाँ सामान्य उद्धृत कर रहे हैं। इन उत्तरों के सिलसिले में हमें हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकारों एवं घालोचकों यथा इनाबन्द बोसी, मधुसूदन धर, रेणु, नानाजुग, समुद्रराय, जयवंतकर, मृग, समुद्रसाम, नायर, भैरवप्रसाद गुप्त, डा० रामभिराज शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, सिद्धान्तसिंह चौहान आदि से चर्चा करने का भी सीमाव्य प्राप्त हुआ।

हिन्दी के कथाकारों के विचारों को जानने के लिए प्रश्नकर्ता द्वारा तैयार की गयी प्रश्नावली—

(१) प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के चरित्र विकास की उपलब्धि के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

(२) आपके कथा चरित्रों की क्या विशेषताएँ हैं ? कृपया अपने प्रिय एवं सम्प्रेक्षणीय कथा-चरित्रों का नामोस्तेख भी करें।

(३) कृपया हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्रों का नामोस्तेख करें।

(४) छायावाद, प्रगतिवाद आदि का प्रभाव क्या हिन्दी कथा-चरित्रों पर भी पड़ा है ?

(५) आपके कथा चरित्र और कथा चरित्रों में क्या सम्बन्ध है ?

(६) धन्याय—

(क) आपके कथा-चरित्र क्या किसी सिद्धान्त के बाहुक हैं ?

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त का पत्र

इलाहाबाद।

३० जूलाई, १९५८

प्रिय बन्धु,

आपका पत्र मिला, प्रसन्नता हुई।

प्रश्नावली के उत्तर संक्षेप में भेजता हूँ।

१—(घ) प्रेमचन्द के बाद समाजवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र का प्रभाव हिन्दी कथा-साहित्य पर गहरा हुआ है। प्रेमचन्द आदर्शवादी यथार्थवादी थे। प्रेमचन्दोत्तर

साहित्य में पात्र अधिक जटिल और स्वाभाविक हैं। यद्यपि प्रकृष्ट धारिक उपन्यासों में हम ऐसा देख सकते हैं। रेणु, समृतसास नागर (बूढ़ और समुद्र), हृष्य बलदेव बर (मेरा बचपन) आदि की कला में अधिक यथार्थ-परक दृष्टि हम देखते हैं।

(ब) मध्यवर्ग के पात्रों का विकास हुआ है। इसकी शुरुआत जनेश्वर मयवती बरम बर्मा आदि ने की थी और उस प्रवृत्ति का निरन्तर विकास होता रहा है।

(स) इमाचन्द्र बोधी (प्रेम और छाया) और अज्ञेय के पात्र मानसिक प्रसिद्धों और विद्वतियों के चिह्न हैं। इनपर फायर और परिश्रम के हाशेगुण साहित्य का प्रभाव पड़ा है। अपने नए उपन्यासों में (मुक्ति-यत्र सुवह के मूले अहम का पंजी) इमाचन्द्र बोधी अधिक स्वल्प पात्रों की ओर मुड़े हैं।

(द) विद्वान् विद्वान् में हिन्दी के कथाकार फिर से गीत जीवन और किसान पात्रों की ओर मुड़े हैं। इनमें नागार्जुन और रेणु प्रमुख हैं।

(२) प्रथम का पहला अंश आलोचकों के लिए नहीं है।

प्रिय चरित्रों में होरी गोबर, कटो (परख) दिव्या अमिता बलचनमा, डाक्टर (मैला धाँसल) आदि कुछ नाम गिना सकता हूँ। अप्रिय चिन्तु उल्लेखनीय पात्रों में अज्ञेय के वैद्य और मुकेश हैं।

(३) हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्रों के नामों का ऊपर उल्लेख है। इनके परिचित सुनीता गुप्ता (स्वामयम) लम्बा (बेसहोही) शैतन (गिरती बीबारे) आदि हिन्दी कथा-साहित्य के प्रमुख पात्र हैं। पहले और दूसरे प्रकरणों के अंतर मिलाकर प्रतिनिधि सूची बनाई जा सकती है।

(४) मैरी सम्मति में छायावाद का प्रभाव चरित्रों की अज्ञेय वातावरण के निर्माण पर अधिक पड़ा है। अतीतिक औन्वर्म-बोध, रोमांसवाद इस प्रभाव के विशेष गुण हैं। छायावाद का प्रभाव कविता पर भी विशेष रूप से पड़ा है।

प्रतिवाद का प्रभाव कथा-साहित्य पर गहरा पड़ा है। सोशलिस्ट रिफॉर्मिज्म की ओर हिन्दी उपन्यास उन्मुख हुआ है। यद्यपि राहुम अरक रणिय राघव नागार्जुन, रेणु, समृतसाल नागर की कला में चरित्र यथार्थ और स्वाभाविक हैं चाप ही आधुनिक शैली की सीख है। प्रेमचन्द की तुलना में पात्र आरस नहीं हैं आरसोंमुक्त हैं।

(५) प्रथम कथाकारों के लिए है।

भाषा है इन बिखरे बिचारों से मेरा मत कुछ स्पष्ट होया। मिसले पर और अधिक स्पष्टीकरण कर सकूँगा। पत्र द्वारा कुछ और सम्भव नहीं है।

सन्नेह,

भाषका—

प्रकाशचन्द्र द्रव्य

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त का पत्र

१८१ ममकई मब,

इसाहाबाद

१२-४ १८

प्रिय भाई,

आपकी इच्छा के अनुसार प्रथम सं० १ का उत्तर लिख रहा हूँ

मैंने 'विद्यालय' के खरिब पर सब ध्यान केन्द्रित किया है। वास्तव में इस उपन्यास को एक व्यक्ति का खरिब' कह सकते हैं। उपन्यास में जो कुछ भी कहा सिलप है, वह खरिब के किन्ना से ही समग्र है। इस सम्बन्ध में संघेजी के एक प्रसिद्ध कलाकार नॉस्सबर्डी को मुझे याद प्राती है। उन्होंने कहा था

"ए ह्युमन बीप इव बी बेस्ट प्लॉट बैबर इव।"

आपकी मुविबा के लिए पूरा जठरण है रहा हूँ

"प्लॉट इव डेट स्योर, इडिफिस्ड ग्लिब राइजेब आउट ऑफ बी इटरने प्रॉफ सरकमसटांस ऑन कैरेक्टर एव प्रॉफ कैरेक्टर ऑन सरकमसटांस।

विबिल ए इनडोबिम सरकमफरेस प्रॉफ ऐन प्राइडिया।

"ए बीड प्लॉट ऑन ए अदरहेण्ड इव सिमप्ली ए रो प्राउ स्टेन्स बिब ए कैरेक्टर इमपेहड प्राग ईब"

(सय पेटिष्पूइस कॉम्सिनिय ड्रामा)

आपका —

प्रकाशचन्द्र गुप्त

डॉ० देवराज का पत्र

बाबघाह नगर, लखनऊ

२४ १९ ३८

प्रियबन्धु,

आपका २० १२ ३८ का पत्र मुझे कुछ पूर्व 'युग चेतना' कार्यालय में मिला था। अत्यन्तसाधक तुरन्त उत्तर न दे सका। उत्तर पत्रों से इस प्रकार है—

(१) प्रेमचन्द्र के बाव इस युग की जगज्जनों में पड़े संघैत विचारपील मध्य वर्गीय पार्श्वों का विचरन महत्त्वपूर्ण है। यह सैटेसड मूस्वों के विचरन का मुब है। अत्यन्त प्रादि विचारकों का प्रभाव भी पड़ा है—उसने विचरन की चेतना और उसे प्रकट करणे का साहस किया है।

उपलब्धि पत्रुटी है—कारण,

(१) लेखकों का अश्रित अनुभव (सामाजिक परिस्थितियों के कारण),

(२) सङ्घिवादी वातावरण में धारम-मकाधन का मब।

(२) मेरे खरिबों में साधना चन्द्रनाथ ('पप की खोज' में), कुछ हर एक

बौद्ध (भाग २ में) बाहर नीतर का बस्ता मायक—इत्थेय्य है।

(३) हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्र—मुझे कम ही उपन्यासकार पसन्द हैं। प्रसेय के दोस्त, सचि (भुवन रेखा कमबोर हैं—अपूर्ण) आइबेकिटव उपन्यासों में होरी आदि, फकीरबरोमाथ 'रेबु' ने चरित्र सृष्टि कम की है, सामूहिक-चित्रण प्रधान है।

(४) आयर नहीं—महत्त्वपूर्ण उपन्यासों के पात्रों पर नहीं।

(२) ।

(९) नहीं

देवराज

प्रेमचन्द के पत्र^१

"मैंने अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है। उसमें मानवीय भाव भाएँ और गुण भी हैं। लेकिन है वह आदर्श ही। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानघरकर है 'रंगभूमि' में सुरदास है। उसी प्रकार 'कायाकल्प' में अक्षर है 'कर्मभूमि' में अमरकांत है।

"मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्वाग पर त्याग सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो सेवा सर्वत्र बिना असन्तोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता ही-अर की पत्नी की भाँति ऐसी हो जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।

"मानव चरित्र में जो कुछ भी सुन्दर है और मानवोचित तत्व है उसी के उद्घाटन की दृष्टि से मैं अपनी कथावस्तु का निर्माण करता हूँ। यह कार्य अत्यन्त रहस्यमय है क्योंकि कभी इसकी प्रेरणा मुझे किसी व्यक्ति से मिलती है कभी किसी बट्ना से और कभी किसी स्वप्न से। लेकिन मैं अपनी कहानी का आधार मनोविज्ञान ही रखता हूँ। मिथों के सुम्भनों से ज्ञान उठाने के लिए मैं सदा तैयार रहता हूँ।

"यद्यपि मैं कर्तव्य का भी पर्याप्त पेट होता हूँ तथापि मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गए हैं। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता तब वह छायापात्र अतिरिक्त और अधिस्वसनीय हो उठता है।"

श्री अमृतराय जी का पत्र

इस प्रकाशन

१३, बीरो रोड एलाहाबाद

२३-११ २८

प्रिय बन्धु

आपका कृपा पत्र और प्रस्तावनी मिली।

प्रस्तावनी इतनी टेढ़ी है कि इस परीक्षा में कुछ जाना ही अधिक मुविधा-

१ डा इन्द्रनाथ अरान को २९ दिसम्बर, १९३४ एवं १९३५ को लिखे गये पत्र।

डा० इन्द्रनाथ अरान को पुस्तक 'अमरकांत एक विशेषता' में संकलित पृ०

१०२ के ११० के बीच।

बनक मामूम होता है। इन प्रश्नों का सम्बन्ध उत्तर दे सकूँ, इतना अवकाश भी दुर्भाग्यवश इस समय हाथ में नहीं है।

कभी इतर भाग हो तो बातचीत में सम्भव है कुछ निकल सके, अन्यथा धाप भी समझते हैं, वही ठीक है।

बिनीत,
अमृतदास

उपलब्धि-स्थान

(अर्थात् जहाँ से लेखक ने पुस्तकें प्राप्त कीं)

- (१) लेखक का निजी संग्रह
- (२) मारवाड़ी महाविद्यालय मायसपुर
- (३) मुरारका महाविद्यालय मुलतानसंग मायसपुर
- (४) तेजनारायण बर्मनी महाविद्यालय मायसपुर
- (५) स्नातकोत्तर विभाग पुस्तकालय, भागसपुर विश्वविद्यालय मायसपुर
- (६) सिन्हा लाइब्रेरी, पटना
- (७) पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय पटना
- (८) राज्य सूचना केन्द्र पटना
- (९) काशी नाथरी प्रचारिणी सभा काशी
- (१०) दिल्ली साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
- (११) इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय प्रयाग
- (१२) बखरठ विश्वविद्यालय पुस्तकालय ससनऊ
- (१३) मदनमाल पुस्तकालय मायसपुर
- (१४) भागसपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, भागसपुर

परिशिष्ट-४

आकर साहित्य-सूची

हिन्दी एवं संस्कृत ग्रन्थों की सूची

- अभ्यास और लोक जीवन —रैलक ऑक्स। अनुवादक नरौतम नायर, भूमिका ले० डा० रामबिलास शर्मा। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस गई विस्ती। प्रथम संस्करण, १९३७।
- अमिताभ नाट्यशास्त्र —डीठापम जतुबेदी। अखिल भारतीय विष्णु परिषद् काशी। प्रथम संस्करण, संवत् २००८ वि०।
- प्रेमचन्द जीवन और हृदय —इंसपम 'रहबर'। आत्मापम एण्ड संस विस्ती। १९३१।
- साहित्य का श्रेय और प्रेम —बैनेन्द्र कुमार। पूर्वोदय प्रकाशन विस्ती। प्रथम संस्करण १९३३।
- बाह्य भय-विमर्श —विस्वनाथ मिश्र। हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस। तृतीय संस्करण सं० २००७।
- शिवपूजन रचनावली —शिवपूजन सहाय। बिहार पब्लिशिंग हाउस पटना।
- निराशा —डा० रामबिलास शर्मा। बल प्रकाशन ग्रह बनारस ४।
- साहित्यालोचन —श्यामसुन्दर शर्मा। प्रकाशक इन्दियन प्रेस मिमिटेड प्रयाग। प्रकाशन वर्ष २००६, नहीं साप्ति।
- प्रागुक्त हिन्दी साहित्य का इतिहास —कृष्णचंद्र मुखर्जी। प्रकाशक हिन्दी साहित्य-कुटीर बनारस।
- हिन्दी-साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र मुखर्जी। प्रकाशक रामपी प्रचारिणी समा काशी। संवत् २००७ वि०।
- साहित्य की ध्वनी —डा० शरदेंद्र। प्रकाशक साहित्य रत्न संघ, मायरा। जतुबेदी संस्करण।

- साहित्य संहिता —सं० प्रोफेसर विजयबुवन सहाय । प्रकाशक पुस्तक मंडार लहेरिया सराय धीर पटना ।
- बद्वैत्र के विचार —सं० प्रभाकर माचरे । हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई । प्रकाशन वर्ष दिसम्बर, १९३७ ।
- प्रस्तुत प्रश्न —अनेन्द्रकुमार । प्रकाशक हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई । प्रकाशन वर्ष जनवरी १९३६ ।
- प्रसार की कला —गुसावरदास महेश्वर । प्रकाशक साहित्य रत्न धण्डार, धायरा प्रकाशन वर्ष अप्रैल १९३८ ।
- प्रसन्न उसकी कहानी-कला —डा० सत्येन्द्र । प्रकाशक साहित्य रत्न मंडार, धामरा । प्रथम संस्करण ।
- प्रसार की कहानियाँ —केदारनाथ शुक्ल । प्रकाशक सरस्वती मंदिर, बतनवर, बनारस । प्रथम संस्करण १९३० ई० ।
- हिन्दी साहित्य की भूमिका —हजायीप्रसाद द्विवेदी । प्रकाशक नाबूराम प्रेमी हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई । संस्करण चौथी बार दिसम्बर १९३० ।
- हिन्दी कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियाँ —श्री निरिवाहस शुक्ल पिरौछ बी० ए० । प्रकाशक प्रमोद पुस्तक माता कटरा प्रयाग । प्रथम संस्करण मार्च १९३२ ।
- त्रिघंजु —प्रद्येय । प्रकाशक सरस्वती प्रेस बनारस । प्रकाशन वर्ष १९४३ ।
- प्रत्याहार पुप —डा० रामुनाथ सिंह । प्रकाशक : सरस्वती मंदिर बतनवर, बनारस । प्रथम संस्करण १९२२ ।
- साहित्य का शास्त्री —हजायीप्रसाद द्विवेदी । प्रकाशक राष्ट्र माया प्रचार समिति, बर्ना । प्रकाशन वर्ष १९४६, प्रथम संस्करण ।
- चौदावीं बंधन की बातें —बस्नमाचार्य ।
- दो ही बंधन बंधन की बातें —बस्नमाचार्य । रमहर पुस्तकालय इकोर । प्रकाशन वर्ष संवत् १९२० फाल्गुन ।
- काव्य-कला तथा प्राग्य निबन्ध —जयशंकर प्रसाद । प्रकाशक भारती भण्डार, इलाहाबाद ।
- साहित्य-मीमांसा —श्री युत पूर्णचन्द्र बसु-कृत । साहित्य चिन्ता नामक बंगला ग्रंथ का अनुवाद, अनुवाद कर्ता पं० रामदत्त मिश्र । प्रकाशक

- हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।
प्रथम संस्करण, जून १९२१ ।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास — प्रथम भाग—द्वितीय भाग । लेखक सैठ कर्णवीरदास पौदार । रामबिलास पौदार स्मारक ग्रन्थ माला युगुष्ठ विस्मियन बचपेट, बम्बई । प्रथम संस्करण १९१८ ।
- प्रेमचन्द की उपन्यास-कला — जनार्दन म्त्र 'द्विज' । प्रकाशक बाबी मन्थिर छपरा । प्रथम संस्करण दिसम्बर १९११ ई० ।
- साहित्य — श्रीगुरु श्रीश्याम ठापुर । अनुवादक पं० बंसीधर विद्यालंकार । प्रकाशक हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई । प्रथम संस्करण दिसम्बर १९२९ ई० ।
- कथक रहस्य — डा० स्वामिमुन्दर बाघ पीताम्बररत्न बहुष्पास । प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग । प्रथम संस्करण १९८८ ।
- दुष्टिखोज — प्रथम भाग नमिन विमोचन शर्मा । पुस्तक भण्डार, पटना सहोरिया छपरा । प्रथम संस्करण १९४० ।
- धार्मिक हिन्दी साहित्य — सं० स० ही० वात्स्यायन । प्रकाशक अमिनब भारती ग्रंथमाला, कन्नकता । प्रथमबार दिसम्बर, १९४० ।
- रीति काव्य की भूमिका — डा० नवेन्द्र । प्रकाशक रीतिम बुक डिपो, नई दिल्ली । प्रथम संस्करण १९४९ ।
- हिन्दी काव्य में प्रवृत्तिवाद — विष्णुमसंकर मस्त । प्रकाशक सरस्वती मन्दिट, बलनगर, बनारस । दूसरा संस्करण, अक्टूबर, १९३० ।
- बोधोक्ति और अमिष्यबला — एषमिता रामनरैस शर्मा । प्रकाशक ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस । प्रथम संस्करण संवत् २००८ वि० ।
- अपराधक प्रसार — आचार्य नन्दबुधारे बाबपेयी । भारतीय मंडार, प्रयाग । तृतीय संस्करण सं० २००७ वि० ।
- बुधबलनाम शर्मा की उपन्यास-कला — प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० । सरस्वती पुस्तक सदन मोठी कटरा प्राणरा ।
- कहानी-कला और उसका विकास — कविनाथ त्रिपाठी । साहित्य सदन देहरादून । प्रथम संस्करण अग्रेष्ठ १९३१ ।

- कड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ — बिरबम्मर मानक, एम० ए० । प्रकाशक हिन्दी भवन कानपुर । अनुप संस्करण १९५० ई० ।
- शोभा — उमसेरबहादुर सिंह । सरस्वती प्रेस बनारस । प्रकाशन वर्ष १९४८ ।
- आलोचना के सिद्धांत — कृष्णानन्द पन्थ, यज्ञदत्त धर्मा । राजपाल एण्ड सन्त दिस्ती । प्रथम संस्करण १९३१ ।
- साहित्य भीमार्ता — डा० सूर्यकांत । हिन्दी भवन आसम्बर धौर हसाहाबाद । पांचवीं संस्करण ।
- भीर-धीर — गंगाप्रसाद पांडेय । नवसिद्धिधोर प्रेस लखनऊ । पहली बार, १९३९ ।
- मैं इससे मिलता — पद्मसिंह 'कमलेश' । आरमाराम एण्ड सन्त दिस्ती ।
- विचार धोर विवेचन — डा० नयेन्द्र । गौतम बुक डीपो दिस्ती । द्वितीय बार, १९५३ ई० ।
- साहित्य-विमर्शा — डा० देवराज । गौतम बुक डीपो दिस्ती । प्रथम संस्करण १९५० ।
- काव्य-विमर्शा — डा० नयेन्द्र । नवभारती प्रकाशन मेरठ । द्वितीय बार, १९५१ ।
- प्रेमकाव्य साहित्यिक विवेचन — नरदुलारे बाबडेयी । हिन्दी भवन आसम्बर धौर हसाहाबाद । प्रथम संस्करण १९५२ ।
- दिलीमुखी — धिलीमुख । गौतम बुक डीपो दिस्ती । प्रथम संस्करण, १९५१ ।
- यूरोपीय उपन्यास साहित्य — विनोद शर्कर ब्यास । प्रकाशक साहित्य सेवाक कार्यालय काशी ।
- हिन्दी कहानी धोर कहानीकार — प्रो० बासुदेव एम० ए० । प्रकाशक बापी विहार, बनारस । प्रथमावृत्ति, सितम्बर, १९३१ ।
- कहानी धौर कहानीकार — मोहनलाल बिजामु । आरमाराम एण्ड सन्त दिस्ती । प्रथम संस्करण १९५२ ।
- कहानी-कला — विनोदशंकर ब्यास । हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस । अनुप संस्करण, वर्ष २०१० ।
- प्रकाश धौर जनका साहित्य — उपयुक्त । प्रकाशक उपयुक्त । तृतीय संस्करण, २००६ वि० ।
- साहित्य दर्शन — प्रथम भाग—सचीरानी प्रुट्ट । गौतम बुक

- विपों दिल्ली । प्रथम संस्करण सन् १९३०
—धाम्निप्रिय द्विवेदी । ज्ञानमंडल सिमिटेड,
काशी । विक्रम सम्बत् २००५ ।
- सामयिकी
—डा० रामकुमार वर्मा । हिन्दी भवन बार्सबर
और इसाहाबाद । १९३३, प्रथम संस्करण ।
- साहित्य-समालोचना
—डा० नरेन्द्र । पीठम बुक डिपो दिल्ली ।
प्रथम संस्करण, १९३० ।
- सियारामशरण गुप्त
—डा० इन्द्रनाथ मदान । राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली ।
- प्रेमचन्द एक विवेचना
—डा० इन्द्रनाथ मदान । हिन्दी-भवन बार्सबर
और इसाहाबाद । तीसरा संस्करण, नवम्बर
१९४९ ।
- हिन्दी-कलाकार
—कृष्णचन्द्र । राजपाल एण्ड सम्स, कस्मीरी
गेट, दिल्ली । प्रथम संस्करण ।
- कवि
—डा० नरेन्द्र । पीठम बुक डिपो दिल्ली ।
दूसरा संस्करण ।
- विचार और अनुभूति
—प्रेमचन्द । सरस्वती प्रेस बनारस । चतुर्थ
संस्करण १९४९ ।
- कुछ विचार
—गंगाप्रसाद पांडेय । प्रमोद पुस्तकमाला
इसाहाबाद । प्रथम बार, २००१ ।
- धार्मुनिक कथा-साहित्य
—भाचार्य डा० हजायीप्रसाद द्विवेदी । बिहार
राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना । प्रथम संस्करण
सन् १९३२ ।
- हिन्दी साहित्य का आदिकाल
—डा० सक्तीसागर चार्प्सेव । मासवीय
पुस्तक भवन, लखनऊ ।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास
—इन्द्रनाथ मदान । हिन्दी भवन बार्सबर और
इसाहाबाद । प्रथम संस्करण मार्च १९३४ ।
- शरदचन्द्र चित्तन व कला
—सोमचन्द्र 'सुमन' । आत्माराम एण्ड सम्स,
दिल्ली ।
- जीवन-स्मृतिर्षा
—धर्मठपाय । हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस,
बनारस । प्रथम संस्करण १९३० ।
- नवी सनीला
—मन्वबुसारे वाजपेयी । इण्डियन बुक डिपो
लखनऊ ।
- हिन्दी साहित्य । बीसवीं शताब्दी
—बर्मन्त्रकुमार द्विवेदी प्रन्वमाला कार्यालय
बांकीपुर, पटना । प्रथम संस्करण, २००३ ।

- मेरी कहानी — जवाहरसाह नेहरू । सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली । आठवाँ संस्करण १९३२ ।
- ग्रामरूपा — डा० राजेन्द्रप्रसाद । साहित्य संसार पटना ।
प्रथम संस्करण १९४७ ।
- रैवातद — (पृथ्वीराज रावो) सं० विपिन बिहारी
त्रिवेदी । हिन्दी विभाग लखनऊ विश्व
विद्यालय । सन् १९३३ ई० ।
- अर्थ नाटोत्तर — रामचारीसिंह 'दिनकर' । जनवाणी प्रकाशन
कसकछा-७ । प्रथम संस्करण १९३२ ई० ।
- नया साहित्य नये प्रबन्ध — नरबदुसारे बाजपेयी । विद्या मन्दिर, ब्रह्मनाला,
बनारस १ ।
- बैदिक कहानियाँ — बलदेव ज्ञान्याय । धारवा मन्दिर, काशी ।
द्वितीय संस्करण १९४६ ।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास — उपर्युक्त । अतुर्भ संस्करण १९३६ ।
- नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका — प्रकाशचन्द्र गुप्त । सरस्वती प्रेस बनारस ।
अतुर्भ संस्करण दिवम्बर १९३३ ।
- प्राचिनिक हिन्दी साहित्य का विकास — डा० भी कृष्णदास । हिन्दी परिषद्, विश्व
विद्यालय प्रयाग । तृतीय संस्करण १९३२ ।
- प्राचिनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि — प्रकाशचन्द्र गुप्त । धासोक प्रकाशन,
बीकानेर । प्रथम बार १९३२ ।
- सन्तुलन — प्रभाकर माधवे । आत्माराम एण्ड सह
दिल्ली । प्रथम संस्करण १९३४ ।
- भारतेन्दु युग — डा० रामबिनास शर्मा एम० ए० । विनोद
पुस्तक मन्दिर प्रागर ।
- हिन्दी उपन्यास — विवनाशयम भीवास्तव । प्रकाशक
सरस्वती मन्दिर, बनारस । तृतीय संस्करण,
सं० २००७ वि० ।
- साहित्य-विवेचन — सोमचन्द्र 'मुमन' योषेन्द्रकुमार मस्तिष्क ।
आत्माराम एण्ड सम्भ दिल्ली । १९३२ ।
- साहित्य-सायना भी पृष्ठभूमि — बुडिनाथ झा 'कैरव' । ज्ञानपीठ लिमिटेड
पटना-४ । प्रथम संस्करण सन् १९३३ ।
- हिन्दी गद्य साहित्य — दिवदानसिंह चौहान, विजय चौहान ।
राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।
- संस्कृति और साहित्य — डा० रामबिनास शर्मा । विद्या मण्डल
हमाहाबाद । प्रथम संस्करण, १९४६ ।

- प्रगतिवाद की कल्पना — मगधनाथ कुण्ड । आर्याराम एन्ड सन्स
दिल्ली ६ । १९२२ ।
- प्रगतिशील साहित्य के मानक — राधेय रायव । सरस्वती पुस्तक घरन,
बानरा ।
- प्रगतिवाद की कल्पना — विद्यवाचस्पति शर्मा । किताब महल इलाहाबाद ।
१९२२ ।
- कम्प्यूटिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र — कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स । पीपुल्स
पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड नई दिल्ली १ ।
- हिन्दी साहित्य में विविध बाह — डा० प्रेमनारायण मुक्त । पद्मना
प्रकाशन कानपुर । प्रथम संस्करण
२०१० वि० ।
- हिन्दी कथाकारों की प्रिय विधि का विकास — डा० सक्तीनारायण शर्मा । साहित्य भवन
लिमिटेड इलाहाबाद । प्रथम संस्करण
१९२३ ई० ।
- हिन्दी उपन्यास — बजरत्नदास । हिन्दी साहित्य कुटीर,
बनारस । प्रथम संस्करण, संवत् २०११ ।
- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद — त्रिभुवनसिंह । प्रचारक पुस्तकालय,
बनारस । प्रथम संस्करण, २०१२ वि० ।
- समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द — डा० महेश्वर घटनामर । हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बाराणसी । प्रथम संस्करण
१९३७ ।
- धार्मिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान — डा० देवराज उपन्यास । साहित्य भवन
लिमिटेड, इलाहाबाद । प्रथम संस्करण
१९३६ ई० ।
- संघतंत्रम् — विष्णु शर्मा । डेवरत्न की इन्कवाउण्ड, श्री
बंकरेश्वर स्टीम प्रेस बनारस ।
- धरतू का काव्यशास्त्र — मनु० डा० नरेश्वर । भारतीय मंडार, लीडर
प्रेस, इलाहाबाद । प्रथम संस्करण, सं०
२०१४ ।
- हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास — डा० रामनाथ सिंह । हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय बनारस । प्रथमावृत्ति १९२६ ।
- निवेचना — इलाचन्द जोशी । हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग । द्वितीय संस्करण, २००३ ।
- विश्लेषण — इलाचन्द जोशी । धारवा प्रकाशन,
भायलपुर । प्रथम संस्करण १९३७ ।

- बंनेश्वर और उनके उपन्यास —रघुनाथ सरन मजझानी। नेचनल पब्लिशिंग हाउस नई सड़क, दिल्ली।
- बामनदृ की आत्मकथा —हुजारीप्रसाद द्विवेदी। हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। दूसरी बार १९३४।
- उपन्यास-कला —विश्वेश्वरकर व्यास। हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस। तृतीय संस्करण १९३० ई०।
- हिन्दी के उपन्यासकार —यज्ञवल्क्य शर्मा। भारती भवन दिल्ली। प्रथम बार १९३१।
- हिन्दी कहानियों का विशेषनात्मक अध्ययन —डा० ब्रह्मचर शर्मा। प्रकाशक सरस्वती पुस्तक सदन मोठी कटछ भागछ। प्रथम संस्करण मई, १९३८।
- प्राथमिक हिन्दी साहित्य (१८३०-१९०० ई०) —डा० सखीसागर बापूयें। हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनीवर्सिटी। १९४।
- ऐतिहासिक उपन्यासकार बुम्बाबनमाल शर्मा —रामचरण मिश्र एम० ए०। प्रकाशक अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल नया टोला, पटना ४। १९३३।
- मध्यम और हिन्दी कथा-साहित्य —सुरेशचन्द्र तिवारी। सरस्वती प्रेस बनारस ४। प्रथम संस्करण १९३६।
- ऐतिहासिक उपन्यासकार बुम्बाबनमाल शर्मा —डा० गोपीनाथ तिवारी। सरस्वती पुस्तक सदन मोठी कटछ, भागछ। संवत् २०१३
- उपन्यास के मूल तत्व —जयनारायण एम० ए०। प्रकाशक अजन्ता प्रेस पटना। संवत् २०१० वि०।
- पौराण-समीक्षा —एलसिंह साखिल्य एम० ए०। सरस्वती पुस्तक सदन भागछ। प्रथम संस्करण २०१४।
- घोस निरूपण —जयवीर पांडेय पब्लिश भारतीय हिन्दी घोष मंडल पटना। प्रथम संस्करण बुलाई, १९३८।
- हिन्दी उपन्यास में धर्म-भावना (प्रथमचन्द्र युग) —प्रतापनारायण टंडन। मदनमोहन मालवीय विद्यालय प्रथम संस्करण १९३६।
- कहानी का रचना-विधान —डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस। प्रथम संस्करण ई० १९३६।
- हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार —पं० नतिनबिबोचन शर्मा तिवचन्द्र शर्मा। पब्लिश भारतीय घोष मंडल पटना।
- डा० गोपीनाथ तिवारी। साहित्य रत्न

भाषात्मिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास

हिन्दी के मुपासककारी उपन्यास

—मंदा, धायरा । प्रथम संस्करण १९३८ ।
—उ० पु० कपूर । साहित्य रत्न मन्थार
धायरा ।

हिन्दी के सामाजिक उपन्यास

—छायाचक्र पाठक । मध्य भारत हिन्दी
साहित्य-समिति, इन्दौर । प्रथम संस्करण
सन् १९६९ ।

परोक्षा गुरु

—धीमिबास बास । ज्ञान प्रकाशन
८१ बाबड़ी बाजार, दिल्ली ६ ।
नवीन संस्करण, १९५६ ।
—डा० बीरेन्द्र वर्मा प्राधि । ज्ञान मंडल लि०,
बापलसी ।

हिन्दी साहित्य कोश

—प्रकाशचन्द्र गुप्त । हिन्दी प्रभातक पुस्तकालय
बनारस । प्रथम संस्करण १९३९ ।

साहित्य-बाप

राधिकारमण सिंह व्यक्ति और कला
बन्धुविज्ञान कोष

—दरद । सहज प्रकाशन, इलाहाबाद ।
—बन्धुत्वकल्प गुप्त एम० एल० सी० ।
किताब महल इलाहाबाद । १९३९ ।

साहित्य-शास्त्र का पारिभाषिक शब्द
कोश

—उषेन्द्र द्विवेदी । धार्यारा एण्ड सन्स,
दिल्ली-६ । १९३३ ।
—सैमकुमारी । हिन्दोस्तानी एकेडमी
इलाहाबाद । १९३१ ।

हिन्दी काव्य में नारी मानवता

—हारकाप्रसाद एम० ए० । नीलाम प्रकाशन
इलाहाबाद । सन् १९३३ ।

मानव मनोविज्ञान

—उमेश्वर वर्मा । मानव भारती प्रकाशन,
दिल्ली । १९३३ ।

राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील
साहित्य

—मालवीचम मुकुल । नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स,
बनारस । द्वितीय बार, १९४८ ई० ।

चरम मनोविज्ञान

—जयगुंछ । द्वितीयावृत्ति १९४८ ।

बाल मनोविकास

—उपगुंछ, काशी लालजी प्रचारिणी सभा ।
द्वितीय संस्करण सं० २००३ वि० ।

बाल मनोविज्ञान

—बन्धुमीसि मुकुल । मंदा पुस्तक माला
कार्यालय, लखनऊ । प्रथमावृत्ति सं०
१९५१ वि० ।

मनोविज्ञान

—श्री० राजाराम धार्यारी । धर्मिनब भारती
ग्रंथ माला कलकत्ता । प्रथम बार १९४० ।

मन के नेत्र

—राजाराम धार्यारी । काशी विद्यापीठ,
बनारस । प्रथम संस्करण, सं० २००४ ।

रचन दर्शन

- काम, प्रेम और परिवार — जैनेन्द्रकुमार । पूर्वोदय प्रकाशन ७ दरिया पंख बिस्ती । प्रथम संस्करण १९३३ ।
- शिक्षा मनोबिज्ञान — हुंहराज भाटिया । काममंडस काशी । दूसरा संस्करण आषाढ सं० २००३ ।
- प्राकृतिक मनोबिज्ञान — शासजीराम शुक्ल । साहित्य सेवक कार्यालय काशी । प्रथम संस्करण सं० २००३ ।
- बाल मनोबिज्ञान — पुस्तक भंडार, पटना ४ ।
- मनोबिज्ञान और जीवन — शासजीराम शुक्ल । साहित्य सेवक कार्यालय, काशी । प्रथम संस्करण १९३१ ।
- काव्य : मनोबिज्ञान — धनु० श्री जैनेन्द्रकुमार । राजपास एण्ड सन्स बिस्ती १९३८ ।
- मनोबिज्ञान और मानसिक क्रियाएं — डा० पद्मा श्यामास, एम० ए०, पी-एच० डी० । मनोबिज्ञान प्रकाशन बनारस । द्वितीय संस्करण १९३३ ।
- सरल मनोबिज्ञान — रामप्रसाद पांडेय एम० ए० । प्रकाशिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, मुजफ्फरपुर । १९३४ ।
- संघर्ष — डॉ० कपिलदेव नाथगणसिंह कपिल । ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना-४ । १९११ ।
- धार्मिक शास्त्रम् — रामाकृष्ण मिश्र । कल्याण मुंबई । सम्बत् १९७१ ।
- बुद्ध संहिता — डॉ० बसुदेवप्रसाद मिश्र । कल्याण मुंबई । सं० १९६७ ।
- शोक शास्त्र — श्रीका पण्डित धनु० ठाकुर विजयबहादुर सिंह । परोपकारी प्रकाशन मण्डल, शोक, बनारस सिटी । प्रथम संस्करण १९३३ ।
- पमीलाशास्त्र — माचार्य सीताराम चतुर्वेदी । प्रसिद्ध भारतीय विद्वान-परिषद काशी । संवत् २०१० विजयाशुक्ल ।
- समाज की भूमिका — पद्मानभ मिश्र । श्री अजन्ता प्रेस लि० पटना ४ ।
- नाट्य शास्त्र — भरतमुनिद्वय धनुबादक भोलानाथ शर्मा । प्रकाशक साहित्य निवेशक कानपुर । प्रथम मुद्रण १९३४ ।

- हिन्दी उपन्यास — डा० कुपमा घबन । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली । १९९१ ।
- हिन्दी उपन्यास में चरित्र-विकास का विकास — डा० रघुवीर राणा । भारती साहित्य मन्दिर फर्रुखारा, दिल्ली १९९१ ।
- हिन्दी उपन्यास कथा और शिल्प का विकास — डा० प्रतापनाथयण टंडन । हिन्दी साहित्य मंडार सखनऊ । १९६० ।
- हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास — डा० प्रतापनाथयण टंडन । हिन्दी साहित्य मण्डार, मंगलप्रसाद रोड सखनऊ ।
- शुद्धात्मता बर्मा: व्यक्तित्व और कृतिरत्न — डा० कमलेश । सर्वोदय प्रकाशन मंडिर दिल्ली ।
- धर्मि पुराण का काव्य शास्त्रीय भाग — सम्पादक तथा अनुवादक श्री रामलाल बर्मा एम० ए० । नेशनल पब्लिशिंग हाउस, हरियाण्वर दिल्ली १९३६ ।
- कहानी-बर्धन — भालचन्द्र मौस्वामी ब्रह्मर । साहित्य रत्न भण्डार, धारवा ।
- इसायान्न बोधी साहित्य और समीक्षा — प्रेम भटनायर । साहित्य प्रकाशन मासीबाड़ा दिल्ली । १९३६ ।
- हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन — डा० धीमापयण धर्मिहोत्री । सरस्वती पुस्तक सदन मोठी फ्लट, धारवा ।
- कलाकार प्रेमचन्द — रामरत्न भटनायर । मुनिवर्धन प्रेस, १६ सिविलरुल भाल रोड, इलाहाबाद । प्रथम १९४६ ।
- हिन्दी के छ उपन्यास — रामरत्न भटनायर । विश्वविद्यालय परीक्षा बुक डिपो पानबरीबा, धारवा । १९३१ ।
- प्रसाद का कथा-साहित्य — रामरत्न भटनायर । इलाहाबाद प्रेस इलाहाबाद । १९५० ।
- मनोविज्ञान और उसके सम्बन्धता — सन्दीप परितोष बार्बी । प्रगति प्रकाशन दिल्ली ।
- हिन्दी साहित्य कोष — डॉ० धीरेन्द्र बर्मा (बचान), डा० ज्ञानेश्वर बर्मा डा० बर्मवीर भारती, श्री रामस्वरूप बहुबेदी, डा० रघुवरा (संयोजक) । ज्ञान मंडल लिमिटेड प्रथम संस्करण २०१३ ।
- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ — डा० रामबिलास शर्मा विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, धारवा । द्वितीय १९३७ ।
- संकेत — डॉ० 'धर्म' । मीलान प्रकाशन बुद्ध धारवा १ ।

- अध्ययन के विचार — बिष्णुकिशोर । कल्याणवास एण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी बाराणसी । १९३७ ।
- धुस और साहित्य — श्री धान्तिप्रिय त्रिवेदी इण्डियन प्रेस
लिमिटेड इलाहाबाद । १९३० द्वितीय
संस्करण ।
- हिन्दी कथा कोय — श्रीहरि । हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद ।
- अरत्नचन्द्र व्यक्त और कलाकार — इलाहम्ब खोशी । प्रसोक प्रेस पटना ६ ।
- हिन्दी विश्व कोय — डॉ० मयेशनाथ बसु । विश्वकोप-कुटीर,
६ विश्वकोप लेन बागबजार, कलकत्ता ।
१९१३ ।
- कामन्दरी (संस्कृत) — बाण भट्ट । प्रकाशक हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय बाराणसी १ ।
- सर्वदर्शन संग्रह — श्री वेन्डुटेदर स्टीम मशीनरी मंडल ।
- न्याय दर्शन — श्रीकृष्णा संस्कृत पुस्तकालय बनारस
सिटी । १९०६ ।
- हिन्दी अर्थ सागर — डॉ० श्यामसुन्दर दास । काशी नगरी
प्रचारिणी सभा । इण्डियन प्रेस प्रयाग ।
१९१४ ।
- प्रगतिवाद — श्री शिवदानसिंह जीहान । प्रदीप कार्यालय
मुद्रावादा । १९४६ ।
- साहित्य का मार्ग — डॉ० हुनारीप्रसाद त्रिवेदी । विश्वविद्यालय
मदनगढ़ ।
- कथा के तारक — डॉ० देवराज उपाध्याय । ग्रंथ मासा
कार्यालय । पटना १९३६ ।
- समाज-शास्त्र के मूलतत्त्व — डॉ० नर्मदेवरप्रसाद । कुसुम प्रकाशन,
पटना ६ ।
- साहित्य रूप — डॉ० व्यासराजसिंह एम० ए० ।
श्रीकृष्णा विद्यालय भवन श्रीक बाराणसी १ ।
१९३७ ।
- हिन्दी काम्यान्कार — ब्रह्म प्रणीत । निधम सागर प्रेस बम्बई ।
- हिन्दी पुस्तक साहित्य — डॉ० माताप्रसाद गुप्त । हिन्दुस्तानी एकेडमी
इलाहाबाद ।
- सिद्धांत और अध्ययन — गुमाबचय । प्रथमा प्रकाशन २०६
हैदरपुरी बिल्डी ।
- जीवन के तत्त्व और काम्य के सिद्धांत — मन्दीनारायणसिंह कुशानु । जनबानी
प्रकाशन, कलकत्ता ।

- बिस्तामबि —रामचन्द्र शुक्ल। इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग। १९२३।
- आयती संवावसी की भूमिका —रामचन्द्र शुक्ल। काशी भागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
- हिन्दी पद्य सग्रह —बिहार विरचविद्यालय प्रकाशन पटना।
- गोस्वामी तुमहीबास —रामचन्द्र शुक्ल। काशी भागरी प्रचारिणी सभा काशी।
- हिन्दुत्व —रामदास बोड़। सेवा उपवन काशी। १९६२ सम्मत् प्रथम संस्करण।
- धौनिबास प्रम्पावसी —काशी भागरी प्रचारिणी सभा काशी।
- अलमनैपर —अज्ञेय। भारतीय ज्ञानपीठ काशी। सन् १९६० ई०।
- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव —रबीन्द्र सहाय वर्मा। पद्मजा प्रकाशन कागपुर।
- साधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि —प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्ता जम्पासाल राँका। प्रालोक प्रकाशन कै० ई० एम० रोड, बीकानेर। प्रथम १९५२।
- हिन्दी काव्य में शृंगार-परम्परा और बहुस्तुति चिह्नारी —डा० मनमथिचन्द्र गुप्त। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। सन् १९५६।
- अपम्यासकार बुम्बाबनमाल वर्मा —डा० अष्टिमूपन सिंह। बही १९६०।
- पद्यावत का काव्य सौन्दर्य —अज्ञेय। प्रथम सं० सितम्बर १९२६।
- हिन्दी कहानी —बीसिंह। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम १९६०।
- पंक्ति बालकृष्ण भट्ट —डा० राजेन्द्र वर्मा। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम १९५८।
- समीक्षा शास्त्र —डा० बहादुर घोषा। राजपात्र एण्ड सन्स, दिल्ली। प्रथम १९५३।
- साधुनिक साहित्य —मन्मथुमारै बाजपेयी। भारती प्रकाश, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण सं० २००७ वि०।
- हिन्दी काव्यादर्श —आचार्य बन्धी व्याख्याकार रमणीरसिंह एम० ए०। थोरिएंटल बुक डिपो नई सड़क दिल्ली। १९५८।
- अनुसंधान का स्वल्प —डा० सावित्री सिन्हा। धारमात्रक एण्ड सन्स, दिल्ली ६। १९५५।

- हिन्दी साहित्य की जनबाबी परम्परा — प्रकाशचन्द्र गुप्त । निवाब महल इलाहाबाद । प्रथम १९३३ ।
- प्रेमबन्ध और योर्कों — सं० सधीरानी मुद्दू । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । १९३२ ई० ।
- प्रेमबन्ध चिन्तन और कला — सं० इन्द्रनाथ मदान । सरस्वती प्रेस बनारस ।
- प्रसाद साहित्य कोश — डा० हरदेव बाहुरी । मास्टी मण्डार, इलाहाबाद । प्रथम सं० २०१४ ।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा । रामनारायण लाल प्रयाग । द्वितीय १९३७ ।
- अध्यायन और आस्वाद्य — डा० सुभाषराय । आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली ६ ।
- भाष्यबाह और साहित्य — महेन्द्र राय । अराधना प्रकाशन ६४/४४ मोसा बीनागाम बाराणसी । प्रथम १९३७ ।
- बिस्तन और साहित्य — देवेन्द्र हस्तर । साहित्य प्रकाशन दिल्ली । १९३८ ।
- पृथ्वीराज रासो में कथानक कवियों — ब्रजबिनास श्रीवास्तव । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । प्रथम १९३३ ।
- भारतीय प्रेमालयान की परम्परा — परचुराम चतुर्वेदी । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । प्रथम १९३६ ।
- जयगुरु प्रसाद : चिन्तन व कला — डा० इन्द्रनाथ मदान । हिन्दी भवन इलाहाबाद । प्रथम १९३६ ।
- बिहवसाहित्य की कल्परेखा — डा० भगवतचरण उपाध्याय । राजवास एण्ड सन्स दिल्ली । प्रथम अक्टूबर, १९३७ ।
- आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना — डा० धीमकुमारी । हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद । प्रथम १९३१ ।
- साहित्य की समस्याएँ — सिधवानसिंह चौहान । आरमाराम एण्ड सन्स दिल्ली ६ ।
- बंनेन्द्र साहित्य और समीक्षा — डा० रामरत्न भटनागर । साहित्य प्रकाशन दिल्ली । १९३८ ।
- प्रेमबन्ध घर में — सिधरानी देवी । आरमाराम एण्ड सन्स दिल्ली । १९३६ ।
- लोकजीवन और साहित्य — डा० रामबिनास धर्मा । विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । प्रथम नवम्बर १९३३ ।
- विराम बिहू — डा० रामबिनास धर्मा । वही । प्रथम अगस्त १९३७ ।

- प्रसाद का जीवन और साहित्य — डा० रामरत्न भटनागर । राजधानी प्रकाशन, देहली ।
- बुध्वाचलनाथ वर्मा साहित्य और — सियारामचरण प्रसाद । साहित्य प्रकाशन
समीक्षा विस्ती । प्रथम १९९० ।
- श्यामा अग्रणी और कम परानी — अचर । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद । प्रथम
१९५९ ।
- बट-वीरम — रामचारीसिंह बिनकर । उदयाचल प्रकाशन
आर्य कुमार रोड पटना ४ । प्रथम संस्करण
जनवरी १९६१ ई० ।
- हिन्दी साहित्य (१९२१-१९५० ई०) — डा० भोसामाय एम० ए० बी० एडि० ।
हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय । प्रथम
१९५४ ई० ।
- रिग्नमित राप्डकवि — प्रो० दामोदर वर्मा । गांधी प्रयागराजवारस ।
प्रथम संस्करण १९५२ ।
- रविमरबी — रामचारीसिंह 'बिनकर' । अजन्ता प्रेस
मिनिटैड पटना ४ । तृतीय संस्करण १९५५ ।
- कवि परानी की कला — डॉ० हरिच मेहर अनुवार उमापतिराय
बाम्नेय । मुंबई गुलाबसिंह एण्ड सन्स लि०
नई दिल्ली ।
- साधुनिक हिन्दी कविता के प्रम और — डा० रामेश्वरनाथ लंडेलनाथ । नैशनल
सौम्य पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली । प्रथम संस्करण
१९५८ ।
- इलाहाबाद बोधी के उपाय्यास — बलभद्र तिवारी एम० ए० । रजनीत प्रिन्टर्स
एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली । प्रथम संस्करण
१९५८ ।
- साहित्य के स्वर — उदयचंकर मट्ट । धारनाथ एण्ड सन्स
दिल्ली-९ । १९९१ ।
- सालोचना के मान — अश्वनाथसिंह चौहान । रजनीत प्रिन्टर्स एण्ड
पब्लिशर्स बोधी चौक दिल्ली ६ ।
- मैनचर एक अध्ययन — डा० राजेश्वर गुह । मध्य प्रदेशीय प्रकाशक
समिति भुमराठी बेट भोपाल । १९५८ ।
- प्रमचंद — डा० रामविद्यास वर्मा । सरस्वती प्रेस,
बनारस । प्रथम १९४९ ।
- प्रमचंद और जनका पुग — डा० रामविद्यास वर्मा । मुंबीराम मनोहर
बाल, दिल्ली । द्वितीय संस्करण १९५५ ।

हीनभाव	—इन्सु०जे० कैफ़्वाईड । राजकमल प्रकाशन बम्बई । तृतीय प्रामृति १९२६ ।
नवरस	—भुलाहराय । नायरी प्रचारपी समा घाट । द्वितीय संस्करण १९३४ ।
ब्रजभाषा साहित्य का नादिका भेद	—प्रमुखास भीतल । प्रप्रवाल प्रेस मधुर । त्रितीय संस्करण बसाख सं० २००२ वि० ।
रीतिकालीन कविता और भृंगार रस का विश्लेषण	—राबे०हरप्रसाद जनुबेरी । सरस्वती पुस्तक सदन मोठी कटरा घायल । प्रथमप्रामृति दिसम्बर १९३३ ।
उपेक्षी	—रामभारीसिंह दिनकर । उदयाक्षस प्रकाशन पटना । १९६१ ।
महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनकी युग	—डा० उमदभानुसिंह । शिबि-साहित्य मंडार, पयाप्रसाद रोड, लखनऊ ।
अपनी खबर	—पांडेय ब्रह्मण वर्मा 'उग्र' । राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली । प्रथम संस्करण १९६० ।
साहित्य का ज्ञेय कथाकार प्रेमचंद	—प्रेमचंद । सरस्वती प्रेस बनारस ।
प्रेमचंद उपन्यास और प्रिया	—मम्मापनाथ मुष्ट । सरस्वती प्रेस बनारस ।
छायाबाह	—हरिश्चक्रप मायूर । प्रंप कुटीर पी० रोड कानपुर । दिसम्बर १९३७ ।
विचार-प्रवाह	—डा० नामवरसिंह । सरस्वती प्रेस बनारस । प्रथम संस्करण सितम्बर १९३३ ।
विचार और विरलेपथ	—डा० देवराज । संघनासा-नार्यासिध, पटना-४ ।
साहित्यानुशीलन	—डा० नगेन्द्र । मेरुमल पब्लिशिंग हाउस, ६३ हरियार्गज दिल्ली ।
प्रमचंद उनकी कृतियां और कला	—दिबदानसिंह चौहान । घामाघम एंड संस दिल्ली ६ ।
प्रमचंद	—प्रमनरायण टंडन । विद्या मंदिर, रामीकटरा मखनऊ । त्रितीय संस्करण १९४६ ।
प्रमचंद	—डा० प्रिमोजी नारायण दीनान एड० ए० पी०एच० बी० । साहित्य निवेदन कानपुर । प्रथम संस्करण १९३२ ।
साहित्य का इतिहास वर्धन	—नमिनविनोयम वर्मा । बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना । प्रथम संस्करण १९६० ।

(ख) अंग्रेजी-ग्रन्थों की सूची

- लिटरेचर एंड घार्ट — कार्ल मार्क्स एंड फ्रैडरिक एन्गल्स । कर्बेट बुक हाउस बम्बई । १९२९ ।
- घाट एंड सेक्स — एम० जे० निकोलसन । मित्रा प्रेस, संभल ।
- साइकोलाजी : बी स्टडी घाफ बिहेवियर — विलियम मैकडोमस । विलियम एंड नरयेट मन्शन । १९१२ ।
- ए हिस्ट्री घाफ इपनिश लिटरेचर — बी० घाफरहवाघ । पेनगुइन बुक्स लिमिटेड इंग्लैंड । प्रथम संस्करण १९४० ।
- स्टडीज इन ए आइव कलचर — फाडवेल । बानसेन बी बोडसेहेड संभल ।
- कलचर इन ए बोबिंग बहर्न — बी० जे० बेरोन । मू सेनचुरी पब्लिशस, म्युपार्क ।
- सिबस ए० एम० एंड अदर स्टोरीज — सी पाई यु० । फोरेन सैगुएज प्रेस, पैकिंग । १९२३ । प्रथम संस्करण, अग्रेम, १९२३ ।
- बाइनाज म्यु लिटरेचर एंड घार्ट — बाउ मॉन । सपर्युक्त । प्रथम संस्करण १९२४ ।
- लिटरेचर एंड रीपेसिटी — हार्बर्न फास्ट । पिपुस्त पब्लिशिंग हाउस मि० बम्बई । प्रथम संस्करण मार्च १९२२ ।
- बी मोमेन्ट एंड अदर एसेज — बर्जीनिया बुन्ड । बी हार्बर्न प्रेस संभल । १९२२ ।
- बी घासपेक्षत घाफ बी नविल — ई० एम० फोरस्टर । एडवर्ड धार्नस एंड कम्पनी संभल । प्रथम प्रकाशित १९२७ । पीकेट एडिसन १९४९ ।
- बी स्ट्रुक्चर घाफ बी नावेल — एडविन मूर । बी हार्बर्न प्रेस, ४०-४२, विलियम ४ स्ट्रीट संभल—डम्स्यू सी २ । पाँचवाँ संस्करण, १९४९ ।
- पुन साइकोलाजी एंड बी एनेताइसिस — सिगमंड फ्रायड । बी हार्बर्न प्रेस एंड बी इन्स्टीच्युट घाफ साइकोएनेताइसिस । पाँचवाँ संस्करण १९४९ ।
- बी इंपलिज नावेल — वास्टर एलन । फोनिक्स हाउस लिमिटेड संभल । पुर्नमुद्रित, १९२७ ।
- एग इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी घाफ लिटरेचर — डम्स्यू एच० हबसनस । चार्ज बी० हेरप एंड कम्पनी लिमिटेड संभल टोरेगटो बेनिपटन सिवनी । बून १९२८ ।
- बी क्वांट घाफ डिक्शन — पर्सी सबक । बनावन कैप ३० बैडफोर्ड इन्सायर, संभल ।

बी राइबर एंड हिथ काफ्ट

—इसिया एहरेमबुर्ग। पिपुस्स पम्सिचिय हाऊस,
विस्सी।

(ग) मौलिक कथा कृतियों की सूची

धनु० धानदप्रकाश बोन

—सागर और मनुष्य। धनेस्ट हेमिये। हिन्द
पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, विस्सी।

यशपाल

—यशपाल की अष्ट कहानियाँ। राजकमल
प्रकाशन। १९६०।

धनु० सं० बालकृष्ण

—संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ। हिन्द पाकेट
बुक्स विस्सी।

सं० मोहन राकेश

—पांच सम्बी कहानियाँ। राजकमल प्रकाशन,
विस्सी १९६०।

—हिन्दी कहानी संग्रह। बिहार विश्वविद्यालय
पटना। त्रितीय संस्करण ३१ अगस्त
१९२४।

मोहनसिंह सेंपल

—नया स्वर। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
बनारस। अगस्त १९६०।

मन्नु बंबारी

—तीन निगाहों की एक तस्वीर। अमजीबी
प्रकाशन इलाहाबाद।

सं० विमोचककर व्यास

—मधुकरी (१ से ४ भाग)। पुस्तक मंदिर,
काशी। (१९११ ई० से १९२२ ई० तक
की प्रमुख कहानियों का संकलन)।

सं० डा० नर्मदेश्वरप्रसाध झादि

—अपरम्परा (संकलन) खंड १२। मानपीठ
पटना ४। १९२९।

सीमरैव महु धनु० स्व० कैशरनाथ
अर्मा चारुबस

—कथा सरिसागर। बिहार राष्ट्र भाषा
परिषद् पटना ३। १९६०।

मार्कण्डेय

—पात्र पूल। नवद्विष्ट पब्लिकेशन्स हैदराबाद।
१९२४।

मार्कण्डेय

—पूजान। नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद।
—सेमस के पूल। नया साहित्य प्रकाशन
इलाहाबाद।

क्यादा अहमद अश्यास

—मेरा बेटा मेरा बुरमन। नीलाम प्रकाशन इह,
प्रयाग १। १९३३।

—चिराय तने। नीलाम प्रकाशन इह
प्रयाग १। १९३३।

धातव्यामन और जगद्व

सं० धर्मवीर भारती एवं
लक्ष्मीकांत वर्मा
सन्तु० मन्वासा गुरुनधी

रामकृष्ण

रामचन्द्र तिवारी

नायाबुन

नायाबुन

कृष्णा सोबती

बन्दीचरण सैन

लक्ष्मीनारायण लाल

भैरवप्रसाद गुप्त

—प्रथम की छान । नीलाम प्रकाशन पुस्तक,
प्रयाग १ । १९५२ ।

—हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ । प्रबन्धि
प्रकाशन नई दिल्ली । १९५२ ।

—निकप १ २ । साहित्य भवन सिमिटेड,
इलाहाबाद ।

—मन्टो की कहानियाँ । साहित्य प्रकाशन,
दिल्ली । १९५५ ।

—हुस्ना बीबी और अन्य कहानियाँ । सरस्वती
प्रेस बनारस । १९५६ ।

—सागर, सरिता और अकाल । सरस्वती प्रेस
बनारस ।

—रतिनाथ की चाँची । किताब महल प्रयाग ।
प्रथम १९५० ।

—नई पीप । किताब महल प्रयाग ।

—बाबा बैटसरनाथ । राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली । १९५४ ।

—बसन्तमा । राजकमल प्रकाशन । १९५२ ।

—दुखमोचन । राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।
१९५७ ।

—डार से बिछड़ी । राजकमल प्रकाशन ।
दिल्ली ।

—टाम काका की कुटिया । चाँची संयोगाद,
बनारस । १९४६ ।

—भरती की धाँसे । सेंट्रल बुक डिपो,
इलाहाबाद । प्रथम १९५१ ।

—बया का चँसला और सपि । नीलाम
प्रकाशन इलाहाबाद । १९५६ ।

—काने फूल का पीरा । भारती मंडार,
इलाहाबाद । सं० ३०१२ वि० ।

—रुपाबीबा । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
प्रथम १९५६ ।

—गंगा मैया । राजकमल प्रकाशन, नई
दिल्ली ६ । १९५२ ।

—महाल । नीलाम प्रकाशन, प्रयाग १९५१ ।

प्रभाकर भाषणे

राजा राजकाररण सिंह

—जंजीरे घोर नया प्रकाशनी। हृष प्रकाशन
इसाहाबाद। १९२६।

—छत्ती मैदा का बीरा। मीसाम प्रकाशन
प्रयाम। १९२६।

—परंतु। प्रगति प्रकाशन नई दिल्ली। १९२१।

—राम खीम। अष्टोक प्रेस पटना ८। १९२६।

—सूरदास। अष्टोक प्रेस पटना ६। १९२६।

—संस्कार। राजेश्वरी साहित्य मंदिर, सूर्यपुर।
१९४६।

—नारी एक पहेली। राजेश्वरी साहित्य मंदिर
सूर्यपुर। १९४६।

—पूरव घोर पश्चिम। राजेश्वरी साहित्य
मंदिर सूर्यपुर। १९४६।

—साधनी सर्मा। राजेश्वरी साहित्य मंदिर
सूर्यपुर। १९२१।

—भाभी टोपी। राजेश्वरी साहित्य मंदिर
सूर्यपुर। त्रितीय सं० १९२१।

सचिबबानस्य, हीरानंद भारत्यायम
'प्रज्ञेय'

—रोसर एक बीबनी। सरस्वती प्रेस
बनारस।

—मदी के द्वीप। सरस्वती प्रेस, बनारस।

—घमर यस्मरी घोर अग्य कहानियां।
सरस्वती प्रेस इसाहाबाद। १९२४।

—कहानियां। सरस्वती प्रेस इसाहाबाद।
१९२४।

—विपदगा। सरस्वती प्रेस इसाहाबाद।
१९२४।

—परम्परा। सरस्वती प्रेस इसाहाबाद।
१९२४।

—बोठरी की बात। सरस्वती प्रेस इसाहाबाद।
१९२४।

—जयदोल। प्रगति प्रकाशन दिल्ली। १९२१।

—घरनाथी। प्रगति प्रकाशन दिल्ली। १९२१।

—नदी के द्वीप। सरस्वती प्रेस बनारस।

बुगदायनसाल अर्मा

—मुहासिब जू। मयूर प्रकाशन, भाँसी। प्रथम
१९४६।

- प्रथम मेरा कोई । मयूर प्रकाशन भाँसी ।
तृतीय १९३४ ।
- कमी न कमी । सुपमा साहित्य मंदिर,
बनारसपुर ।
- भाँसी की रानी । मयूर प्रकाशन, भाँसी ।
तृतीय १९४६ ।
- भूगतमती । मयूर प्रकाशन । सप्तम, १९३३ ।
- मङ्गल कृष्णार । गंगा पुस्तक माला, सखनऊ ।
सप्तमावृत्ति सं० २०१० ।
- कृष्णली चक्र । गंगा पुस्तक माला सखनऊ ।
पष्ठ सं० २०११ ।
- बिराटा की पश्चिमी । बंका पुस्तकमाला
सखनऊ । पंचम, २००५ ।
- प्रत्यागत । मयूर प्रकाशन । प्रथम १९३१ ।
- जयन । मयूर प्रकाशन । द्वितीय १९३१ ।
- कश्माल । मयूर प्रकाशन । तृतीय १९३४ ।
- प्रेम की भेंट । मयूर प्रकाशन भाँसी । द्वितीय
१९३१ ।
- साहित्याबाई । मयूर प्रकाशन भाँसी ।
१९३३ ।
- धर्मरत्न । मयूर प्रकाशन भाँसी । प्रथम
१९३३ ।
- दूटे काटे । मयूर प्रकाशन भाँसी । प्रथम
१९३४ ।
- घोना । मयूर प्रकाशन भाँसी । प्रथम
१९३२ ।
- संयम । बंका पुस्तक माला सखनऊ । द्वितीय
सं० १९९३ ।
- राधा धीर राजन । रामोत्थान विद्यापीठ
संपरिया । १९३३ ।
- रथ के पहिने । एशिया प्रकाशन, देवदंड रोड,
नई दिल्ली । १९३३ ।
- कठमुतली । एशिया प्रकाशन, देवदंड रोड
नई दिल्ली । १९३४ ।
- बड़ा पुत्र । एशिया प्रकाशन, दिल्ली । १९३६ ।

बलमङ्ग ठाकुर

शिवेन्द्र सरयार्थी

—बाय का रंग । प्रगति प्रकाशन, दिल्ली ।
१९४९ ।

—बुबापाठ । एशिया प्रकाशन, दिल्ली ।
१९६० ।

डा० देवराज

—पपे की खोज । प्रगति प्रकाशन दिल्ली ।

—बाहुर भीतर । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

—रोड़े और पत्थर । राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली ।

—प्रथम की शायरी । राजपाठ एण्ड सेंज
दिल्ली ।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

—विगम्बर । हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
काशी ।

—विद्यालय । राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।

—समझई की छाह में । कुसुम प्रकाशन,
पटना-३ ।

मैकडोवर्ल्ड पुस्तक
कीरेन्द्र नारायण

—मैला भाषण । समता प्रकाशन पटना ४ ।

—पेठे की परिकथा । राजकमल प्रकाशन
दिल्ली । १९२७ ।

—दुमरी । राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।
१९६० ।

कबीरदास गैरु

—संघासी । भारती मंडार, इलाहाबाद । प्रथम
सं० २००६ ।

—पर्व की राती । भारती मंडार, इलाहाबाद ।
सं० २००६ ।

इलाहगढ़ बोशी

—निर्वासित । बाम्बे कार्यालय, बम्बे लोक,
इलाहाबाद । प्रथम सं० १९२९ ।

—प्रेत की छाया । बाम्बे कार्यालय बम्बे लोक,
इलाहाबाद । प्रथम १९२९ ।

—पृथामयी । बाम्बे कार्यालय बम्बे लोक
इलाहाबाद । प्रथम १९२९ ।

—खंडहर की छायाएँ । बाम्बे कार्यालय
बम्बे लोक इलाहाबाद । सं० १९२९ ।

—मुनिप पप । हिन्दी भवन इलाहाबाद । प्रथम
१९२० ।

—मुबह के भूले । हिन्दी भवन इलाहाबाद ।
द्वितीय सं० १९२१ ।

- अज्ञान का पंथी । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
१९३३ ।
- आमरी के नीरस पृष्ठ । सेन्ट्रल बुक डिपो,
इलाहाबाद ।
- बिप्ली । सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद ।
- होमी विद्यापी । सेन्ट्रल बुक डिपो,
इलाहाबाद ।
- भारती भंडार इलाहाबाद ।
- रामानंद सायर —धीर इंजान मर गया । प्रोबेसिव पब्लिशर्स,
१४ ३० फीरोजसाह रोड दिल्ली । १९३१ ।
- प्रमचंड —रंगभूमि । गंगा पुस्तकमाला लखनऊ ।
- मोक्ष । हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग प्रयाग ।
सरस्वती प्रेस, बनारस । १०वाँ सं० १८४८
११वाँ १९२० ।
- निर्मला । सरस्वती प्रेस । बनारस, ८वाँ सं०
१९२० ।
- प्रतिभा । सरस्वती प्रेस, बनारस । ७वाँ
१९४२ ८वाँ १९२० ।
- कर्मभूमि । हिन्दुस्तानी प० प्रयाग ।
९वाँ सं० १९३२ ।
- कायाकल्प । सरस्वती प्रेस, बनारस । १०वाँ
सं० १९३६ ।
- करदान । सरस्वती प्रेस, बनारस । १०वाँ
सं० १९३६ ।
- कुबल । सरस्वती प्रेस बनारस १०वाँ सं०
१९३६ ।
- देवा सदन । सरस्वती प्रेस बनारस ।
- संपलसून । सरस्वती प्रेस, बनारस ।
- प्रेमाश्रम । हिन्दी पुस्तक एजेंसी बनारस ।
- मानसरोवर । सरस्वती प्रेस बनारस ।
- सप्तसरोवर । सरस्वती प्रेस बनारस ।
- प्रेम पञ्जीवी । सरस्वती प्रेस बनारस ।
- परीक्षा युद्ध । ज्ञान प्रकाशन, आबड़ी बानार,
दिल्ली । नवीन संस्करण १९३२ ।
- सं० क्यामर्सुदराय । रामी केतकी की
- जाला भीनिवास दास
- इंशाफतना खाँ

किन्नोरीलाल गोस्वामी

- कहानी । काशी नावरी प्रचारिणी सभा काशी ।
 —त्रिवेणी । प्रकाशक सेखक ही बनारस ।
 —सारा । प्रकाशक सेखक ही बनारस । दूसरी बार, १९१० ।
 —पन्नाबाई । प्रकाशक सेखक ही । दूसरी बार, १९११ ।
 —चपला । छबीसे गोस्वामी । द्वितीय १९१६ ।
 —लवणक्षता । छबीसे गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।
 —तन्म तपस्विनी । छबीसे गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।
 —हृदयहारिणी । छबीसे गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।

देवकीनन्दन खत्री

- चन्द्रकान्ता संतति । सहृदि बुक डिपो । (१ से २४ भाग) पाँचवीं बार, १९२४ ।
 —कुसुमकुमारी । चन्द्रकान्ता संतति । सहृदि बुक डिपो । पाँचवीं बार, १९१४ ।
 —चन्द्रकान्ता । जयन्ताब प्रसाद बर्मो । पहली बार, सं० १९४८ ।

रामेय रावत

- विप्राय मठ । सरस्वती प्रेस बनारस ।
 —भरोदि । सरस्वती प्रेस, बनारस ।
 —दुफारोंके बीच । किताब महल इलाहाबाद ।
 —सीधा साधा रास्ता । किताब महल इलाहाबाद ।
 —हुजूर । धानोक प्रकाशन बीकानेर । सं० १९३२ ।
 —साभाग्य का बमब । सरस्वती प्रेस बनारस । सं० १८४० ।
 —कब तक पुकारें । राजपास एंड सस दिल्ली ।
 —उई धीर पर्वत । राजपास एंड सस दिल्ली । प्रथम संस्करण १९३७ ।

भयवतीचरण बर्मो

- चित्रसेवा । माण्टी भंडार, इलाहाबाद ।
 —धीन बर्ष । माण्टी भंडार इलाहाबाद ।
 —टैङ्गे-येङ्गे रास्ते । भारती भंडार

- आखिरी बाँध । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 —पत्तन । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 —पूजे बिहारे विम । राजकमल प्रकाशन
 दिल्ली १९५६ ।
 —दो बाँके । भारती मंचार, बीडर प्रेस, प्रयाग ।
 सं० २००१ ।
 —इन्सटालमेंट । भारती मंचार, बीडर प्रेस
 प्रयाग । सं० २००१ ।
 —सीमा और सामर्थ्य । राजकमल प्रकाशन
 दिल्ली । प्रथम संस्करण, १९४६ ।
 —कुसेरीजी की धमर कहानियाँ । सरस्वती
 प्रेस बनारस । पु० सं० १९४२ ।
 —अनादया । भारती मंचार प्रयाग । द्वितीय
 सं० २००३ ।
 —नये मोड़ । मसिबीबी प्रकाशन, लई दिल्ली ।
 १९३९ ।
 —सामर, कहरे और मनुष्य । राजकमल प्रका-
 शन दिल्ली ६ ।
 —बहुती रचना । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६ ।
 १९५२ ।
 —सुरसैन सुमन । राजपाल एवं संस, दिल्ली ।
 —सुरसैनसुधा । हिन्दी ज्ञान रत्नाकर,
 बम्बई-४ ।
 —सितनी । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 —कंकाल । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 —दुपारती । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 —घाँधी । भारती मंचार, इलाहाबाद । द्वितीय
 सं० १९६७ ।
 —आकाशपीथ । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 १९२६ ।
 —प्रतिध्वनि । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 सं० २०११ ।
 —इन्द्रजाल । भारती मंचार, इलाहाबाद ।
 तृतीय सं० २००७ ।
 —गिरती बीबारें । नीलाम प्रकाशन इलाहा-
 बाद । द्वितीय सं० १९३२ ।

अखिल-विकास

राजकमल प्रकाशन

सुरसैनसुधा

सुरसैनसुधा

सुरसैनसुधा

अखिल-विकास

अखिल-विकास

—मर्म रास । नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, १९२२ ।

—धितारों के खेल । नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद ।

—पत्थर अथ पत्थर । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद । १९३६ ।

—बड़ी बड़ी भाँजों । नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद ।

—कहानी सेडिका और बेहलम के साथ पुस । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद । १९३६ ।

—बुवाई की धाम का पीत । नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद ।

—काने साहब । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद ।

—विजय । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद ।

—दो पारा । नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद । प्रथम सं० १९४६ ।

—बिगल का पीघा, नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद १९४६ ।

—राजा निरबसिया । राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

—जानवर और जानवर । राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद । प्रथम सं० १९३८ ।

—साधेरे बन्द कमरे । राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद । १९६१ ।

—एक और बिन्दपी । राजपाल एंड संस दिल्ली ६ । प्रथम सं० १९६२ ।

—इंसान की बिन्दपी । मास्टी प्रकाशन भायलपुर । १९३८ ।

—टासस्टाय की कहानियाँ । हिन्दी पुस्तक एजेंसी परना ।

—दिससय । पुस्तक भंडार पटना ४ ।

—द्वारपी । मास्टी भंडार, प्रयाग ।

—इक्कीस कहानियाँ । भारती भंडार प्रयाग ।

—प्रदीप । भारती भंडार प्रयाग । अनुसंध सं० सम्बत २००८ ।

कुमनीरवर

मोहन राकेय

वपामस किशोरिया

बालकृष्ण

बनारसप्रसाद झा 'द्विज'
बाबस्पति पाठक,

द्विजैग्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

उदयराजसिंह
बलबन्धसिंह

शिवपूजन सहाय

अमृतलाल नागर

रामेश्वर शुक्ल अंचल

बर्मबीर भारती

महुमन बनराजपुरी

प्राथमिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास

- कल्पा घामा । विद्या भास्कर बुक डिपो, बनारस ।
- भूबानी सोनिया । अछोक प्रेस, पटना ।
- काले कोस । सरस्वती प्रेस, बनारस । १९२७ ।
- रात, चोर और चाँद । विनीत पुस्तक मन्दिर, धारवा ।
- बैहाती बुनिया । प्रथमाला कार्यालय पटना-४ ।
- महाकाल । मास्ती मंडार, इलाहाबाद । प्रथम १९४७ ।
- पाँचवाँ बस्ता । धारवा प्रकाशन, इलाहाबाद । प्रथम १९२७ ।
- बूँद और समुद्र । किताब महल इलाहाबाद । १९२९ ।
- सुहाय के नूपुर । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । प्रथम सं० १९९० ।
- ये कोठे बालियाँ । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । १९६१ ।
- उस्का । म्यूनिटोरर सं० इलाहाबाद । प्रथम १९२० ।
- नहीं धपारत । हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, साह्य संज, इलाहाबाद ।
- बड़ती भूप । हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स साह्य संज इलाहाबाद ।
- सब प्रदीप । साहित्य भवन लि० इलाहाबाद । प्रथम १९२१ ।
- प्रमाहों के देवता । साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद । प्रथम १९४१ ।
- सूरज का छाववाँ घोड़ा । साहित्य भवन लि० इलाहाबाद ।
- भास्कर बाइस्क की कहानियाँ । साहित्य भवन लि० । प्रथम २००३ ।
- चाँद और टूटे हुए सोप । किताब महल, इलाहाबाद । प्रथम १९२६ ।
- मासैट । पुस्तक मंडार पटना ४ ।

अमृतघण्ट

—बीज । हंस प्रकाशन इलाहाबाद । प्रथम सं० १९३३ ।

—नागफली के देश में । हंस प्रकाशन, इलाहाबाद । प्र० सं० १९३६ ।

—तिरिये कफल । हिन्दोस्तानी पम्पिचिय हाउस, बनारस, १९४८ ।

—बीजन के पहेलू । हिन्दोस्तानी पम्पिचिय हाउस, बनारस ।

—रतन घासोक । हिन्दोस्तानी पम्पिचिय हाउस, बनारस ।

—इतिहास । हिन्दोस्तानी पम्पिचिय हाउस, बनारस ।

—धाक बरती । हिन्दोस्तानी पम्पिचिय हाउस, बनारस ।

सिठ चौबिन्दरास

—इन्दुमती । नेदानक इन्फारमेशन एन्ड पम्पिकेण्डस लि०, बम्बई । प्रथम संस्करण १९३० ।

केवरी कुमार

—प्रतिनिधि कहानियाँ । मोठीलास बजारची बास, पटना । १९३३ ।

प्याड़ी

—निर्देशक । प्रकाशनग्रुह, नया कटरा, इलाहाबाद ।

—संघाय । प्रकाशन ग्रुह, नया कटरा, इलाहाबाद ।

—सङ्क पर । प्रकाशन ग्रुह नया कटरा, इलाहाबाद ।

अपवर्तीप्रसार बाबदेयी

—पतिता श्री सधना । छात्र हितकारी पुस्तक माला, इलाहाबाद ।

—पिपासा । छात्र हितकारी पुस्तकमाला, इलाहाबाद ।

—प्रेमपथ । छात्र हितकारी पुस्तकमाला इलाहाबाद ।

—निर्मलग । छात्र हितकारी पुस्तकमाला इलाहाबाद ।

—उगते न कहना । राजपाल एंड सन दिल्ली, १९३६ ।

शैलेन्द्र कुमार

- परब हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४ ।
- त्यागपत्र । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ४ ।
- सुगीदा । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ४ । प्रथम सं० १९३३ ।
- कस्यापी । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४ ।
- सुखदा । पूर्वोदय प्रकाशन, हरियाणज दिल्ली । १९३२ ।
- निवर्त । पूर्वोदय प्रकाशन, हरियाणज दिल्ली । १९३२ ।
- स्मृतीत । पूर्वोदय प्रकाशन हरियाणज दिल्ली । १९३३ ।
- जयवर्द्धन । पूर्वोदय प्रकाशन, हरियाणज दिल्ली । १९३६ ।
- शैलेन्द्र की कहानियाँ । पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली । (१ छ ७ भाग) ।
भाग १, १९३५ द्वितीय सं० ।
भाग २, १९३२ प्रथम सं० ।
भाग ३, १९३३ प्रथम सं० ।
भाग ७ १९३४ प्रथम सं० ।

कमल खीरी

- पूर्वों की माला । नवयुग प्रकाशन, दिल्ली । १९३३ ।
- पत्थर की शक्ति । हरिम ११८ बी०, पित रंजन एजन्स्य कसकरी ७ ।
- निरुपमा । भारती प्रचार, इलाहाबाद । २९ ३ ३३६ ।
- सखका । पंचा पुस्तकमाला, सखनऊ । सं १९३३ ।
- सप्तर । गंगा पुस्तकमाला, सखनऊ । प्र० सं० १९३६ ।
- प्रभावती । किताब महल प्रयाग । द्वि० १९४३ नु० १९४६ ।
- चतुर्थी चमार । पंचा पुस्तकमाला सखनऊ । १९४७ ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सिपारामधरय मुप्त

- सिली । यंया पुस्तकमासा, लखनऊ ।
- सुकस की बीबी । भारती मंभार, प्रयाग ।
- योद । साहित्य सदन, चिरगांव, म्भंसी ।
सं० २००७ प्र० सं० ।
- नारी । साहित्य सदन, चिरगांव, म्भंसी ।
सं० १९८४ प्र० सं० ।

महादेवी बर्मा

- मंतिम आकांक्षा । साहित्य सदन, चिरगांव
म्भंसी ।
- घटीठ के बस बिब । भारती मंभार, प्रयाग ।
- स्मृति की रेखाएँ । भारती मंभार, प्रयाग ।
- येया अकिस बहादुर । भारतीय प्रकाशन
मन्दिर, बनारस । १९३२ ।

बी० पी० श्रीवास्तव

- सतस्रोतीवास । भारतीय प्रकाशन मन्दिर,
बनारस ।

बेचन अर्मा 'उष'

- सरकार तुम्हारी धाँसों में । यंया पुस्तकमासा
लखनऊ । १९३२ ।
- दराबी । धारमाराम एण्ड सस दिल्ली ।
- बाकसेट । यंया पुस्तकमासा लखनऊ ।
- जब सारा आत्मन सोता है । बिनोद पुस्तक
मन्दिर भायरा । १९३१ ।

कल्पबन्ध

- मुनिबान । नैदानस पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली । १९३३ ।
- सीमा । राजपास एण्ड संड दिल्ली ।
१९३४ ।
- अम्नबाठा । राजपास एण्ड संड, दिल्ली ।
१९३४ ।

शैलेज मडियाजी

- हम बहूजी हैं । हंस प्रकाशन इलाहाबाद ।
- बोरी बोरी से बोरीबन्धर तक । धारमाराम
एण्ड संड दिल्ली । प्रथम १९६० ।
- कबूतरबाना । धारमाराम एण्ड संड
दिल्ली ।

बिष्णु ब्रभाकर

- निधिकास । धारमाराम एण्ड संड दिल्ली ।
१९६१ ।
- तट के बंधन । सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली । १९३३ ।

राधाकृष्ण

- बोयस । किताब घर पटना । १९३३ ।
- पुटपात्र । एम० एन० वर्मन०, पटना । १९३१ ।
- सत्यिका । हंस प्रकाशन, इसाहाबाद । १९३६ ।
- रामसीमा । युगान्त प्रकाशन लखिति, पटना-३ । १९३७ ।

बिरबरपोपाल

- बाबनी के खंडहर । साहित्य भवन सि० इसाहाबाद ।

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'

- कस्तोस । विनोद पुस्तक मन्दिर, घाबरा । भा० १ सं० १९५६ ।
- माँ । विनोद पुस्तक मन्दिर, घाबरा ।
- निवारिणी " "

नरेण वैहता

राजेश्वर मदन

- बूबते मस्तूत । घाटमाराम एण्ड संस दिल्ली ।
- उलझे हुए लोग । राजकमल प्रकाशन दिल्ली, । १९३६ ।
- कुमटा । हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली । १९६० ।

हिमांशु श्रीवस्तव

- सारा प्रकाश । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
- प्रेत बोमते हैं । प्रवृत्ति प्रकाशन दिल्ली ।
- बिस सिमाँवे । भारतीय ज्ञान पीठ, काशी ।
- सोहे के संघ । ज्ञान पीठ सि० पटना । १९३७ ।

बनुरसैग बाल्मी

- हृदय को परब । बंधा पुस्तक माला लखनऊ ।
- हृदय की प्यास । " सं० १८८४ ।

सं० नलिनबिलोचन शर्मा

- हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार । प्रथित भारतीय खोज मण्डल धार० के० भट्टाचार्य रोड पटना १ ।

यशपाल

- बाबा कामरेड । विप्लव कार्यालय, लखनऊ ।
- दिव्या । "
- बैद्यग्रीही । "
- पार्सी कामरेड । "
- समुच्च के रूप । "
- भूटा लव (१२ खंड) । "
- समिधा । "

—उत्तराधिकारी ।	,	१९२१ ।
—बनकर वसव ।		"
—पिबड़े की उड़ान ।	"	
—मस्माबुत बिनयारी ।		१९४६
—फूसों का कुर्ता ।	"	१९४९
—न्याय का संवर्ष ।		
—ज्ञान वान ।	"	१९४४
—तक का सुपान ।	"	१९२०
—दो दुनिया ।	"	१९४३
—धर्म युद्ध ।	"	

(घ) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की सूची

साहित्य	—(बैमासिक पत्र), सं० शिवपूजन सहाय मलिनबिम्बोवन शर्मा । बिहार राष्ट्रमावा परिषद् पटना । जुलाई, २६, अक्टूबर २६, जनवरी २७, अप्रैल १९२० ।
बुद्धिकोष	—सं० शिवचन्द्र शर्मा । प्रसिद्ध भारतीय हिन्दी सोप मण्डल पटना । सितम्बर २१ मई १९२२, जून जुलाई, अगस्त सितम्बर २१, जनवरी १९४९ ।
नया पत्र	—(मासिक पत्र) सं० यद्यपाम, राजीव सक्सेना शिवशर्मा । केसरबाम, लखनऊ, बम्बई । जनवरी १९२८, जनवरी, १९२४ मई, २२, फरवरी १९२६ मार्च, २६, सितम्बर २७, अप्रैल २८ ।
नवशोध	—सं० सत्यकाम बिद्यार्थकार । नवनीत प्रका- शन सि० १४१ तारदेव बम्बई १४ । मई १९६२ ।
नवराष्ट्र (दैनिक)	—प्र० सं० देवदत्त छात्री सं० रामरमात पांडेय । कदमकुर्मा पटना २२ मई १९६० ।
नवभारत डाइम्स (दैनिक)	—विस्ती ३० नवम्बर १९२८ ।
प्रतीक	—(बैमासिक संकलन) सं० शिवाचम शरण गुप्त बरेल्ल धीपतपय सं० ही० वात्स्यायन । संक ९, संक २, नवम्बर, २७ ।

- समासोच्चक —सं० डा० रामबिनास शर्मा । विनोद पुस्तक मन्दिर, प्रयाग । मार्च, १९३९, अगस्त १९३९, सितम्बर १९३९ ।
- अवस्था —सं० बंशीधर विद्यासंस्कार । हिन्दी प्रचार समा हैदराबाद (दक्षिण) । जनवरी ३८, फरवरी ३८ । अक्टूबर-नवम्बर १९३७ ।
- प्रसारिका —समितिकेन्द्रन विवीजन, भारत सरकार, दिल्ली ८, जुलाई, सितम्बर ३७ ।
- धारिका —सं० कार्यकारी सम्पादक आनन्दप्रकाश वैज । बंगलौर कोल मैस एन्ड कम्पनी लिमिटेड, बम्बई । फरवरी '३२ ।
- अवस्थिका —सं० सकुमीनारायण सुबोधु । अवस्था प्रेस, पटना । मार्च ३९, जुलाई १३, अगस्त ३९, जनवरी ३४ ।
- नायटी प्रचारिणी पत्रिका —संपादक मण्डल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कथापति विवाठी डा० बन्धनसिंह (संयोजक) । काशी नायटी प्रचारिणी समा । वर्ष ६३ संवत् २०१३, अंक २ ।
- अयोध्या —सं० शिवेश्वरनाथय्य । अयोध्या कार्यालय, पटना-३ । मार्च ६१ ।
- नई काल —सं० रामबृक्ष बेनीपुरी । अशोक प्रेस पटना ६ ।
- प्रेरणा —सं० कमल जोषी । सोबती नेट, बोधपुर । १९३४ ।
- बलिदा —सं० विस्वनाथ । कनाट सर्कल, नई दिल्ली । जनवरी १९३८ ।
- ज्ञानोदय —सं० अयोध्या सं० चरक देवड़ा । ११, मसाल रो कमकटा १ । फरवरी ३८, जनवरी ६१, अक्टूबर ३८ मार्च ६२ ।
- बभ्रुवा —सं० रामेश्वर गुरु हृदिसंस्कार परसाई । अजमेरपुर, फरवरी १९३८ ।
- सुग विलना —डा० देवदास अजमेर । अगस्त ३८ ।
- सुप्रभात —सं० पूष्पीनाथ शास्त्री । कमकटा-७ जनवरी-फरवरी ३८ ।
- सरस्वती —महावीरप्रसाद द्विवेदी, पदुमसाल पुष्पासाध

बस्ती देवीरत्न शुक्ल भीमाचरण बतुबंदी।
इतिहास प्रेस प्रयाग।

साहित्य सन्धेय

—सं० महेश्वर । साहित्य रत्न मठार, भाग्य ।
जुलाई अगस्त १९२६ (उपन्यास
विशेषांक) मार्च ६०, अगस्त १९४४
नवम्बर ४६ ।

नई कहानियाँ

—सं० भैरवप्रसाद गुप्त । राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली मार्च ६२ ।

कृति

—सं० नरेण मेहता । जनपथ नई दिल्ली
मई १९३२ ।

विनोद

—सं० मोसालाप बिन्धु अजु नरेन । विनोद
प्रकाशन १२ लोभर चितपुर रोड
कसकत्ता १ । अगस्त, १९६० ।

कल्पना

—सं० धार्येन्द्र शर्मा धारि । बेगम बाजार
हैदराबाद (दक्षिण)। जून ३४ फरवरी ३८
जुलाई ६१ अगस्त १९३३ अक्टूबर ३६ ।

शाबकल

—सं० बेनेन्द्र सत्यार्षी । पब्लिकेशन्स द्विबीजन,
दिल्ली-८ ।

"

—सं० अन्नगुप्त विद्यालंकार । प्रकाशक
उपर्युक्त । मार्च ५३ जून १९३३ वार्षिक
अंक ४८ अगस्त ३६, नवम्बर ३६ मई ३४,
दिसम्बर ३७ मार्च ३८ अगस्त ६१, जून
६१ अक्टूबर ३६, दिसम्बर ३८ ।

कहानी

—सं० श्रीपतराय भैरवप्रसाद गुप्त । सरस्वती
प्रेस इलाहाबाद । जनवरी १९३६ नव
वर्षांक ३७ नववर्षांक ३८, जनवरी १९३६,
मार्च ६२, जनवरी ६२ अक्टूबर १९६० ।

आलोचना

—(त्रैमासिक) सं० विद्यालंकारिह श्रीहान ।
राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।

—सं० जयश्रीर मारतौ धारि ।

—सं० मन्मथुमारे बाबुपेयी ।

—अंक १ से २२ तक ।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

—सं० बांकिवहारी भटनायर । हिन्दुस्तान
टाइम्स प्रेस नई दिल्ली । २६ ११ ६१ ।

साप्ताहिक बर्मसुग

—सं० सरपकाम विद्यालंकार ।

—सं० डा० धर्मश्रीर -।

रोसमैन

समासोच्चक	—सं० डा० रामबिंसास वर्मा। विनोद पुस्तक मन्थिर, धामरा। प्रसंग १९२९, अगस्त १९२९ सितम्बर १९२९।
अज्ञानता	—सं० बंशीधर विद्यालंकार। द्वितीय प्रचार समा, हृदयबाब (एधिन)। जनवरी २८, फरवरी २८। अक्टूबर-नवम्बर १९२७।
प्रचारिका	—युनिवर्सल विबीजन भारत सरकार, दिल्ली-८ जुलाई, सितम्बर २७।
सारिका	—सं० कार्यकारी सम्पादक ध्यानप्रकाश वैत। वीनेट कोल मैम एम्बकम्पनी लिमिटेड, बम्बई। फरवरी '६२।
अज्ञानता	—सं० लक्ष्मीनारायण मुन्शी। अज्ञानता प्रेष, पटना। मार्च २२, जुलाई १३, अगस्त २६, जनवरी २४।
नावरी प्रचारिणी पत्रिका	—संपादक मन्मथ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कश्चापठि त्रिपाठी, डा० बन्धनसिंह (संयोजक)। काशी नावरी प्रचारिणी समा। वर्ष ६३ संवत् २०१३, अंक २।
अज्ञानता	—सं० द्विवेदनारायण। ज्योत्स्ना कार्यालय, पटना ३। मार्च ६१।
नई भारत	—सं० रामबृक्ष बैनीपुरी। अज्ञानता प्रेष पटना ६।
प्रेरणा	—सं० कमल कोठरी। सोवती वेद कोलपुर। १९२४।
सरिता	—सं० विश्वनाथ। कनाट सर्किस, नई दिल्ली। जनवरी १९२८।
आनन्द	—सं० अश्वनी सं० शरददेवता। ११ क्लासिक रो कलकत्ता-१। फरवरी २८, जनवरी ६१ अक्टूबर २८ मार्च, ६२।
बनुबा	—सं० रामेश्वर प्रुड हरिचंकर परसाई। अज्ञानता, फरवरी १९२८।
धुव बैतना सुप्रभात	—डा० हृदयबाब लक्ष्मण। अज्ञानता २८।
सरस्वती	—सं० पुष्पीनाथ शारदा। कलकत्ता-७ जनवरी-फरवरी २८।
	—महावीरप्रसाद द्विवेदी, पदुमसात पुनसात

- बस्ती देवीबल मुक्त भीमारायण शत्रुघ्नी ।
इच्छिमन प्रेस प्रयाग ।
- साहित्य सम्बन्ध — सं० महेश्वर । साहित्य रत्न मञ्जार, माघ १ ।
जुलाई, अगस्त १९२६ (अपन्यास
विशेषांक) मार्च ६०, अगस्त १९४४
नवम्बर ४९ ।
- नई कहानियाँ — सं० भैरवप्रसाद मुन्त । राजकमल प्रकाशन
दिल्ली मार्च ६२ ।
- कृति — सं० नरेश मेहता । जनपथ नई दिल्ली
मई १९५९ ।
- विनोद — सं० भोलादास बिन्दा धनु नरेश । विनोद
प्रकाशन १२, सोमर चितपुर रोड
कलकत्ता १ । अगस्त, १९६० ।
- कल्पना — सं० धार्येश्वर शर्मा आदि । वेपथ बाजार
हृदयबाद (बसिण) । जून २४ फरवरी २०
जुलाई ६१ अगस्त १९२३ अक्टूबर २९ ।
- भावकल — सं० देवेश्वर सरपार्थी । पब्लिशिंग हाउस दिल्लीजन
दिल्ली-८ ।
- " — सं० अश्वगुप्त विद्यालंकार । प्रकाशक
अपर्युक्त । मार्च २३ जून १९२३ वार्षिक
अंक ४८ अगस्त २६, नवम्बर २६ मई २४
दिसम्बर २७ मार्च २८ अगस्त ६१ जून
६१ अक्टूबर २९, दिसम्बर २८ ।
- कहानी — सं० श्रीपतराय भैरवप्रसाद मुन्त । सरस्वती
प्रेस इलाहाबाद । जनवरी १९२६ नव
वर्षांक २७ नववर्षांक २८, जनवरी १९२६,
मार्च ६२, जनवरी ६२ अक्टूबर १९६० ।
- साप्ताहिक — (त्रैमासिक) सं० धिबवानसिंह भीमान ।
राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।
- सं० अर्मवीर भारती आदि ।
- सं० नन्ददुतारे कामयेयी ।
- अंक १ से २२ तक ।
- साप्ताहिक हिन्दुस्तान — सं० बाँकेबिहाड़ी भटनायर । हिन्दुस्तान
टाइम्स प्रेस नई दिल्ली । २६ ११ ६१ ।
- साप्ताहिक अर्मयुग — सं० सत्यकाम विद्यालंकार ।
- सं० डा० धर्मवीर भारती । केन्द्रीय प्रकाशन

- एण्ड कम्पनी लि०, टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस बम्बई। अगस्त १९२३।
- दैनिक 'आज'
- (साहित्य विधेयांक)
- मानमण्डल कबीर चौक बाराबंसी १।
१२ जनवरी १९२९ ई० ११ जनवरी
१९४९ ई० १७ जनवरी १९६० ई०
- हिन्दी टाइम्स (साप्ताहिक)
- सं० नरोत्तम नागर। २ वी। ३ रोडक
रोड नई दिल्ली—५। १७ मार्च, ६९
२४ मार्च ६२ ३१ मार्च ६१ १४
अप्रैल ६२।

अप्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की सूची

- इलस्ट्रेटेड बीकली प्राफ इण्डिया
- सम्पादक ए० एच० रामम। बेंगलूर एण्ड
कोलमैन एण्ड कम्पनी, लि०। बी टाइम्स
प्राफ इण्डिया प्रेस बम्बई। नवम्बर १९,
१९२८
- बी टाइम्स प्राफ इण्डिया
- सं० एन० जे० ननयोरिया। बी टाइम्स प्राफ
इण्डिया प्रेस, बेंगलूर कोलमैन एण्ड कम्पनी
लि० दिल्ली। एप्रिल, १८ जून १९२१
२२ जून १९६१ १९ फरवरी १९६१
- नवम्बर अवरल
- सं० एच० रामकृष्णन। भारतीय विद्या
बनन धार्मिक रोड बम्बई-७। फरवरी
१९२९
- बी स्टैंडमन
- ६ मार्च, १९२९ ई०

अन्य सामग्रियां

- साहित्यकार सम्मेलन इलाहाबाद
(१९२७) में पठित निबंध एवं परिचर्चा
—धाकावासी से प्रसारित बातावटें।

